॥ श्रीः ॥

लघुसिद्धान्तकौमुदी.

पदवाक्यप्रमाणपारावारीणश्रीमद्वरदराजभट्टप्रणीता.

मुरादाबादीय-

धर्मसभामहोपदेशक-पण्डितप्रवर-दैवज्ञ-विद्वद्वर-

श्रीयुतज्वालानाथसूरिसूनुना

व्रजरत्नभट्टाचार्येण

प्रणीतया रसालाख्यया हिंदीभाषाव्याख्यया समलंकृता.

परीक्षोपयोगिप्रश्नाः, गणेष्वनिर्दिष्टा उत्तरत्रोदाहृता धातवः, परिभाषापाठः, शिक्षा, गणपाठः, अकारादिवर्णक्रमेण सुबन्तशब्द (प्रातिपदिक) सूची, अकारादिक्रमेण धातुसूची, अकारादिक्रमेण सूत्रसूची च तत्तत्पृष्ठबोधकाङ्कगुम्फिता, मङ्गलवादश्लोकेनेव विविधपरिशिष्टेन समुपगृहिता च

सेयम्

गङ्गाविष्णु-श्रीकृष्णदासेत्यनेन

स्वकीये "लक्ष्मीवेंकटेश्वर" यन्त्रालयेऽङ्किता.

अभिनवसंस्करणम्.

कल्याण-मुम्बई.

संवत् १९५३, शकाब्दा १८१८.

TO

PANDIT JWÀLÀNÀTH SHÀSTRI

THE

BOOK IS DEDICATED

AS A TOKEN

BY

P. BRAJRATNA BHATTACHARYA

MOHULLA PATUBARGANJ,

MORADÀBAD

N W P. 1896.

॥ श्रीः ॥

समर्पणम्.

पूज्यपादश्रीमद्ज्वालानाथशास्त्रिभ्योगारगुरुभ्यो नमः ।

ये चास्मिञ्जगति कानने कुसुमस्तबक इव स्वकीयकाव्यसौरभं विस्तीर्य विशीर्णाः, ये चाखिलविद्यासारस्वतो गाहं गाहञ्चापि पारदेशीयानामबहुपरिचिताः समभूवन्; तेषामेव स्वर्गसुखप्राप्तश्रीज्वालानाथज्योतिर्विदाममलचरणसरोरुहेषु रसालेयं सबहुमानपुरःसरं समर्पितास्ति ।

मुरादाबादः
८ वै० कृ० १९५३
पटुवरगञ्ज

तेषामौरससूनुना—
व्रजरत्नभट्टाचार्येण
अनुवादकर्त्रा.

अनुवादकवंशपरिचयः ।

उद्घाटितारो ग्रन्थानां सर्वेषामर्थग्रन्थयः ॥
विमत्सरा वाग्मिनश्च कवयः साधुसम्मताः ॥ १ ॥

कृतकुक्कुटव्रताश्चैव त्यक्तबैडालवृत्तयः ॥
सततं क्रतुकर्त्तारो विद्यावन्तो यशस्विनः ॥ २ ॥

सर्गादौ समजायन्त कर्म्मठाख्याः सुगुर्जराः ॥
परिवादपराचीनचेतसो हि द्विजन्मनः ॥ ३ ॥

आसीत्कुलपतिस्तत्र विद्वद्रत्नमहाशयः ॥
विद्याचुञ्चुः राज्यमान्यो राधाकृष्णाभिधः कविः ॥ ४ ॥

तद्वंशे श्रीनूपजीधर्म्मदत्तौ ज्योतिःशास्त्रे लब्धकीर्त्ती किलास्ताम् ॥
तारुण्ये वै कोविदो धर्म्मदत्तः स्वर्गं ह्यातीद्यायजूकप्रवर्हः ॥ ५ ॥

सुतावभूतां किल धार्मिकस्य भुत्
वदान्धका चन्द्रमणिश्च प्राणमुद्[1] ॥
अनूपदत्तस्य कुलप्रकाशकौ
सुराज्यमान्यौ कविताविलासिनौ ॥ ६ ॥

श्रीमद्भूदेववंशप्रथितगुणगणाभूषणालङ्कृताङ्गो
गोषड्कर्मार्चनादिष्वविरतनिरतश्चान्द्रमणिश्चण्डकर्म्मा ॥
श्रीमच्चन्द्रार्धचूडामणिपदकमलाराधकः शुद्धबुद्धिः
ज्वालानाथः कवीन्द्रो ह्यजनि जनकजाजानिपादप्रसादात् ॥ ७ ॥

तत्सूनुना व्रजरत्नभट्टाचार्येण निर्मिता ॥
रसालाख्या सुव्याख्येयं विद्वन्मार्गानुसारिणा ॥ ८ ॥

---

१ प्राणसुख ।

॥ श्रीः ॥

7996

मुखबन्धः ।

सन्ति श्वान इवोद्वान्तभोजिनः किल पण्डिताः ।
स्वकीयबालवान् विद्वान् शरभः कोऽपि दुर्लभः ॥

प्रियवाचकवर्ग !

असार और अपार इस संसारमें विधाताने विद्या कैसा अमूल्य रत्न उत्पन्न किया है, जिसके द्वारा समस्त मनुष्य स्वकीय कर्त्तव्य कर्मोंको भली प्रकार जान सक्ते है ऐसी कोईभी वस्तु नहीं है जिसे कि-विद्वान् न जान सकें विद्वान् मनुष्यको जो कुछ लाभ है वोह सर्वसाधारणपर प्रकट हैं, पठित मनुष्य पुस्तक पढकर केवल सब स्थानोंहीके सुखका अनुभव नही किन्तु जिस समयका वर्णन उसमें होता है उसका ठीक २ अनुभव कर सक्ता है इस विद्याहीके द्वारा प्राणी महाराज रामचन्द्र कृष्णचन्द्र और युधिष्ठिर आदिकोंके चरित्रोंको इस प्रकार देख सक्ता है जैसे कोई दर्पणमें प्रतिबिंबको देखता हो. विद्यायुक्त प्राणी अपना चित्त प्रसन्न करनेके हेतु उन पूर्वपुरुषोंके बडे २ कार्य मानो दूसरीवार करा सक्ता है, यह विद्यारत्न ऐसा अपूर्व और अनर्घ होनेपरभी चोरसे चुराया नहीं जाता। विद्याधन दान करनेसे न्हास न होकर वृद्धिगतही होता है. विशेष क्या कहे-विद्यारूप नेत्र जिसके नहीं है वोह अन्धेकी समान परिगणित होता है। इस विद्यामन्दिरमें प्रविष्ट होनेके अर्थ यह व्याकरणही एक मुख्य द्वार माना गया है, कारण कि-ऐसा कौनसा-वेद, धर्मशास्त्र, छन्दोग्रन्थ, अलंकार, इतिहास पुराण कोष काव्य. नीति या नाटक है कि-जिसके पढने पढाने वा देखनेमें व्याकरणशास्त्रकी आवश्यकता न हो। व्याकरणशास्त्रके न जाननेसे अनेकों अनभिमत अर्थ हो जाते है, कारण यह है कि-जबतक उदात्तादि स्वरोंको सत्य २ न जाना जाय तबतक यथार्थ उच्चारण नहीं हो सक्ता अत एव यथार्थ अर्थकी प्रतीतिभी नहीं हो सक्ती. कहाभी गया है:-

" दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह ।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥ "

अर्थात्-स्वर वा वर्णसे मिथ्या (अन्यथा) प्रयोग किया गया दुष्ट शब्द उस (अभीष्ट) अर्थको नहीं कहता, किन्तु-स्वरके दोषसे ' इन्द्र-

शत्रुः ' की सदृश वोह (मिथ्याप्रयुक्त) वाणीरूप वज्र यजमानहीका हनन करता है,-

तात्पर्य यह है कि-इन्द्रस्य शत्रुः (इन्द्रशत्रुः) यहां तत्पुरुष समासमें अन्तोदात्त स्वर होता है, और उसे अन्यथा उच्चारण करनेसे-इन्द्रः शत्रुः यस्य सः (इन्द्रशत्रुः) यहां बहुव्रीहि समासमें आद्युदात्त स्वर होनेसे अन्य अनभिमत अर्थ हो जाता है ।

अतएव हम मुक्तकण्ठसे कह सक्ते हैं कि-व्याकरणका पठन परमावश्यक है, कहाभी है:-

" **यद्यपि बहु नाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम् ।**
स्वजनः श्वजनो मा भूत्सकलं शकलं सकृच्छकृत् ॥

अर्थात् यदि बहुतभी न पढो तथापि व्याकरण पढना उचित है, क्योंकि-विना व्याकरणके अध्ययनसे स्वजन (कुटुम्बी) को श्वजन (श्वान) सकल (सम्पूर्ण) कू शकल (खण्ड) और सकृत् (एकवार) कू शकृत् (विष्ठा) कहनेकी सम्भावना है । विशेष क्या लिखें ?

शब्दशास्त्रमनधीत्य यः पुमान् ।
वक्तुमिच्छति वचः सभान्तरे ॥
रोद्धुमिच्छति वने मदोत्कटं ।
हस्तिनं कमलनालतन्तुना ॥ १ ॥

अर्थात् जो मनुष्य व्याकरणशास्त्रकू न पढकर सभामें वक्तृताकी इच्छा करते हैं, मानो वे मनुष्य कमलनालके तन्तुसे वनके बीचमें उन्मत्त गजराजका बन्धन करना चाहते हैं । प्रथम व्याकरणशास्त्रमें श्रीपाणिनिमुनिप्रणीत अष्टाध्यायी पढायी जाती थी, परन्तु-उसके पढनेमें संक्षेप अधिक और सूत्रोंके पूर्वापरका क्रम न होनेके कारण अतिशय कठिनाई पडती थी. कुछ दिनों पीछे श्रीजयादित्य महाशयने अष्टाध्यायीके क्रमानुसारही ' काशिका ' नाम वृत्ति बनायी, इसके पाठसे छात्रवर्गको किंचिन्मात्र लाभ पहुँचा परन्तु-कठिनताका अत्यन्ताभाव न हुआ । तदनन्तर श्रीभट्टोजिदीक्षितने सूत्रोंके क्रमको परिवर्त्तन कर ' सिद्धान्तकौमुदी ' नामक वृत्ति बनायी, परन्तु-उसके पढनेभी यत्रतत्र आगामिसूत्रोंकी आवश्यकता होती थी, येही नही बल्कि-फक्किकाओंकी क्लिष्टता और परदेशका वास सदाके लिये दृष्टान्तालङ्कार हो गये हैं:-

" प्रथमतः पठनं कठिनं कृतं ।
पुनरहो परदेशनिवासनम् ॥
कठिनदीक्षितकौमुदिफक्किका ।
दहति छात्रवधूहृदयं सदा ॥ १ ॥ "

इत्यादि असंख्य आपत्तियोंका प्रध्वंसाभाव करनेके लिये श्रीवरदराजभट्टने ' मध्यसिद्धान्तकौमुदी ' और ' लघुसिद्धान्तकौमुदी ' निर्माण करीं, उनमेंभी ' लघुकौमुदी ' ही व्याकरणशास्त्रमें प्रवेश होनेका मुख्य द्वार है ।

उक्त नामके इस ग्रन्थमें–कोकिलकलकण्ठीका कलरव, जयदेव महापण्डितका ' मजितमणिमजीरे मलयसमीरे ' आदि श्रवणसुखद वाक्यविन्यास, और भारविकविका अर्थगौरव, तथा दण्डी पण्डितका पदलालित्य, कालीदास कवीश्वरकी उपमाकी अनुपम छटा नही है, इसमें बाणभट्टकी अलौकिक लेखशक्तिका धाराप्रवाह या माघ² कवीश्वरका अकथनीय पाण्डित्य और नैयायिकोंका वागाडम्बरभी नही है, इसके आदिहीमें भूतभावन योगिराज श्रीमहादेवजीके डमरूका भीषण निनाद और ' टिङ्ढाणञ् ' आदि श्रवणकटु शब्द हैं, फिर इसके पढनेमें कौन बद्धादर हो इसके पाठमें किसका लोलुपमन लगे ? नही नही–इसमें समास (संक्षेप) से महागूढ-गौरवता रक्खी है, आज दिन इस भूमण्डलपर कौन ऐसा हिंदूसन्तान होगा कि–जो वेद भगवान्‌को अपना धर्मपुस्तक कहना स्वीकार न करता हो, आज दिन जितने मत मतान्तर है सभीका वेदके ऊपर निर्भर है, उसी वेदको न्यायशीला ब्रिटिश गव्हर्मेण्टनेभी सबसे प्राचीन पुस्तक समझ विशेष आदर किया है । पूर्वकालमें जिस वेदकी ध्वनिसे ब्राह्मणोंके आश्रम गुञ्जारने रहते थे उसी आदि पुस्तक वेदका यह व्याकरणभी एक अङ्ग³ है ।

पहिले इस वेदाङ्गहीके नही बल्कि सबही विद्याओंके पढनेमें अधिकतर परिश्रम सहने पडते थे । यद्यपि प्राचीन छात्रवर्ग भगवान् कुमुदिनीनायकको उज्ज्वल चन्द्रिकाका आश्रय ले घोषणा करते थे, गुरुकुलकी अनेकों

१ " उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम् । दण्डिन पदलालित्य माघे सन्ति त्रयो गुणा ॥ १ ॥ " २ नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते । ३ शिक्षा कल्पो व्याकरण निरुक्त छन्दसा चय । ज्योतिषामयन चैव वेदाङ्गानि षडेव तु ॥ १ ॥

सेवा करनेसे किंचिन्मात्र गुरुलक्ष्य विद्या मिलती थी, तथापि प्राचीन पण्डित महाशय अर्वाचीन महापण्डितोंसे कही बढ चढ कर होते थे, विशेष प्राचीनोंका तो कहनाही क्या है अल्पकालकेभी पण्डित महाशय अपनी कीर्त्तिको चिरस्थायी कर गये है, ऐसा कौनसा पढा लिखा जन है कि-जिसकी जिह्वापर गुरुवर श्रीबालशास्त्रीजी महोदयका नाम नृत्य न करता हो ।

यद्यपि हमें इंग्रेजी राज्यमे पढनेके बहुतसे सुभीते हैं, सरकारने हमारेही उपकारके लिये अनेकों महाविद्यालय (कॉलिज) स्थापित करा दिये हैं, दयालु गव्हर्मेण्टने प्रतिस्थानमें लालटेनोंकी कतार लगा दी है कि-जिसके प्रकाशमें हम सुखसे पढ सक्ते है प्राज्ञ-शास्त्री-और आचार्य आदि परीक्षायें हमारेही सुभीतेके लिये नियत करी है, तथापि यह देववाणी संस्कृतविद्या प्रतिदिन अधोगतिको जा रही है. हा-भाषाकी कुछ उन्नति कह सक्ते है ।

भिन्न २ देशभाषाओमें सम्पूर्ण व्यवहार होनेहीसे संस्कृत भाषा विशेष कठिण हो गयी, अतएव संस्कृत ग्रन्थोंका भाषानुवाद हो २ कर मुद्रित होने लगा इस बीचमे परमोदार गुणग्राहक श्रीयुक्त सेठजी गंगाविष्णु श्रीकृष्णदासजीके अनुरोधसे हमने यह अनुवाद निर्माण किया:

यद्यपि-सिद्धान्त और मध्यसिद्धान्त कौमुदीके ऊपर संस्कृत टीकेभी है. परन्तु-लघुकौमुदीके ऊपर अद्यावधि कोई संस्कृत टीका अधिगत नही हुआ । इस ग्रन्थके ऊपर प्रथम बनारस कॉलिजके मुख्याध्यक्ष श्रीयुत डाक्टर वालेंटेन साहबने इंग्रेजी भाषामे अनुवाद किया था । तदनन्तर उन्हीं महानुभावकी आज्ञासे इसका भाषानुवादभी छपकर प्रकाशित हुआ परन्तु यह अनुवाद सर्वथा श्लाघनीय होनेपरभी विशेष प्रसिद्ध न हुआ. तथापि अभिनव परिश्रम होनेके कारण विशेष प्रशंसनीय है । इसके अनन्तर गुजराती मरहठी आदि कई भाषाओमे कई टीके मुद्रित हुए जो कि-उक्त भाषाटीकेहीके आश्रयमे निर्मित हुए । तत्पश्चात् औरभी एक दो स्थानोंमें हिन्दीमें अनुवादित होकर यह ग्रन्थ छपा परन्तु-बॉम्बे प्रान्तमें अद्यावधि कोई लाभकारी टीका मुद्रित नही हुआ था इस अभावको दूर करनेके लिये यह अनुवाद लक्ष्मीवेंकटेश्वर नामक यन्त्रालयमे अंकित कराया ।

प्रथम हमने संवद् १९४३ में लघुसिद्धान्तकौमुदीका हिन्दीभाषानुवाद बनाना आरम्भ किया था, परन्तु उस समय षड्लिंगही पर्यन्त पूर्ण कर किसी विशेष कारणसे छोड़ दिया, हितोपदेश आदि अन्यान्य पुस्तकोंका अनुवाद बनाना प्रारम्भ किया। तदनन्तर फिरभी सवत् १९४९ में विजया दशमीके दिनसे इसका अनुवाद बनानेमें चित्त लगाया. परन्तु विघ्नोंका बाहुल्य होनेके कारण यह ग्रन्थ शीघ्र पूर्ण नहीं हो सका। तदनन्तर इस अवसरमें श्रीयुत गंगाविष्णु श्रीकृष्णदासजीके अनुरोधसे अधिक प्रोत्साहित होकर सवत् १९५१ कार्तिकी पूर्णिमाके दिन यह अनुवाद पूर्ण किया।

कोमल हृदयवाले प्रेमियोंसे यहभी सादर निवेदन किया जाताहै कि-इस ग्रन्थमें यदि कहीं आपको कोई कुवांच्य शब्द प्रतीत होय तौ चित्तको सावधान रखकर उसपर ध्यान न दे के उसके उद्देशसे लाभके भागी हूजिये, अभिप्राय यह है कि-हमको अपने लेखमें ऐसे श्रवणकटु शब्द आ: गये प्रतीत होते हैं जो साधुसज्जनोंके चित्तमें छिदकर उद्विग्न करेंगे-अतएव यह प्रार्थना करनी आवश्यक समझी गयी है, आशा है कि-पाठक महाशय उदारबुद्धिसे इस अनुचित ढिठाईको क्षमा करेंगे-

पाठकों ! इस हिन्दीके अनुवादमेंभी सर्वोत्तम आदि भाषा व्रजभाषाकी[1] रसीली वाणी, बडे २ बङ्गाली लेखकोंकी लेख परम्पराका आश्रय, हिन्दी-भाषाके ऊपर गुर्जर (गुजराती) भाषाकी बिन्दीका लगाना तथा सर्वगुणआगरी नागरीको निज राजभाषा इंग्रेजीसे विभूषित करना और मरेहठी आदि अनेक भाषाओंके सहवासका होना इत्यादि. कोई गुण नही है, इन सबके बदलेमें इसका केवल ‘ रसाल ’ नाम रखकर आपको लुभाया है।

इस टीका करनेके प्रथम दो तीन स्थानोंके मुद्रित औरभी टीके देखनेमें आये, परन्तु-वोह सर्वसाधारणके विशेष उपकारी न हुए कारणकि वोह अनुवादक महाशय उन त्र्युटियोंको पूर्ण नही कर सके हैं।

स्मरण रहे कि- इस टीकेको जैसा उत्तम बनाना हम चाहते थे उसका सहस्रतम अंशभी न बना सके, इसका कारण शीघ्र मुद्रित होकर प्रकाश होना था।

१ व्रजकी रहनेवाली पांच वर्षकी अबोधबालिकाके कोमल चरणोंमें जब ककरी गडने लगी तब वोह अपनी मातासे कहने लगी “ माय री माय मग सांकरी पायनुमें कांकरी मरतु है ” जहांके अबोध बालकोंकी भाषामें इतनी कमनीयता है वहांके कवियोंकी कौन कहे।

जिस प्रकार कि-' श्रीयुत शेठजी गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदासजी ' ने इ
ग्रन्थको मुद्रित कर दान और सन्मानसे हमें सन्तुष्ट किया है इसी प्रका
हमभी उक्त महानुभावके यश आयु सन्तान और लक्ष्मीकी वृद्धि श्रीम
हादेवजीसे निरन्तर प्रार्थना करते हैं ।

अन्तमें-पाठकोंसे प्रार्थना है कि-इस अनुवादमें आपको अशुद्धियें उप
लब्ध होंगी आशा है आप क्षमा कर गुण ग्रहण करेंगे । अनुग्राहक वा
चकोंसे यहभी निवेदन है कि-इस आवृत्तिमें जो कोई उपयोगी विषय र
गया हो कृपा कर पत्रद्वारा उसे सूचित कर दीजिये कारण कि-द्वितीया
वृत्तिमें निविष्ट कर दिया जायगा ।

भवदीय प्रीतिविश्रम्भभाजनः-

ब्रजरत्नभट्टाचार्यः
मोहल्ला-पटुवरगंज,
मुरादाबाद-सिटी.

१५ चैत्र १९५२
२९ मार्च १८९६.



॥ श्रीः ॥

परीक्षोपयोगिप्रश्नाः ।

१ सुखार्त्तः । एतद्मुरारिः । चक्रिंस्त्रायस्व । सञ्च्छम्भुः । एतेषां साधुत्वं प्रदर्शनीयम् ।

विष्ण इह । रामष्टीकते । राजँश्चित्रम् । देवा इह । कथमेते साधवः।

२ दधिमातियुष्मच्छब्दानां षष्ठीचतुर्थ्येकवचने कीदृशानि रूपाणि, कथञ्च तत्सिद्धिः ।

क्रोष्टुहरिवारिविश्वावादृशशब्दानां द्वितीयासप्तम्येकवचने कीदृशानि रूपाणि, विशेषसूत्रोपन्यासेन साध्यन्ताम् ।

३ अभूत् । अवोढाम् । अजुहवुः । अद्भिः । चकरतुः । अशिनट् । एषां सिद्धिः प्रदर्शनीया ।

अगीताम् । इयष्ठ । अयावि । बभूविथ । एतेषां प्रयोगाणां साधुत्वं ब्रूत ।

४ शतमपजानीते । दास्याः संयच्छते कामुकः । एतयोः आत्मनेपदविधायकं किं पृथगुपपादनीयम् ।

५ जनमेजयः । रागः । अनयोः साधुत्वमुपपादयत ।

६ देवब्राह्मणः । रूपवद्भार्यः । महाराजः । अधिहरि । अहोरात्रः। अत्र प्रत्येकं कः समासः कश्च सिद्धिप्रकारः ।

अधस्तनानां पदानां विग्रहाः समासनामानि च निरूपणीयानि—मारुतपूर्णरन्ध्रैः । जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्याम् । विसृष्टपार्श्वानुचरस्य । पल्वलोत्तीर्णवराहयूथानि । बाहुप्रतिष्टम्भविवृद्धमन्युः । पादार्पणानुग्रहपूतपृष्ठम् । पीतप्रतिबद्धवत्साम् ।

७ दाक्षायणः । अत्र कः प्रत्ययः किञ्च तद्विधायकम् ।

८ गोपी । गोपालिका । सुकेशी । एषां साधुत्वं कथम् ।

मृद्वी । चन्द्रमुखी । शूर्पणखा । एतेषु स्त्रीप्रत्ययविधायकसूत्राण्युपन्यस्य—षाण्मातुरः । तावकीनः । नादेयः । एतेषां साधुत्वप्रकारः विग्रहश्च प्रदर्शनीयः ।

९ प्राहुः । इत्यस्य कथं सिद्धिः कथं चास्य उत्तमपुरुषैकवचनम् ।
प्रमादालस्यजाड्यानि कथमत्र समासः ।

१० वस-धातोः लिटि कथं रूपाणि ।

११ गम-धातोः लुङि रूपाणि प्रदर्श्य घानिष्यते इति साधु साधनीयम् ।

१२ साध्यः । शङ्कितदृष्टिः । अधोदृष्टिः। उपेक्षितः । एतेषां पदानां सविस्तरं साधनं लेख्यम् ।

१३ गुणग्राहिणी । वत्सराजचरितम् । वाञ्छितफलप्राप्तेः । मद्भाग्योपचयात् । एतेषां पदानां समासो लेख्यः ।

१४ अध्यास्य । अवेहि । निषेदुषी । आददाना । एतेषां पदानां प्रकृतिप्रत्ययविभागः कथम् ।

१५ गजो वनविहाराणां सस्मार । अस्मभ्यं रोचते । धनाय स्पृहयति । मनुष्येषु पण्डितः श्रेष्ठः । एषु वाक्येषु का का विभक्तिः कस्मिन्नर्थे केन केन सूत्रेण विहितास्ति ।

१६ कामयमानः । शोचन् । जाज्वल्यमानः । पार्वतीयः । निष्किञ्चनः । चस्खाल । जगाद । एतेषां पदानां साधनं लेख्यम् ।

१७ मुमोच । अगच्छन् । पश्यति । तिष्ठति । जिघ्रति । दध्मौ । यच्छति । कस्य कस्य धातोरेतानि रूपाणि कथं चैषां धातूनां लोटि लिङि च रूपाणि ।

१८ विश्रान्तविग्रहकथः । बद्धपरिकराणाम् । श्वसनोद्गमैः । कोपविपटलद्युति । सरोरुहद्युतिमुषः । श्रवणपथातिथित्वम् । हृदयनिहितातङ्कविधुरा । सर्वमनोरमा । एषां पदानां विग्रहोऽर्थश्च प्रदर्शनीयः ।

१९ अन्तर्लीनभुजङ्गमं गृहमिव व्यालाकुलं वा वनम् ।
ग्राहाकीर्णमिवाभिगमकमलच्छायासनाथं सरः ॥
नानादुष्टजनैरसत्यवचनासक्तैरनार्यैर्वृतम् ।
दुःखेन प्रतिगम्यते प्रचकितै राज्ञां गृहं वार्द्धिमत् ॥ १ ॥

लोकेऽथवा तनुभृतां निजकर्म्मपाकं ।
नित्यं समाश्रितवतां सुहितक्रियाणाम् ॥
भावार्जितं शुभमथाप्यशुभं निकामम् ।
यद्भावि तद्भवति नात्र विचारहेतुः ॥ २ ॥

प्रथमश्लोके निम्नरेखाङ्कितपदानां समासाः व्यासवाक्यानि च विलिख्य, प्रथमद्वितीयश्लोकयोर्वाच्यपरिवर्त्तनं विधेयम् ।

२० लीन । भुजङ्गम । भावि । सुहित । क्रिया । कर्म्म । पाक । आकीर्ण । इति शब्दानां प्रकृतिप्रत्ययनिर्देशः कार्य्यः ।

२१ श्रि । भू । भृ । अर्ज् । अर्द । इति धातूनां लिटः प्रथमपुरुषैकवचने कानि रूपाणि ।

२२ युद्धाय अवस्थितः । भोगाय अलम् । न मे त्वया अर्थः । अल्पस्य हेतोः बहु त्यजति । विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम् । एषु अधोरेखाङ्कितपदेषु प्रयुक्तानां विभक्तीनामुपपत्तिः कार्य्या ।

२३ "मुक्ताफलाय हरिणं करिणं पलाय
सिंहं निहन्ति भुजविक्रमसूचनाय"
इत्यस्मिंश्लोके कश्चिद्दोषोऽस्ति न वा ? सयुक्तिकमुत्तरणीयम् ।

२४ अथ प्रयत्नोन्नमितानमत्फणैर्धृते कथंचित्फणिनां गणैरधः ।
न्यधायिषातामभिदेवकीसुतं सुतेन धातुश्चरणौ भुवस्तले ॥ १ ॥
घूर्णयन्मदिरास्वादमदपाटलितद्युती ।
रेवतीवदनोच्छिष्टपरिपूतपुटौ दृशौ ॥ २ ॥
निशान्तनारीपरिधानधूननस्फुटागसाप्यूरुषु लोलचक्षुषः ।
प्रियेण तस्यानपराधबाधिताः प्रकम्पनेनानुचकम्पिरे सुराः ॥ ३ ॥
उपेयिवांसि कर्त्तारः पुरीमाजातशात्रवीम् ।
राजन्यकान्युपायज्ञैरेकार्थानि चिरैस्तव ॥ ४ ॥
अथोच्चकैस्तोरणरङ्गभङ्गभयावनम्रीकृतकेतकानि ।
क्रियाफलानीव सुनीतिभाजं सैन्यानि सोमान्वयमन्वयुस्तम् ।" ५ ॥

अधोविन्यस्तरेखापदानां विग्रहाः व्यासवाक्यानि च देयानि, उपरितनेषु श्लोकेषु यदि कुत्रचिदशुद्धिरुपलभ्येत तर्हि सा सुस्पष्टं प्रदर्शनीया शोधनीया च ।

२५ ऊरुमुक्तशीकरौघान् । विमलमणिद्युतिसभृतेन्द्रचापान् । आबद्धनेत्राञ्जनपङ्कलेशः । इति पदानां समासान् ब्रूत ।

२६ अनादरे गम्यमाने षष्ठ्याः, अभेदे गम्यमाने तृतीयायाः, क्रियाग्रहणाच्चतुर्थ्याश्च उदाहरणानि लेखनीयानि ।

२७ 'राज्यं भुंक्ते' अत्र कथं भुजेरात्मनेपदम् । 'कर्त्तुं शक्नोति' इत्यत्र कथं शकस्तुमुन् ।

२८ 'विदुः' इति पदस्य प्रकृतिप्रत्ययनिर्देशं कुरु । एतत्प्रकृतेर्लोटि प्रथमपुरुषबहुवचने रूपाणि लिख ।

२९ अर्थग्रहणं किम्, वृत्तावर्थान्तरेति फक्किकाभिप्रायः स्फुटं स्फोरणीयः । अमुकेऽत्र-पुंख्यानम्—कांस्कानित्येतेषु संधिश्च निरूपणीयः ।

३० उभय-शब्दस्य द्विवचनमिति पङ्क्तेराशयः कः, उभयोश्च मतयोः कतरन्न्याय्यम, तदुपपादयत । साधु साध्नुत च सुसखिना बहुश्रेयस्याम् मत्याम् हे कतरदिति रूपाणि ।

लित्सु मघवान् गोरक् उशनन् दधिसेचौ पिपठिषि । एते प्रयोगा यथाशास्त्रमुपपादनीयाः ।

३१ शूद्रोपाध्यायशब्दयोः स्त्रियां किं किं रूपं भवति, कथंच तत् 'शैषिके कपितु विकल्प एव, ताच्छीलिके णेपी' ति वचनयोश्च किम्मानम् ।

३२ बलिं याचते वसुधाम्, उभयतः कृष्णं गोपाः, यागाय याति, केशेषु चमरीं हन्ति, सर्पिषोपि स्यात् । एतेषां प्रयोगाणां साधुत्वमुपपादयत ।

३३ कर्तृकर्मणोः कृतीति सूत्रे कृद्ग्रहणस्य फलं ब्रूत ।

३४ द्व्यहजातः, द्व्यान्हा, चित्रजरद्गवीकः, गायत्रीं पच्छः शंसति, कौमुदगन्धीपतिः, दूर्वावणम् ।

३५ व्राधायन्यः, वैयासकिः, श्रौवेयः, पाणिनीयः, साखेयम्, शार्करिकम् ।

३६ एको गोत्रे इति सूत्रस्य प्रयोजनं सप्रपञ्चं कथयत । साधुत्वे दुर्जनो जनः । नवे दारपरिग्रहे । विस्मारिता वयं तातदशरथस्य रामभद्रेण । इत्यत्र सप्तम्याः षष्ठ्याश्च कोऽर्थः अकथितं चेत्यस्य सूत्रस्य कोऽर्थः कश्चोपयोगः । १२

३७ दुर्जनः । दशरथः । रामभद्रः । विचारणीयचरिताः । कपथः । पश्चार्धम् । द्वादशम् । लोलोल्लोलक्षुभितकरणोद्वेगः । इत्यत्र प्रत्येकं कः समासः कश्च विग्रहः । १२

३८ असह्यः । सत्रम् । पौर्वशालः । दाक्षायणः । शीर्षघाती । स्तनसंबाधम् । सम्पृक्तौ । प्रत्यक्षम् । इत्यत्र प्रत्येकं प्रकृतिप्रत्या विभागः प्रदर्श्यः । १२

३९ उत्तरेण । कनिष्ठः । पितृकः । पौरुषेयः । सार्वभौमः । आरावः । वनस्थली । इत्यत्र प्रत्येकं कस्मिन्नर्थे प्रत्ययः । १२

४० वरीवर्ति । पुत्रीयाति । भृशायते । पिपठिषति । इति रूपाणि साध्यंताम् । १२

४१ व्रज्-दा-हु-अन्-मृज्-स्तु-रुध्-इत्येषां लङि लिटि च रूपाणि प्रदेयानि । प्रत्येकं निष्ठान्तं शत्रन्तं रूपमपि प्रदर्श्यम् । २०

४२ अस्मत्-अदस्-जग्मिवस्-मघवन्-इत्येषां प्रथमाद्वितीयारूपाणि प्रदर्श्य स्त्रीप्रत्ययान्तं रूपमपि यथासंभवं प्रदर्श्यम् । २०

व्रजरत्नभट्टाचार्यः

पट्टुवरगंज, मुरादाबाद

विषयानुक्रमणिका.

विषयानुक्रमणिका समाप्ता ।

॥ श्रीः ॥

अथ

रसालाख्यहिन्दीव्याख्यासमन्विता

लघुसिद्धान्तकौमुदी.

(सटिप्पणीका)



अत्रभवान् व्याकरणाचार्य्यो वरदराजभट्टः स्वग्रन्थनिर्विघ्नपरिसमाप्त्यर्थन्नमस्कारात्मकमङ्गलमाचरन् स्वाभिलषितं सूचयति, नत्वेत्यादिना—

नत्वा सरस्वतीन्देवीं शुद्धाङ्गुण्याङ्करोम्यहम् ।
पाणिनीयप्रवेशाय लघुसिद्धान्तकौमुदीम् ॥ १ ॥

अन्वयः—अहं शुद्धां गुण्यां सरस्वतीं देवीं नत्वा, पाणिनीयप्रवेशाय लघुसिद्धान्तकौमुदीं करोमि ॥ १ ॥

अर्थः—अहमिति । अहम्-ग्रन्थकारो भट्टवरदराज इत्यर्थः, शुद्धाम्-शुद्धियोगात् शुद्धा, शुद्धिश्च ? दोषराहित्यं, सात्विकत्वं वा, रजस्सम्पर्कशून्यत्वं वा, यद्वा नैर्मल्यापरपर्य्यायत्वं तद्योगात् शुद्धा तां शुद्धाम्, गुण्याम्-गुणैर्वात्सल्यादिभिर्युक्ता गुण्या, वा गुणा देवस्तोमानुमोदनादीनि तैर्युक्ता गुण्या, उत विविधमूर्तिप्रकाशरूपाः गुणास्तैर्युक्ता गुण्या, यद्वा सत्वादिभिः जन्मस्थितिलयहेतुभिर्गुणैर्युक्ता गुण्या तां गुण्याम्, सरस्वतीम्-सरः प्रसरणम्मुखेऽस्यास्तीति सरस्वती ताम् सरस्वतीम्, देवीम्-दीव्यति द्योतते त्रिभुवने देवसभायां वेति देवी, अथवा दीव्यति संसारचक्रेण क्रीडतीति देवी, वा दीव्यति स्तूयते मोक्षार्थिभिर्विद्यार्थिभिर्वेति देवी, यद्वा दीव्यति व्यवहरति नानारूपप्रदर्शनेनेति देवी, उत दीव्यति विजिगीषति नवरसात्मकसृष्टिप्रदर्शनेन स्रष्टारं रक्तबीजादीनि वेति देवी, किं वा दीव्यति स्वानन्देनात्मानि मोदते इति देवी, वा दीव्यति देवभयदूरतरापास्तत्वेन माद्यतीति देवी, वा

१ मङ्गलादीनि, मङ्गलमध्यानि, शास्त्रान्ते च मङ्गलानि प्रथन्त इति भाष्यम् ।

२ दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु ।

दीव्यति भक्तैश्वर्यमिच्छतीति देवी, किंवा दीव्यति सुधासमुद्रान्तःपातिनि मणिद्वीपे भ्राजते इति देवी, उत दीव्यति सत्त्वहृदयत्त्वहृदयेऽततीति देवी तां देवीम्, 'नत्वा-कायवाङ्मनोभिः प्रणम्येत्यर्थः; पाणिनीयेति-पणन पणः स्तुतिः सा विद्यते यस्य सः पणिर्ब्रह्मा तस्य गोत्रापत्यं युवा पाणिनिस्तेन प्रोक्तम्परोपदेशं विनैव परिज्ञायते इति पाणिनीय, 'तेन प्रोक्तमित्यण्' व्याकरणशास्त्रं तस्मिन्प्रवेशः पाणिनीयप्रवेशस्तस्मै पाणिनीयप्रवेशाय, लघ्वित्यादिः-लघितु योग्याः लघवः, सिद्धो निष्पन्नः अन्तः अर्थो येषां ते सिद्धान्ताः, यद्वा वादिप्रतिवादिभ्यां सिद्धाः निर्णीता अन्ताः अर्थाः येषां ते सिद्धान्ताः लघवश्च ते सिद्धान्ताः इति लघुसिद्धान्तास्तेषां कौमुदी-कुभूमि मोदयतीति कुमुदश्चन्द्रस्तस्येय चन्द्रिका कौमुदी, 'कौमुदीव कौमुदी' यथा सा घटपटादीन्प्रकाशयति तथेयमपि घटपटादिशब्दान्प्रकाशयति, वा कुमिलां मोदयति वराहावतारे इति कुमुदो विष्णुस्तस्येय गदा कौमुदी सा यथा दुष्टदलनशीला तथेयमपि दुःशब्ददलनशीला, पूर्ववत्समासः, उद् कुमवनि मोदयति पालनेनेति कुमुदोऽवनिपतिस्तस्येय सभा कौमुदी, यथा सा लोकव्यवहारं शोधयति तथेयमपि शब्दशुद्धिं करोति, ह्यत्रापि पूर्ववत्समासः, ताम् कौमुदीम्, करोमि सम्पादयामि विधास्यामीति भावः॥१॥

भाषार्थः–मैं (वरदराजभट्ट) पवित्र तथा गुणवान् सरस्वती महादेवीको नमस्कार करके, पाणिनीयजीके कहे हुए व्याकरणशास्त्रमें प्रवेशके अर्थ लघुसिद्धान्तकौमुदीकू निर्माण करता हूं ॥ १ ॥

अथ संज्ञाप्रकरणम् । प्रत्याहारसूत्राणि ।

१–अइउण्[1] १, ऋऌक्[2] २, एओङ्[3] ३, ऐऔच्[4] ४, हयवरट्[5] ५, लण्[6] ६, ञमङणनम्[7] ७, झभञ्[8] ८, घढधष्[9] ९, जबगडदश्[10] १०, खफछठथचटतव्[11] ११, कपय्[12] १२, शषसर्[13] १३, हल्[14] १४॥

---

१ अण् । २ अक्, इक्, उक् । ३ एङ् । ४ अच्, इच्, एच्, ऐच् । ५ अट् । ६ अण्, इण्, यण् । ७ अम्, यम्, ङम् । ८ ञ्म्, यञ् । ९ झष्, भष् । १० अश्, हश्, वश्, भश्, जश्, बश् । ११ छव् । १२ यय्, मय्, झय्, खय्, चय् । १३ यर्, झर्, खर्, चर्, शर् । १४ अल्, हल्, वल्, रल्, झल्, शल्, एते प्रत्याहाराः । हकारो द्विरुपात्तोयमटि शल्यपि वाञ्छता । अर्हेणाधुक्षदित्यत्र द्वयं सिद्धम्भविष्यति ॥ १ ॥

२ इति +माहेश्वराणि *सूत्राण्यणादिसंज्ञार्थानि ॥

यह महादेवजीसे प्राप्त हुए चतुर्दश सूत्र अणादि-प्रत्याहार बनानेके अर्थ हैं, जोकि अगाडी (सू० ६) से सिद्ध होते हैं ॥

एषामन्त्या इतः ॥

इन चतुर्दशसूत्रोंमें अंत्यके वर्ण (ण् क् ङ् च् ट् ण् म् ञ् ष् श् व् य् र् ल्) ×इत्संज्ञावाले हैं ॥

हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः ॥

पूर्वोक्त हकारादिवर्णोंमें अकार उच्चारणके अर्थ है, वास्तवमें यह सब ' ह् य् व् र् ' ऐसे हैं; परन्तु विना स्वरके इनका उच्चारण नहीं होता, महाभाष्यकारनेभी लिखा है कि–" अन्वग् भवति व्यंजनम् " व्यंजनके अंत्यमें स्वर रहते हैं ॥

लण्मध्ये त्वित्संज्ञकः ॥

लण्-सूत्रके मध्यके अकारकी इत्संज्ञा है, कारण कि (सू० ३४) में 'लण्सूत्रस्था०' यहां र-प्रत्याहार सिद्ध करके र और ल-का ग्रहण करना है ॥

३ हलन्त्यम् । १ । ३ । ३ ॥

(हल्–प्रथमान्तम् । अन्त्यम्–प्रथमान्तम् ॥) उपदेशेऽन्त्यं हलित् स्यात् । [1]उपदेश आद्योच्चारणम् ॥

उपदेशमें जो पिछला हल् (व्यंजन) है उसकी इत्संज्ञा है । पाणिनी, कात्यायन, पतञ्जलि, इन तीन व्याकरणाचार्योंके उच्चारणको उपदेश कहते हैं ॥

सूत्रेष्वदृष्टम्पदं सूत्रान्तरादनुवर्त्तनीयं सर्वत्र ॥

+ नृत्यावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम् । उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम् ॥ १ ॥ * संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च । अतिदेशोऽधिकारश्च षड्विधं सूत्रलक्षणम् ॥ १ ॥ प्रतिषेधोऽनुवादश्च विभाषा च निपातनम् । एतच्चतुष्टयं क्षिप्त्वा दशधा सूत्रमुच्यते ॥ २ ॥ × इत् यह पाणिनिजीका पारिभाषिक शब्द है, इसी प्रकार टि, घु, नदी इत्यादि औरभी शब्द इस ग्रंथमें हैं, इनके यौगिक-अर्थका ग्रहण नहीं होता है, इनका फलभी भिन्न २ होता है ॥ १ धातुसूत्रगणोणादिवाक्यलिङ्गानुशासनम् । आगमप्रत्ययादेशा उपदेशाः प्रकीर्त्तिताः ॥ १ ॥

जो पद सूत्रमें नहीं हो वोह पद सर्वत्र और (पिछले) सूत्रोंसे ले आना चाहिये । एक पद वारम्वार कहना न पड़े इसलिये एक सूत्रमें एक पदको कहकर पाणिनीजी और सूत्रोंमें उस पदको अनुवृत्तिकरके ग्रहण कर लेते हैं, जैसे कि (मू० ३) में उपदेश आदिक पद (मू०३४) से लाकर उनका यथार्थ अर्थ किया जाता है, अष्टाध्यायीके क्रमानुसार (मू० ३ से, मू० ३४) पूर्व है, क्योंकि प्रथम अध्यायके प्रथमपादका दूसरा सूत्र है और (मू० ३) प्रथमाध्यायके पहले पादका तीसरा सूत्र है, इसी प्रकार सम्पूर्ण सूत्रोंमें समझ लेना ॥

४ अदर्शनं लोपः । १ । १ । ६० ॥

(अदर्शनम्-प्रथमा० । लोपः-प्रथमा० ॥) प्रसक्तस्यादर्शन लोपसञ्ज्ञ स्यात् ॥

विद्यमान (दीखते हुए) के नहीं दीखनेको लोप कहते हैं । और जो विद्यमानही न हो उसके न दीखनेको अभाव कहते हैं ॥

५ तस्य लोपः । १ । ३ । ९ ॥

(तस्य-षष्ठ्यन्तम् । लोपः-प्रथमा० ॥) तस्येतो लोपः स्यात् । णादयोणाद्यर्थाः ॥

उस इत्संज्ञावाले वर्णका लोप (४) हो । उक्त चतुर्दश सूत्रोंमें णकारादिक हल् (इत्) वर्ण अण् आदि प्रत्याहार बनानेके अर्थ है । प्रत्याहार बनानेका क्रम-

६ आदिरन्त्येन सहेता । १ । १ । ७१ ॥

(आदिः-प्रथमा० । अत्येन-तृतीयान्तम् । सह-अव्ययपदम् । इता-तृतीया० ॥) अन्त्येनेता सहित आदिर्मध्यगानां स्वस्य च सञ्ज्ञा स्यात् ॥

पिछले इत्के साथ जो प्रथम अक्षर वोह मध्यगामियोंकी और अपनी संज्ञावाला हो-

यथाणिति *अ इ उ वर्णानां सञ्ज्ञा । एवमक् अच् हल् अलित्यादयः ॥

*-१ अण्-अ इ उ ।
२ अक्-अ इ उ ऋ ऌ ।

जैसे–अण्-प्रत्याहार कहनेसे 'अ इ उ' इन तीन वर्णोंका बोध होता है ण-कारका नहीं, अर्थात्–पिछला इत् जो 'ण्'. तिसके साथ पहिला जो 'अ' सो अपनी और बीचके अक्षरोंकी संज्ञा ग्रहण करता है। इसी प्रकार अक्-अच्-हल् और अल्-प्रत्याहारभी जानो॥

३ अच्–अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ।

४ अट्–अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र।

५ अण्–अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल।

६ अम्–अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न।

७ अश्–अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द।

८ अल्–अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह।

९ इक्–इ उ ऋ ऌ।

१० इच्–इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ।

११ इण्–इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल।

१२ उक्–उ ऋ ऌ।

१३ एङ्–ए ओ।

१४ एच्–ए ओ ऐ औ।

१५ ऐच्–ऐ औ।

१६ हश्–ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द।

१७ हल्–ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह।

१८ यण्–य व र ल।

१९ यम्–य व र ल ञ म ङ ण न।

२० यञ्–य व र ल ञ म ङ ण न झ भ।

२१ यय्–य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प।

२२ यर्–य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स।

२३ वश्–व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द।

२४ वल्–व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह।

२५ रल्–र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह।

७ ऊकालोऽज्ह्रस्वदीर्घप्लुतः । १ । २ । २७ ॥

(ऊकालः-प्रथ० । अच्-प्रथ० । ह्रस्वदीर्घप्लुतः-प्रथ० ॥) उश्च ऊश्च ऊ३ श्च वः, वां काल इव कालो यस्य सोऽच् क्रमात् ह्रस्वदीर्घप्लुत-संज्ञः स्यात् । स प्रत्येकमुदात्तादिभेदेन त्रिधा ॥

उ ऊ ऊ३ इन तीन उकारोंको व कहते हैं। इन तीन उकारोंके उच्चारणकालके सदृश जिस अच् (स्वर) के उच्चारणका काल (समय) हो वोह अच् क्रमसे ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत संज्ञावाला हो । वोही प्रत्येक अच् उदात्त अनुदात्त और स्वरित इन भेदोंसे तीन प्रकारका है । उदात्तादिकोंको लिखते हैं-

८ उच्चैरुदात्तः । १ । २ । २९ ॥

(उच्चैः-अव्य० । उदात्तः-प्रथमा० ॥)

तालु आदि स्थानोंके ऊपरके भागसे जिस अच्का उच्चारण हो वोह उदात्त कहावे ॥

---

२६ मय्-म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प ।
२७ ङम्-ङ ण न ।
२८ झष्-झ भ घ ढ ध ।
२९ झश्-झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ।
३० झय्-झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प ।
३१ झर्-झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ।
३२ झल्-झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह ।
३३ भष्-भ घ ढ ध ।
३४ जश्-ज ब ग ड द ।
३५ बश्-ब ग ड द ।
३६ खय्-ख फ छ ठ थ च ट त क प ।
३७ खर्-ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ।
३८ छव्-छ ठ थ च ट त ।
३९ चय्-च ट त क प ।
४० चर्-च ट त क प श ष स ।
४१ शर्-श ष स ।
४२ शल्-श ष स ह ।

९ नीचैरनुदात्तः । १ । २ । ३० ॥

(नीचैः-अव्यय० । अनुदात्तः-प्रथमा० ॥)

तालु आदि स्थानोंके नीचेके भागसे जिस अच्का उच्चारण हो उसकी अनुदात्त संज्ञा हो ॥

१० समाहारः स्वरितः । १ । २ । ३१ ॥

(समाहारः-प्रथमा० । स्वरितः-प्रथमा० ॥)

जिसके उच्चारण करनेमें उदात्त और अनुदात्त यह दोनों वर्णधर्म समानतासे मिले हों उसकी स्वरित संज्ञा हो । इस प्रकार अचोंके नौ भेद हुए ॥

स नवविधोऽपि प्रत्येकमनुनासिकाननुनासिकत्वाभ्यां द्विधा ॥

फिर वोही अच् नौ प्रकारका होकर अनुनासिक और अननुनासिक भेदोंसे द्विगुण (दूना) होता है ॥

११ मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः । १ । १ । ८ ॥

(मुखनासिकावचन -प्रथमा० । अनुनासिकः-प्रथमा० ॥) मुखसहितनासिकयोच्चार्यमाणो वर्णोऽनुनासिकसंज्ञः स्यात् ॥

जिस वर्णका मुख और नासिकासे उच्चारण होता है उसकी अनुनासिक संज्ञा हो ।

तादित्थम्-अ इ उ ऋ एषां वर्णानां प्रत्येकमष्टादश भेदाः* ॥

* भेदज्ञापकयंत्रमिदम् ।

अक्षराणि	अ इ उ ऋ ऌ	अ इ उ ऋ ए ओ ऐ औ	अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ
भेदाः	ह्रस्वोदात्तानुनासिकः ह्रस्वोदात्ताननुनासिकः ह्रस्वानुदात्तानुनासिकः ह्रस्वानुदात्ताननुनासिक ह्रस्वस्वरितानुनासिकः ह्रस्वस्वरिताननुनासिक	दीर्घोदात्तानुनासिक दीर्घोदात्ताननुनासिक दीर्घानुदात्तानुनासिक दीर्घानुदात्ताननुनासिक दीर्घस्वरितानुनासिक दीर्घस्वरिताननुनासिक	प्लुतोदात्तानुनासिकः प्लुतोदात्ताननुनासिकः प्लुतानुदात्तानुनासिकः प्लुतानुदात्ताननुनासिकः प्लुतस्वरितानुनासिकः प्लुतस्वरिताननुनासिकः

सो इस उक्त प्रकारसे अ-इ-उ-ऋ इन प्रत्येक अक्षरोंके अठारह अठारह भेद हैं। परन्तु-

लृवर्णस्य द्वादश, तस्य दीर्घाभावात् । एचामपि द्वादश, तेषां ह्रस्वाभावात् ॥

ऌ इस अक्षरके बारह भेद हैं, कारण कि-इसे दीर्घका अभाव है । एच् (ए-ओ-ऐ-औ) वर्णोंकेभी बारह भेद हैं, क्योंकि-उनको ह्रस्वका अभाव है ॥

१२ तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् । १ । १ । ९ ॥

(तुल्यास्यप्रयत्नम्-प्रथमा० । सवर्णम्-प्रथमा० ॥) ताल्वादिस्थानमाभ्यन्तरप्रयत्नश्चेत्येतद्द्वयं यस्य येन तुल्यं तन्मिथः सवर्णसञ्ज्ञं स्यात् ॥

तालु आदि स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न यह दोनों जिस वर्णके स्थान और प्रयत्नके तुल्य हों वे दोनों वर्ण परस्पर सवर्णसंज्ञावाले हों ॥

१३ (ऋलृवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम्) ॥

यह कहना[1] चाहिये कि-ऋ और ऌ इन दोनों वर्णोंकी परस्पर सवर्णसंज्ञा होय ।

१४ अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः । इचुयशानां तालु । ऋटुरषाणां मूर्द्धा । लृतुलसानां दन्ताः । उपूपध्मानीयानामोष्ठौ । ञमङणनानां नासिका च । एदैतोः कण्ठतालु । ओदौतोः कण्ठोष्ठम् । वकारस्य दन्तोष्ठम् । जिव्हामूलीयस्य जिव्हामूलम् । नासिकानुस्वारस्य ॥

अ (तीन प्रकारका) कवर्ग (क ख ग घ ङ) ह और विसर्ग[2] इनका कण्ठस्थान है । इ और चवर्ग (च छ ज झ ञ) य और श इनका तालुस्थान है । ऋ और टवर्ग (ट ठ ड ढ ण) र और ष इनका मूर्धास्थान है । ऌ (ऌ३) तवर्ग (त थ द ध न) ल और स इनका दन्तस्थान है । उ और पवर्ग (प फ ब भ म) और उपध्मानीय (ᳵप ᳵफ) इनका ओष्ठस्थान है । ञ म ङ ण न इनका

[1] यह सर्वत्र जान लेना चाहिये । [2] जिस स्थानीसे परे विसर्ग होते हैं वोही विसर्गका स्थान होता है, यहा अकारसे परेका निर्देश है ।

अपने २ वर्गोंसे विशेष नासिकाभी स्थान है । ए और ऐका कण्ठ और तालुस्थान है । ओ और औका कण्ठ और ओष्ठस्थान है । वकारका दन्त और ओष्ठस्थान है । जिव्हामूलीय (ᳵ क ᳵ ख) का जिव्हाका मूल स्थान है । और अनुस्वार (ं) का नासिकास्थान है ॥

यत्नो द्विधा-आभ्यन्तरो बाह्यश्च । आद्यः पञ्चधा-स्पृष्टेषत्स्पृष्टेषद्विवृतविवृतसंवृतभेदात् । तत्र-स्पृष्टं प्रयत्नं स्पर्शानाम् । ईषत्स्पृष्टमन्तस्थानाम् । ईषद्विवृतमूष्मणाम् । विवृतं स्वराणाम् । ह्रस्वस्यावर्णस्य प्रयोगे संवृतम्, प्रक्रियादशायान्तु विवृतमेव ॥

यत्न दो प्रकारका है-आभ्यन्तर (मुखमें) और बाह्य (मुखके बाहर वा कण्ठ आदिमें) । पहिला (आभ्यन्तर) प्रयत्न पांच प्रकारका है-१-स्पृष्ट (जिसमें जीभ स्थानका स्पर्श करे) २-ईषत्स्पृष्ट (किंचित्स्पृष्ट) ३-ईषद्विवृत (जिसमें जीभ स्थानसे थोडी अलग रहे) ४-विवृत (जिसमें जीभ स्थानका स्पर्श न करे) ५-संवृत (भलीप्रकार भिन्न) इन भेदोंसे । तिनमेंसे-स्पृष्टप्रयत्न स्पर्शवर्णोंका है । ईषत्स्पृष्टप्रयत्न अन्तस्थ अक्षरोंका है । ईषद्विवृतप्रयत्न ऊष्मवर्णोंका है । विवृतप्रयत्न स्वरोंका है । प्रयोग (बोल चाल) में तो ह्रस्व अकारका संवृतप्रयत्न है, परन्तु-साधनकी दशामें (जहां अकार किसी विधिमें लिया जाता हो तहां) तो विवृतही प्रयत्न है ॥

बाह्यप्रयत्नस्त्वेकादशधा-विवारः संवारः श्वासो नादो घोषोऽघोषोऽल्पप्राणो महाप्राण उदात्तोऽनुदात्तः स्वरितश्चेति । खरो विवाराः श्वासा अघोषाश्च । हशः संवारा नादा घोषाश्च । वर्गाणां प्रथमतृतीयपञ्चमा यणश्चा[1]ल्पप्राणाः । वर्गाणां द्वितीयचतुर्थौ शलश्च महाप्राणाः ॥

बाह्य प्रयत्न इन भेदोंसे ग्यारह प्रकारका है-विवार १, संवार २, श्वास ३, नाद ४, घोष ५, अघोष ६, अल्पप्राण ७, महाप्राण ८, उदात्त ९, अनुदात्त १०, और स्वरित ११ । खर्-प्रत्याहारके अक्षरों (ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स) का विवार श्वास और

---

१ अत्र चकारेण स्वरा अपि गृह्यन्ते । अतो भाष्यध्वनितमल्पप्राणप्रयत्नवत्त्वमचां सिद्धम् ।

अघोष प्रयत्न है। हश्–प्रत्याहारके अक्षरों (ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द) का संवार नाद और घोष प्रयत्न है। वर्गोंके पहिले (क च ट त प) तथा तीसरे (ग ज ड द ब) पांचवें (ङ ञ ण न म) और यण्–प्रत्यहारके अक्षर (य व र ल) अल्पप्राण-प्रयत्नवाले हैं। वर्गोंके दूसरे (ख छ ठ थ फ) चौथे (घ झ ढ ध भ) और शल्–प्रत्याहारके अक्षर (श ष स ह) महाप्राण-प्रयत्नवाले हैं॥ *

कादयो मावसानाः स्पर्शाः। यणोऽन्तस्थाः। शल ऊष्माणः। अचः स्वराः। ⌣क ⌣ख इति कखाभ्यां प्रागर्धविसर्गसदृशो जिव्हामूलीयः। ⌣प ⌣फ इति पफाभ्यां प्रागर्धविसर्गसदृश उपध्मानीयः। अं अः इत्यचः [1]परावनुस्वारविसर्गौ॥

ककारसे लेकर मकारपर्यन्त (पांचों वर्गों) के अक्षर स्पर्श कहाते हैं। यण्–प्रत्याहारके अक्षरोंकूं अन्तस्थ कहते हैं। शल्–प्रत्याहारके वर्ण ऊष्म कहलाते हैं। अच्–प्रत्याहारके अक्षरोंका स्वर नाम है। क और खसे पहिले जो आधे विसर्गकी सदृश चिन्ह होता

* प्रयत्नज्ञापकयंत्रम्।

बाह्यप्रयत्ना	विवार श्वास अघोष अल्पप्राण	विवार, श्वास, अघोष, महाप्राण		सवार, नाद, घोष, अल्पप्राण	उदात्त, अनुदात्त स्वरित			सवार, नाद, घोष, महाप्राण	
अक्षराणि	क च ट त प	ख छ ठ थ फ	श ष स	ग ङ ज ञ ड ण द न ब म	अ	इ ए उ ओ ऋ ऐ ऌ औ	य व र ल	घ झ ढ ध भ	ह
आभ्यन्तरप्रयत्ना	स्पृष्ट		ईषद्विवृत	स्पृष्ट	ह्रस्वस्य प्रयोगे संवृत	विवृत	ईषत्स्पृष्ट	स्पृष्ट	ईषद्विवृत

१ "शिरोबिन्दुरनुस्वारो बिन्दू द्वौ च विसर्गकौ। शृङ्गवद्वालवत्सस्य कुमारीस्तनयुगमवत्। नेत्रवत्कृष्णसर्पस्य विसर्जनीय इति स्मृत॥ १॥"

है उसे **जिव्हामूलीय** कहते हैं, जैसे ᳵक ᳵख। प और फ से पहिले जो आधे विसर्गकी सदृश चिन्ह होते हैं उन्हे **उपध्मानीय** कहते हैं, जैसे- ᳶप ᳶफ। अकार आदि अच्से परे जो बिन्दु होते हैं उनको **अनुस्वार** और **विसर्ग** कहते हैं, जैसे–अं अः । इसी प्रकार अच्से परेही अनुस्वार विसर्ग होते हैं, हल्से परे नहीं ॥

१५ अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः । १ । १ । ६९ ॥

(अण्–प्रथमान्तम् । उदित्–प्रथ० । सवर्णस्य–षष्ठ्यन्तम् । च–अव्ययपदम् । अप्रत्ययः–प्रथमान्तम् ॥) प्रतीयते विधीयते इति प्रत्ययः । अविधीयमानोऽणुदिच्च सवर्णस्य सञ्ज्ञा स्यात् । अत्रैवाण् परेण णकारेण ॥

जो किसी शब्दादिकसे विधान किया जाय (किसी शब्दादिकके लिये जो कुछ लायाजाय) उसको **प्रत्यय** कहते हैं, जैसे (राम+सु) इस प्रयोगमें सुका नाम प्रत्यय है, इसी प्रकार सब जगह जानो । जिस अण्–प्रत्याहारके अक्षरका विधान नहीं किया जाय वह और उदित्भी यह अपने सवर्णसंज्ञावालेका ग्रहण करते हैं । इसी पूर्वोक्त (१५) सूत्रमें अण्–प्रत्याहार अंगाडी (लण्) के णकारतक जानो ॥

कु चु टु तु पु एते उदितः ॥

कु–(कवर्ग) चु–(चवर्ग) टु–(टवर्ग) तु–(तवर्ग) और पु–(पवर्ग) इनको **उदित्** कहते है ॥

तदेवम्–अ इत्यष्टादशानां सञ्ज्ञा । तथेकारोकारौ ॥

सो इस प्रकार–अकारकी अठारह प्रकारकी संज्ञा है । ऐसेही इकार और उकारकीभी अठारह प्रकारकी संज्ञा है ॥

ऋकारस्त्रिंशतः । एवं लृकारोपि ॥

अठारे अपने और बारह लृके भेद मिलनेसे ऋकारकी तीस तरहकी संज्ञा है । ऐसेही लृकारकीभी तीसही तरहकी संज्ञा है ॥

एचो द्वादशानाम् ॥

एच्–प्रत्याहारके अक्षर बारह प्रकारकी संज्ञावाले हैं ॥

अनुनासिकाननुनासिकभेदेन यवला द्विधा । तेनानुनासिकाऽननुनासिकास्ते द्वयोर्द्वयोः सञ्ज्ञा ॥

अनुनासिक और अननुनासिक इन दो भेदोंसे यकार वकार और लकार दो तरहके हैं, अर्थात् एक तौ अनुनासिक और एक अननुनासिक, तिसीसे वे य व ल अनुनासिक अननुनासिक इन दो अपनी २ संज्ञाओंका ग्रहण करते हैं ॥

१६ परः सन्निकर्षः संहिता । १ । ४ । १०९ ॥

(परः-प्रथ० । सन्निकर्षः-प्रथ० । सहिता-प्रथमान्तम् ॥) वर्णानामतिशयितः सन्निधिः सहितासज्ञः स्यात् ॥

अक्षरोंकी अत्यन्त जो समीपता है (जो धोरे २ अक्षर हों) उसको **संहिता** कहते हैं ॥

१७ हलोऽनन्तराः संयोगः । १ । १ । ७ ॥

(हलः प्र० । अनन्तराः-प्रथ० । सयोगः-प्रथ० ॥) अज्भिरव्यवहिता हलः सयोगसज्ञाः स्युः ॥

जिन हल् अक्षरोंके बीचमें कोई अच् नहीं हो उनको **संयोग** कहते हैं ॥

१८ सुप्तिङन्तं पदम् । १ । ४ । १४ ॥

(सुप्तिडन्तम्-प्रथमान्तम् । पदम्-प्रथमान्तम् ॥) सुवन्त तिडन्त च पदसज्ञ स्यात् ॥

सुप्-प्रत्याहार (१३८) और तिङ्-प्रत्याहार (४२१) जिसके अन्तमें होय उसको पद कहते है ॥

इति भाषाटीकायुतायां श्रीवरदराजकृतायां
लघुकौमुद्यां संज्ञाप्रकरणं समाप्तम् ।

अथाच्संधिप्रकरणम् ।

१९ इको यणचि ६ । १ । ७७ ॥

(इकः-षष्ठ्य० । यण्-प्र० । अचि-सप्तम्यन्तम् ॥) इकः स्थाने यण् स्यादचि सहितायां विषये ॥

जो सन्धि करनेकी इच्छा होय तौ इक्-प्रत्याहारके अक्षरोंके स्थानमें यण्-प्रत्याहारके अक्षर हो जांय। जब उस इक्-प्रत्याहारके अक्षरसे अच्-प्रत्याहारका कोई अक्षर परे होय तौ। जैसे-सुधी+उपास्यः, इस प्रयोगमें तीन इक् हैं और तीनोंसेही अच् परे हैं। तौ कौनसे इक्को यण् हो, जब ऐसी शंका हुई, तब यह सूत्र समाधान करनेके लिये लगा कि-

२० तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य। १। १। ६६॥

(तस्मिन्-सप्तम्यन्तम्। इति-अव्ययपदम्। निर्दिष्टे-सप्त०। पूर्वस्य-षष्ठ्यन्तम्॥) सप्तमीनिर्देशेन विधीयमानं कार्यं वर्णान्तरेणाव्यवहितस्य पूर्वस्य बोध्यम्॥

सप्तमीसे करा हुआ कार्य वर्णान्तर करके अव्यवहित पूर्वको (जिस इक्के और अच्के बीचमें कोई अक्षर न हो उसको) जानना चाहिये। सप्तमीनिर्देश जो-(सू० १९ की) अचि, उससे किया हुआ यण्-कार्य जिस इक्के बीचमें कोई और अक्षर नहीं है, ऐसी इको यण् पाया, और शेष दो इक् व्यवधानवाले हैं, इस कारण उनको यण् नहीं हुआ। यण्-प्रत्याहारमें चार अक्षर हैं, कौनसा अक्षर हो, इस शंकाको दूर करनेके अर्थ यह सूत्र लगा-

२१ स्थानेऽन्तरतमः। १। १। ५०॥

(स्थाने-सप्त०। अन्तरतमः-प्रथमान्तम्॥) प्रसङ्गे सति सदृशतम आदेशः स्यात्॥

जहां किसीकी प्राप्ति हो उस जगह बराबर आदेश हो, अर्थात् जिसका स्थान-प्रयत्न मिलै वह आदेश होना चाहिये। पूर्व (२०) सूत्रसे 'इ' को यण् पाया है और अब (सू० २१) के अनुसार 'इ' को यकार पाता है परन्तु यह शंका होती है कि 'इ' का और 'य' का स्थान तौ मिलता है परन्तु प्रयत्न नहीं मिलता, इस शंकाको दूर करनेके कारण यह परिभाषा प्रवृत्त होती है-

यत्रानेकविधमान्तर्य्यं तत्र स्थानत आन्तर्य्यं बलीयः॥

जहां बहुत प्रकारके आन्तर्य होते हैं वहां स्थानी आन्तर्य सबसे बली होता है-सो यहां प्रयत्न नहीं मिलता तौ स्थान मिलाकरही 'इ' कूं 'य' कर लिया, तब-'सुध् य्+उपास्य' ऐसा सिद्ध होनेपर यह सूत्र लगा-

२२ अनचि च । ८ । ४ । ४७ ॥

(अनचि-सप्त० । च-अव्ययपदम् ॥) अचः परस्य यरो द्वे वा स्तो न त्वचि॥

अच्से परे जो यर् हो उससे परै यदि अच् न हो तौ उस यर्-को विकल्प करके दो हो जाय, 'उ' से परे जो यर् (ध) है उससे परे यकार अच् नहीं है, इस कारण दो धकार हो गये तौ-सुध्ध्य्+उपास्यः । ऐसा सिद्ध होनेपर-

२३ झलां जश् झशि । ८ । ४ । ५३ ॥

(झलाम्-षष्ठ्य० । जश्-प्रथ० । झशि-सप्तम्यन्तम् ॥)

यदि झल्-प्रत्याहारसे परे झश्-प्रत्याहार होय तौ झल्को जश् हो जाय, पहले धकारको झल् होनेसे, दूसरा धकार झश् परे होनेसे (सू०२१) के अनुसार 'द' जश् हो गया. दूसरेको इस कारण नहीं होता कि, उससे झश परे नहीं है, तौ-सुद्ध्य्+उपास्यः । ऐसा रूप सिद्ध होनेपर यह सूत्र लगा-

२४ संयोगान्तस्य लोपः । ८ । २ । २३ ॥

(संयोगान्तस्य-षष्ठ्य० । लोपः-प्रथमान्तम् ॥) संयोगान्तं यत्पदं तदन्तस्य लोपः स्यात् ॥

जिस पद (१८) के अन्तमें संयोग (१७) होय और वोह संयोग जिस समुदायके अन्तमें होय तिसका लोप (४) हो जावै । इस प्रकार-'सुद्ध्य्' इस संयोगान्तपदके लोपकी प्राप्ति हुई ॥ तब-

२५ अलोऽन्त्यस्य । १ । १ । ५२ ॥

(अलः-षष्ठ्यन्तम् । अन्त्यस्य-षष्ठ्यन्तम् ॥) षष्ठीनिर्दिष्टोऽन्त्यस्यादेशः स्यात् ॥

षष्ठी जिस आदेशको कहै वह आदेश अन्त्यके अक्षरको हो । षष्ठी जो (मू०२४) में ' संयोगान्तस्य ' है उसने लोप आदेशको कहा है, सो वह आदेश अन्त्यके अक्षर ' य् ' का पाया, तब इस वार्तिकने निषेध किया–

वा० २ (यणः प्रतिषेधो वाच्यः) ॥

यदि अन्त्यमें यण्–प्रत्याहारका कोई अक्षर हो तो उसका लोप नहीं हो, और कोई वर्ण हो तो लोप हो जाय। सो यण्–प्रत्याहारका होनेसे ' य् ' काभी लोप न हुआ तो–सुधी+उपास्यः = सुद्ध्युपास्यः, सुध्युपास्यः । मधु+अरिः = मद्ध्वरिः, मध्वरिः । धातृ+अंशः = धात्त्रंशः, धात्रंशः । ऌ+आकृतिः = लाकृतिः । सिद्ध हुए ॥

२७ एचोऽयवायावः । ६ । १ । ७८ ॥

(एचः-पष्ठ्य० । अयवायावः-प्रथमान्तम् ॥) एचः क्रमादय् अव् आय् आव् एते स्युरचि ॥

जो अच् परे होय तो एचों (ए ओ ऐ औ) को क्रमसे अय्–अव्–आय्–आव् यह आदेश हो हरे+ए । विष्णो+ए । नै+अकः । पौ+अकः । इत्यादि प्रयोगोंके अर्थ कोई नियम नहीं किया कि, कौनसे अक्षरको कौनसा आदेश हो सो निश्चय करते हैं–

२८ यथासंख्यमनुदेशः समानाम् । १ । ३ । १० ॥

(यथासंख्यम्–अव्य० । अनुदेशः–प्रथ० । समानाम्–पष्ठ्य० ॥) समसम्बन्धी विधिर्यथासंख्यं स्यात् ॥

जिस विधिका बराबर संबन्ध हो वह विधि यथा संख्य (पहलेको पहला, दूसरेको दूसरा, तीसरेको तीसरा, चौथेको चौथा) इस क्रमसे हो तो (मू०२७) के सूत्रसे यथासंख्य अय्–आदिक आदेश होकर–हरये । विष्णवे । नायकः । पावकः । इत्यादि प्रयोग सिद्ध हुवे॥

१ " अन्वग्भवति व्यञ्जनम् " यह महाभाष्यमें लिखा है कि–व्यञ्जनके अन्तमें अच् होता है, कारण कि–अच्हीन (हल्) वर्णका उच्चारण नहीं हो सक्ता, अतएव हल् अक्षर अच्रूपअवधिपर्यन्त परमें मिलाये जाते हैं ॥

२९ वान्तो यि[1] प्रत्यये । ६ । १ । ७९ ॥

(वान्तः-षष्ठ्य० । यि-सप्त० । प्रत्यये-सप्तम्यन्तम् ॥) यकारादौ प्रत्यये परे ओदौतोरव् आव् एतौ स्तः ॥

यकार जिसके आदिमें हो ऐसे प्रत्ययके परे हुए संते ओ और औको अव् और आव् आदेश होंय, जैसे-गो+यम् । (मू०२९) से प्राप्त (मू०२८) के अनुसार आदेश होनेपर । गव्यम् । नौ+यम्= (२९-२८) नाव्यम् । इत्यादिरूप सिद्ध हुए ॥

३० (अध्वपरिमाणे च) ॥

रस्ता वाच्य होनेमेंभी गो-शब्दको यूति परे होनेमें अव् आदेश हो । जैसे-गो+यूतिः=गव्यूतिः । गव्यूति नाम (गव्यूतिः स्त्री क्रोशयुगम्) इस कोषके प्रमाणसे दो कोषका है ॥

३१ अदेङ् गुणः । १ । १ । २ ॥

(अत्-प्रथमान्तम् । एङ्-प्रथ० । गुणः-प्रथमान्तम् ॥) अत् एङ् च गुणसञ्ज्ञः स्यात् ॥

ह्रस्व अकार (अ) और एङ्-प्रत्याहार (ए-ओ) को गुण कहते हैं ॥

३२ तपरस्तत्कालस्य । १ । १ । ७० ॥

(तपरः-प्रथमान्तम् । तत्कालस्य-षष्ठ्यन्तम् ॥) तः परो यस्मात्स तात् परश्चोच्चार्यमाणः *समकालस्यैव सञ्ज्ञा स्यात् ॥

जिस अच्से परे तकार हो वह अच् और तकारसे परे उच्चारण किया हुआ अच् अपनीही संज्ञावाला होता है । अर्थात् अत् कहनेसे ह्रस्व अकाही बोध होता है, अठारह भेदोंका ग्रहण नहीं किया जाता । इसी प्रकार सब जगह तपरकरणके ग्रहणसे जानो ॥

३३ आद्गुणः । ६ । १ । ८७ ॥

---

१ यस्मिन्विधिस्तदादावल्ग्रहणे-अल्ग्रहणे सप्तम्यन्ते विशेषणीभूते यो विधिर्विधीयते स तदादौ ज्ञेयः । तदन्तविधेरपवादोऽयम् । * तेन अत् इत् उत् इत्यादयः षण्णां षण्णां सञ्ज्ञा ।

(आत्-पचम्यन्तम् । गुणः-प्रथमान्तम् ।) अवर्णादचि परे पूर्वपरयोरेको गुणादेशः स्यात् ॥

अवर्ण (अ-आ) से परे यदि अच् होय तब पूर्व और परके स्थानमें एक गुण (सू० ३१) आदेश हो जाय । जैसे-उप+इन्द्रः-यहां 'प' के 'अ' से इन्द्रः की 'इ' अच् परे है, सो पूर्व 'अ' और पर 'इ' के स्थानमें (सू०२१) के अनुसार गुणोंमेंसे 'ए' हो गया, तब उपेन्द्रः-और ऐसेही-गंगा+उदकम्-गङ्गोदकम् । इत्यादि रूप सिद्ध हुए ॥

३४ उपदेशेऽजनुनासिक इत् । १ । ३ । २ ॥

(उपदेशे सप्तम्यन्तम् । अच्-प्रथमान्तम् । अनुनासिकः-प्र० । इत्-प्रथमान्तम् ।) उपदेशेऽनुनासिकोजित्संज्ञः स्यात् ॥

उपदेशमें (सू०३) जो अनुनासिक (सू०११) अच् है उसकी इत्संज्ञा होती है ॥

प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः ॥

पाणिनिमुनिके कहे गये सम्पूर्ण वर्ण प्रतिज्ञा करके अनुनासिक होते हैं॥

लण्सूत्रस्थावर्णेन सहोच्चार्य्यमाणो रेफो रलयोः संज्ञा ॥

लण्[1]सूत्रमें स्थित जो (इत्संज्ञक) अवर्ण तिसके साथ उच्चारण किया रकार (र-प्रत्याहार) र और ल इन दो अक्षरोंका ग्रहण करता है ॥

३५ उरण् रपरः । १ । १ । ५१ ॥

(उः-षष्ठ्यन्तम् । अण्-प्रथ० । रपरः-प्रथमान्तम् ।) ऋ इति त्रिंशतः संज्ञायुक्तम्, तत्स्थाने योऽण् स रपरः सन्नेव प्रवर्त्तते ॥

ऋ-यह अक्षर (सू०१५) के अनुसार तीस तरहका होता है, सो उस ऋकारके स्थानमें जो अण् होता है वह अण् एक रकारके साथही प्रवृत्त होता है, (सू०३४) के अनुसार लृकारके स्थानमें वही अण् लकारके साथही प्रवृत्त होता है, जैसे-कृष्ण+ऋद्धिः-कृष्ण-

१ " जऊर्तुम्भिकात्यायेन रेफस्योपगमनम " ।

द्धिः । और–तव+लृकारः–तवल्कारः । यहां (सू० ३३) से पूर्व-परके स्थानमें एक गुण आदेश होनेपर (सू० ३५) से यथाक्रमसे र और ल हो गये ॥

३६ लोपः शाकल्यस्य । ८ । ३ । १९ ॥

(लोपः–प्रथमान्तम् । शाकल्यस्य–षष्ठ्यन्तम् ।) अवर्णपूर्वयोः पदान्तयोर्यवयोर्लोपो वाऽशि परे ॥

शाकल्यमुनिके मतमें जिससे पहले अ (आ) कार हो ऐसे पदान्त (सू० १८) के यकार और वकारका विकल्प करके लोप हो ॥

३७ पूर्वत्रासिद्धम् । ८ । २ । १ ॥

(पूर्वत्र अव्ययपदम् । असिद्धम् प्रथमान्तम् ।) सपादसप्ताध्यायी प्रति त्रिपाद्यसिद्धा त्रिपाद्यामपि पूर्वम्प्रति परं शास्त्रमसिद्धम् ॥

जहां सपादसप्ताध्यायीका कोई सूत्र लगता है उसके लगनेपर त्रिपादीका सूत्र असिद्ध हो जाता है और त्रिपादीमेंभी इतना विशेष है कि, पूर्वसूत्रके प्रति (दृष्टिमें) परसूत्र असिद्ध हो जाता है ॥ जैसे–हरे+इह । इस प्रयोगमें (सू० ६७) के अनुसार एकारको अय् आदेश हुआ तो रकार अयके अमें मिलनेसे–हरय्+इह–ऐसा रूप बननेपर (सू० ३६) के अनुसार यकारका लोप हो गया, तब–हर+इह–इस रूपमें (सू० ३३) के अनुसार पूर्वपरके स्थानमें एक गुण आदेशकी प्राप्ति होनेमें (सू० ३७) ने निषेध किया अर्थात्–(सू० ३६) त्रिपादीका सूत्र है उसने जो लोप किया है वोह सपादसप्ताध्यायीके (सू० ३३) की दृष्टिमें असिद्ध है, मानो (सू० ३३) यकारहीको देखता है, जब उसकी दृष्टिमें यलोप असिद्ध हुआ, तो गुण (सू० ३३) की प्राप्तिही न रही । हरे+इह–हर इह, हरयिह । विष्णो+इह–विष्ण इह, विष्णविह । इसी प्रकार सर्वत्र जानना ॥

३८ वृद्धिरादैच् । १ । १ । १ ॥

(वृद्धिः प्रथमान्तम् । आत्–प्रथमान्तम् । ऐच्–प्रथमान्तम् ।) आदैच्च वृद्धिसंज्ञः स्यात् ॥

आकार और ऐच्-प्रत्याहार (ऐ औ) इनकी वृद्धि संज्ञा है ॥

३९ वृद्धिरेचि । ६ । १ । ८८ ॥

(वृद्धि-प्रथमान्तम् । एचि-सप्तम्यन्तम् ।) आदेचि परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । गुणापवादः ॥

अ (आ) कारसे परे यदि एच् हो तो पूर्व-परके स्थानमें वृद्धि एकादेश होय । यह सूत्र (सू० ३३) से विहित गुणका बाधक अर्थात् निषेध करनेवाला है । कृष्ण+एकत्वम् । इस प्रयोगमें (सू० ३९) से प्राप्त वृद्धि (सू० २१) के अनुसार पूर्व-परके स्थानमें ऐ वृद्धि होनेपर–कृष्णैकत्वम्, और–गंगा+ओघः । यहां औ वृद्धि और–देव+ऐश्वर्यम् । और–कृष्ण+औत्कंठ्यम् । इन प्रयोगोंमें यथाक्रमसे पूर्व-परके स्थानमें ऐ–और औ वृद्धि होनेसे–गङ्गौघः । देवैश्वर्यम् । कृष्णौत्कंठ्यम् । इत्यादि रूप सिद्ध हो गये "निरवकाशो विधिरपवादः" यह (सू० ३९) से प्राप्त विधि अवकाशरहित होकर गुणकी बाधक होती है, अर्थात्–यदि इस (सू० ३९) के विषयमेंभी गुण (सू० ३३) होय तो यह (सू० ३९) कहां चरितार्थ होगा, अतः यह गुणका बाधक है ॥

४० एत्येधत्यूठसु । ६ । १ । ८९ ॥

(एत्येधत्यूठसु सप्तम्यन्तम् ।) अवर्णादेजाद्योरेत्येधत्योरूठि च परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । पररूपगुणापवादः ॥

अ (आ) कारसे एजादि (जिनके पहले एच्–प्रत्याहारका कोई अक्षर हो) एति और एधति और ऊठके परे होनेपर पूर्वपरके स्थानमें वृद्धि एकादेश होय । यह सूत्र (सू० ४८) से प्राप्त पररूप और (सू० ३३) से प्राप्त गुणका अपवाद है । जैसे–उप+एति । यहां एतिपरे होनेसे वृद्धि होनेपर–उपैति । और । उप+एधते । यहां एध परे होनेपर वृद्धि होनेसे । उपैधते । सिद्ध हुआ । और–प्रष्ठ+ ऊहः । यहां ऊठ परे होनेसे औ वृद्धि होकर–प्रष्ठौहः । इत्यादिक रूप बने ॥ एजाद्योः किम् ॥ एजादि एति और एधति क्यों कहे ? यदि एजादि न कहते तो । उप+इतः । इस प्रयो-

गमेंभी वृद्धिही होती, क्योंकि यहांभी एतिकाही 'इत' परे है सो नहीं होती वह तौ एजादि कहता है, तो फिर (सू०३३) से प्राप्त गुण होकर। उपेतः। मा भवान् प्र+इदिधत्–मा भवान् प्रेदिधत्। इत्यादि प्रयोग सिद्ध हुए॥

४१ (अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम्)॥

अक्ष-शब्दसे जब ऊहिनी शब्द परे हो तौ वृद्धि हो, जैसे–अक्ष+ऊहिनी सेना। यहां अक्ष-शब्दसे ऊहिनी शब्द परे होनेसे। *अक्षौहिणी सेना। यह प्रयोग बना॥

४२ (प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु)॥

प्र-शब्दसे ऊह, ऊढ, ऊढि, एष, एष्य, इतने शब्दोंके परे हुए संतें वृद्धि हो। जैसे–प्र+ऊहः–प्रौहः। प्र+ऊढः प्रौढः। प्र+ऊढिः–प्रौढिः। प्र+एषः–प्रैषः। प्र+एष्यः–प्रैष्यः। यह प्रयोग यथाक्रमसे सिद्ध हो गये॥

४३ (ऋते च तृतीयासमासे)॥

तृतीयासमास (सू० ९९९) में अकारसे परे ऋतशब्द हो तौ वृद्धि होय। सुखेन ऋतः = सुख+ऋतः–सुखार्त्तः॥ तृतीयेति किम्॥ तृतीयासमासमें हो, यह कहनेसे, परमश्चासौ ऋतः = परम+ऋतः–परर्त्तः। यहां वृद्धि (सू० ४३) न हुई, क्योंकि यहां तृतीयासमास नहीं, किन्तु कर्मधारय (सू० १०१७) समास है॥

४४ (प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे)॥

प्र, वत्सतर, कम्बल, वसन, ऋण और दशन, इन शब्दोंसे परे जब ऋण-शब्द हो तब वृद्धि हो, जैसे–प्र+ऋणम्–यहां (सू०२१) के अनुसार (सू०४४) से प्राप्त आकार वृद्धि होनेपर (सू०३५) से रपर होनेसे। प्रार्णम्। वत्सतर+ऋणम्–वत्सतरार्णम्। कम्बल+

---

*अक्षाणामूहिनीति विग्रहे एतत्, अक्षाणामूहोऽस्यास्तीति विग्रहे तु 'अक्षोहिणी' इत्येव, तत्राऽपवर्गहिनीशब्दपरत्वाभावात्।

ऋणम्-कम्बलार्णम् ।वसन+ऋणम्-वसनार्णम् । ऋण+ऋणम्-ऋणार्णम् । दशन+ऋणम्-दशनार्णम् । यह रूप यथाक्रमसे सब सिद्ध हो गये ॥

४५ उपसर्गाः क्रियायोगे । १ । ४ । ५९ ॥

(उपसर्गाः- प्रथमान्तम्। क्रियायोगे-सप्तम्यन्तम् ।) प्रादयः क्रियायोगे उपसर्गसंज्ञाः स्युः ॥

जब प्र-इत्यादि क्रियाके योग (संग) में हों तब उनको उपसर्ग कहते हैं । प्रादिक यह हैं-

प्र १, परा २, अप ३, सम् ४, अनु ५, अव ६, निस् ७, निर् ८, दुस् ९, दुर् १०, वि ११, आङ् १२, नि १३, अधि १४, अपि १५, अति १६, सु १७, उद् १८, अभि १९, प्रति २०, परि २१, उप २२ ॥

प्रकर्ष (बहुत) १. उलटा २, वियोग-त्याग ३, भलीप्रकार ४, पीछे ५, निश्चय-अनादर ६, निषेध-निश्चय ७, निषेध-निश्चय-बाहर होना ८, दुष्ट-निषेध-निन्दा-दुःख ९ । १०, विगत-विशेष ११, मर्य्यादा-थोडा १२, अत्यन्त १३, अधिकता १४, भी-क्या १५, प्रशंसा-अतिशय १६, अत्यन्त-अच्छा-विना श्रम १७, उत्कर्ष-ऊपर१८, सन्मुख-चारों ओरसे १९, बदला-सामने २०, छोडकर-सब तर्फ २१, धोरे २२ ॥

एते प्रादयः ॥

यह बाईस प्रादिक कहाते हैं । इन प्रादिकोंके और २ भी अर्थ होते हैं, कार्यानुसार समझ लेने ॥

४६ भूवादयो धातवः । १ । ३ । १ ॥

(भूवादयः-प्र० । धातवः-प्रथमान्तम् ।) क्रियावाचिनो भ्वादयो धातुसंज्ञाः स्युः ॥

क्रियाका प्रतिपादन करनेवाला भ्वादि (भ्वादि १, अदादि २, जुहोत्यादि ३, दिवादि ४, स्वादि ५, तुदादि ६, रुधादि ७, तना-

दि ८ क्र्यादि ९,चुरादि १०) आदिक इन दश गणोंमें उसका पाठ हो, उसको धातु कहते हैं॥

४७ उपसर्गादृति धातौ । ६ । १ । ९१ ॥

(उपसर्गात्-पञ्चम्यन्तम् । ऋति-सप्तम्य० । धातौ-सप्तम्यतम् ।) अवर्णान्तादुपसर्गादृकारादौ धातौ परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् ॥

अकारान्त उपसर्गसे ऋकारादि (जिसके पहले ऋकार हो) धातुके परे होनेपर वृद्धि (सू०३८) एकादेश हो। जैसे–प्र+ऋच्छति। यहां अकारसे परे ऋकारादि धातु परे होनेसे पूर्व-परके स्थानमें (सू० २१) के अनुसार आ वृद्धि होनेपर (सू०३५) से रपर होनेपर । प्रार्च्छति । यह रूप सिद्ध हुआ ॥

४८ एङि पररूपम् । ६ । १ । ९४ ॥

(एङि-सप्तम्यन्तम् । पररूपम्-प्रथमान्तम् ।) आदुपसर्गादेङादौ धातौ परे पररूपमेकादेशः स्यात् ॥

अकारन्त उपसर्गसे परे जब एङादि (जिसके पूर्व ए-ओ यह हों) धातुके (सू०४६) परे हुए सन्तें पररूप एकादेश हो । जैसे– प्र+एजते । यहां (सू०३९) की प्राप्ति थी सो उसको बाध कर प्र के अका पररूप (अर्थात् परमें ए है वैसाही उस ' अ ' काभी रूप हो गया) होकर । प्रेजते । और–उप+ओषति का उपोषति । इत्यादि रूप बने ॥

४९ अचोऽन्त्यादि टि । १ । १ । ६४ ॥

(अचः-षष्ठ्यन्तम् । अत्यादि-प्रथ० । टि-प्रथमान्तम् ।) अचाम्मध्ये योऽन्त्यः स आदिर्यस्य तट्टिसंज्ञं स्यात् ॥

अचोंमेंसे जो पीछेका अच् है वह अच् जिसके पहले हो उसकी टि संज्ञा होती है ॥

५० (शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्) तच्च टेः ॥

ऐसा कहना चाहिये–शकन्ध्वादि-गणमें पठित शब्दोंमें पररूप

होता है । और वह पररूप टि-संज्ञक वर्णका हो जैसे–शक+अन्धुः । यहां ककारका पररूप प्राप्त था, परंतु पररूप टिंकाही होता है, तौ (सू०४९) से ककारके 'अ' की टिसंज्ञा करके 'अ' काही पररूप कर दिया तब । शकन्धुः । ऐसेही । कर्क+अन्धुः–कर्कन्धुः । हो गया, और । मनस्+ईशा । यहां (सू०४९) के अनुसार अस्-मात्रकी टिसंज्ञा होनेसे टिका पररूप हो गया तौ । मनीषा । यह सिद्ध हो गया । ऐसेही । लाङ्गल+ईषा–लाङ्गलीषा । मार्त्त+अंडः–मार्त्तंडः । इत्यादि रूप सिद्ध हो गये ॥

आकृतिगणोऽयम् ॥

यह शकन्ध्वादिगण आकृतिगण (सूरतसे पहचानने लायक) होता है ॥

५१ ओमाङोश्च । ६ । १ । ९५ ॥

(ओमाङोः-सप्तम्यन्तम् । च-अव्ययपदम् ।) ओमि आङि चात्परे पररूपमेकादेशः स्यात् ॥

जब अकारसे परे ओम्–या–आङ् हो तौ पररूप एकादेश हो । जैसे । शिवाय+ओम् नमः–शिवायोन्नमः । रूप सिद्ध होता है । शिव+आ+इहि । यहांभी आङ् परे है, इसलिये यहां (सू०५१) से पररूप होता है, परन्तु यहां यह सूत्र विशेष है–

५२ अन्तादिवच्च । ६ । १ । ८५ ॥

(अन्तादिवत्-तद्धितान्तमव्ययम् । च-अव्ययपदम् ।) योऽयमेकादेशः पूर्वस्यान्तवत्, परस्यादिवत् स्यात् ॥

जो यह एकादेश होता है यह यदि पूर्वको हो तौ अन्तकी सदृश और परको आदिकी सदृश हो । जैसे । शिव+आ+इहि । यहां पररूप होता है सो पूर्वकी सदृश (पूर्वमें छोटा 'अ' है, पररूप होनेसेभी छोटाही 'अ') हुआ तौ । शिव+इहि । ऐसा रूप बननेपर (सू० ३३) से पूर्वपरके स्थानमें एक गुणादेश होकर । शिवेहि । रूप सिद्ध हो गया ॥

५३ अकः सवर्णे दीर्घः। ६। १। १०१॥

(अकः-पञ्चम्यन्तम्। सवर्णे-सप्तम्यन्तम्। दीर्घः-प्रथमान्तम्।) अकः सवर्णेऽचि परे पूर्वपरयोर्दीर्घ एकादेशः स्यात्॥

अक्-प्रत्याहारके अक्षरसे परे जब सवर्णी (जिसकी सवर्णसंज्ञा (सू० १२) होती है) अच् परे हो तब पूर्व-परके स्थानमें दीर्घ एकादेश हो। जैसे। दैत्य+अरिः-दैत्यारिः। श्री+ईशः-श्रीशः। विष्णु+ उदयः-विष्णूदयः। इत्यादिक रूप बने॥

५४ (ऋति सवर्णे ऋ वा)॥

जब ऋ से ऋ परे होय तौ विकल्प करके दीर्घ एकादेश हो। जैसे होतृ+ऋकारः-होतॄकारः, होतृकारः॥

५५ (ऌति सवर्णे ऌ वा)॥

यदि सवर्णसंज्ञक ऌ परे हो तौ विकल्पसे दीर्घ हो। जैसे-होतॢ+ऌकारः-होतॣकारः, होतॢकारः। यहां ऌवर्ण दीर्घ नहीं होता, इसी कारणं जहां विकल्पसे ऌ दीर्घ प्राप्त होती है वहां सवर्णसंज्ञक होनेसे दीर्घ ॠही हो जाती है.परन्तु श्रीभट्टोजीदीक्षितने सिद्धान्तकौमुदीमें ऌकोही दीर्घ कर रूप सिद्ध किया है. सो सिद्धान्तकौमुदीमें स्पष्ट कर दिया है॥

५६ एङः पदान्तादति। ६। १। १०९॥

(एङः-पञ्चम्यन्तम्। पदान्तात्-पञ्च०। अति-सप्तम्यन्तम्।) पदान्तादेङोऽति परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात्॥

पदान्तके एङ्से जब अ परे हो तौ पूर्वरूप एकादेश होय। जैसे। हरे+अव-हरेऽव। और। विष्णो+अव-विष्णोऽव। यहां यथाक्रमसे जो पहले अक्षरका रूप है वैसाही 'अ' कामी हो गया। जहां पूर्वरूप होता है वहां अकारका ऐसा (ऽ) रूप हो जाता है। इसीको अर्धाकार कहते हैं, प्रायकरके पूर्वरूपमें ऐसाही चिन्ह आता है॥

५७ सर्वत्र विभाषा गोः। ६। १। १२२॥

(सर्वत्र-अव्ययपदम् । विभाषा-विकल्पार्थकमव्ययपदम् । गोः-षष्ठ्यन्तम् ।)लोके वेदे चैङन्तस्य गोरति वा प्रकृतिभावः पदान्ते ॥

वैदिक और अवैदिकभी प्रयोगोंमें जो पदान्तमें एङन्त (ए ओ जिसके अन्तमें हों) गो-शब्दसे जब ह्रस्व अकार परे हो तौ विकल्प (जो काम एकवार तौ हो, और दूसरी वार न हो, उसको विकल्प कहते है) करके **प्रकृतिभाव** (जैसेका तैसाही रहजानेको प्रकृतिभाव कहते है) हो । जैसे । गो+अग्रम् । एकवार तौ प्रकृतिभाव होकर । गो अग्रम् । ऐसाही रह गया, और दूसरीवार । गो+अग्रम् । यहां (सू० ८६) से 'अ' का पूर्वरूप हो गया तौ । गोऽग्रम् । ऐसा सिद्ध हो गया ॥ एङन्तस्य किम् ॥ एङन्त गो-शब्दही क्यों ग्रहण करा । जो एङन्त गो-शब्द न कहते तौ । चित्रगु+अग्रम् । यहां गो-शब्द तौ है, परन्तु एङन्त नहीं. जो एङन्त ग्रहण न करते तौ यहांभी प्रकृति भाव हो जाता, अब यहां (सू० १९) से उ-को व हो गया तौ । चित्रग्वग्रम् । हो गया ॥ पदान्ते किम् ॥ पदान्तमें प्रकृतिभाव हो यह क्यों कहा, जो पदान्त न कहते तौ । गो+अस् । यहांभी प्रकृतिभाव हो जाता, ओकी पदसंज्ञाही नहीं । गोः (सू०१९४ । ११३) ॥

५८ अनेकाल् शित् सर्वस्य । १ । १ । ५५ ॥

(अनेकाल्-प्रथ० । शित्-प्रथमा० । सर्वस्य-षष्ठ्यन्तम्)

अनेकाल् (जिसमें अल्-प्रत्याहारके जादे वर्ण हों) और शित् (जिसके 'श' की इत्संज्ञा हो) आदेश स्थानीके सम्पूर्ण स्थानमें होते हैं परन्तु-

५९ ङिच्च १ । १ । ५३ ॥

(ङित्-प्रथ० । च-अव्ययपदम् ।) ङिदनेकालप्यन्तस्यैव स्यात् ॥

ङित् (जिसके ङ्की इत्संज्ञा होती है) आदेश यदि अनेकाल्भी हो तौभी अंतहीको हो (सू०५८) से प्राप्त सबको न हो ॥

६० अवङ् स्फोटायनस्य । ६ । १ । १२३ ॥

(अवङ्-प्रथमा० । स्फोटायनस्य-षष्ठयन्तम् ।) पदान्ते एङन्तस्य गोरवङ् वाऽचि ॥

पदान्तमें जो एङन्त गो शब्द है उसे स्फोटायनआचार्यके मतमें अच्के परे होनेपर विकल्पकरके अवङ् (अव) आदेश हो। जैसे- गो+अग्रम् । यहां ओको अवङ् हो गया तो (सू० ३) से 'ङ्' की इत्संज्ञा होकर (सू०५३) से दीर्घ हो गया तो । गवाग्रम् । यह रूप बना । गो+अग्रम् । यहां विकल्पके कारण अवङ् न हुआ तो (सू०५६) से पूर्वरूप हो गया । गोऽग्रम् ॥ पदान्ते किम् ॥ पदान्तमें कहनेसे,—गो+इ (सू०२७) से—गवि । यहां अवङ् न हुआ, क्योंकि, गो+इ । ऐसे प्रयोगमें ओकूं पदान्तत्व नहीं है गवि सिद्ध होकर इसमें पदान्त रहता है ॥

६१ इन्द्रे च । ६ । १ । १२४ ॥

(इन्द्रे-सप्तम्यन्तम् । च-अव्ययपदम् ।) गोरवङ् स्यादिन्द्रे ॥

गो-शब्दको इन्द्र-शब्द परे होनेपर अवङ् आदेश हो । जैसे—गो+ इन्द्रः । यहां (सू०६१) से प्राप्त जो गो-शब्दको अवङ् आदेश है वह (सू०५८) से सारे गो-शब्दको प्राप्त था सो फिर (सू०५९) से अन्त अर्थात् ओको अवङ् हो गया तो (सू० ३) से 'ङ्' की इत्संज्ञा होकर (सू०५३) से दीर्घ एकादेश हो । गवेन्द्रः । ऐसा रूप बना ॥

६२ दूराद्धूते च । ८ । २ । ८४ ॥

(दूरात्-पञ्चम्य० । हूते-सप्त० । च-अव्ययपदम् ।) दूरात्सम्बोधने वाक्यस्य टेः प्लुतो वा ॥

दूरसे संबोधन (पुकारने) में वाक्यकी टि (सू०४९) को प्लुत (सू० ७) विकल्प करके हो ॥

६३ प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् । ६ । १ । १२५ ॥

(प्लुतप्रगृह्याः-प्रथ० । अचि-सप्त० । नित्यम्-प्रथमान्तम् ।) एतेऽचि नित्य प्रकृत्या स्युः ॥

यह प्लुत (सू० ७) और प्रगृह्य (सू० ६४) नित्यही अच्के परे हुए संते जैसेके तैसेही रह जाय । जैसे । आगच्छ कृष्ण+ अत्र गौश्चरति । यहां दूरसे कृष्णके बुलानेमें, अही टि है उसको प्लुत हो गया तौ ऐसा (३) चिन्ह हो गया, फिर (सू० ५३) की प्राप्ति थी तौ (सू० ६३) ने निषेध कर दिया । आगच्छ कृष्ण ३ अत्र गौश्चरति । ऐसाही रूप रह गया ॥

६४ ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् । १ । १ । ११ ॥

(ईदूदेद्द्विवचनम्-प्रथमा० । प्रगृह्यम् प्रथमान्तम् ।) ईदूदेदन्त द्विवचन प्रगृह्य स्यात् ॥

ई ऊ ए जिनके अन्तमें हों ऐसा द्विवचन प्रगृह्यनामवाला हो । हरी+एतौ–हरी एतौ । विष्णू+इमौ–विष्णू इमौ । यहां (सू०१९) की प्राप्ति थी सो (सू० ६२) से जैसेका तसाही रह गया । और– गंगे+अमू । यहां (सू० २७) की प्राप्ति थी सो (सू० ६३) ने निषेध कर दिया। यहां क्रमसे ईदन्त ऊदन्त एदन्त द्विवचन समझ लो ॥

६५ अदसो मात् । १ । १ । १२ ॥

(अदसः-पचम्यन्तम् । मात् पचम्यन्तम् ।) अस्मात्परावीदूतौ प्रगृह्यौ स्तः ॥

जब अदस्-शब्दके मकारसे परे जो ईदन्त और ऊदन्त सो प्रगृह्य (सू ६४) संज्ञक हों ॥ जैसे–अमी+ईशाः । यहां (सू०५३) की प्राप्ति थी, उसको (सू० ६५) ने बाध लिया तौ (सू० ६३) से ऐसांही रह गया । अमी ईशाः । यही रूप रहा । रामकृष्णावमू+ आसाते । यहां (सू० १९) को बाधकर (सू० ६५) से प्रगृह्य संज्ञा हो (सू० ६३) से ज्योंका त्यों रह गया । रामकृष्णावमू आसाते । ऐसाही रहा ॥ मात् किम ॥ अदस्-के 'म' सेही परे क्यों

कहा । यदि मकारसे परे न कहते तो । अमुके+अत्र । यहांभी प्रगृह्य-संज्ञा हो जाती, अब यहां (सू० ५६) से अका पूर्वरूप होकर । अमुकेत्र । ऐसा रूप बना । इस सूत्रमें (सू० ६४) से अनुवृत्ति होती है ॥

६६ चादयोऽसत्त्वे । १ । ४ । ५७ ॥

(चादयः-प्रथ० । असत्त्वे-सप्तम्यन्तम् ।) अद्रव्यार्थाश्चादयो निपाताः स्युः ॥

द्रव्यअर्थसे रहित जो चादिगणपठित शब्द हैं उनकी **निपात** संज्ञा हो । अद्रव्य उनको कहते हैं-जिनका अन्वय लिंग-संख्याके साथ न हो ॥

६७ प्रादयः । १ । ४ । ५८ ॥

(प्रादयः-प्रथमान्तम् ।) एतेऽपि तथा ॥

अद्रव्यार्थ प्रादिकों (सू० ४५) की **निपात** संज्ञा हो ॥

६८ निपात एकाजनाङ् । १ । १ । १४ ॥

(निपातः-प्रथ० । एकाच प्रथ० । अनाङ्-प्रथमान्तम् ।) एकोऽज् निपात आङ्वर्ज्यः प्रगृह्य स्यात् ॥

आङ्से रहित जो एकअच्वाला निपात (सू०६६।६७) है उस-कीभी **प्रगृह्य** संज्ञा हो । जैसे-इ+इन्द्रः । यहां (सू० ५३) का निषेध होकर प्रगृह्य संज्ञा हुई, क्योंकि यहां (सू० ६६) से 'इ' की निपात-संज्ञा है और आङ्से रहितभी है तो (सू० ६३) से जैसेके तैसाही रह गया । इ इन्द्रः । और । उ+उमेशः । यहांभी पूर्ववत्ही साधनका है । उ उमेशः ॥

६९ (वाक्यस्मरणयोरङित्) ॥

वाक्य और स्मरण करनेमें आङ्कीभी ङित् संज्ञा न हो । और जगह हो जाय । जैसे-आ+एवं नु मन्यसे । (क्या अब आप ऐसा मानते हैं ? ।) यहां वाक्यमें आकी ङित्संज्ञा न हुई तो (सू०६८)

से प्रगृह्य संज्ञा हो (सू० ६३) से ज्योंका त्यों रह गया । आ एवं नु मन्यसे । और आ+एवं किल तत्–आ एवं किल ततं (-हां वह ऐसेही है) यहां स्मरणमें आकी सब पूर्ववत् साधनका समझ लो । यहां दोनों प्रयोगोंमें (सू०३९) काभी निषेध है ॥ अन्यत्र ङित् ॥ वाक्य और स्मरणसे रहित और जगह तो आकी ङित्संज्ञाही होती है । जैसे–आ+उष्णम् । यहां आ थोडेका वाची है, इससे प्रगृह्य संज्ञा न हुई तो (सू० ३३) से पूर्व-परके स्थानमें एक ओ-गुण होकर । ओष्णम् । ऐसा रूप बना ॥ ईषदुष्णम् ॥ अर्थात् थोडा गरम ॥

७० ओत् । १ । १ । १५ ॥

(ओत्-प्रथमान्तम् ।) ओदन्तो निपातः प्रगृह्यः स्यात् ॥

ओकार जिसके अंतमें हो ऐसा निपात (सू०६६) भी प्रगृह्यसंज्ञक हो । जैसे–अहो+ईशाः । यहां (सू० २७) का निषेध कर प्रगृह्य संज्ञा हो (सू० ६३) से । अहो ईशाः । ऐसाही रह गया ॥

७१ सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे । १ । १ । १६ ॥

(सम्बुद्धौ-सप्तम्य० । शाकल्यस्य-षष्ठ्यन्तम् । इतौ सप्त० । अनार्षे-सप्तम्यन्तम् ।) सम्बुद्धिनिमित्तक ओकारो वा प्रगृह्योऽवैदिके इतौ परे ॥

यदि वेदभिन्न (लौकिक) इति-शब्द परे होय तो सम्बोधनसंबंधी ओकारकी विकल्प करके शाकल्यआचार्यके मतमें प्रगृह्य संज्ञा हो और किसीके मतमें नहीं । जैसे–विष्णो+इति । यहां लौकिक इति-शब्द परे होनेसे सम्बोधनके ओकी प्रगृह्य संज्ञा हुई तो । विष्णो इति । ऐसाही रहा । औरोंके मतमें । विष्णो+इति । यहां (सू० २७) से ओकूं अवादेश हो गया तो । विष्णविति । यह रूप बना । और जब (सू० ३६) से 'व' का लोप हो गया तो । विष्ण इति । यह तीन रूप बने ॥

१ ईषदर्थे क्रियायोगे मर्यादाभिविधौ च यः । एतमातं ङितं विद्याद्वाक्यस्मरणयोरङित् ॥ १ ॥

७२ मय उञो वो वा । ८ । ३ । ३३ ॥

(मयः-पञ्चम्य० । उञः-षष्ठ्य० । वः-प्रथ० । वा-विकल्पार्थकमव्ययपदम् ।) मयः परस्य उञो वो वा अचि ॥

मय्-प्रत्याहारसे परे जो उञका उ तिसको अच्के परे हुए संते विकल्प करके व हो । जैसे—किम्+उत्तम् । यहां जब उको व हुआ तो । किम्वुत्तम् । हुआ । नहीं तो (सू० ६८) से प्रगृह्य संज्ञा हो (सू० ६३) से ज्योंका त्योंही रह गया । किमु उत्तम् ॥

७३ इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च । ६ । १ । १२७ ॥

(इकः-प्रथ० । असवर्णे-सप्त० । शाकल्यस्य-षष्ठ्य० । ह्रस्वः-प्रथ० । च-अव्ययपदम् ।) पदान्ता इको ह्रस्वा वा स्युरसवर्णेऽचि ॥

यदि असवर्णी (जिसकी सवर्ण संज्ञा न हो) अच् परे होय तो पदान्तके इक् विकल्प करके ह्रस्व हो । चक्री+अत्र । यहां ईको ह्रस्व कर लिया तो । चक्रि अत्र । ऐसा रूप बननेपर (सू० १९) की प्राप्ति होनेपर ॥ ह्रस्वविधिसामर्थ्यान्न स्वरसंधिः ॥ ह्रस्वविधिकी सामर्थ्यसे अच्संधिका फिर कुछ कार्य नहीं होता है । क्योंकि, जो (सू० १९) की संधि कर लेते तो ह्रस्व करनेका कुछ फल न होता । और जब ह्रस्व न हुआ तब तो (सू० १९) से । चक्र्यत्र । ऐसाही रूप बनता है ॥ पदान्ता इति किम् ॥ पदान्तके इक् हों ऐसा क्यों कहा । जो पदान्त न कहते तो । गौरी+औ । यहांभी ह्रस्व हो जाता । अब यहां (सू० १९) से ईकू य होकर गौर् य्+औ ॥ ऐसा होनेपर—

७४ अचो रहाभ्यां द्वे । ८ । ४ । ४६ ॥

(अचः पञ्च० । रहाभ्याम्-पञ्च० । द्वे-प्रथ० ।) अचः पराभ्यां रेफहकाराभ्यां परस्य यरो द्वे वा स्तः ॥

अच्से परे जो रेफ और ह-कार उनसे परे यर्को विकल्प करके द्वित्व हो, जैसा—गौर् य्+औ । यहां गौके औसे परे रेफ है तिससे

पर ' य ' यह यर् है उसै विकल्प करकै द्वित्व हुआ तौ । गौय्यौं । और न हुआ तौ । गौर्यौं । यह रूप सिद्ध हुए ऐसेही । 'हरि+अनुभवः । (सू० १९) से य होकर द्वित्व हूआ तौ । हय्यनुभवः । और द्वित्व न हुआ तौ । हर्यनुभवः । इत्यादि रूप बने ॥

७५ (न समासे) ॥

समासमें ऱ्हस्व (सू०७३) न हो । जैसे—वापी+अश्वः । यहां । वाप्यां+अश्वः । ऐसा समास है इस कारण ऱ्हस्व न हुआ तौ (सू० १९) से य् होकर । वाप्यश्वः । ऐसा सिद्ध हो गया ॥

७६ ऋत्यकः । ६ । १ । १२८ ॥

(ऋति सप्तम्यन्तम् । अकः प्रथमान्तम् ।) ऋति परे पदान्ता अकः प्राग्वद्वा स्युः ॥

जो ऋकार परे हो तो पदान्तके अक विकल्प करके ऱ्हस्व हों । जैसे—ब्रह्मा+ऋषिः । जब यहां ऱ्हस्व हुआ तब तौ । ब्रह्म ऋषिः। ऐसा हुआ । नहीं तौ (सू० ३३) से गुण हो और (सू० ३५) से ' र ' होकर । ब्रह्मर्षिः । ऐसा बना ॥ पदान्ता इति किम् ॥ पदान्तग्रहण क्यों करा । जो पदान्तग्रहण न करते तौ।आ+ऋच्छत । यहां विना पदान्तमभी ऱ्हस्वकी प्राप्ति थी सो उसका निषेध कर (सू० ३९) से वृद्धि और (सू० ३५) से रपर होकर । आर्च्छत । यह रूप सिद्ध हुआ ॥

॥ इत्यच्संधिः ॥

अथ हल्संधिः ।

७७ स्तोः श्चुना श्चुः । ८ । ४ । ४० ॥

(स्तोः-षष्ठ्यन्तम् । श्चुना तृतीयान्तम् । श्चुः प्रथमान्तम् ।) सकार-तवर्गयोः शकार-चवर्गाभ्यां योगे शकार-चवर्गौ स्तः ॥

जब सकार-तवर्गकू शकार-चवर्गका योग हो तब यथाक्रमसे सकारको शकार और तवर्गको चवर्ग हों । जैसे—रामस्+शेते= रामश्शेते । और—रामस्+चिनोति=रामाश्चिनोति । यह रूप बने, और—सत्+चित्=सच्चित् । शार्ङ्गिन्+जय=शार्ङ्गिञ्जय । यहांभी पूर्ववत् साधनका कर लो ॥

७८ शात् । ८ । ४ । ४४ ॥

(शात्—पचम्यन्तम् ।) शात्परस्य तवर्गस्य श्चुत्वं न स्यात् ॥

शकारसे परे जो तवर्ग तिसको चवर्गादेश न हो । जैसे—विश्+नः= विश्नः । प्रश्+नः=प्रश्नः । यहां शकारसे पर होनेसे तवर्गको चवर्ग न हुआ ॥

७९ ष्टुना ष्टुः । ८ । ४ । ४१ ॥

(ष्टुना—तृतीयान्तम् । ष्टुः—प्रथमान्तम् ।) स्तोः ष्टुना योगे ष्टुः स्यात् ॥

जब सकार और तवर्गको षकार और टवर्गका योग हो तौ यथाक्रमसे सकारको षकार और तवर्गको टवर्ग हो जाय । जैसे—रामस्+षष्ठः=रामष्षष्ठः । रामस्+टीकते=रामष्टीकते । पेष्+ ता=पेष्टा । इत्यादि रूप सिद्ध हुए। तत्+टीका=तट्टीका। चक्रिन्+ ढौकसे=चक्रिण्ढौकसे । इत्यादि प्रयोगोंमें (सू० २८) के क्रमसे साधनका करनी उचित है ॥

८० न पदान्ताट्टोरनाम् । ८ । ४ । ४२ ॥

(न-निषेधार्थकमव्ययपदम् । पदान्तात्-पचः । टोः-पचः । अनाम्- लुप्तषष्ठीकम्पदम् ।) पदान्ताट्टवर्गात्परस्यानामः स्तोः ष्टुर्न स्यात् ॥

पदान्तके टवर्गसे परे नाम्रहित जो सकार और तवर्ग तिसकूं षकार-टवर्ग न हो । और नाम्का जो तवर्ग (न) तिसको तौ टवर्ग (ण) होही जाय । जैसे—षट्+सन्तः=षट्सन्तः। षट्+ते=षट्ते । यहां सकार-तवर्गकू षकार-टवर्ग न हुआ ॥ पदान्तात्किम् ॥ पदान्तके टवर्गसे परे, ऐसा क्यों कहा । जो ऐसा न कहते तौ—ईट्+ते यहां

पदान्तके टवर्गसे परे नहीं है इससे (सू० ७९) के अनुसार तवर्गको टवर्ग होकर । ईड्डे । ऐसा रूप बना ॥ टोः किम् ॥ टवर्गहीसे परे क्यों कहा । जो टवर्गसे परे न कहते तो । सर्पिष्+तमम = सर्पिष्टमम् । यहां टवर्गसे परे नहीं है, इस कारण (सू० ७९) से तवर्गको टवर्ग हो गया तो । सर्पिष्टमम । यह रूप सिद्ध हुआ ॥

८१ (अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम्) ॥

जो (सू० ८०) में नाम-शब्दको छोडकर, ऐसा कहा है वहां नाम् , नवति और नगरी, इन शब्दोंको ग्रहणकर, नामरहित नवतिरहित नगरीरहित पदान्तके टवर्गसे परे सकार-तवर्गको षकार-टवर्ग न हो, ऐसा अर्थ करना चाहिये । और जहां । नाम , नवति, नगरी । यह परे हो वहां तो सकार तवर्गको षकार-टवर्ग होही जाय । जैसे—षट् नाम्—षण्णाम् । षट् नवतिः—षण्णवतिः । षट्+नगर्यः —षण्णगर्यः । इन प्रयोगोंमें यथाक्रम नाम नवति नगरी-शब्द परे होनेसे (सू० ७९) से (सू० ७८) के अनुसार नको णकार हो फिर(सू० ८४) से टकोभी णही हो गया तो ऊपर लिखे हुए रूप सिद्ध हो गये ॥

८२ तोः षि । ८ । ४ । ४३ ॥

(तोः पञ्चम्यन्तम् । षि सप्तम्यन्तम् ।) तवर्गस्य षकारे परे ष्टुत्वम् न स्यात् ॥

जब तवर्गसे परे षकार हो तोभी ष्टुत्व न हो । जैसे—सन्+षष्ठः —सन्षष्ठः । यहां नवर्गको टवर्ग न हुआ ॥

८३ झलां जशोऽन्ते । ८ । २ । ३९ ॥

(झलाम् षष्ठ्यन्तम् । जशः प्रथमा० । अन्ते सप्तम्यन्तम् ।) पदान्ते झलां जशः स्युः ॥

पदान्तमें झलोंको जश हों । जैसे—वाक्+ईशः—वागीशः । चित्+रूपम्—चिद्रूपम् । यहां (सू० ८३) से स्थान जो जश् है सो (सू० २१) के अनुसार होना है ॥

८४ यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा । ८ । ४ । ४५ ॥

(यरः-षष्ठ्य०। अनुनासिके-सप्त०। अनुनासिकः-प्रथमा०। वा-विकल्पार्थकमव्ययपदम् ।) यरः पदान्तस्यानुनासिके परेऽनुनासिको वा स्यात् ॥

जब अनुनासिक परे होय तो पदान्तके यर्‌को विकल्प करके अनुनासिक हो । जैसे-एतत्+मुरारिः-एतन्मुरारिः । रूप बना । और जब अनुनासिक न हुआ तो (सू०८३) से प्राप्त जश् (सू०२१) के अनुसार होकर । एतद्‌मुरारिः । हो गया ॥

८५ (प्रत्यये भाषायान्नित्यम्) ॥

जो प्रत्यय परे हो तो लौकिक प्रयोगोंमें नित्यही अनुनासिक हो। जैसे-तत्+मात्रम्=तन्मात्रम । यहां (मात्रच) प्रत्यय परे होनेसे और-चित्+मयम्=चिन्मयम् । यहां (मयट्) प्रत्यय परे होनेसे नित्यही अनुनासिक हुआ ॥

८६ तोर्लि । ८ । ४ । ६० ॥

(तोः-षष्ठ्य० । लि सप्तम्य०।) तवर्गस्य लकारे परे परसवर्णो भवति॥

जब तवर्गसे लकार परे हो तो तवर्गको परसवर्ण (लकार) ही होता है । जैसे-तत्+लयः=तल्लयः ॥ नस्यानुनासिको लः ॥ नकारको अनुनासिकही लकार होना चाहिये । जैसे-विद्वान्+लिखति। यहां नको अनुनासिक ' लँ ' होकर । विद्वाँल्लिखति । ऐसा रूप सिद्ध हो गया ॥

८७ उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य । ८ । ४ । ६१ ॥

(उदः पञ्च० । स्थास्तम्भो-षष्ठ्य० । पूर्वस्य-षष्ठ्य० ।) उदः परयोः स्थास्तम्भोः पूर्वसवर्णः स्यात् ॥

उद्-उपसर्गसे परे स्था और स्तम्भको पूर्वका सवर्ण हो ॥

८८ तस्मादित्युत्तरस्य । १ । १ । ६७ ॥

(तस्मात्-पञ्च० । इति अव्य० । उत्तरस्य-षष्ठ्य० ।) पञ्चमीनिर्देशेन क्रियमाण कार्यं वर्णान्तरेणाव्यवहितस्य परस्य ज्ञेयम् ॥

पंचम्यन्त पदसे जो कार्य्य किया जाय वह कार्य वर्णान्तरं करके अव्यवहित परको होना चाहिये ॥

८९ आदेः परस्य । १ । १ । ५४ ॥

(आदेः पञ्चम्यन्तम् । परस्य षष्ठ्यन्तम् ।) परस्य यद्विहितं तत्तस्यादेर्बोध्यम् ॥

जो कार्य्य परको किया जाता है वह उसके आदिको होना चाहिये ॥ इति स्तम्भ थः ॥ इस सूत्रसे स-को थ हो गया । जैसे उद् + स्थानम । यहां (सू० ८७) से स्था-को पर्वका सवर्णी पाया तो पूर्वमें ' उ-द् ' यह दो अक्षर है, तो कौनसेका सवर्णी होना चाहिये । ऐसी शंका होनेसे (सू० ८८) करके स्था-को द्-का सवर्णी पाया तो स्थामेंभी दो अक्षर है ' द ' का सवर्णी ' स ' को हो या ' थ ' को हो । यह शंका होनेपर (सू०८९) से द्-का सवर्णी स-को पाया । सवर्णसंज्ञामें (सू० १२) के अनुसार जब आभ्यन्तर-प्रयत्न नहीं मिले तो फिर-' स ' के विवार-श्वास-अघोष-और महाप्राण-प्रयत्न है और पर्वोक्त प्रयत्नोंवाला सकारका सवर्णी थकारही है इस कारण ' स ' के स्थानमे ' थ ' होनेसे-उद्+थ्+थानम । ऐसा हुआ, तब-

९० झरो झरि सवर्णे । ८ । ४ । ६५ ॥

(झरः षष्ठ्यन्तम् । झरि-सप्तमी । सवर्णे सप्तम्यन्तम् ।) हलः परस्य झरो वा लोपः सवर्णे झरि ॥

सवर्णी झरके परे हुए संते हल्से पर झर्का विकल्प करके लोप हो । उद्+थ्+थानम् । यहां इसी सूत्रसे पहले थकारका लोप होकर-उद् थानम । ऐसा रूप हुआ फिर-

९१ खरि च । ८ । ४ । ५५ ॥

(खरि-सप्तमी । च-अव्ययपदम ।) खरि झलां चरः स्युः ॥

अघोषमहाप्राणप्रयत्नाभ्यामित्यर्थः ।

जब खर् परे हो तब झलोंको चर् हो । इस सूत्रसे जब ' द् ' को ' त् ' हो गया तब । उत्थानम् । ऐसा रूप, और जब (सू० ९०) से विकल्प करके थ-कारका लोप न हुआ तो । उत्थ्थानम् । ऐसा रूप सिद्ध हुआ । ऐसेही–उद्+स्तम्भनम = उत्तम्भनम्, उत्थ्तम्भनम् । होता है ॥

९२ झयो होऽन्यतरस्याम् । ८ । ४ । ६२ ॥

(झयः-पञ्च० । हः-प्रथ० । अन्यतरस्याम्-विकल्पार्थकमव्य० प० ।) झयः परस्य हस्य वा पूर्वसवर्णः ॥

झय्से परे जो हकार तिसको विकल्प करके पूर्वसवर्ण हो ॥

नादस्य-घोषस्य-संवारस्य-महाप्राणस्य हस्य तादृशो वर्गचतुर्थः ॥

नाद-प्रयत्नवाले–घोष-प्रयत्नवाले–संवार-प्रयत्नवाले–महाप्राण-प्रयत्नवाले–ह-कारके वैसा (पूर्वोक्त–नादादि-प्रयत्नवाला) ही वर्गका चौथा अक्षर हो । जैसे–वाक्+हरिः । यहां झय्से परे जो ' हरिः ' का ह-कार तिसको (सू० ९२) से प्राप्त पूर्वका सवर्ण (नादस्य० इत्यादिसे) वर्गका चतुर्थ अक्षर अर्थात्–घ होकर फिर (सू० ८३) से ' क ' को ' ग ' हुआ तो । वाग्घरिः । रूप बना । जब पूर्वसवर्ण विकल्पसे न हुआ तो । (सू०८३) से ' क ' को गकारही होकर वाग्हरिः । ऐसा रूप बना ॥

९३ शश्छोऽटि । ८ । ४ । ६३ ॥

(शः पञ्च० । छः प्रथ० । अटि-सप्तम्यन्तम ।) झयः परस्य शस्य छो वाऽटि ॥

झय्-प्रत्याहारसे परे जो शकार तिसको विकल्प करके छकार हो अट्-प्रत्याहार परे रहते ॥

तद् शिव, इत्यत्र दस्य श्चुत्वेन जकारे कृते खरि चेति जकारस्य चकारः ॥

' तद्+शिव ' इस प्रयोगमें दकारके ' स्तोः श्चुना श्चुः ' इस सूत्रसे जकार किये संते ' खरि च ' इस सूत्रमें जकारके चकार हुआ । जैसे–तद्+शिवः । यहां (सू० ७७) से दको ज करके फिर

(सू० ९१) से जको चकार जब (सू० ९३) से शकारको छकार हुआ तो । तच्छिवः । यह रूप बना, और जब विकल्प करके शकारको छकार हुआ तो पूर्वोक्त रीतिके अनुसार । तच्शिवः । यह रूप बना ॥

९४ (छत्वममीति वाच्यम्) ॥

अम्के परे जो शकार तिसको छकार हो अम्के परे हुए सन्ते ऐसा कहना उचित है । जैसे—तद् श्लोकेन । यहां (सू०७७) से 'द' के स्थानमें 'ज' कर फिर (सू०९१) से जकारको चकार कर करके (सू०९४) से 'श' को 'छ' हुआ 'ल' अम परे है तो । तच्छ्लोकेन । यह रूप बना । यहां (सू० ९३) से शकारको छकार इस कारण नहीं होता कि उससे सस्वर शकारका बोध होता है ॥

९५ मोऽनुस्वारः । ८ । ३ । २३ ॥

(मः षष्ठ्य० । अनुस्वारः प्रथमान्तम् ।) मान्तस्य पदस्यानुस्वारो हलि ॥

मकारान्त पदको अनुस्वार हो यदि हल् परे हो तो । जैसे—हरिम्+वन्दे । यहां (सू०२५) के अनुसार मकारको अनुस्वार होकर । हरिं वन्दे । यह रूप बना ॥

९६ नश्चापदान्तस्य झलि । ८ । ३ । २४ ॥

(न षष्ठ्यन्तम् । च अव्यय० । अपदान्तस्य षष्ठ्यन्त० । झलि-सप्तम्यन्तम् ।) नस्य मस्य चापदान्तस्य झल्यनुस्वारः ॥

जो झल् परे होय तो अपदान्तके नकार और मकारकू अनुस्वार हो । जैसे—यशान्+सि । यहां (सू० २५) के अनुसार नकारको अनुस्वार होकर । यशांसि । रूप हुआ, ऐसेही—आक्रम+स्यते—आक्रंस्यते । यहां मकारको अनुस्वार हुआ ॥

९७ अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः । ८ । ४ । ५८ ॥

(अनुस्वारस्य-षष्ठ्यन्तम् । ययि-सप्तम्यन्तम् । परसवर्णः-प्रथमान्तम् ।)

यदि यय् परे होय तौ अनुस्वारकू परसवर्ण होय। जैसे-शाम्+तः यहां अनुस्वार (सू० ९६) से होकर फिर (सू०२१) के अनुसार 'त' का सवर्णी न् होकर । शान्तः । रूप बना ॥

९८ वा पदान्तस्य । ८ । ४ । ५९ ॥

(वा विकल्पार्थकमव्ययपदम् । पदान्तस्य-षष्ठ्यन्तम् ।) पदान्तस्यानुस्वारस्य ययि परे परसवर्णो वा स्यात् ॥

जो यय् परे होय तौ पदान्तके अनुस्वारकू विकल्प करके अनुस्वार हो । जैसे-त्वम्+करोषि । यहां अनुस्वार (सू०९५) कर फिर जब परसवर्ण हुआ तौ। त्वङ्करोषि। नहीं तौ-त्वं करोषि। ऐसा रूप बना ॥

९९. मो राजि समः क्वौ । ८ । ३ । २५ ॥

(मः षष्ठ्यन्तम् । राजि-सप्तम्यन्तम् । समः-षष्ठ्यन्तम् । क्वौ-सप्तम्यन्तम् ।) क्विबन्ते राजतौ परे समो मस्य म एव स्यात् ॥

क्विप् (सू० ८६८) प्रत्यय जिसके अन्तमे हो ऐसी राज् धातुसे परे जो सम् तिसके मकारकू मकारही हो अर्थात्-(सू० ९५) के अनुसार अनुस्वार नही होय। जैसे-सम+राट=सम्राट् । यहां राट्-शब्द क्विपप्रत्ययान्त राज्धातुका रूप है ॥

१०० हे मपरे वा । ८ । ३ । २६ ॥

(हे सप्तम्यन्तम् । मपरे सप्तम्यन्तम् । वा विकल्पार्थकमव्ययपदम् ।) मपरे हकारे परे मस्य मो वा स्यात् ॥

जिस हकारसे परे मकार है ऐसे हकारके परे हुए सन्तें मकारकू मकार विकल्प करके होय। जैसे-किम्+ह्मलयति । यहां जब मकारही हुआ तौ । किम्ह्मलयति । जब 'म' नहीं हुआ तौ (सू० ९५) से अनुस्वार होकर । किं ह्मलयति । रूप बना ॥

१०१ (यवलपरे यवला वा) ॥

जिस हकारसे परे य-व-ल हों ऐसा हकार परे रहते मकारकू

क्रमानुसार य-व-ल हो । जैसे-किम्+ह्यः । यहां (सू० १५) के अनुसार । कियँह्यः । वा । (सू० ९५) के अनुसार । किंह्यः । यह रूप सिद्ध हुआ । इसी प्रकार यथाक्रमसे । किम्+ह्वलयति-किवँ ह्वलयति,किं ह्वलयति । किम्+ल्हादयति-किलँ ल्हादयति, किं ल्हादयति । इत्यादि रूप सिद्ध हो गये ॥

१०२ नपरे नः । ८ । ३ । २७ ॥

(नपरे सप्त० । न प्रथमान्तम् ।) नपरे हकारे परे मस्य नो वा स्यात् ॥

जिस हकारसे नकार परे हो ऐसे हकारके परे हुए सन्ते मकारके नकार विकल्प करके हो । जैसे-किम्+न्हुते । यहां जो मको न हुआ तो । किन्हुते । नही तो (सू०९५) से किं ह्नुते । रूप बना ॥

१०३ ङः सि धुट् । ८ । ३ । २९ ॥

(ङ-पञ्चम्यन्तम् । सि सप्त० । धुट् प्रथ० ।) ङात्परस्य सस्य धुड्वा॥

ङकारसे परे जो सकार है तिसे विकल्प करके धुट्का आगम हो॥

१०४ आद्यन्तौ टकितौ । १ । १ । ४६ ॥

(आद्यन्तौ प्रथ० । टकितौ प्रथमान्तम ।) टित्कितौ यस्योक्तौ तस्य क्रमादाद्यन्तावयवौ स्त ॥

टित (जिसके ' ट ' की इत्संज्ञा हो) और कित (जिसके ' क ' की इत्संज्ञा हो) आदेश जिसको प्राप्त हो उसके आदि-अन्तके अवयव, अर्थात् टित आदि और कित अन्तमें हो । जैसे-षड्+सन्तः । यहां (सू० १०३) से धुट् (सू० १०४) के अनुसार सकारकी आदिमे हुआ, फिर (सू० ९१) से (सू० २१) के अनुसार ' ड ' कू ' ट ' हो गया तो । षट्-धुट्-सन्तः । हुआ फिर (सू० ३४ और ३) से उट्का लोप हुआ तो । षट्-ध्-सन्तः । रूप हुआ फिर (सू० ८३) से धकू द हुआ फिर (सू० ९१) से दकू त हुआ तब । षट्त्सन्तः । ऐसा रूप बना, और जब धुट न हुआ तो (सू० ९१) से ' ड ' कू ' ट ' होकर । षट् सन्तः । ऐसा रूप बना ॥

१०५ ङ्णोः कुक्टुक् शरि । ८ । ३ । २८ ॥

(ङ्णोः-षष्ठ्य० । कुक्टुक्-प्रथमा० । शरि-सप्त० ।) ङकारणकारयोः कुक्टुकागमौ वा स्तः शरि ॥

जो शर् परे होय तो ङकार और णकारकू क्रमसे कुक् और टुक्के आगम विकल्प करके हों ॥

१०६ (चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम्) ॥

पौष्करसादी आचार्यके मतमें चयकू वर्गके दूसरे अक्षर हों । जैसे–प्राङ्+षष्ठः । यहां (सू० १०५) से कुक् होकर (सू० ३४।३) से ' उ, क् ' का लोप हुआ फिर (सू० १०६) से ' क ' कू ' ख ' हो गया तो । प्राङ्ख्षष्ठः । रूप हुआ । जब ख न हुआ तौ । ' कषसंयोगेक्षः ' । क और ष मिलकर क्ष हो गया । प्राङ्क्षष्ठः। जब कुक्ही न हुआ तो । प्राङ्षष्ठः । यही रूप बना । ऐसेही । सुगण्+षष्ठः । सुगण्ट् षष्ठः–सुगणट्षष्ठः–सुगण्षष्ठः । इत्यादि रूप बने ॥

१०७ नश्च । ८ । ३ । ३० ॥

(नः-पञ्चम्य० । च-अ० प० ।) नान्तात्परस्य सस्य धुड्वा स्यात् ॥

नकारान्त पदसे परे जो सकार तिसको धुट्का आगम विकल्प करके हो । जैसे–सन्+सः । यहां धुट् होकर (सू० ३४।३) से उट्का लोप हो गया तो (सू० ८३) से ' ध ' कू ' द ' हो गया और (सू० ९१) से ' द ' कू ' त ' होकर । सन्त्सः । यह रूप बना । जब धुट् न हुआ तब । सन्सः । ऐसाही रह गया ॥

१०८ शि तुक् । ८ । ३ । ३१ ॥

(शि-सप्तम्य० । तुक् प्रथ० ।) पदान्तस्य नस्य शे परे तुग्वा ॥

यदि शकार परे होय तौ पदान्तके नकारकू विकल्प करके तुक्का आगम हो । जैसे–सन्+शम्भुः । यहां (सू० १०८) से तुक् हुआ तौ (सू० ३४।३) में उक्का लोप हो गया, फिर (सू०

७७) से 'त' कू 'च' हो गया, और (सू० ९३) से 'श' कू 'छ' हो गया और फिर (सू० ७७) से 'न' कू 'ञ' हो गया तो । सञ्च्छम्भुः । रूप बना, और जब तुक् विकल्प करके होता है इस कारण नहीं हुआ तो (सू० ७७) से नकू ञ होकर । सञ्शम्भुः । रूप बना, और जब तुक् तो हुआ और विकल्पके कारण 'श' कू 'छ' न हुआ तो-(सू०७७) से 'त' कू तो 'च' और 'न' कू 'ञ' होकर । सञ्चशम्भुः । यह रूप बना । पक्षान्तरमे- 'न' कू 'ञ' और 'श' कू 'छ' हो गया-सञ्छम्भुः ॥

१०९. ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम् ।८।३।३२॥

(ङम पञ्च० । ह्रस्वात् पञ्च० । अचि सप्त० । ङमुट् प्रथ० । नित्यम् प्रथ० ।) ह्रस्वात्परो यो ङम तदन्तं यत्पदं तस्मात्परस्याचो नित्यं ङमुट् स्यात् ॥

ह्रस्वसे परे जो ङम्-प्रत्याहार (ङ-ण-न) तदन्त (वोह ङम् जिसके अन्तमें है ऐसा) जो पद तिससे परे जो अच् तिसकू नित्य ङमुट्का आगम हो । जैसे-प्रत्यङ्+आत्मा-प्रत्यङ्ङात्मा । सुगण्+ईशः-सुगण्णीशः । सन्+अच्युतः-सन्नच्युतः । इत्यादि रूपोंमें यथाक्रमसे ङमुट् हुआ ॥

११० समः सुटि । ८ । ३ । ५ ॥

(सम पष्ठ्य० । सुटि सप्तम्यन्तम ।) समो रुः सुटि ॥

सम्के मकारकू रु हो, जब सुट परे होय तो ॥

१११ अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा । ८ । ३ । २॥

(अत्र-अव्ययपदम् । अनुनासिकः प्रथमा० । पूर्वस्य - षष्ठ्य० । तु अव्ययप० । वा विकल्पार्थकमव्ययपदम् ।) अत्र रुप्रकरणे रोः पूर्वस्यानुनासिको वा स्यात् ॥

इस रुके प्रकरणमें रुसे पहले वर्णकू विकल्पसे अनुनासिक हो ॥

१ ङमुट्के स्थानमें वस्तुतः ङम होता है, उट ता- (सू०१०८) के अनुसार आदिमें करनेके अर्थ लगा दिया है ।

११२ अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः । ८ । ३ । ४ ॥

(अनुनासिकात्-पञ्चम्यन्तम् । परः-प्रथ० । अनुस्वारः-प्रथमान्तम् ।) अनुनासिकं विहाय रोः पूर्वस्मात्परोऽनुस्वारागमः स्यात् ॥

अनुनासिकके पक्षकू छोडकर रुके पूर्ववर्णसे परे अनुस्वारका आगम हो ॥

११३ खरवसानयोर्विसर्जनीयः । ८ । ३ । १५ ॥

(खरवसानयोः सप्तम्यः । विसर्जनीयः-प्रथमान्तम् ।) खरि अवसाने च पदान्तस्य रस्य विसर्गः ॥

खर् परे होय अथवा अवसान (सू० १४५) के विषय पदान्तके रकारकू विसर्ग हो ॥

११४ (संपुंकानां सो वक्तव्यः) ॥

जो सम्-अथवा-पुम्-वा-कान शब्दकी विसर्ग हो तो उनकू सकार हो ऐसा कहना चाहिये । जैसे-सम्+स्कर्त्ता । यहां (सू० ११०) से 'म' कू 'रु' हुआ, फिर (सू० १११) से रुके पूर्ववर्ण सक अनुनासिक हुआ तो । सँ रु+स्कर्त्ता । अथवा (सू० ११२) से पूर्व अनुस्वार होकर । संरु+स्कर्त्ता, ऐसा हुआ तो (सू० ३४) से 'उ' का लोप होकर (सू० ११३) से 'र' की विसर्ग हो फिर (सू० ११४) से विसर्गोंकू 'स' हुआ तो । सँस्स्कर्त्ता । संस्स्कर्त्ता । इत्यादि रूप सिद्ध हुए ॥

११५ पुमः खय्यम्परे । ८ । ३ । ६ ॥

(पुमः षष्ठ्यः । खयि सप्तम्यः । अम्परे सप्तम्यन्तम् ।) अम्परे खयि पुमो रुः ॥

जिस खय्से परे अम् हो ऐसे खय्के परे हुए सन्ते पुम्के मकारकू रु हो । जैसे पुम्+कोकिलः । यहां मकारकू रु होकर (सू० ३४) से 'उ' का लोप हो गया, फिर (सू० १११) से रुके पूर्व अनुनासिक हो गया और पक्षमें (सू० ११२) से अनुस्वार हो गया फिर (सू० ११३) से 'र' कू विसर्ग हो गई और (सू० ११४)

से विसर्गोंकू सकार हो गया तो । पुँस्कोकिलः । पुंस्कोकिलः । यह रूप बने ॥

११६ नश्छव्यप्रशान् । ८ । ३ । ७ ॥

(नः-षष्ठ्य० । छवि-सप्त० । अप्रशान-लुप्तषष्ठीकम्पदम् ।) अम्परे छवि नान्तस्य पदस्य रुः न तु प्रशान्शब्दस्य ॥

जिससे अम् परे हो ऐसे छव्के परे होनेपर नकारांत पदक् रु हो और प्रशान्शब्दक न हो ॥

११७ विसर्जनीयस्य सः । ८ । ३ । ३४ ॥

(विसर्जनीयस्य षष्ठ्यन्तम् । स प्रथमान्तम् ।) विसर्जनीयस्य सः स्यात्खरि ॥

विसर्गोंक सकार हो खरके परे हुए सन्ते । जैसे—चक्रिन्+त्रायस्व यहां(सू ११६) से 'न' क 'रु' हुआ फिर (सू० १११) से अनुनासिक और एक पक्षमे (सू० ११२) से अनुस्वार हो गया, और (सू० ३४) से 'उ' की इत्संज्ञा होकर (सू० १०३) से 'र' की विसर्ग हो गई तो (सू० ११७) से विसर्गोंक 'स' होकर चक्रिंस्त्रायस्व—चक्रिँस्त्रायस्व । रूप बने ॥ अप्रशान किम् ॥ प्रशान् शब्दक न हो, ऐसा क्यों कहा ? जो ऐसा न कहते तो । प्रशान्+तनोति=प्रशान्तनोति । यहांभी रु आदिक कार्य हो जाते ॥ पदान्तस्येति किम् ॥ पदान्तहीके पदक् रु हो, इस कहनेसे । हन्+ति=हन्ति । यहांभी रु आदि कार्य न हुए, क्योंकि यहां पदांत नहीं है ॥

११८ नॄन् पे । ८ । ३ । १० ॥

(नॄन् लुप्तषष्ठीकम्पदम । पे-सप्तम्य० ।) नॄनित्यस्य रुर्वा पे ॥

पकारके परे होनेपर नॄन्-शब्दके नकारकू विकल्पसे रु हो ॥

११९ कुप्वोः ≍क≍पौ च । ८ । ३ । ३७ ॥

(कुप्वोः-षष्ठ्य० । ≍क ≍पौ-प्र० । च-अव्ययप० ।) कवर्गस्य ≍क ≍पौ स्तः, चाद्विसर्गः ॥

कवर्ग और पवर्गके परे होनेपर विसर्गोंको जिव्हामूलीय और उपध्मानीय हों एक पक्षमें विसर्गभी हों जैसे—नॄन्+पाहि । (सू० ११८। १११। ११९) नॄँᳵ पाहि । (सू० ११८ । १११ । ११९) नॄँः पाहि । (सू० ११८ । ११२ । ११९) नॄंᳵ पाहि । (सू० ११८ । ११२ । ११९) नॄंः पाहि । जब रुभी न हुआ तो । नॄन्पाहि ॥

१२० तस्य परमाम्रेडितम् । ८ । १ । २ ॥

(तस्य -षष्ठ्य० । परम-प्र० । आम्रेडितम्-प्रथमा० ।) द्विरुक्तस्य परमाम्रेडित स्यात ॥

दोबार कहे हुए शब्दका दूसरा जो भाग है तिसकी आम्रेडित संज्ञा हो ॥

१२१ कानाम्रेडिते । ८ । ३ । १२ ॥

(कान् लुप्तषष्ठ्य० । आम्रेडिते-सप्त० ।) कान्नकारस्य रुः स्यादाम्रेडिते ॥

कान्-शब्दके नकारको रु हो, यदि आम्रेडित परे होय तो । जैसे—कान्+कान् । यहां (सू०१२१) से रु होकर (सू० १११) से अनुनासिक और (सू० ११२) से अनुस्वार होकर(सू०११३) से 'र' की विसर्ग हुई, फिर (सू० ११४) से विसर्गोंको 'स' होकर । काँस्कान्, कांस्कान् । इत्यादि रूप सिद्ध हुए ॥

१२२ छे च[1] । ६ । १ । ७३ ॥

(छे -सप्त० । च अव्य० ।) ह्रस्वस्य छे तुक् ॥

यदि छकार परे होय तो ह्रस्व वर्णको तुक्का आगम हो । जैसे—शिव+छाया । यहां तुक होकर (सू० ३१ । ३) से 'उक्' को लोप हुआ, तब फिर (सू०७७) से 'त' को 'च' होकर । शिवच्छाया । यह रूप सिद्ध हुआ ॥

१२३ पदान्ताद्वा । ६ । १ । ७६ ॥

१ ह्रस्वस्य पिति कृति तागित्यस्माद् ह्रस्वस्य तक चेत्यनुवर्त्याह—ह्रस्वस्येति तुगागमो बोध्य ।

(पदान्तात्-पचम्यन्तम् । वा-विकल्पार्थकमव्ययपदम् ।) दीर्घात्पदान्ताच्छे तुग्वा स्यात् ॥

यदि छकार परे हो दीर्घ-पदान्तकू विकल्प करकै तुक्का आगम हो। जैसे—लक्ष्मी+छाया। यहां तुक् हुआ, फिर (सू० ३४।३) सैं उकका लोप करके (सू० ७७) से 'त' कू जब 'च' किया तो। लक्ष्मीच्छाया। यह रूप बना। जब तुक् न हुआ तो। लक्ष्मी-छाया। ऐसाही रह गया ॥

॥ इति हल्संधिः ॥

अथ विसर्गसन्धिः।

(११७) विसर्जनीयस्य सः। ८। ३। ३४ ॥

(विसर्जनीयस्य षष्ठ्य• । सः प्रथमान्तम् ।) खरि ॥

विष्णुः-त्राता। यहां (सू०११५) से विसर्गोंकू सकार होकर। विष्णुस्त्राता। रूप सिद्ध हुआ ॥

११८ वा शरि। ८। ३। ३६ ॥

(वा विकल्पार्थकमव्ययः। शरि सप्तम्यन्तम् ।) शरि विसर्गस्य विसर्गो वा ॥

यदि शर् परे होय तो विसर्गोंकू विकल्पसे विसर्ग हो। पक्षमें सकार हो। जैसे—हरिः+शेते यहां एकवार तो विसर्गही रहा, और दूसरीवार (सू० ११७) से सकार हो गया तो। हरिः शेते, हरिश्शेते। इत्यादिक रूप सिद्ध हुए ॥

११९ ससजुषो रुः। ८। २। ६६ ॥

(ससजुषोः-षष्ठ्य•। रुः प्रथमान्तम् ।) पदान्तस्य सस्य सजुषश्च रुः स्यात्॥

पदान्तके सकार और सजुष-शब्दके षकारकू रु हो। जैसे- शिवस्- अर्च्यः-(रु)-शिवरु+अर्च्यः। हुआ ॥

१२६ अतो रोरप्लुतादप्लुते । ६ । १ । ११३ ॥

(अतः-पञ्चम्य० । रोः-षष्ठ्य० । अप्लुतात्-पञ्चम्य० । अप्लुते-सप्तम्य० ।) अप्लुतादतः परस्य रोः रुः स्यादप्लुतेऽति ॥

अप्लुत (जिसकी सू०७से प्लुतसंज्ञा न हुई हो) अकारसे परे जो रु उसको उकार हो, यदि उस रुसे परेभी अप्लुत अकार होय तो । जैसे–शिव रु+अर्च्यः । यहां ' रु ' कू ' उ ' हो गया तो । शिव +उ+अर्च्यः । फिर (सू०३३) से वकारके अकार और उकारको मिलकर एक गुण हुआ, फिर (सू०५६) से अर्च्यः के ' अ ' का पूर्वरूप होकर । शिवोऽर्च्यः । रूप सिद्ध हुआ ॥

१२७ हशि च । ६ । १ । ११४ ॥

(हशि सप्त० । च-अव्ययपदम ।) अप्लुतादतः परस्य रोरुः स्याद्धशि परे ॥

अप्लुत अकारसे परे रुकू उ हो यदि हश्प्रत्याहार परे होय तो । शिवस्+वन्द्यः । यहां (सू० १२५) से रु (सू० १२७) से उ (सू०३३) से पूर्व-परके स्थानमें ओ गुण होकर । शिवो वन्द्यः । रूप सिद्ध हुआ ॥

१२८ भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि । ८ । ३ । १७ ॥

(भोभगोअघोअपूर्वस्य षष्ठ्य० । यः प्रथ० । अशि सप्तम्य० ।)एतत्पूर्वस्य रोर्यादेशोऽशि ॥

भो-भगो-अघो–अ० इनमेंसे कोईभी जिसके पूर्व हो ऐसे रुकू य आदेश होय जो अश् परे होय तो । जैसे–देवास्+इह । यहां (सू० १२५) से रु और (सू०१२८) से अकार पूर्व होनेकारण 'रु' कू 'य' और (सू०३६) से विकल्प करके यका लोप होकर । देवा इह, देवायिह । रूप सिद्ध हुए ॥

भोस् भगोस्–अघोस्–इति सन्ता· निपाताः । तेषां रोर्यत्वे कृते ॥

भोस्-भगोस् अघोस्-यह सकारान्त निपातन है । उनके सकारकू ' रु ' और ' रु ' कू ' य ' करने पर ॥

१२९ हलि सर्वेषाम् । ८ । ३ । २२ ॥

(हलि-सप्तम्यन्तम् । सर्वेषाम् षष्ठ्यन्तम् ।) भोभगोअघोपूर्वस्य यस्य लोपः स्याद्धलि ॥

सम्पूर्ण व्याकरणाचार्योंके मतमें जिस यकारसे पूर्व भो-भगो-अघो-अ इनमेंसे कोई होय तो उस यकारका लोप हो, यदि उस यकारसे परे हल् होय तो । जैसे-भोस्+देवाः-भो देवाः । भगोस्+नमस्ते-भगो नमस्ते । अघोस्+याहि-अघो याहि । यहां (सू०१२५) से 'रु' और (सू०१२८) से 'रु' कू 'य' और (सू०१२९) से 'य' का लोप होकर पूर्वोक्त रूपोंकी सिद्धि हुई ॥

१३० रोऽसुपि । ८ । २ । ६९ ॥

(रः प्रथमा० । असुपि सप्तम्यः ।) अह्नो रेफादेशो न तु सुपि ॥

यदि सुप् परे न होय तो अहन्-शब्दके नकारकू र आदेश होय । जैसे-अहन्+अहः-अहरहः । अहन्+गणः-अहर्गणः। यहां रपर होकर पूर्वोक्त शब्द सिद्ध हुए ॥

१३१ रोरि । ८ । ३ । १४ ॥

(रो: षष्ठ्य० । रि सप्तम्यन्तम् ।) रेफस्य रेफे परे लोपः ॥

यदि रेफ परे होय तो पहिले रेफका लोप होय ॥

१३२ ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः । ६ । ३ । १११ ॥

(ढ्रलोपे-सप्त० । पूर्वस्य-षष्ठ्य० । दीर्घः-प्रथमा० । अणः षष्ठ्य० ।) ढरेफयोर्लोपनिमित्तयोः पूर्वस्याणो दीर्घः ॥

जो लोपके निमित्त (लोप करनेवाले) ढकार वा रेफ परे होय तो पहले अणकू दीर्घ होय । जैसे-पुनर्+रमते । यहां (सू० १३१) से 'र' का लोप होकर (सू०१३२) से नकारके 'अ' कू दीर्घ हो गया तो । पुना रमते । सिद्ध हुआ । ऐसेही । हरिस्+रम्यः-हरी रम्यः । शम्भुस्+राजते-शम्भू राजते । यहां (सू०१२५) से सकारकू 'रु' और उकी इत्संज्ञा होकर (सू०१३१) से रकारका लोप

(सू० १३२) से पूर्व अण्कू दीर्घ होकर पूर्वोक्त प्रयोगोंकी सिद्धि हुई ॥ *अणः किम् ॥ अण्कूही दीर्घ हो, ऐसा कहनेसे यहां दीर्घ नहीं हुआ । जैसे—तृढ्+ढः—तृढः । वृढ+ढः—वृढः । यहां ढकारका लोप (सू० ६०१) तो हुआ है, परन्तु अण् नहीं है इस कारण दीर्घ नहीं हुआ ॥

मनस् रथ इत्यत्र रुत्वे कृते हशि चेत्युत्वे रोरीति लोपेच प्राप्ते ॥

' मनस्+रथः ' इस प्रयोगमें (सू० १२५) से रु करके फिर ' हशि च ' से उकार, और ' रो रि ' से लोपकी प्राप्ति होनेपर ॥

१३३ विप्रतिषेधे परं कार्यम् । १ । ४ । २ ॥

(विप्रतिषेधे-सप्त० । परम्-प्रथमा० । कार्यम्-प्रथमा० ।) † तुल्यबलविरोधे परं कार्यं स्यात् ॥

बराबरके विरोधमें (जहां दो सूत्रोंकी एकसाथ प्राप्ति हो) अष्टाध्यायीके क्रमानुसार जो सूत्र पर हो उससे प्राप्त कार्य हो ॥ इति लोपे प्राप्ते ॥ इस सूत्रसे लोपहीकी प्राप्ति हुई, क्योंकि (सू० १२७) ६ अध्यायके १ पादका ११४ होनेके कारण (सू० १३१) ८ अध्यायके ३ पादका १४ में सूत्रकी दृष्टिमें असिद्ध है, अर्थात् (सू० १३१) ही पर है तो लोप प्राप्त हुआ ॥

पूर्वत्रासिद्धमिति रो रीत्यस्यासिद्धत्वादुत्वमेव ॥

' पूर्वत्रासिद्धम् ' इस सूत्रसे ' रो रि ' इस सूत्रके असिद्ध होनेसे ' हशि च ' इस सूत्रसे उकारही होता है, क्योंकि यदि ' रो रि ' से लोप करेंगे तो (सू० ३७) के अनुसार (सू० १२५) से करा हुआ ' रु ' असिद्ध हो जायगा, तब ' रो रि ' की प्राप्तीही न रहेगी, इस कारण ' उ ' ही हुआ । जैसे—मनस्+रथः । यहां (सू० १२५) से रु और (सू०१२७)से ' रु ' कू ' उ ' और (सू०३३) से ओ गुण होकर । मनोरथः । सिद्ध हुआ ॥

* [illegible] ॥

† अन्यत्रान्यत्र लब्धावकाशयोरेकत्र समावेशस्तुल्यबलविरोधः ।

१३४ एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि। ६। १। १३२॥

(एतत्तदोः-षष्ठ्य० । सुलोपः-प्रथ० । अकोः-षष्ठ्य० । अनञ्स-मासे-सप्त० । हलि-सप्तम्यन्तम् ।) अककारयोरेतत्तदोर्यः सुस्तस्य लोपो हलि, नतु नञ्समासे ॥

ककार (सू० १३४१)से रहित जो एतत् और तत्-शब्दका सकार तिसका लोप हो हल् परे रहते, परन्तु-नञ्समास (सू० १०२४) में नहीं। जैसे-एषस्+विष्णुः-एष विष्णुः। सस्+शम्भुः-स शम्भुः॥ अकोः किम् ॥ ककार रहित कहनेसे यहां न हुआ। जैसे-एषकस्+रुद्रः। यहां (सू० १२५) से रु और (सू० १२७) से 'उ' और (सू० ३३) से ओ गुण होकर। एषको रुद्रः। ऐसा सिद्ध हुआ॥ अनञ्समासे किम् ॥ 'नञ्समासकू छोडकर' ऐसा कहनेसे यहांभी लोप नहीं हुआ-असस्+शिवः। यहां (सू० १२५) से रु (सू० ११३) से रकार-की विसर्ग होकर। असः शिवः। सिद्ध रूप बना, क्योंकि इस पूर्वोक्त रूपमें नञ्समास है॥ हलि किम्॥ यदि हल् परे होय तौ ऐसा कहनेसे यहांभी लोप न हुआ-एषस्+अत्र। यहां (सू० १२५) से रु (सू० १२६) से उ (सू० ३३) से गुण और (सू० ९६) से अकारका पूर्वरूप होकर। एषोऽत्र। रूप बना, क्योंकि यहां हल् परे नहीं है॥

१३५ सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम्। ६। १। १३४॥

(सः-षष्ठ्य० । अचि-सप्त० । लोपे-सप्त० । चेत्-अव्य० । पादपूर-णम्-प्रथमा० ॥) स इत्यस्य सोर्लोपः स्यादचि पादश्चेल्लोपे सत्येव पूर्य्येत ॥

यदि अच् परे हो और लोपके करनेहीसे पादकी पूर्णता हो तौ 'सस्' शब्दके सकारका लोप हो। जैसे-सस्+इमामविड्ढि प्रभृतिम्। यहां सकारका लोप बिना किये अनुष्टुप् श्लोकके पादकी पूर्त्ति होती नहीं है. इस कारण सकारका लोप करके (सू० ३३) से 'ए' गुण होकर। सेमामविड्ढि प्रभृतिम्। रूप सिद्ध हुआ। ऐसेही-सस्+ए-

ष दांशरथी रामः । यहां लोप होकर (सू० ३९) से ऐ-वृद्धि हो । सैष. दाशरथी रामः । ऐसे रूपकी सिद्धि हुई ॥

॥ इति विसर्गसन्धिः । इति पंचसन्धिः ॥

अथ षड्लिङ्गम् ।

अजन्तपुल्लिङ्गम् ।

१३६ अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् । १ । २ । ४५ ॥

(अर्थवत्-प्रथ० । अधातुः-प्रथ० । अप्रत्ययः-प्रथ० । प्रातिपदिकम्-प्रथमान्तम् ॥) धातुम्प्रत्ययम्प्रत्ययान्त च वर्जयित्वाऽर्थवच्छब्दस्वरूप प्रातिपदिकसञ्ज्ञ स्यात् ॥

धातु (सू०४६) प्रत्यय (सू०४०) प्रत्ययान्त भिन्न जो अर्थवाला शब्दस्वरूप सो प्रातिपदिक-संज्ञावाला हो ॥

१३७ कृत्तद्धितसमासाश्च । १ । २ । ४६ ॥

(कृत्तद्धितसमासाः-प्रथ० । च-अव्ययपदम् ॥) कृत्तद्धितान्तौ समासाश्च तथा ॥

कृत् (सू०३३२) प्रत्ययान्त, और तद्धितप्रत्ययान्त (सू०१०८३) समास (सू०९७५) कीभी प्रातिपदिक-संज्ञा होय ॥

१३८ स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसाम्ङ्योस्सुप् । ४ । १ । २ ॥

(प्रथमान्तम् ।) सु औ जस्, इति प्रथमा । अम् औट् शस्, इति द्वितीया । टा भ्याम् भिस्, इति तृतीया । ङे भ्याम् भ्यस्, इति चतुर्थी । ङसि भ्याम् भ्यस्, इति पचमी । ङस् ओस् आम्, इति षष्ठी । ङि ओस् सुप्, इति सप्तमी ॥

इसीको सुप् (प्रत्याहार) कहते हैं ॥

१ सैष दाशरथी रामः सैष भीमो महाबलः । सैष कर्णो महात्यागी सैष राजा युधिष्ठिरः ॥

१३९ ङ्याप्प्रातिपदिकात् । ४ । १ । १ ॥

(पचम्यन्तम् ॥)

१४० प्रत्ययः । ३ । १ । १ ॥

(प्रथमान्तम् ।)

१४१ परश्च । ३ । १ । २ ॥

(परः-प्रथमान्तम् । च-अव्ययः ।)

(सू० १३९ । १४० । १४१) येह तीनों अधिकारसूत्र हैं । प्रत्यय परेही होता है ॥

इत्यधिकृत्य। ङ्यन्तादाबन्तात्प्रातिपदिकाच्च परे स्वादयः प्रत्ययाः स्युः॥

ङ्यन्त (ङीप्-ङीष्-वा-ङीन् , जिसके अन्तमें हो) आबन्त (टाप्-डाप्-वा-चाप् , जिसके अन्तमें हो) और प्रातिपदिकसे परे स्वादिक प्रत्यय हों ॥

१४२ सुपः । १ । ४ । १०३ ॥

(सुपः-षष्ठ्यन्तम् ॥) सुपस्त्रीणि त्रीणि वचनान्येकश एकवचनद्विवचन-बहुवचनसंज्ञानि स्युः ॥

सुप्-प्रत्याहारके प्रथमादिक तीन २ विभाग क्रमसे एकवचन द्विवचन बहुवचन संज्ञक हों । यथा-

(विभक्तीनां वचनज्ञापकयन्त्रमिदम्)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा-	सु	औ	जस
द्वितीया-	अम	औट	शस
तृतीया-	टा	भ्याम्	भिस्
चतुर्थी-	ङे	भ्याम्	भ्यस
पञ्चमी-	ङसि	भ्याम्	भ्यस्
षष्ठी-	ङस	ओस	आम्
सप्तमी-	ङि	ओस	सुप्

१४३ द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने । १ । ४ । २२ ॥

(द्व्येकयोः-सप्त०। द्विवचनैकवचने-प्रथमान्तम्॥) द्वित्वैकत्वयोरेते स्तः॥

वक्ताकी द्विवचन और एकवचनकी इच्छामें क्रमसे द्विवचन और एकवचन हों॥

१४४ बहुषु बहुवचनम्। १। ४। २१॥

(बहुषु-सप्तम्यन्तम्। बहुवचनम्-प्रथमान्तम्॥) बहुत्वविवक्षायाम्बहुवचन स्यात्॥

जब बहुवचन बोलनेकी विवक्षा (इच्छा) हो तब बहुवचन हो॥

१४५ विरामोऽवसानम्। १। ४। ११०॥

(विरामः-षष्ठ्यन्त०। अवसानम्-प्रथमा०॥) वर्णानामभावोऽवसानसंज्ञः स्यात्। रुत्वविसर्गौ॥

वर्णोंके अभावका नाम अवसान है। रुकी विसर्ग हों। यथा—

'राम' शब्दकी *प्रातिपदिक संज्ञा करके (सू० १३९) से प्रथमादि सातो विभक्ति (सुप्-प्रत्याहार) प्राप्त हुईं, फिर (सू० १४३) के अनुसार यथाक्रमसे प्रथमाका एकवचन-सु आकर। राम+सु। हुआ, तब (सू० ३४। १२५। ११३) के अनुसार यथाक्रमसे कार्य होकर। रामः। सिद्ध हुआ॥

१४६ सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ। १। २। ६४॥

(सरूपाणाम्-षष्ठ्य०। एकशेषः-प्रथ०। एकविभक्तौ-सप्तम्यन्तम्॥) एकविभक्तौ यानि सरूपाण्येव दृष्टानि †तेषामेक एव शिष्यते॥

एक विभक्तिके पूर्व जितने एकसे शब्दस्वरूप दीखे, उनमेसे एकही शेष (बाकी) रहता है, औरोंका लोप हो जाय। जैसे (सू० १४३)-

* संपूर्ण शब्दोंमे दो पक्ष होते हैं तिनमेंसे एक तो व्युत्पत्तिपक्ष, दूसरा अव्युत्पत्तिपक्ष, जो यदि राम शब्दमे 'रमु क्रीडायाम्' धातुसे 'घञ' प्रत्यय करके "रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति रामः" ऐसी व्युत्पत्ति करके व्युत्पत्तिपक्ष माना जाय तो (सू० १३७) प्रातिपदिक संज्ञा होती है। यदि साधारणही राम किसीका नाम मात्रही समझा जाय तो (सू० १३६) से प्रातिपदिक संज्ञा होती है। यही क्रम सम्पूर्ण शब्दोंमे जानना चाहिये। इति॥ † अन्ये लुप्यन्ते योऽवशिष्यते स लुप्यमानार्थाभिधायी॥

के अनुसार द्विवचनकी विवक्षामें । राम राम+औ । होनेपर एक रा-
मका लोप होकर । राम+औ । रहा, ऐसी स्थिति होनेपर–

१४७ प्रथमयोः पूर्वसवर्णः । ६ । १ । १०२ ॥

(प्रथमयोः-सप्त० । पूर्वसवर्णः-प्रथ० ॥) अकः प्रथमाद्वितीययोरचि पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेशः स्यात् ॥

जब अक्से प्रथमा वा द्वितीयासम्बन्धी अच् परे होय तौ दोनों-के स्थानमें पूर्वका सवर्णी दीर्घ एकादेश हो । राम+औ । में 'म' सम्बन्धी 'अ' को दीर्घ प्राप्त होनेपर–

१४८ नादिचि । ६ । १ । १४० ॥

(न-निषेधार्थकम् अव्ययपदम् । आत् -पचम्यन्तम् । इचि-सप्तम्य० ॥) आदिचि न पूर्वसवर्णदीर्घः ॥

यदि अवर्णसे इच् परे हो तौ पूर्वसवर्णदीर्घ नहीं हो । राम+औ । इस प्रयोगमें दीर्घका निषेध होकर (सू० ३९) से वृद्धि हो गई, तौ । रामौ । सिद्ध हो गया ॥

राम-शब्दके बहुवचनकी अपेक्षामें (सू० १४४) के अनुसार जस् लानेपर बहुत राम हुआ, फिर (सू० १४६) से एकही शेष रहा, तौ । राम+जस् । ऐसा हुआ ॥

१४९ चुटू । १ । ३ । ७ ॥

(प्रथमान्तम् ॥) प्रत्ययाद्यौ चुटू इतौ स्तः ॥

प्रत्ययकी आदिके चवर्ग और टवर्गकी इत्संज्ञा हो । राम+अस् । ऐसा होनेपर (अस्) के 'स' का लोप प्राप्त हुआ– ॥

१५० विभक्तिश्च । १ । ४ । १०४ ॥

(विभक्तिः-प्रथ० । च-अव्यय० ॥) सुप्तिङौ विभक्तिसञ्ज्ञौ स्तः ॥

सुप् (सू० १३८) और तिङ् (०सू ४२१) विभक्ति-संज्ञक हो ॥

१५१ न विभक्तौ तुस्माः । १ । ३ । ४ ॥

(न-निषेधा० अ०। विभक्तौ-सप्त०। तुस्माः-प्रथ०॥) विभक्तिस्थास्तवर्गसमा इतो न स्युः॥

विभक्तिके तवर्ग तथा सकार और मकारकी इत्संज्ञा नहीं होवै। राम+अस्। में 'स' की इत्संज्ञाका निषेध होकर (सू० १४७) से पूर्वसवर्णदीर्घ-एकादेश होकर (सू०१२५।११३) के कार्य होकर। रामाः। हे राम+सु॥

१५२ एकवचनं सम्बुद्धिः। २। ३। ४९॥

(एकवचनम्-प्रथ०। सम्बुद्धिः-प्रथमान्तम्॥) सम्बोधने प्रथमाया एकवचनं सम्बुद्धिसंज्ञं स्यात्॥

सम्बोधनके विषय प्रथमा विभक्तिका एकवचन (सु) सम्बुद्धिसंज्ञक हो॥

१५३ यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम्। १।४।१३॥

(यस्मात्-पचम्यन्तम्। प्रत्ययविधिः-प्रथ०। *तदादिः-प्रथ०। प्रत्यये-सप्त०। अगम्-प्रथमान्तम्॥) यः प्रत्ययो यस्मात्क्रियते तदादि शब्दस्वरूपं तस्मिन्प्रत्यये परेऽङ्गसंज्ञं स्यात्॥

जो प्रत्यय जिस प्रकृति (शब्द) से किया जाय वोह प्रकृति जिसकेभी पूर्व हो, उस समुदायशब्दस्वरूपकी उसी प्रत्ययके परे रहते अंग संज्ञा है॥

१५४ एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः। ६। १। ६९॥

(एङ्ह्रस्वात-पच०। सम्बुद्धेः-षष्ठ्य०॥)एङन्ताद् ह्रस्वान्ताच्चाङ्गाद्धल्लुप्यते सम्बुद्धेश्चेत्॥

एङन्त और ह्रस्वान्त अङ्गसे परे हल्-अक्षरका लोप हो, यदि वोह हल् सम्बुद्धिका होय तौ। हे राम+सु। यहां (सू० १५२) से सम्बुद्धिसंज्ञा करके (सू० १५३) से अंगसंज्ञा हुई, फिर (सू०१५४) से 'स' का लोप हो गया तौ। हे राम। हे रामौ। हे रामाः॥

१५५ अमि पूर्वः। ६। १। १०७॥

---

* भवामि भविष्यामीत्यादौ विकरणविशिष्टस्याङ्गसंज्ञार्थं तदादिग्रहणमिति॥

(अमि-सप्त० । पूर्वः-प्रथमा० ॥) अकोऽम्यचि परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात् ॥

अक्-प्रत्याहारसे यदि अम्सम्बन्धी अच् परे होय तौ पूर्व-परके स्थानमें दीर्घ एकादेश हो । राम+अम्-रामम् । राम+औ-रामौ । इसकी साधनका प्रथमकीही तरह है ॥

१५६ लशक्वतद्धिते । १ । ३ । ८ ॥

(लशकु-प्रथमा० । अतद्धिते-सप्तम्यन्तम् ॥) तद्धितवर्जप्रत्ययाद्या लशकवर्गा इतः स्युः॥

तद्धितभिन्न प्रत्ययकी आदिके ल-श-कवर्ग इत्संज्ञावाले हों । राम +शस् । में शस् प्रत्ययके आदिके 'श' की इत्संज्ञा होकर (सू० १३७) से पूर्वसवर्णदीर्घ होकर । रामास् । रहा ॥

१५७ तस्माच्छसो नः पुंसि । ६ । १ । १०३ ॥

(तस्मात्-पचम्य० । शसः-षष्ठ्य० । नः-प्रथ० । पुसि-सप्तम्यन्तम् ॥) पूर्वसवर्णदीर्घात्परो यः शसस्सस्तस्य नः स्यात् पुंसि ॥

पुल्लिङ्गमें-यदि पूर्वसवर्णदीर्घसे परे शस्का सकार हो तौ उसकू नकार हो जाय। रामास्-रामान् ॥

१५८ अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि । ८ । ४ । २ ॥

(अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवाये-सप्त० । अपि-अव्ययपदम् ॥) अट् कवर्ग पवर्ग आङ् नुम्, एतैर्व्यस्तैर्यथासम्भव मिलितैश्च व्यवधानेऽपि रषाभ्याम्परस्य नस्यः णः समानपदे ॥

अट्-प्रत्याहार, कवर्ग, पवर्ग, आङ् उपसर्ग, नुम्, यह पृथक् २ हों, अथवा यथासम्भव मिले हों, तौ तुल्यपदमें रकार या षकारसे परे जो नकार उसको णकार हो जाय । रामान्-में राकारमें आकार अट् है, और मकार पवर्ग है,तौ इसके क्रमसे पूर्वोक्तप्रयोगमें णकारकी प्राप्ति हुई ॥

१५९ पदान्तस्य । ८ । ४ । ३७ ॥

(षष्ठ्यन्तम् ॥) नस्य णो न ॥

पदान्तके नकू णकार न हो । रामान् । राम+टा ॥

१६० टाङसिङसामिनात्स्याः । ७ । १ । १२ ॥

(टाङसिङसाम्-षष्ठ्य० । इनात्स्याः-प्रथ० ॥) अदन्ताट्टादीनां क्रमादिनादयः स्युः ॥

अदन्त-शब्दसे परे टा-ङसि और ङसकू क्रमसे इन-आत् और स्य आदेश हो । राम+इन (सू० ३३ । १५८) से । रामेण । राम+स्याम् ॥

१६१ सुपि च । ७ । ३ । १०२ ॥

(सुपि-सप्त० । च-अव्ययपदम् ॥) यञादौ सुप्यतोऽगस्य दीर्घः ॥

यञ्-प्रत्याहारके वर्णपूर्ववाले सुप् परे रहते अदन्त अंगकू दीर्घ हो । रामाभ्याम् । राम+भिस् ॥

१६२ अतो भिस ऐस् । ७ । १ । ९ ॥

(अतः-पञ्च० । भिसः-षष्ठ्य० । ऐस्-प्रथ० ॥)

अदन्त अंगसे परे भिस्कू ऐस् आदेश हो । राम+ऐस् (सू०५८ । ३९ ।१२५ । ३४ । ११३) के अनुसार । रामैः । राम+ ङे ॥

१६३ ङेर्यः । ७ । १ । १३ ॥

(ङेः-षष्ठ्य० । यः-प्रथमान्तम् ॥) अतोऽगात्परस्य ङेर्यादेशः स्यात् ॥

अदन्त अंगसे परे जो ङे हो तो उसको य आदेश हो। राम+य॥

१६४ स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ । १ । १ । ५६ ॥

(स्थानिवत्-तद्धितांतमव्य० । आदेशः-प्र० । अनल्विधौ-सप्तम्यन्तम् ॥) आदेशः स्थानिवत्स्यान्नतु स्थान्यलाश्रयविधौ ॥

आदेश स्थानीके सदृश हो जाय, यदि स्थानीके अवयव अथवा तद्रूप अल्की विधिमें न हो ॥ इति स्थानिवत्त्वात्सुपि चेति दीर्घः ॥ इस सूत्रसे यकारकू स्थानी (ङे) के तुल्य सुप् मानकर 'सुपि च' से दीर्घ हुआ । रामाय । रामाभ्याम् । राम+भ्यस् ॥

* अत्र 'सुपि च' इति दीर्घे कर्तव्ये 'सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्य' इति परिभाषा न हि प्रवर्तते, 'कष्टाय क्रमणे' इत्यादिनिर्देशात् ।

१६५ बहुवचने झल्येत् । ७ । ३ । १०३ ॥

(बहुवचने-सप्त० । झलि-सप्त० । एत्-प्रथमान्तम् ॥) झलादौ बहुवचने सुप्यतोऽङ्गस्यैकारः ॥

झल् जिसके पहले हो ऐसे बहुवचन-सुप्के परे रहते अदन्त अंगको एकार हो । रामे+भ्यस्-(मू०१२५ । ११३) के अनुसार । रामेभ्यः ॥ सुपि किम् ॥ 'सुप परे रहते' ऐसे कहनेसे । पच+ध्वम्-पचध्वम् । इसमें एकार न हुआ, कारण कि-' ध्वम् ' सुप् परे नहीं है, किन्तु तिङ् है । राम+ङसि । यहां (मू० १६०) से । राम+आत् । (मू० ५३)रामात् । यहां (मू० ८३) से तकारकू दकार नित्य प्राप्त था, तौ-

१६६ वावसाने । ८ । ४ । ५६ ॥

(वा-विकल्पार्थकमव्ययपदम् । अवसाने-सप्त० ॥)अवसाने झलां चरो वा स्युः ॥

अवसानके विषय झलोंकू विकल्पसे चर् हों । रामात्, रामाद् । (मू० १६१) रामाभ्याम् । (मू० १६५) रामेभ्यः । राम+ङस् । (मू० १६०) रामस्य । राम+ओस् ॥

१६७ ओसि च । ७ । ३ । १०४ ॥

(ओसि-सप्त० । च-अव्ययपदम् ॥) अतोऽङ्गस्यैकारः स्यादोसि ॥

यदि ओस्-प्रत्यय परे हो तौ अदन्त अंगकू एकार हो जाय । रामे+ओस् । (मू० २७) के अनुसार । रामयोस् । (मू० १२५ । ११३) से । रामयोः । राम+आम् ॥

१६८ ह्रस्वनद्यापो नुट् । ७ । १ । ५४ ॥

(ह्रस्वनद्यापः-पञ्च० । नुट्-प्रथमान्तम् ॥) ह्रस्वान्तान्नद्यन्तादाबन्ताच्चाङ्गात्परस्यामो नुडागमः ॥

ह्रस्वान्त तथा *नद्यन्त और आबन्त अंगसे परे जो आम् उसको नुट्का आगम हो । (मू० १०४) के अनुसार । राम+नुट्+आम् ।

* नदी सञ्ज्ञा स्त्रीलिंगमे आवेगी ।

हुआ, फिर (सू० ३ । ३४) से उद्‌का लोप होकर । राम+नाम् । रहा, फिर–

१६९ नामि । ६ । ४ । ३ ॥

(सप्तम्यन्तम् ॥) अजन्तांगस्य दीर्घः स्यान्नामि ॥ नाम्नि परे

यदि नाम् परे हो तो अजन्त अंगकू दीर्घ हो । रामा+नाम् । (सू० १५८) के अनुसार । रामाणाम् । राम+ङि । (सू० १५६) राम+इ । (सू० ३३) रामे । राम+ओस् । (सू० १६७) रामयोः । राम+सुप् ॥ एत्वे कृते ॥ पूर्वोक्त रूपमें (सू० १६५) से एकार करनेपर । रामे+सुप् । हुआ, तब–

१७० आदेशप्रत्यययोः । ८ । ३ । ५९ ॥

(सप्तम्यन्तम् ॥) इण्कुभ्याम्परस्यापदान्तस्यादेशस्य प्रत्ययावयवस्य च यस्सस्तस्य मूर्द्धन्यादेशः ॥

*इण्-प्रत्याहार अथवा कवर्गसे परे जो अपदान्तके आदेशका–वा–प्रत्ययके अवयवका जो सकार उसकू मूर्द्धन्य आदेश हो ॥ ईषद्विवृतस्य सस्य तादृश एव षः ॥ ईषद्विवृत प्रयत्नवाले सकारकू तत्तुल्य प्रयत्नवाला मूर्द्धन्यादेशमेंसे षकारही होता है । रामेषु ॥ एवं कृष्णादयोप्यदन्ताः ॥ यह सामान्य नियम है कि, इसी राम-शब्द-की सदृश कृष्ण आदि अदन्त शब्दोंके रूप होते हैं ॥

१७१ सर्वादीनि सर्वनामानि । १ । १ । २७ ॥

(सर्वादीनि–प्रथमा० । सर्वनामानि–प्रथमान्तम् ॥) सर्वादीनि शब्दस्वरूपाणि सर्वनामसञ्ज्ञानि स्युः । सर्व । विश्व । उभ । उभय । डतर । डतम । अन्य । अन्यतर । इतर । त्वत् । त्व । नेम । सम । सिम॥पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसञ्ज्ञायाम् ॥ स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् ॥ अन्तर बहिर्योगोपसंव्यानयोः ॥ त्यद् । तद् । यद् । एतद् । इदम् । अदस् । एक । द्वि । युष्मद् । अस्मद् । भवतु । किम् । इति ॥

* इण्प्रत्याहार लण्के णकारतक लिया जाता है, इसका प्रमाण (सू० १३२) की संस्कृत टिप्पणीसे ज्ञात होता है ॥

सर्वादिगणपठित शब्दस्वरूप सर्वनामसंज्ञक हों । वोह सर्वादिगण पठित शब्द यह हैं–सर्व (सम्पूर्ण), विश्व (सम्पूर्ण,-संसार).. उभ (दो), उभय (दो अवयववाला), डतर, डतम , यह दोनों प्रत्यय जिसके अन्तमें हो–यथा 'कतर–कतम' । अन्य (दूसरा), अन्यतर (दोमें एक), इतर (भिन्न), त्वत्–त्व (दूसरा), नेम (आधा), सम (सम्पूर्ण), सिम (सम्पूर्ण), पूर्व १, पर २, अवर ३, दक्षिण ४, उत्तर ५, अपर ६, अधर ७, यह सात शब्द संज्ञाभिन्न और व्यवस्थावाची हों तौ सर्वनामसंज्ञक जानने । 'स्व' इस शब्दका ज्ञाति और धनसे अन्य अर्थात्–आत्मा-वा-आत्मीय अर्थ हो तौ सर्वनामसंज्ञा कहती । 'अन्तर' इस शब्दका यदि बाह्य अथवा परिधान अर्थ हो तौ सर्वनामसंज्ञा होती है । त्यद् (वोह),तद् (वोह), यद् (जो),एतद् (यह), इदम् (यह),अदस् (यह वोह),एक (एक), द्वि (दो), युष्मद् (तू),अस्मद् (मैं),भवतु (आप), किम् (क्या, कौन) ॥ इति ॥ इनको सर्वादिगण कहते हैं ॥ सर्वः । सर्वौ । सर्व+जस् ॥

१७२ जसः शी । ७ । १ । १७ ॥

(जसः–षष्ठ्य० । शी–प्रथमान्तम् ॥) अदन्तात्सर्वनाम्नो जसः शी स्यात् ॥

अदन्त सर्वनामसे परे जस्को शी आदेश हो ॥ अनेकाल्त्वात्सर्वादेशः ॥ शी आदेश अनेकाल् है इस कारण सम्पूर्ण जस्को होता है । सर्व+शी । (सू० १५६ । ३३) के अनुसार । सर्वे । सर्वम् । सर्वौ । सर्वान् । सर्वेण । सर्वाभ्याम् । सर्वैः । सर्व+ङे ॥

१७३ सर्वनाम्नः स्मै । ७ । १ । १४ ॥

(सर्वनाम्नः–पंच० । स्मै–प्रथमान्तम् ॥) अतः सर्वनाम्नो ङेः स्मै स्यात्॥

अदन्त सर्वनामसे परे ङेको स्मै आदेश हो । सर्व+स्मै–सर्वस्मै । सर्वाभ्याम् । सर्वेभ्यः । सर्व+ङसि ॥

१७४ ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ । ७ । १ । १५ ॥

(ङसिङ्योः–षष्ठ्य० । स्मात्स्मिनौ–प्रथ० ॥) अतः सर्वनाम्नो ङिसिङ्योः स्मात्स्मिनौ स्तः ॥

अदन्त सर्वनामसे परे ङसि और ङिकू क्रमसे स्मात्–और स्मिन् हों । सर्वस्मात् (द्) । सर्वाभ्याम् । सर्वेभ्यः । सर्वस्य । सर्वयोः । सर्व+आम् ॥

१७५ आमि सर्वनाम्नः सुट् । ७ । १ । ५२ ॥

(आमि–सप्तम्य० । सर्वनाम्नः–पच० । सुट्–प्रथ० ।) अवर्णान्तात्परस्य सर्वनाम्नो विहितस्यामः सुडागमः ॥

अवर्णान्तसे परे और सर्वनामसे विधान किये हुए आमकू सुट्का आगम हो । सर्व+सुट्+आम् । (मू० ३ । ३४) से । सर्व+साम् ॥ एत्वषत्वे ॥ (मू० १६५) से एत्व, और (मू० १७०) से षत्व करके । सर्वेषाम् । सर्व+ङि । (मू० १७४) सर्वस्मिन् । सर्वयोः । सर्वेषु । हे सर्व । हे सर्वौ । हे सर्वे ॥

एव विश्वादयोऽप्यदन्ताः ॥

इसी तरह विश्वादिक अदन्त सर्वनामसंज्ञक शब्दोंके रूप होते हैं । अब विशेषता कहते हैं ॥

उभशब्दो नित्य द्विवचनान्तः ॥

सर्वादिगणमें पठित उभ-शब्द नित्य द्विवचनान्त है । उभौ २ । उभाभ्याम् ३ । उभयोः २ ॥

तस्येह पाठोऽकजर्थः ॥

उभ-शब्दका पाठ सर्वादिगणमें अकच्-प्रत्ययके अर्थ है । अर्थात्–' उभ-शब्दमें कोई सर्वादिगणकृत कार्य तो होता नहीं, फिर उभ-शब्दको सर्वादिगणमें क्यों पढा ? ' इस शंकाको दूर करनेको कहते हैं कि–(मू० १३४४) से अव्यय और सर्वनामकी टिसे पूर्व अकच्–प्रत्यय करके (उभकौ) रूप बनानेके अर्थ है, यदि गणमें पाठ न रखते तो अकच् नहीं होता ॥

डतरडतमौ प्रत्ययौ । प्रत्ययग्रहणे *तदन्तग्रहणमिति तदन्ता ग्राह्याः ॥

डतर और डतम प्रत्यय हैं । प्रत्ययके ग्रहणमें तदन्त अर्थात्–

* कतर, कतम, यतर, यतम, ततर, ततम, एकतर, एकतम, एते शब्दा ग्राह्या ।

जिसके अन्तमें प्रत्यय होते हैं उसका ग्रहण होता है, इसके अनुसार डतर और डतम जिसके अन्तमें हो उस शब्दको सर्वादिगणमें जानना ॥

नेम इत्यर्द्धे ॥

नेम यह शब्द यदि आधेका वाची हो तौ सर्वनामसंज्ञक हो ॥

समः सर्वपर्यायः, तुल्यपर्यायस्तु नेह गृह्यते, यथासख्यमनुदेशः समानामिति ज्ञापकात् ॥

सम-शब्द सम्पूर्णका वाची हो तौ सर्वनामसंज्ञक होता है, बराबरका वाची सर्वादिगणमें नहीं लिया जाता, कारण कि-(मू० २८) में सूत्रकारने-" समानाम् " पाठ किया है, यदि बराबरका वाचीभी सर्वादिगणमें होता तौ-" समेषाम् "रूप पढना था ॥ पूर्वः। पूर्वौ। पूर्व+जस् ॥

१७६ पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम्। १। १। ३४ ॥

(पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि-प्रथ०। व्यवस्थायाम्-सप्तम्य०। असज्ञायाम्-सप्तम्य० ॥) एतेषां व्यवस्थायामसज्ञायां सर्वनामसज्ञा गणसूत्रात्सर्वत्रं या प्राप्ता सा जसि वा ॥

पूर्व-(पहले, पूर्व दिशा, पूर्वदिशामें होनेवाला), पर-(दिशा. परदिशावर्ती), अवर-(पश्चात्दिशा, पश्चात्दिशामें रहनेवाला), दक्षिण-(दिशा, दक्षिणदिशामें रहनेवाला), उत्तर-(दूसरा, उत्तरदिशा, उत्तरदिशावर्ती), अपर-और, अधर-(नीचे), इन पूर्वादि-शब्दोंकी गणसूत्रसे सर्वत्र जो सर्वनामसंज्ञा प्राप्त है सो जस् परे रहते विकल्पसे हो, यदि यह शब्द व्यवस्था और असंज्ञावाचक हों तौ। पूर्व+शी। (मू० १५६। ३३) पूर्वे। अथवा। पूर्व+जस् (मू० १४०। १४७। १२५। ११३) के अनुसार। पूर्वाः ॥

असज्ञायां किम्। उत्तराः कुरवः ॥

असंज्ञावाचक कहनेसे पूर्वोक्त उदाहरणमें वैकल्पिक सर्वनामसंज्ञा

होकर दो रूप नहीं बने, क्योंकि–यहां उत्तर यह कुरुदेशकी संज्ञा है॥

*स्वाभिधेयापेक्षावधिनियमो व्यवस्था ॥

पूर्वादिशब्दोंके पूर्वदिशा आदि अभीष्ट अवधिके नियमोंको व्य-व स्था कहते हैं ॥ व्यवस्थायां किम् । दक्षिणाः गाथकाः । कुशला इ-त्यर्थः ॥ व्यवस्थामें कहनेसे पूर्वोक्त उदाहरणमेंभी दो रूप न बने, यहां व्यवस्था इस कारण नहीं है कि–दक्षिण-शब्दका अर्थ दिशावाची नहीं है, यहां यह अर्थ है कि–चतुर गवैये ॥ पूर्वम् । पूर्वौ । पूर्वान् । पूर्वेण । पूर्वाभ्याम् । पूर्वैः । पूर्वस्मै । पूर्वाभ्याम् । पूर्वेभ्यः । पूर्व+ङसि ॥

१७७ पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा । ७ । १ । १६ ॥

(पूर्वादिभ्यः–पच० । नवभ्यः–पच० । वा–विकल्पार्थकमव्य० ॥) एभ्यो ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ वा स्तः ॥

पूर्व आदिक नव शब्दोंसे परे ङसि और ङिकू क्रमपूर्वक विकल्पसे स्मात् और स्मिन् हों । पूर्वस्मात् (द्), पूर्वात् (द्)। पूर्वाभ्याम् । पूर्वेभ्यः । पूर्वस्य । पूर्वयोः । पूर्वेषाम् । पूर्वस्मिन्, पूर्वे । पूर्वयोः । पू-र्वेषु ॥ एवम्परादीनाम् । शेषं सर्ववत् ॥ इसी प्रकार पर आदिकभी शब्द जानने । शेष रूप सर्वकी सदृश हैं ॥

१७८ स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् । १ । १ । ३५ ॥

(स्वम्–प्रथमा० । अज्ञातिधनाख्यायाम्–सप्तम्यन्तम् ॥) ज्ञातिधना-न्यवाचिनः स्वशब्दस्य प्राप्ता संज्ञा जसि वा ॥

ज्ञाति, धन, आत्मा, आत्मीय, स्व-शब्दके यह चार अर्थ होते हैं, इनमें ज्ञाति (बन्धु) और धनसे अन्यवाची अर्थात्–आत्मा आत्मीय अर्थवाची स्व-शब्दकी जस् परे रहते विकल्पसे सर्वनामसंज्ञा हो । स्व+जस्–(सू०१७२ । ३३) स्वे । वा (सू० १४९ । १४७ । १२५ । ३४ । ११३) स्वाः ॥ आत्मीयाः, आत्मान इति वा ॥

* स्वस्य पूर्वादिशब्दस्याभिधेयेनापेक्ष्यमाणश्चावधेर्नियमोऽवधिनियम, स्वाभिधेयापेक्ष-श्चासाववधिनियमश्चेति विग्रह ॥

इनका यह अर्थ हुआ कि–आप अथवा अपने ॥ ज्ञातिधनवाचिनस्तु स्वाः । ज्ञातयोऽर्थो वा ॥ ज्ञाति और धनवाची स्व-शब्दका । स्वाः। ही रूप बनता है, अर्थात्–जाति वा धन ॥

१७९ अन्तरम्बहिर्योगोपसंव्यानयोः । १ । १ । ३६ ॥

(अन्तरम्–प्रथ० । बहिर्योगोपसव्यानयोः–सप्त० ॥) बाह्ये परिधानीये चार्थेऽन्तरशब्दस्य प्राप्ता सञ्ज्ञा जसि वा ॥

बाहर और वस्त्र पहरनेके अर्थमें अन्तर-शब्दकी जस् परे रहते विकल्पसे सर्वनामसंज्ञा हो ॥ अन्तरे, अन्तराः वा गृहाः–बाह्या इत्यर्थः ॥ अर्थात्–बाहरके घर ॥ अन्तरे, अन्तराः वा शाटिकाः, परिधानीया इत्यर्थः ॥ अर्थात्–पहरने लायक शाड़ी ॥

१८० प्रथमचरमतयाल्पार्धकतिपयनेमाश्च । १ । ८ । ३३ ॥

(प्रथमचरमतयाल्पार्धकतिपयनेमाः–प्र० । च–अव्य० ॥) एते जस्युक्तसञ्ज्ञा वा स्युः ॥

प्रथम, चरम, तय–प्रत्ययान्त, अल्प, अर्द्ध, कतिपय, नेम, इन शब्दोंकी जस् परे रहते विकल्पसे सर्वनामसंज्ञा हो । प्रथमे, प्रथमाः । तयः प्रत्ययः । तयप्रत्ययान्त, जैसे–द्वितीये, द्वितीयाः॥ शेषं रामवत् ॥ इस शब्दके बाकी रूप रामकी तुल्य होते है । नेमे, नेमाः ॥ शेषं सर्ववत् ॥ इसके शेष रूप सर्वकी सदृश होते है ॥

१८१ (तीयस्य ङित्सु वा) ॥

ङित् अर्थात्–चतुर्थी पंचमी षष्ठी सप्तमीके एकवचनके परे रहते तीय-प्रत्ययान्त (सू० १२८४ । १२८५) शब्दकी विकल्पसे सर्वनाम संज्ञा हो । द्वितीय+ङे–(सू० १७३) के अनुसार । द्वितीयस्मै । अथवा (सू० १६३ । १६१) के अनुसार । द्वितीयायेत्यादिः । इत्यादिक पंचमीआदिक विभक्तियोंमेंभी रूप जानने ॥ एवं तृतीयः ॥ इसीप्रकार तृतीयशब्दकेभी रूप होते हैं । निर्जरः । निर्जर+औ ॥

१ षष्ठीके एकवचनमें सर्वनामको कोई विशेष कार्य होता नहीं, इस कारण 'द्वितीयस्य' इत्यादिकही रूप होते हैं ॥

१८२ जराया जरसन्यतरस्याम्।७।२।१०१॥

(जरायाः-षष्ठ्य० । जरस्-प्रथ० । अन्यतरस्याम्-विकल्पार्थक०॥)
जराशब्दस्य जरसादेशो वा स्यादजादौ विभक्तौ ॥

यदि अजादिविभक्ति परे हो तौ जरा-शब्दकू विकल्पसे जरस् आदेश हो । यदि कहो कि 'निर्' पूर्ववाले 'जर' कू आदेश नहीं होना चाहिये, केवल जहां 'जर' शब्द हो वहांही आदेश हो तौ ॥

पदांगाधिकारे तस्य तदन्तस्य च ॥

अष्टाध्यायीके क्रममें पद और अंगके अधिकारमें जो कार्य होता है सो उसकोभी हो ता है, और वोह जिसके अन्तमें हो उसकोभी होता है, अर्थात्—जहां जरा-शब्द निर्के अन्तमें है तौ जरस् हो। यदि कहो कि—आदेशभी निर्सहितकूही होना चाहिये तौ ॥

*निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति ॥

सूत्रमें निर्देश किये हुए शब्दकूही आदेश होते हैं, अर्थात्—सूत्र (सू०१५२) में जरा-शब्दकू जरस्-निर्देश किया है इस कारण निर्कू छोडकर आदेश होता है । यदि कहो कि—यहां जरा-शब्द नहीं है, किन्तु—(निर्) ' जर ' शब्द है, तौ—

एकदेशविकृतमनन्यवदिति जरशब्दस्य जरस् ॥

एकदेशके विकारकू प्राप्त होनेसे औरकी सदृश नहीं होता इसकारण जर-शब्दकू जरस् आदेश हुआ । निर्जरसौ, निर्जरौ । निर्जरसः, †निर्जराः । इत्यादि ॥ पक्षे हलादौ च रामवत् ॥ एक पक्ष (जरसादेशके अभाव) में, और हलादि विभक्तियोमें रामशब्दकी सदृश रूप होते हैं॥ विश्वपा—संसारकी रक्षा करनेवाला। विश्वपाः। विश्वपा श्वऔ ॥

१८३ दीर्घाज्जसि च।६।१।१०५॥

---

* षष्ठीप्रकृतिजन्यप्राथमिकोपस्थितिविषयत्वं निर्दिश्यमानत्वम् ॥ † वृत्तिकृता तु पूर्वविप्रतिषेधेन इनातो कृतयो सन्निपातपरिभाषाया अनित्यतामाश्रित्य जसि कृते निर्जरसिन, निर्जरसादिति रूपे, इति केचिदित्युक्त, भिसि निर्जरसैरिति रूपान्तरमुक्तम्, तदनुसारिभिश्च ङसि निर्जरस्यैव रूपमिति स्वीकृतमेतच्च भाष्यविरुद्धम् ॥

(दीर्घात्-पञ्च० । जसि-सप्त० । च-अव्ययपदम् ॥) दीर्घाज्जासि इचि च परे पूर्वसवर्णदीर्घो न स्यात् ॥

यदि दीर्घसे जस् वा इच परे रहे तो दीर्घ न हो। (सू०३९) से वृद्धि होकर । विश्वपौ । विश्वपा+जस्- (सू०१४९। ५३ । १२५ । ११३) के अनुसार । विश्वपाः । हे विश्वपाः । यहां सका लोप न हुआ क्योंकि एङन्त और ह्रस्वान्त अंगसे परे नहीं है । विश्वपाम् । विश्वपौ । विश्वपा शस् ॥

१८४ सुडनपुंसकस्य । १ । १ । ४३ ॥

(सुट् प्रथ० । अनपुंसकस्य षष्ठ्यन्तम् ॥) स्वादिपञ्चवचनानि सर्वनामस्थानसंज्ञानि स्युरक्लीबस्य ॥

नपुंसकलिङ्गको छोडकर स्वादिके पांच वचनों (सु । औ । जस् । अम् । औट्) की सर्वनामस्थान-संज्ञा हो ॥

१८५ स्वादिष्वसर्वनामस्थाने । १ । ४ । १७ ॥

(स्वादिषु सप्त० । असर्वनामस्थाने सप्तम्यन्तम् ॥) कप्प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु पूर्वं पदं स्यात् ॥

सु (सू०१३८) से लेकर कप्-प्रत्ययपर्यन्त सर्वनामस्थान(सू०१८४) भिन्न प्रत्ययोंमें पहले प्रत्ययोंकी पदसंज्ञा हो ॥

१८६ यचि भम् । १ । ४ । १८ ॥

(यचि सप्त० । भम् प्रथमान्तम् ॥) यादिष्वजादिषु च कप्प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु पूर्वं भसंज्ञं स्यात् ॥

स्वादि-असर्वनामस्थानके परे रहते सु-प्रत्ययसे लेकर कप्प्रत्यय-पर्यन्त जितने यकारादि तथा अजादि प्रत्यय होते हैं उनमें पहले अङ्गकी भसंज्ञा हो । (सू०१५६) से । विश्वपा+अस् । रहा तो (सू० १८५) से पद संज्ञा प्राप्त हुई और (सू०१८६) से भसंज्ञा प्राप्त हुई तो, कौनसी संज्ञा करनी चाहिये ? ॥

१८७ आकडारादेका संज्ञा । १ । ४ । १ ॥

(आकडारात्-पञ्च० । एका संज्ञा-प्रथमा० ॥) इत ऊर्ध्वं 'कडाराः कर्मधारये' इत्यत प्रागेकस्यैकैव संज्ञा ज्ञेया । या पराऽनवकाशा च ॥

अष्टाध्यायीके क्रमानुसार यहांसे लेकर 'कडाराः कर्मधारये' सूत्रमें पहले एकशब्दकी एकही संज्ञा जाननी । उनमेंसे वोह संज्ञा हो जो अनवकाश हो । अनवकाश उसको कहते हैं कि-

जिसका कहीं अवकाश न हो, अर्थात्-पदसंज्ञाकू छोडकर भसंज्ञाको और कहीभी अवकाश नहीं है, इस कारण अजादि विभक्ति परे रहते जहां पदसंज्ञाभी प्राप्त है वहांभी भ संज्ञाही होती है, अतएव यहांभी भसंज्ञाही हुई । फिर-

१८८ आतो धातोः । ६ । ४ । १४० ॥

(आतः पञ्च० । धातोः-षष्ठ्य० ॥) आकारान्तो यो धातुस्तदन्तस्य भस्याङ्गस्य लोपः ॥

आकारान्त जो धातु वोह धातु जिसके अन्तमें हो ऐसे भसंज्ञावाले अंगका लोप हो । इस सूत्रसे भसंज्ञक विश्वपा-शब्दका लोप पाया तो (सू० २५) से 'पा' के 'आ' का लोप होकर (सू० १२५) से 'स' क 'रु' हो (सू० ११३) के अनुसार । विश्वपः । विश्वपा । विश्वपाभ्याम् । इत्यादिः । अजादि-विभक्तियोंमें सब स्थानोंमें आका लोप होता गया ॥ एवं शङ्खध्मादयः ॥ इसी प्रकार आकारान्तधात्वन्त शंखध्मादिक औरभी शब्द होते हैं । हाहा-गन्धर्व । हाहाः । हाहौ । हाहाः । हाहाम् । हाहौ ॥ धातोः किम् ॥ धातु कहनेसे-हाहा+शस् (सू० १५६।१४७।१२५।११३) के अनुसार । हाहान् । यहां आका लोप न हुआ । हाहा । हाहाभ्याम् ३ । हाहाभिः । हाहै । हाहाः २ । हाहौः २ । हाहाम् । हाहे । हाहासु । हरिः-दुःखोंकू हरनेवाला । हरिः । हरी । हरि+जस् ॥

१८९ जसि च । ७ । ३ । १०९ ॥

(जसि सप्त० । च अव्य० ॥) ह्रस्वान्तस्याङ्गस्य गुणो जसि परे ॥

जस् पर रहतेभी ह्रस्वान्त अंगको गुण हो । हरे+जस् (सू० १४१ । २७ । १२५ । ११३) से । हरयः । हे हरि+सु ॥

१९० ह्रस्वस्य गुणः । ७ । ३ । १०८ ॥

(ह्रस्वस्य षष्ठ्यन्तम् । गुण प्रथमान्तम् ॥) सम्बुद्धौ ॥

सम्बुद्धि परे रहनेपर ह्रस्वको गुण हो । हे हरि+सु (सू० ३४ । १५४) से । हे हरे । हे हरी । हे हरयः । हरिम् । हरी । हरीन् । हरि टा ॥

१९१ शेषो घ्यसखि । १ । ४ । ७ ॥

(शेष प्रथ० । घि प्रथ० । असखि प्रथमान्तम् ॥) शेष इति स्पष्टार्थम् । ह्रस्वौ याविदुतौ तदन्तं सखिवर्जं घिसंज्ञं स्यात् ॥

इस सूत्रमें शेषग्रहण सरलताके अर्थ है । सखिशब्दको छोडकर ह्रस्व इकारान्त और उकारान्त शब्दकी घि संज्ञा हो । अर्थात्-सखिशब्दकी घिसंज्ञा न हो ॥

१९२ आङो नाऽस्त्रियाम् । ७ । ३ । १२० ॥

(आङः पञ्चम्य० । ना प्रथ० । अस्त्रियाम् सप्त० ॥) घेः परस्याङो ना स्यादस्त्रियाम् । आङिति टासंज्ञा प्राचाम् ॥

घिसंज्ञावाले शब्दसे परे आङ् (टा) को ना हो, स्त्रीलिंगको त्यागकर । प्राचीन आचार्योंके मतमें टाको आङ् कहते है । (सू० १९१) से घिसंज्ञा करके (सू० १९२) के अनुसार । हरि+ना- (सू० १५८) हरिणा । हरि+याम् ३ । हरिभिः । हरि+ङे (सू० १५६) से । हरि+ए ॥

१९३ घेर्ङिति । ७ । ३ । १११ ॥

(घेः-षष्ठ्य० । ङिति-सप्तम्यन्तम् ॥) घिसंज्ञकस्य ङिति सुपि गुणः ॥

ङित्-सुप् परे रहते घिसंज्ञक शब्दकू गुण होय । हरे+ए (सू० २७) हरये । हरिभ्यः २ । हरि+ङसि-ङस् । (सू० १५६ । १९३) से । हरे+अस् ॥

१९४ ङसिङसोश्च । ६ । १ । ११० ॥

(ङसिङसोः–षष्ठ्य० । च–अव्यय० ॥) एङो ङसिङसोरति पूर्वरूपमेकादेशः स्यात् ॥

एङ्में ङसि तथा ङस्सम्बन्धी अत् परे रहते पूर्वरूप एकादेश हो । (सू० १२५ । ११३) से । हरेः२ । हर्योः २ । हरीणाम् । हरि+ङि ॥

१९५ अच्च घेः । ७ । ३ । ११९ ॥

(अत्–प्रथ० । च–अव्ययप० । घेः–षष्ठ्य० ॥) इदुद्भ्यामुत्तरस्य ङेरौत् घेरत् ॥

इ और उ-से परे ङि-कू औ हो, तथा घिसंज्ञक शब्दकू अ-कार हो । हर+औ (सू० ३९) से । हरौ । हरिषु ॥ एवं कव्यादयः ॥ इसी प्रकार ह्रस्व-इकारान्त कवि आदिक शब्दोंकेभी रूप होते हैं ॥ सखि+सु ॥

१९६ अनङ् सौ । ७ । १ । ९३ ॥

(अनङ्–प्रथ० । सौ–सप्तम्यन्तम् ॥) सख्युरङ्गस्यानङादेशोऽसम्बुद्धौ सौ ॥

सम्बुद्धिभिन्न सुके परे रहते सखि-रूप अंगकू अनङ् आदेश हो। यह आदेश (सू० ५९) के अनुसार अन्तकूही होता है, और (सू० ३ । ३४) से अनङ्-के अङ्-का लोप होता है। सखन्+सु॥

१९७ अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा । १ । १ । ६५ ॥

(अल्–पञ्च० । अन्त्यात् पञ्च० । पूर्व–प्रथ० । उपधा–प्रथ० ॥) अन्त्यादलः पूर्वो वर्ण उपधासंज्ञः स्यात् ॥

अन्तके अल्से पूर्वके वर्णकी उपधा संज्ञा होती है । पूर्वोक्त उदाहरणमें अन्त्य अल्–नकारसे पूर्ववर्ती अकारकी उपधा संज्ञा है ॥

१९८ सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ । ६ । ४ । ८॥

(सर्वनामस्थाने–सप्त० । च अव्य०। असम्बुद्धौ–सप्तम्य० ॥) नान्तस्योपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने ॥

संबुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान परे रहते नकारान्त-शब्दकी उपधाको दीर्घ हो । सखान्+सु (सू० ३४) से । सखान्+स ॥

१९९ अपृक्त एकाल् प्रत्ययः । १ । २ । ४१ ॥

(अपृक्तः- प्रथ० । एकाल्प्रत्ययः-प्रथमान्तम् ॥) एकाल्प्रत्ययो ऽपृक्तसञ्ज्ञः स्यात् ॥

जिस प्रत्ययमें एकही अल् हो, उसकी अपृक्तसंज्ञा होती है । पूर्वोक्त उदाहरणमें स-की अपृक्तसंज्ञा हो गई, तब ॥

२०० हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल् । ६ । १ । ६८ ॥

(हल्ङ्याब्भ्यः पं० । दीर्घात् पं० । सुतिसि-प्र० । अपृक्तम् प्रथमा० । हल् प्रथमान्तम् ॥) हलन्तात्परं दीर्घौ यौ ङ्यापौ तदन्ताच्च परं सुतिसीत्येतदपृक्तं हल्लुप्यते ॥

हलन्तसे परे और दीर्घ ङी (ङीप् , ङीष् , ङीन्) तथा आप् (टाप् , डाप् , चाप्) जिसके अन्तमें हो ऐसे शब्दसे परे जो—सु-ति-सि-का अपृक्त हल् हो तो उसका लोप हो । सखान्+स् । यहां स-कारका लोप हो गया तो । सखान् । रूप रहा—

२०१ न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य । ८ । २ । ७ ॥

(न लुप्तषष्ठ्यन्तम् । लोपः प्रथ० । प्रातिपदिकान्तस्य षष्ठ्यन्तम् ॥) प्रातिपदिकसञ्ज्ञकं यत्पदं तदन्तस्य नकारस्य लोपः ॥

प्रातिपदिकसंज्ञावाले पदके अन्तमें जो नकार उसका लोप हो । सखान्-की प्रातिपदिक-संज्ञा है इसकारण नकारका लोप हो गया । सखा ॥

२०२ सख्युरसम्बुद्धौ । ७ । १ । ९२ ॥

(सख्युः पष्ठ्य० । असम्बुद्धौ सप्तम्यन्तम् ॥) सख्युरङ्गात्परं सम्बुद्धिवर्जं सर्वनामस्थानं णिद्वत्स्यात् ॥

सखि-रूप अंगसे परे यदि सम्बुद्धिभिन्न सर्वनाम परे रहै, तो वह

१ सुतिसीति किम् ? अभैत्सीदत्र 'तिपा सहचरितस्य सिपो ग्रहणात्सिचो ग्रहणं नास्तीति' नियमेन सिचो लोपो मा भूत् ।

णित्की सदृश हो, अर्थात्–जो कार्य णित्-प्रत्ययके परे हुए सन्ते होते है। वोही कार्य उस सर्वनामस्थानके परे रहते हो। सखि+औ। यहां (औ) को णिद्वत् माना, तब–

२०३ अचो ञ्णिति । ७ । २ । ११५ ॥

(अचः–षष्ठ्यः । ञ्णिति–सप्तम्यः ॥) अजन्तांगस्य वृद्धिर्ञिति णिति च प्रत्यये परे ॥

जिसके ञ-कारकी इत्संज्ञा हो वा जिसके ण-कारकी इत्संज्ञा हो, ऐसे प्रत्ययके परे रहते अजन्त-अंगकू वृद्धि हो। इस सूत्रसे वृद्धि हुई। सखै+औ (सू॰ २७) से सखायौ। सखायः। हरिकी सदृश–। हे सखे, इत्यादि। सखायम्। सखायौ। सखीन्। सखि+टा–(सू॰ १४९। १९) सख्या। सखिभ्याम् ३। सखिभिः। सख्ये। सखिभ्यः २। सखि+ङसि (सू॰ १५६। ३४। ५) में। सखि+अस् (सू॰ १९) के अनुसार। सखय्+अस् ॥

२०४ ख्यत्यात्परस्य । ६। १। ११२ ॥

(ख्यत्यात् पञ्चः । परस्य षष्ठ्यः ॥) कृतयणादेशाभ्यां खि ति-शब्दाभ्यां खी-ती-शब्दाभ्याम्परस्य ङसिङसोरत उः ॥

जिसको यण आदेश किया हो ऐसे-खि वा ति-शब्द, अथवा खी-वा ती-शब्दसे परे जो ङसि या ङस-का अत उसको उकार–आदेश हो। सखय्+उस (सू॰ १२५। ११३) में। सख्युः २। सख्योः २। सखीनाम्। सखि+ङि ॥

२०५ औत् । ७ । ३ । ११८ ॥

(प्रथमान्तम् ॥) इतः परस्य ङेरौत्स्यात् ॥

इदन्तसे परे जो ङि उसको औ आदेश हो। सखि+औ। (सू॰ १९) के अनुसार। सख्यौ। सखिषु ॥

२०६ पतिः समास एव । १ । ४ । ८ ॥

(पतिः–प्रथः । समासे–सप्त॰ । एव-अव्ययपदम् ॥) घिसंज्ञः ॥

पति-शब्दकी समासहीमें घि संज्ञा होती है । पतिः । पती २ । पतयः । पतिम् । पतीन् । पत्या । यहां घिसंज्ञा न होनेसे,(सू० १९२) न लगा । पतिभ्याम् ३ । पतिभिः । पत्ये । पतिभ्यः २ । पत्युः २ । पत्योः २ । पतीनाम् । पत्यौ । पतिषु ॥ समासे तु भूपतिना ॥ समासमें तो भूपतिना, इत्यादिक रूप होते है । क्योंकि–तहां घिसंज्ञा होकर तत्सम्बन्धी कार्य होते है ॥ कतिशब्दो बहुवचनान्तः ॥ कति (कितने) शब्द बहुवचनान्त है । कति + जस ॥

२०७ बहुगणवतुडति संख्या । १ । १ । २३ ॥

(बहुगणवतुडति-प्रथ० । संख्या प्रथमान्तम् ॥) एते संख्यासंज्ञाः स्युः ॥

बहु-शब्द, गण-शब्द, तथा वतु और डति-प्रत्ययान्त शब्दोंकी संख्या-संज्ञा हो । कति-शब्द डति-प्रत्ययान्त है, इस कारण उसकी संख्या संज्ञा हुई, फिर ॥

२०८ डति च । १ । १ । २५ ॥

(डति सप्त० । च अव्यय० ॥) डत्यन्ता संख्या षट्संज्ञा स्यात् ॥

डति–प्रत्ययान्त जो संख्यासंज्ञक शब्द है उसकी षट्–संज्ञा हो । इस सूत्रसे कति-शब्दकी षट्संज्ञा हुई, तब ॥

२०९ षड्भ्यो लुक् । ७ । १ । २२ ॥

(षड्भ्य पञ्च० । लुक् प्रथमान्तम् ॥) षड्भ्यः परयोर्जस्शसोर्लुक् स्यात् ॥

षट्-संज्ञक शब्दसे परे जस् और शस–का लुक् (लोप) हो । जस्–का लोप होकर । 'कति' सिद्ध हुआ, तो ॥

२१० प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् । १ । १ । ६२ ॥

(प्रत्ययलोपे सप्त० । प्रत्ययलक्षणम् प्रथमा० ।) प्रत्यये लुप्तेऽपि तदाश्रितमङ्गकार्यं स्यात् ॥

प्रत्ययका लोप होजानेपरभी तदाश्रित अंगकार्य अर्थात्–उस प्रत्ययके परे रहते जो अंगकू कार्य होना है वोह होय ॥ इति जसि-

चेति गुणे प्राप्ते ॥ इस सूत्रके अनुसार " जसि च " से गुणकी प्राप्ति होनेपर ॥

२११ प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः । १ । १ । ६१ ॥

(प्रत्ययस्य-षष्ठ्यन्त० । लुक्श्लुलुपः-प्रथमान्तम ॥) लुक्-श्लु-लुप-शब्दैः कृतम्प्रत्ययादर्शनं क्रमात्तत्तत्संज्ञं स्यात् ॥

लुक् तथा श्लु वा लुप् जहां इन तीन शब्दोंसे प्रत्ययका लोप किया जाय, वहां उस लोपका क्रमसे लुक् , श्लु, लुप् नाम हो जाय ॥

२१२ न लुमताङ्गस्य । १ । १ । ६३ ॥

(न निषेधार्थकम० । लुमता तृतीयान्त० । अगस्य-षष्ठ्यन्त० ॥) लुमता शब्देन लुप्ते तन्निमित्तमङ्गकार्यन्न स्यात् ॥

लुक् , श्लु, लुप् यह लुमन्त है । लुमत् शब्दसे जहां लोप किया जाय वहां उस लोपको मानकर अंगकार्य न हो । कति-शब्दमें (सू० २०९) से लुक्-शब्द करके जस्-का लोप हुआ है, इस कारण (सू० २१२) के अनुसार 'जसि च' से गुण न हुआ । कति २ । कतिभिः । कतिभ्यः २ । कतीनाम । कतिषु ॥

युष्मदस्मत्षट्संज्ञकास्त्रिषु सरूपाः ॥ त्रिशब्दो नित्यम्बहुवचनान्तः ॥

युष्मद्-अस्मद्-शब्दोंके तथा षट्-संज्ञक शब्दोंके रूप तीनों लिङ्गोंमें समान होते हैं ॥ त्रिशब्द नित्यही बहुवचनान्त है । त्रयः । त्रीन् । त्रिभिः । त्रिभ्यः २ । त्रि+आम् ॥

२१३ त्रेस्त्रयः । ७ । १ । ५३ ॥

(त्रेः षष्ठ्यन्त० । त्रय-प्रथमान्तम ॥) त्रिशब्दस्य त्रयादेशः स्यादामि॥

आम् परे रहते त्रि-शब्दको त्रय-आदेश हो । त्रय+आम--(सू० १६८। १६९। १५८) के अनुसार । त्रयाणाम् । त्रिषु ॥

गौणत्वे तु नेति केचित् । प्रियत्रीणाम् । तन्नुतन्नु भवत्येव । प्रियत्रयाणाम् ॥

कोई व्याकरणाचार्य कहते हैं कि—जहां त्रि-शब्द गौण (मुख्य नहीं) है उस स्थानमें आम् परे रहते त्रि-को त्रय-आदेश नहीं होता,

जैसे–प्रियत्रीणाम् । वस्तुतः (दरअशलमें) तो होताही है,जैसे प्रियत्रयाणाम ॥

द्विशब्दो नित्य द्विवचनान्त ॥

द्वि शब्द नित्यही द्विवचनान्त है । द्वि+औ–॥

२१४ त्यदादीनामः । ७ ।२। १०२ ॥

(त्यदादीनाम-षष्ठ्यन्तम । अः प्रथमान्तम॥) एषामकारो विभक्तौ । द्विपर्यन्तानामेवेष्टिः ॥

त्यद्-आदिक शब्दोंको अकारान्त आदेश हो, विभक्ति परे रहते॥ द्वि-शब्द पर्यन्तही (त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम , अदस् , एक, द्वि) यहांतक त्यदादिकोंका ग्रहण होता है, भाष्यकारका यह अभिप्राय है । द्व औ–(सू० ३९) द्वौ २ । द्वाभ्याम् ३ । द्वयोः२ ॥ पपीः (संसारकी रक्षा करनेवाला–सूर्य) । पपीः । पपी+औ–(सू० १४७)में पूर्वसवर्णदीर्घ प्राप्त हुआ (सू०१८३) ने निषेध कर दिया तो (सू० १९) में यण हो गया । पप्यौ २ । पप्यः । हे पपीः । पपीम । पपीन । पप्या । पपीभ्याम ३ । पपीभिः । पप्ये । पपीभ्यः २ । पप्यः २ । पप्योः २ । पपी+आम्–॥ दीर्घत्वान्नुडभावः ॥ दीर्घ होनेके कारण (सू०१६८) से नुट न हुआ तो (सू०१९) से यण हो गया । पप्याम । पपी+ङि-॥ ङौ नु सवर्णदीर्घः ॥ ङि परे रहते (सू० १९६) से ङ कारकी इत्संज्ञा होकर (सू० ५३) से सवर्णदीर्घ हो गया । पपी । पपीषु ॥ एवं वातप्रम्यादयः ॥ इसी प्रकार वातप्रमी (हरिणकी जातिविशेष) आदिक शब्दोंके रूप होते हैं ॥ बह्व्यः श्रेयस्यो यस्य स बहुश्रेयसी ॥ जिसकी बहुतसी स्त्रियें कल्याण करनेवाली हों, वोह बहुश्रेयसी होता है । बहुश्रेयसी+सु–(सू० ३४ । २०० के अनुसार । बहुश्रेयसी । बहुश्रेयस्यौ२ । बहुश्रेयस्यः । हे बहुश्रेयसी+सु-॥

२१५ यू स्त्र्याख्यौ नदी । १ । ४ । ३ ॥

(य-प्र० । स्त्र्याख्यौ-प्र० । नदी-प्रथमान्तम् ॥) ईदूदन्तौ नित्यस्त्रीलिंगौ नदीसञ्ज्ञौ स्तः ॥

ईकारान्त और ऊकारान्त जो नित्यस्त्रीलिंगवाची शब्द हैं, उनकी नदी-संज्ञा हो । श्रेयसी-शब्द ईकारान्त नित्यस्त्रीलिग है इस कारण वोह नदीसंज्ञक हो । यदि कहो कि-बहुव्रीहिसमास होकर पुल्लिंगका विशेषण हो गया है इसकारण उसकी नदी-संज्ञा नहीं होनी चाहिये, तौ ॥

२१६ (प्रथमलिंगग्रहणञ्च) ॥

पूर्वं स्त्र्याख्यस्योपसर्जनत्वेऽपि नदीत्वं वक्तव्यमित्याशयः ॥ पहले-ही लिङ्गका ग्रहण होता है, अर्थात्-जो शब्द पहले स्त्रीलिङ्गवाचक हो, पीछेसे समासमें यदि पुल्लिंग हो गया हो, तौभी उनकी नदी-संज्ञा हो, यह वार्त्तिककारका आशय है । श्रेयसी-शब्द पहले तौ नित्य स्त्रीलिंग है, इस कारण नदीसंज्ञा हो गई, तब ॥

२१७ अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः । ७ । ३ । १०७ ॥

(अम्बार्थनद्योः-षष्ठ्य० । ह्रस्व -प्रथमान्तम् ॥) अम्बार्थानां नद्यन्तानां च ह्रस्वस्स्यात्सम्बुद्धौ ॥

सम्बुद्धि परे रहते मातावाचक शब्द, और नदीसंज्ञक शब्दोंकू ह्रस्व हो । बहुश्रेयसी-शब्दकी (सू० २१५ । २१६) के अनुसार नदीसंज्ञा है इस कारण उसको ह्रस्व हो गया । हे बहुश्रेयसि+सु-(सू० ३४ । १५४) से । हे बहुश्रेयसि । बहुश्रेयसीम् । बहुश्रेयसीन् । बहुश्रेयस्या । बहुश्रेयसीभ्याम ३ । बहुश्रेयसीभिः । बहुश्रेयसी+ङे (सू० १५६) से । बहुश्रेयसी+ए ॥

२१८ आण्नद्याः । ७ । ३ । ११२ ॥

(आट्-प्रथ० । नद्याः पञ्चम्यन्तम ॥) नद्यन्तात्परेषां ङितामाडागमः स्यात् ॥

नदी-संज्ञक शब्दोंसे परे ङित् (ङे । ङसि । ङस् । ङि) प्रत्य-

योंकू आट्-का आगम हो । (सू० १०४) से आदिमें हुआ । बहुश्रेयसी+आट्+ए (सू० ३।५) से । बहुश्रेयसी+आ+ए ॥

२१९ आटश्च । ६ । १ । ९० ॥

(आटः-पञ्चः । च–अव्ययपदम् ॥) आटोऽचि परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् ॥

यदि आट्से अच परे हो तो दोनोंके स्थानमें एक वृद्धि हो (सू० २१) के अनुसार आ-को और ए-कू मिल 'ऐ' वृद्धि हुई । फिर (सू०१९) से । बहुश्रेयस्यै । बहुश्रेयसीभ्यः २ । बहुश्रेयस्याः२ । बहुश्रेयस्योः २ ॥ नद्यन्तान्नुट् ॥ नदीसंज्ञक होनेके कारण । बहुश्रेयसी+आम् । यहां (सू०१६८) से नुट् हो गया । बहुश्रेयसी+नुट्+आम्–(सू० ३।३४।५) से बहुश्रेयसीनाम् । बहुश्रेयसी+ङि ॥

२२० ङेराम्नद्याम्नीभ्यः । ७ । ३ । ११६ ॥

(ङेः षष्ठ्यः । आम्–प्रथः । नद्याम्नीभ्यः पञ्चम्यन्तम् ॥) नद्यन्तादाबन्तान्नी शब्दाच्च परस्य ङेराम् स्यात् ॥

नदीसंज्ञक शब्द,तथा आबन्त,और नी-शब्दसे परे जो ङि उसको आम्-आदेश हो।बहुश्रेयसी-शब्दकी नदी संज्ञा है, इस कारण ङिके स्थानमें आम आदेश हो गया । बहुश्रेयसी+आम्– (सू०१९) से बहुश्रेयस्याम् ॥ शेषं पपीवत् ॥ शेष रूप पपी-शब्दकी सदृश होते है । अतिलक्ष्मी+सु ॥ अङ्यन्तत्वान्न सुलोपः ॥ यहां (सू०२००) से सु-का लोप इसलिये नहीं हुआ कि अतिलक्ष्मी (लक्ष्मीकू अतिक्रमण करनेवाला) शब्द ङ्यन्त नहीं है इसकारण सकारकी विसर्ग होगई । अतिलक्ष्मीः । शेषं बहुश्रेयसीवत् । शेषरूप बहुश्रेयसीकी सदृश जानो ॥ प्रधी–(अत्यन्तबुद्धिमान) । प्रधीः । प्रधी+औ ॥

२२१ अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ । ६ । ४ । ७७ ॥

(अचि सप्तः । श्नुधातु-भ्रुवाम्-षष्ठ्यः । य्वोः षष्ठ्यः । इयङुवङौ–प्रथमान्तम् ॥) श्नुप्रत्ययान्तस्येवर्णोवर्णान्तस्य धातोर्भ्रू इत्यस्य चाङ्गस्येयङुवङौ स्तोऽजादौ प्रत्यये परे । इति प्राप्ते सति ॥

अजादि-प्रत्यय परे होनेपर श्नु-प्रत्यय जिसके अन्तमें हो ऐसे अंग वा इवर्णान्त तथा उवर्णान्त, धातु, और भ्रू अंगकूभी इकारकू इयङ् और उकारकू उवङ्-आदेश हो । पूर्वोक्त उदाहरणमें इकारान्त धातु है, इस कारण इयङ् होना चाहिये, इस सूत्रकी प्राप्ति हुई तो ॥

२२२ एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य । ६ । ४ । ८२ ॥

(एः-षष्ठ्यन्तम् । अनेकाचः-षष्ठ्य० । असंयोगपूर्वस्य-षष्ठ्य० ॥)
धात्ववयवसंयोगपूर्वो न भवति य इवर्णस्तदन्तो यो धातुस्तदन्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य यण् स्यादजादौ प्रत्यये परे ॥

धातुका अवयव (हिस्सा) संयोग जिसके पहले न हो ऐसा जो इकारान्त धातु,वोह (धातु)जिसके अन्तमें हो ऐसे अनेकाच्-अंगकू यण् हो,अजादि प्रत्यय परे रहते.अर्थात्–जिस इकारान्तधातुके पहले संयोगी धातुका अवयव न हो,और वोह इकारान्त धातु जिसके अन्तमें हो उस अनेकाच् अंगकू यण् हो.अजादि प्रत्यय परे रहनेपर। प्रधी+औ । यहां धातुका अवयव पहले नहीं है, ऐसी ईकारान्त–'धी' धातु है उसको औ परे रहते यण हो गया । प्रध्यौ २ । प्रध्यः ४ । प्रध्यम् । प्रध्या । प्रधीभ्याम ३ । प्रधीभिः । प्रध्ये । प्रधीभ्यः २ । प्रध्योः २ । प्रध्याम । प्रध्यि । प्रधीषु ॥ एवं ग्रामणीः, ङौ तु ग्रामण्यामिति विशेषः ॥ इसी प्रकार ग्रामणी (गांवका सरदार) शब्दके रूप होते हैं । ग्रामणी+ङि–(सू० २२०) के अनुसार । ग्रामण्याम् । विशेष है ॥ नीः। अनेकाचः किम् ॥ अनेकाच् अंगकू यण् हो,यह कहनेसे। नी+औ–(सू० २२१) नियौ २ । यहां यण न हुआ, कारण कि नी-शब्द अनेकाच् नहीं, किन्तु एकाच है। नियः ४। नियम् । निया। नीभ्याम ३ । नीभिः । निये । नीभ्यः २ । नियोः २ । अमि शसि च परत्वादियङ् ॥ अष्टाध्यायीके क्रमानुसार (सू० १९५) से, और (सू० १४७) से (सू० २२१) ही पर है, इस कारण अम और शस् परे रहतेभी (सू० २२१) से इयङ्ही होता है ॥ नियम् । नी+ङि ॥ ङेराम् ॥

। पक्र॰ 'यायतीति विगृ॰ त नियम्यान्वाभावान्नद्यन्वाभावेन नाम ।

(सू० २२०) से ङिकू आम् । नियाम् । नीषु ॥ सुश्री-(अच्छी शोभावाला) । सुश्रीः ॥ असंयोगपूर्वस्य किम् ॥ धातुका अवयवसंयोग पूर्व न हो, ऐसा कहने से । सुश्री+औ–(सू०२२१) सुश्रियौ । यहां यण् न हुआ, क्योंकि, यहां श्री-धातुका संयोगी अवयव पहले है । सुश्रियः । यवक्री–(जवोंका क्रय करनेवाला) । यवक्रीः । यवक्रियौ । यवक्रियः । इन दोनों शब्दोंके शेषरूप नी-शब्दकी सदृश होते हैं ॥ शुद्धधी–(पवित्र बुद्धिवाला) । शुद्धधीः । शुद्धधी+औ । यहां (सू०२२२) के अनुसार यण् प्राप्त है, परन्तु विशेष यह है कि–॥

२२३ गतिश्च । १ । ४ । ६० ॥

(गति-प्रथमान्तम् । च-अव्ययपदम् ॥) प्रादयः क्रियायोगे गतिसंज्ञाश्च स्युः ॥

प्र-आदि उपसर्ग (सू० ४५) यदि क्रियाके योगमें हों तो उनकी गति-संज्ञाभी हो जाय ॥

२२४ (गतिकारकेतरपूर्वपदस्य यण् नेष्यते) ॥

महाभाष्यकारका मत है कि–गति और कारकसे इतर कोई पद जिसके पूर्व हो, अर्थात्–गतिसंज्ञक और कारक जिसके पहले न हो, ऐसे शब्दोंसेभी अजादि-विभक्ति परे रहते–(सू०२२२) से यण् न हो । शुद्धधी-शब्दमें 'धी' के पहले न तो गतिसंज्ञक पद है, न कारकही पूर्वपद है, इस कारण यण् न हुआ, तो (सू० २२१) के अनुसार इयङ् हो गया । शुद्धधियौ । शुद्धधियः ॥ शेषं सुश्रीवत्॥ शेष रूप सुश्री-शब्दकी सदृश होते हैं ।सुधीः । सुधी+औ । यहां (सू०२२२) से प्राप्त यण् (सू०२२४) के अनुसार तो हो सक्ता है, कारण कि–धी-शब्दके पहले गतिसंज्ञक 'सु' है; परन्तु–॥

२२५ न भूसुधियोः । ६ । ४ । ८५ ॥

१ इह च शोभन श्रयतीत्यत्र विग्रहः । शोभना श्रीरस्येति [illegible] । [illegible]ति । एवमेव सुश्रीशब्दे वा यम । २ यत्क्रियायुक्ताः प्रादयस्तं प्रत्येव गत्युपसर्गसंज्ञाः स्युः ।

(न-निषेधार्थकमव्ययपदम् । भूसुधियोः-षष्ठ्यन्तम् ॥) एतयोरचि सुपि यण् न स्यात् ॥

अजादि-सुप् परे होय तौ भू और सुधि-शब्दकू यण न हो । सुधी-शब्दकू यण न हुआ तौ (सू० २२१) सै इयङ् हो गया । सुधियौ । सुधियः ॥ शेषं सुश्रीवत् ॥ बाकी रूप सुश्री-शब्दकी सदृश जानो॥ सुखमिच्छतीति सुखीः; सुतमिच्छतीति सुतीः॥ सुख-चाहनेवाला—सुखीः, सुत (पुत्र) को चाहनेवाला—सुतीः । सुखीः। सुख्यौ २ । सुख्यः २ । सुख्यम् । सुख्या । सुखीभ्याम् ३ । सुखी-भिः । सुख्ये । सुखीभ्यः२ । सुखी+ङसि (सू० १५६ । २२२।२०४) सै । सुख्युः २ । सुख्योः २ । सुख्याम् । सुख्यि । सुखीषु ॥ इसी-प्रकार सुती- शब्दकेभी रूप होते हैं ॥ शम्भुर्हरिवत्, एवम्भान्वादयः॥ शम्भु शब्दके रूप हरि-शब्दकी तरह होते है, ऐसेही भानु-आदिक शब्दोंके रूपभी जानने । क्रोष्टु-(गीदड़) । क्रोष्टु+सु ॥

२२६ तृज्वत् क्रोष्टुः । ७ । १ । ९५ ॥

(तृज्वत् तद्धितान्तमव्ययम् । क्रोष्टुः-षष्ठ्यन्तम् ॥) असम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने परे क्रोष्टुशब्दस्तृजन्तेन तुल्यः स्यात् ॥

यदि सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान परे होय तौ क्रोष्टु-शब्द तृच् प्रत्ययान्तकी सदृश हो. अर्थात्- क्रोष्टुके स्थानमें क्रोष्टृ-आदेश हो जाय । क्रोष्टृ+सु ॥

२२७ ऋतो ङि सर्वनामस्थानयोः । ७ । ३ । ११० ॥

(ऋतः षष्ठ्यन्तम् । ङिसर्वनामस्थानयोः सप्तम्यन्तम् ॥) ऋदन्तस्याङ्गस्य गुणो ङौ सर्वनामस्थाने च परे । इति प्राप्ते ॥

ङि (सप्तमीका एकवचन) और सर्वनामस्थान परे होय तौ ऋदन्त-अङ्गकू गुण हो, पूर्वोक्त उदाहरणमें ऋदन्त (क्रोष्टृ) शब्दसै सर्वनामस्थान (सु) परे है, इसलिये गुण होना चाहिये । इस सूत्रकी प्राप्ति हुई, तौ—॥

२२८ ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च । ७ । १ । ९४ ॥

(ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसाम् षष्ठ्यन्तम् । च-अव्ययपदम् ॥) ऋदन्तानामुशनसादीनां चानङ् स्यादसम्बुद्धौ सौ ॥

यदि सम्बुद्धिरहित सु परे होय तो ऋदन्त-शब्द, उशनस्, पुरुदंसस्, और अनेहस्-शब्दोंको अनङ् होय । (सू० ४९) से अनङ् क्रोष्टृ-शब्दकी ऋ को हुआ, और (सू० ३ । ३४ । ५) से अनङ्-मात्रका लोप हो गया । क्रोष्टन्+सु—॥

२२९ अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तॄणाम् । ६ । ४ । ११ ॥

(षष्ठ्यन्तम् ॥) अबादीनामुपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने ॥

अप्-शब्द, और तृन्-तृच्-प्रत्ययान्त शब्द, तथा स्वसृ—नप्तृ—नेष्टृ—त्वष्टृ—क्षत्तृ—होतृ—पोतृ और प्रशास्तृ, इनकी उपधाको दीर्घ हो, सम्बुद्धिभिन्न सुके परे रहते । क्रोष्टु-शब्दको तृच्-प्रत्ययान्त माना गया है, इस कारण उसकी उपधा (सू० १९७) को दीर्घ हो गया, और (सू० २००) से सु-का लोप हो गया, तो फिर (सू० २०१) से न-कारका लोप हो गया तो । क्रोष्टा । क्रोष्टृ+औ (सू० २२७ । ३५ । २२९) के अनुसार । क्रोष्टारौ २ । क्रोष्टारः । क्रोष्टारम् । क्रोष्टृ+शस्—(सू० १५८ । १८७ । १५७) के अनुसार क्रोष्टून् । क्रोष्टु+टा । (सू० १४९) से । क्रोष्टु+आ ॥

२३० विभाषा तृतीयादिष्वचि । ७ । १ । ९७ ॥

(विभाषा विकल्पार्थः । तृतीयादिषु सप्तम्यन्तम् । अचि सप्तम्यन्तम् ॥) अजादिषु तृतीयादिषु क्रोष्टुर्वा तृज्वत् ॥

अच् जिनके पहले हो ऐसी तृतीयादिक-विभक्तियोंके परे होनेमें क्रोष्टु-शब्द विकल्प करके तृच्-प्रत्ययान्तकी तुल्य हो । क्रोष्टृ+आ—(सू० १९) के अनुसार । क्रोष्ट्रा, वा । क्रोष्टु+टा—(सू० १९२) से । क्रोष्टुना । क्रोष्टुभ्याम् ३ । क्रोष्टुभिः । क्रोष्ट्रे, क्रोष्टवे । क्रोष्टुभ्यः २ । क्रोष्टृ+ङ (अ) सि । (सू० ३४) क्रोष्टृ+अस् ।

२३१ ऋत उत् । ६ । १ । १११ ॥

(ऋतः-पञ्चम्य० । उत्-प्रथमा० ॥) ऋतो ङसिङसोरति उदेकादेशः । रपरः ॥

यदि ङसि वा ङस्का अत् परे होय तौ ऋदन्त-अंगकू उत् एकादेश हो, और (सू० ३५) के अनुसार रकारभी उसके साथही प्रवृत्त हो । क्रोष्ट्+उ-र्-स् ॥

२३२ रात्सस्य । ८ । २ । २४ ॥

(रात्-पञ्च० । सस्य-षष्ठ्यन्तम् ॥) रेफात्संयोगान्तस्य सस्यैव लोपो नान्यस्य । रस्य विसर्गः ॥

रकारसे परे संयोग (सू० १७) के अन्तके सकारकाही लोप होय. और किसी वर्णका नहीं, (सू० ११३) से रकारकी विसर्ग हो । क्रोष्टुः २ । वा । क्रोष्टु+ङ (अ) सि (स्) (सू० १९३ । १९४ ।११३) के अनुसार । क्रोष्टोः २ । क्रोष्टु+ओस् । यहां(सू० २३०) से जिस पक्षमे तृज्वद्भाव हुआ तौभी, और न हुआ तौभी (सू०१९) का कार्य हुआ । क्रोष्ट्रोः २, क्रोष्ट्वोः २ । क्रोष्टु+आम् ॥

२३३ (नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन) ॥

वार्तिककारकी आज्ञा है कि-नुम् (सू०२७२) अच् परे रहते रभाव (सू०२५१) और तृज्वद्भाव (सू०२३०) इन तीनोंको बाधकर आम् परे रहते पूर्व विप्रतिषेध करके नुट्ही हो, अर्थात्-सूत्रकारने जो कहा है कि परकार्य (सू०१३४) हो, उसका यह प्रतिबंधक है । क्रोष्टु+नुट्+आम् (सू० ३ । ३४।५।१६९) से क्रोष्टूनाम् । क्रोष्टु+ङि (इ) (सू० २३० । २२७) से । क्रोष्टरि, वा(सू०१०५।३९) से । क्रोष्टौ । क्रोष्टुषु । हे क्रोष्टो । इत्यादि ॥ हूहू-(गंधर्व) । हूहूः । हूहू+औ (सू०१९) हूह्वौ २ । हूह्वः३। हूहूम । हूहून् । हूह्वा। हूहूभ्याम् ३ । हूहूभिः । हूह्वे । हूहूभ्यः २ । हूह्वः २ । हूह्वाम् । हूह्वि । हूहूषु॥ अतिचमूशब्दे तु नदीकार्यं विशेषः ॥ अतिचमू-(सेनाका धावन) शब्दमें चमू-शब्द नित्यस्त्रीलिंग है इस कारण उसकी (सू०२१५) स

नदीसंज्ञा होकर, सम्बोधनमें (सू० २१७) और ङे-ङसि-ङस्में (सू० २१८ । २१९) तथा ङिमें (सू० २२०) का कार्य विशेष है। खलपू-(खलकू पवित्र करनेवाला) । खलपूः । खलपू+औ-॥

२३४ ओः सुपि । ६ । ४ । ८३ ॥

(ओः-षष्ठ्य० । सुपि-सप्त० ॥) धात्ववयवसंयोगपूर्वो न भवति य उवर्णस्तदन्तो यो धातुस्तदन्तस्यानेकाचोऽगस्य यण् स्यादचि सुपि ॥

धातुका अवयवसंयोग जिसके पूर्वमें न हो ऐसा उवर्ण जिसके अन्तमें हो ऐसी धातु जिस अनेकाच्के अन्तमें हो उस अंगकू यण् हो अजादि-सुप परे होनेपर । पूर्वोक्त उदाहरणमें यण् हो गया । खलप्वौ २ । खलप्वः ४ । खलप्वम् । खलप्वा । खलपूभ्याम् ३ । खलपूभिः । खलप्वे । खलपूभ्यः २ । खलप्वोः २ । खलप्वाम् । खलप्वि । खलपूषु ॥ एवं सुल्वादयः ॥ इसी प्रकार सुलू-(भलीभांति काटनेवाला) आदिक शब्दोंकेभी रूप होते हैं॥ स्वभू-(ब्रह्मा) । स्वभूः । स्वभू+औ । यहां (सू० २२२) से यण् प्राप्त था(सू०२२५) ने निषेध कर दिया तौ (सू०२२१) से उवङ् हो गया । स्वभुवौ । स्वभुवः । इत्यादि, सब स्थानोंमें अजादिविभक्ति परे उवङ्ही होता गया ॥ वर्षाभू-(वर्षामें उत्पन्न होनेवाले) । वर्षाभूः । वर्षाभू+औ । यहांभी (सू०२२५) से यणका निषेध प्राप्त था, परन्तु-॥

२३५ वर्षाभ्वश्च । ६ । ४ । ८४ ॥

(वर्षाभ्वः-षष्ठ्य० । च-अव्यय० ॥) अस्य यण् स्यादचि सुपि ॥

यदि अजादि-सुप् परे होय तौ वर्षाभू-शब्दकूभी यण् हो । वर्षाभ्वौ। वर्षाभ्वः। शेष रूप खलपू-की समान जानो ॥ दृन्भू-(सर्प)। दृन्भूः। दृन्भू+औ ॥

२३६ (दृन्-कर-पुनः-पूर्वस्य भुवो यण् वाच्यः) ॥

दृन् और कर तथा पुनः यह पूर्वोक्त तीन शब्द जिसके पूर्व हों

ऐसे भू-शब्दकू यण् हो अजादि-विभक्ति परे रहते। दृन्भ्वौ। दृन्भ्वः। शेष रूप वर्षाभू-शब्दकी तुल्य होते हैं॥ एवं करभूः । तथा पुनर्भूः॥ इसी प्रकार करभू-(नखआदि) और पुनर्भू (ब्राह्मण) शब्दके रूपभी जानो ॥ धातृ-(धारण वा पोषण कर्त्ता)। धातृ+सु । यहां-(मू० २२८) से । धातन्+सु (मू०२२९।२०० । २०१) से । धाता । धातृ+औ-(मू०२२७।३५) से । धातर्+औ । (मू० २२९) से । धातारौ २ । धातारः । धातारम् । धातृ+शस् (मू०१५६ । १४७ । १५७) से । धातॄन् । धात्रा । धातृभ्याम् ३ । धातृभिः । धात्रे । धातृभ्यः २ । धातृ+ङसि (मू०१५६।३४) से । धातृ+अस् (मू० २३१ । ३५।२३२।११३) से । धातुः २ । धात्रोः २ । धातृ+आम् (मू० १६८।३।३४।५) धातृ+नाम् (मू०१६९) से । धातॄ+नाम्-॥

२३७ (ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्) ॥

ऋकारसे परे जो न-कार उसको ण-कार हो । धातॄणाम् । धातृ+ङि-(मू० १५६ । २२७ । ३५) से । धातरि । धातृषु । हे धातृ+सु । यहां (मू० २२७) से । हे धातर्+सु (मू० २०० । ११३) से । हे धातः । हे धातारौ । हे धातारः ॥ एवं नप्त्रादयः॥ इसी भांति नप्तृ-(पौत्र) आदिक शब्दोंके रूपभी जानो ॥

नप्त्रादिग्रहण व्युत्पत्तिपक्षे नियमार्थम् । तेन पितृभ्रातृप्रभृतीनां न । उद्गातृशब्दस्य तु भवत्येव, समर्थसूत्रे ' उद्गातारः ' इति भाष्यप्रयोगात् ॥

(मू० २२९) में नप्तृ-आदि शब्दोंका ग्रहण नियमके लिये है ।

१ जो वार्तिक जिस सूत्रका अर्थ पूर्ण करती है, उसमे उस सूत्रकाभी अनुवृत्तिसे अर्थ आ जाता है, इसी कारण यहा (मू० २३५) से अजादि-सुप्का अर्थ किया ।

२ कन्यैवाक्षतयोनिर्या पाणिग्रहणदूषिता । पुनर्भू प्रथमा प्रोक्ता पुन संस्कारकर्मणा॥

३ सिद्धे सति आरभ्यमाणो विधिर्नियमार्थ —उणादिनिष्पन्नाना तृन्तृचप्रत्ययान्ताना सज्ञाशब्दाना चेदुपधाया दीर्घस्तर्हि नप्त्रादीनामेवेति नियमार्थम् । महाभाष्यमते तृणादिघटकतृप्रत्यये सानुबन्धकत्वाभावादिद नियमवर्णनमसंगतमेवेति ध्येयम् ।

४ शङ्का—तृन्-तृच्-प्रत्ययान्त कहनेहीसे 'नप्तृ' आदि शब्दोका ग्रहण हो जाता, फिर यह शब्द (मू० २२८) में क्यों ग्रहण करे ? समाधान—व्युत्पत्ति पक्षमें यदि उणादिसिद्ध

इस कारण पितृ-भ्रातृ आदिशब्दोंकी उपधाकू (सू० २२९) से दीर्घ नहीं होता । परन्तु उद्गातृ-शब्दकी उपाधाकू दीर्घ होताही है, कारण कि–समर्थ-सूत्रमें 'उद्गातारः' ऐसा भाष्यका प्रयोग है, यदि दीर्घ न होता तौ समर्थ-सूत्रमें 'उद्गातरः' रूप लिखना था ॥ पितरौ । पितरः॥ शेषं धातृवत ॥शेष रूप धातृकी सदृश जानो॥ एवं जामात्रादयः ॥ इसी प्रकार जामातृ–(कन्यापति) आदिशब्दोंके रूप होते है ॥ नृ–(मनुष्य) । ना । नरौ २ । नरः । नरम् । नॄन् । न्रा । नृभ्याम् ३ । नृभिः । न्रे । नृभ्यः २ । नुः २ । न्रोः । नृ+आम् (सू० १६८) से । नृ+नाम् ॥

२३८ नृ च । ६ । ४ । ६ ॥

(नृ लुप्तषष्ठीकम्पदम् । च-अव्ययपदम् ॥) अस्य नामि वा दीर्घः ॥

यदि नाम् परे होय तौ इस नृ-शब्दकू विकल्पसे दीर्घ हो(सू०२३७) नॄणाम् , नृणाम् । नरि । नृषु । हे नः।इत्यादि । गो–(गाय)। गो+सु–॥

२३९ गोतो णित् । ७ । १ । ९० ॥

(गोत. पञ्च० । णित्–प्रथमा० ॥) ओकाराद्विहित सर्वनामस्थानं णिद्वत्स्यात् ॥

जैसे यहां गो-शब्दसे विहित है इसी प्रकार ओकारसे विधान किया हुआ सर्वनामस्थान णित्की तुल्य हो, अर्थात्–जो णित्कू कार्य होता है वोही उस सर्वनामस्थानकू मानकर कार्य हो । पूर्वोक्त उदाहरणमें सु-कू णित् मानकर (सू० २०३) से ओकू औ वृद्धि होकर सकारकी विसर्ग हो गई । गौः । गो+औ–(सू० २०३ । २७) से । गावौ २ । गावः । गो+अम्–॥

तृन्-तृच-प्रत्ययान्तकी दीर्घ होय तौ केवल नप्तृ-आदिकोंको होय, औरोंको नहीं, यदि 'नप्तृ' आदिका ग्रहण पृथक न करते तौ "नप्तृ, नेष्टृ, त्वष्टृ, होतृ, पोतृ, भ्रातृ, जामातृ, मातृ, पितृ, दुहितृ" इन सबही उणादिशब्दोंकू दीर्घ हो जाता ।

१ नृशब्दमें 'उपधाकू दीर्घ न होना' और (सू०२३८) के कार्यसे अतिरिक्त बाकी सारे कार्य धातृशब्दकी सदृश हुए हैं, इस कारण उसमें सम्पूर्ण सूत्रोंका विवरण नहीं किया ।

२४० औतोऽम्शसोः । ६ । १ । ९३ ॥

(आ-लुप्तप्रथमान्त प० । ओतः-पच० । अम्शसोः-षष्ठ्य० ॥) ओकारादम्शसोरचि परे आकार एकादेशः स्यात् ॥

यदि ओकारसैं अम् वा शस्का अच् परे होय तौ दोनोंके स्थानमें आकार एकादेश हो । इस सूत्रनें (मू० २३९) कू बाध दिया । गाम् । गो+शस्-(मू० १५६ । २४०) सैं । गाः । गो+टा-(मू० १४९ । २७) सैं । गवा । गोभ्याम् ३ । गोभिः । गवे । गोभ्यः २ । गो+ङसि-(मू० १५६ । ३४) गो+अस्-(मू० १९४ । १२५ । ११३) गोः २ । गवोः २ । गवाम् । गवि । गोषु ॥ रै-(द्रव्य) । रै+सु-॥

२४१ रायो हलि । ७ । २ । ८५ ॥

(रायः-षष्ठ्यन्तम् । हलि-सप्तम्यन्तम् ॥) रै-शब्दस्याकारादेशो हलि विभक्तौ । अचि आयादेशः ॥

यदि हलादि-विभक्ति परे होय तौ रै-शब्दकू आकारान्त आदेश हो । और अजादि-विभक्ति परे रहते (मू० २७) सैं आय्-आदेश हो । सकारकी विसर्ग हो गई । राः । रायौ २ । रायः ४ । रायम् । राया । राभ्याम् ३ । राभिः । राये । राभ्यः २ । रायोः २ । रायाम् । रायि । रासु ॥ ग्लौ-(चन्द्रमा) । ग्लौः । ग्लावौ २ । ग्लावः । ग्लावम् । ग्लावः । ग्लावा । ग्लौभ्याम् ३ । ग्लौभिः । ग्लावे । ग्लौभ्यः । ग्लावः २ । ग्लावोः २ । ग्लावाम् । ग्लावि । ग्लौषु । हे ग्लौः । हे ग्लावौ । हे ग्लावः ॥

॥ इत्यजन्ताः पुल्लिङ्गाः ॥

अथाऽजन्ताः स्त्रीलिङ्गाः ।

रमा-(लक्ष्मी) । रमा+सु-(मू० ३४ । २००) सैं सकारका लोप हो गया, कारण कि, रमाशब्द दीर्घ-आबन्त है । रमा । रमा+औ-॥

२४२ औङ आपः । ७ । १ । १८ ॥

(औङः-षष्ठ्य० । आपः-पचम्य० ॥) आबन्तादङ्गात्परस्यौङः शी स्यात् ॥

आबन्त-अङ्गसे परे औङ्कू शी-आदेश हो ॥ 'औङ्' इत्यौकारविभक्तेः संज्ञा ॥ औकार-विभक्ति (प्रथमा-द्वितीयाका द्विवचन) का नाम औङ् है । रमा+शी–(मू० १५६ । ३३) से । रमे २ । रमा+जस्–(मू० १४९।१४७।१२५।११३) से । रमाः । हे रमा+सु–॥

२४३ सम्बुद्धौ च । ७ । ३ । १०६ ॥

(सम्बुद्धौ सप्त० । च अव्ययप० ॥) आप एकारः स्यात्सम्बुद्धौ ॥

सम्बुद्धि परे रहते आप्-कू ए-कार हो । हे रमे+सु–(मू० ३४ । १५४) से । हे रमे । हे रमा+औ–(मू०२४२।३३) से । हे रमे । हे रमाः । रमाम् । रमाः । रमा+टा–(मू०१४९) से । रमा+आ-॥

२४४ आङि चापः । ७ । ३ । १०५ ॥

(आङि-सप्त० । च अव्यय० । आपः-पष्ठ्यन्तम् ॥) औङि ओसि चाप एकारः स्यात् ॥

आङ् और ओस् परे रहते आबन्तकू एकार हो । पूर्वोक्त उदाहरणमें आङ् परे है इस कारण रमाकू 'ए' हो गया । रमे+आ–(मू० २७) से । रमया । रमाभ्याम् ३ । रमाभिः । रमा+ङे–(मू०१५६) से । रमा+ए–॥

२४५ याडापः । ७ । ३ । ११३ ॥

(याट् प्रथ० । आपः पष्ठ्यन्तम् ॥) आपो ङितो याडागमः ॥

आबन्तसे ङित् (ङे-ङसि-ङस्-ङि) सुप् परे होय तो याट्का आगम हो । याट् (मू० १०४) के अनुसार ङितसुपके पहले होता है, और (मू०३) से ट-कारकी इत्संज्ञा हो जाती है । रमा+या+ए (मू ३९) से । रमायै । रमाभ्यः २ । रमा+अ (ङ) सि (मू० २४५ । ५३ । ३४।१२५।११३) के अनुसार । रमायाः २ । रमा+ओस्–(मू०२४४ । २७ । १२५।११३) से । रमयोः २ । रमा+आम्–(मू० १६८ । १५८) से । रमाणाम् । रमा+ङि । यहां

१ आर्ङिति टासंज्ञा प्राचाम् ।

(सू० २४५) से याट् हुआ, और (सू० २२०) से ङि-कू आम् हो गया तौ। रमा+या+आम्–(सू० ५३) से । रमायाम् । रमासु॥ एवं दुर्गाम्बिकादयः ॥ इसी प्रकार दुर्गा तथा अम्बिकादिक आबन्त स्त्रीलिंगवाची शब्दोंके रूप होते हैं ॥ सर्वा–(स्त्रीवाचक-सर्वनाम) । सर्वा । सर्वे २ । सर्वाः २ । सर्वाम् । सर्वया । सर्वाभ्याम् ३ । सर्वाभिः । सर्वा+ङे (ए)–॥

२४६ सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च । ७ । ३ । ११४ ॥

(सर्वनाम्नः-पञ्च० । स्याट्-प्रथ० । ह्रस्व-प्र० । च-अव्यय० ॥) आबन्तात्सर्वनाम्नो ङितः स्याट् स्यादापश्च ह्रस्वः ॥

आबन्त-सर्वनामसे परे ङित्-सुप्कू स्याट्का आगम हो, और आबन्त-अङ्गकू ह्रस्व हो । स्याट् (सू० १०४) के अनुसार आदिमें होता है । और (सू० ३) से टकारका लोप हो जाता है । सर्व+स्या+ए–(सू० ३९) से । सर्वस्यै । सर्वाभ्यः २ । सर्वा+ङसि–(सू० १५६ । ३४ । २४६) से । सर्व+स्या+अस्–(सू० ५३) से । सर्वस्या+स्–(सू० १२५ । ११३) से । सर्वस्याः २ । सर्वयोः २ । सर्वा+आम् (सू० १७५) से । सर्वासाम् । सर्वा+ङि (सू० २४६ । २२०) से । सर्वस्याम् । सर्वासु । हे सर्वे २ । हे सर्वाः ॥ एवं विश्वादय आबन्ताः ॥ इसी प्रकार आबन्त-स्त्रीलिंगवाची सर्वनाम-विश्वादिक शब्दोंके रूप होते हैं ॥ उत्तरपूर्वा–(जिसके पहले उत्तर दिशा हो) । उत्तरपूर्वा । उत्तरपूर्वे २ । उत्तरपूर्वाः २ । उत्तरपूर्वाम् । उत्तरपूर्वया । उत्तरपूर्वाभ्याम् ३ । उत्तरपूर्वाभिः । उत्तरपूर्वा+ङे (ए)–॥

२४७ विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ । १ । १ । २८ ॥

(विभाषा-विकल्पार्थकमव्ययपदम् । दिक्समासे-सप्त० । बहुव्रीहौ-सप्तम्यन्तम् ॥) अत्र सर्वनामता वा स्यात् ॥

१ जो पुंल्लिंगमें अकारान्त शब्द होते हैं, जब उनको स्त्रीवाची किया जाता है तब "अजाद्यतष्टाप् ४ । १ । ४॥" स्त्रीप्रत्ययके सूत्रमें टाप् होकर वोह शब्द दीर्घ हो जाता है, जैसे–सर्व+आ–सर्वा इत्यादि ।

सर्वनाम-शब्दोंकी दिशावाचक बहुव्रीहिसमास (मू० १०४९) में विकल्पसे सर्वनामसंज्ञा हो। जब सर्वनामसंज्ञा हुई तौ (मू० २४६) से स्याट् हो गया। उत्तरपूर्वस्यै। जब सर्वनामसंज्ञा न हुई तौ (मू० २४५) से याट् हो गया। उत्तरपूर्वायै। उत्तरपूर्वाभ्यः २। उत्तरपूर्वा+ङ (अ) सि। यहां जब (मू० २४७) से सर्वनामसंज्ञा हुई तौ (मू० २४६) से स्याट् हो गया। उत्तरपूर्वस्याः २। जब सर्वनामसंज्ञा न हुई तौ (मू० २४५) से याट् हो गया। उत्तरपूर्वायाः २। उत्तरपूर्वयोः २। उत्तरपूर्वासाम्। उत्तरपूर्वा+ङि (मू० २४७। २४६। २२०) से। उत्तरपूर्वस्याम्। वा (मू० २४५। २२०) से। उत्तरपूर्वायाम्। उत्तरपूर्वासु। हे उत्तरपूर्वे२। हे उत्तरपूर्वाः। द्वितीया, तृतीया—इन दोशब्दोंके रूप (मू० १८१) के अनुसार ङित्-सुप् परे रहते विकल्पसे सर्वनामसंज्ञा होनेके कारण एकवार (मू०२४६) से। द्वितीयस्यै। और एकवार। (मू० २४५) के अनुसार। द्वितीयायै। इत्यादिक रूप होते हैं,शेषरूप रमा-शब्दकी नाईं जानो ॥ एवं तृतीया ॥ इसी प्रकार तृतीया-शब्दके रूप जानो॥ अम्बा—(माता)। अम्बा। अम्बे। अम्बाः। हे अम्बा+सु—(मू० २१७) से ह्रस्व हो गया (मू० १५४) से 'स' का लोप हो गया। हे अम्ब। शेषं रमावत्। शेष सम्पूर्ण रूप रमा-शब्दकी सदृश होते हैं ॥ एवं अक्का—अल्ला॥ इसी अम्बाशब्दकी सदृश अक्का—(माता) और अल्ला—(माता) शब्दके रूपभी होते हैं ॥ जरा—(बुढापा)। जरा+सु (मू० २००) से 'सु' का लोप हो गया। जरा। जरा+औ (मू०१८२) से विकल्प करके जरस्-आदेश हो गया—। जरसौ। जो जरस् आदेश न हुआ तौ—। जरा+औ—(मू० २१२) से औ-को शी हो गई (मू०१५६। ३३) से—। जरे। इत्यादि ॥ पक्षे हलादौ च रमावत् ॥ एकपक्ष (जहां जरस् नहीं होता उस) में और हलादि-विभक्तिमें रमा-शब्दकी समान रूप जानो ॥ गोपा विश्वपावत ॥ गोपा—(उपकार करनेवाला) शब्दके

रूप विश्वपा-(गोपा । गोपे, इत्यादिक) की समान जानो ॥ मतिः प्रायेण हरिवत् ॥ मति-(बुद्धि) शब्दके रूप प्रायः हरिकी सदृश होते हैं ॥ अन्तर इतनाही है-। मति+शस् (मू०१५६ । १४७) से-। मती-स् ॥ स्त्रीत्वान्नत्वाभावः ॥ स्त्रीलिंग होनेके कारण (मू० १५७) से न-कार नहीं होता, तौ (मू० १२५ । ११३) से । मतीः । मति+टा । यहांभी स्त्रीत्व होनेसे (मू० १९२) से ' टा ' कू ' ना ' नहीं हुआ तौ (मू० १४९ । १९) से । मत्या । मति-भ्याम् ३ । मतिभिः । मति+ङे (ए)-॥

२४८ ङिति ह्रस्वश्च । १ । ४ । ६ ॥

(ङिति-सप्त० । ह्रस्वः-प्रथ० । च-अव्ययपदम् ॥) इयङुवङ्स्थानौ-स्त्रीशब्दभिन्नौ नित्यस्त्रीलिगावीदूतौ ह्रस्वौ च इउवर्णौ स्त्रियां वा नदी सञ्ज्ञौ स्तो ङिति ॥

इयङ् और उवङ् जिनकू होते हो, स्त्री-शब्दकू छोड़कर ऐसे जो नित्यस्त्रीलिंगवाची ईकारान्त और ऊकारान्त शब्द तथा ह्रस्व इकारान्त उकारान्तभी शब्द स्त्रीलिंगमें विकल्पसे नदी-संज्ञक हों, यदि ङित् (जिसके ' ङ ' की इत्संज्ञा हो) सुप् परे हो तौ । मति-शब्द ह्रस्व-इकारान्त है नदीसंज्ञा हो गई तौ (मू०२१८) से । मत्यै । वा (मू०१९१ । १९३।२७) से । मतये । मतिभ्यः २ । मत्याः२। मतेः २ । मत्योः २ । मति+आम् (मू०१६८।१६९) से । मतीनाम् । मति+ङि-॥

२४९ इदुद्भ्याम् । ७ । ३ । ११७॥

इदुद्भ्यां नदीसञ्ज्ञकाभ्याम्परस्य ङेराम् । औत्सूत्रापवादः ॥

नदीसंज्ञक-इदन्त और उदन्तसे परे जो ङि उसको आम् हो । यह सूत्र औत्-(मू० २०५) सूत्रका अपवाद है । मति+आम् (मू०१९) से।मत्याम्, मति+ङि (मू०१९५) से । मत+औ (मू० ३९) से मतौ । मतिषु । हे मते॥ एवम्बुद्ध्यादयः ॥ इसी प्रकार बुद्धि-आदि इदन्त-शब्दोंके रूप होते हैं ॥ त्रि-(तीन)। त्रि+जस् (मू०१४९)-॥

२५० त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ । ७ । २ । ९९ ॥

(त्रिचतुरोः-षष्ठ्यन्तम् । स्त्रियाम्-सप्त० । तिसृचतसृ-प्रथ० ॥) स्त्रीलिङ्गयोरेतयोरेतावादेशौ स्तो विभक्तौ ॥

स्त्रीलिंगवाची त्रि और चतुर्-शब्दकू क्रमसे तिसृ और चतसृ आदेश हों विभक्ति परे रहते । तिसृ+अस्-॥

२५१ अचि र ऋतः । ७ । २ । १०० ॥

(अचि-सप्त० । रः-प्रथमा० । ऋतः-षष्ठ्यन्तम् ॥) तिसृ चतसृ एतयोर्ऋकारस्य रेफादेशः स्यादचि ॥

अच् परे रहते तिसृ और चतसृ-के ऋकारकू र आदेश हो ॥ गुणदीर्घोत्वानामपवादः ॥ यह रेफ (र्) आदेश गुण-(सू० १८९ । २०७) तथा दीर्घ-(सू०१४७) और उत्व-(सू०२३१) का बाधक है। तिस्रः २ । तिसृभिः । तिसृभ्य २ । तिसृ+आम् (सू० २३३) से तिसृ+नाम् । यहां (सू० १६९) से दीर्घकी प्राप्ति हुई तो-॥

२५२ न तिसृचतसृ[2] । ६ । ४ । ४ ॥

(न निषेधार्थकमव्ययपदम् । तिसृचतसृ लुप्तषष्ठीकम्पदम् ॥) एतयोर्नामि दीर्घो न ॥

तिसृ और चतसृ-कू नाम् परे रहते दीर्घ न हो । (सू०२३७) से तिसृणाम् । तिसृषु । द्वा[3]+औ (सू० २४२ । १५६ । ३३) से । द्वे २ । द्वाभ्याम् ३ । द्वा+ओस (ः) (सू०२४४।२७) से। द्वयोः२। हे द्वे ॥ गौरी+सु । मे दीर्घ-ङ्यन्त होनेसे (सू०२००) करके सुका लोप हो गया । गौरी । गौर्यौ २ । गौर्यः । गौरीम् । गौरीः। गौर्य्या । गौरीभ्याम् ३ । गौरीभिः । गौरी+ङे (ए) (सू० २१८ ।

१ सू० २३१ से उत्व गौणमें प्राप्त है मुख्यमें नहीं ('प्रियास्तिस्रो यस्य' इति विग्रहे,-प्रियतिसृ) प्रियतिसृ+आ=प्रियतिस्रा, इत्यादि गौण (जहां त्रि 'तिसृ' मुख्य न हो) मेंभी रादेश बाध लेता है । २ 'तिसृचतसृ' इति लुप्तषष्ठीकं पदमेतदारम्भसामर्थ्याद्रादेशाभावे नाम्नि च सिद्ध 'नुमचिर०' इति वार्त्तिके अचिग्रहणं न विधेयम् । ३ द्विशब्दसे 'त्यदादीनाम' होकर अदन्त हो जानेके कारण 'अजाद्यतष्टाप्' से टाप् (आ) प्रत्यय होता है, तब द्वा सिद्ध होता है ।

२१९ । १९) से । गौर्यौ । गौरीभ्यः २ । गौर्योः २ । गौर्य्योः २। गौरी+आम् । नद्यन्त होनेके कारण (मू०१६८।१५८) से । गौरीणाम् । गौरी+ङि-(मू०२२०।१९) से । गौर्याम् । गौरीषु । हे गौरी+सु-(मू० २१७ । १५४) से । हे गौरि ॥ एवं नद्यादयः ॥ इसी प्रकार नदी आदिक शब्द जानो । लक्ष्मीः । यहां (मू०२००) से सुका लोप नहीं होता, क्योंकि लक्ष्मी-शब्द ङ्यन्त नहीं है ॥ शेषं गौरीवत्॥ शेष रूप गौरी-शब्दकी सदृश होते हैं॥एवं तरीतन्त्र्यादयः॥ इसी प्रकार तरी-(नौका) तन्त्री-(वीणा) आदि शब्द होते हैं । स्त्री+सु (मू०२८०) से । स्त्री । हे स्त्री+सु (मू०२१७।१५४) से । हे स्त्रि । स्त्री+औ-॥

२५३ स्त्रियाः । ६ । ४ । ७८ ॥

(षष्ठ्यन्तम् ॥) अस्येयङ् स्यादजादौ प्रत्यये परे ॥

यदि अजादि-प्रत्यय परे हो तौ स्त्री-शब्दकू इयङ् आदेश हो जाय । स्त्रियौ २ । स्त्रियः । स्त्री+अम्-॥

२५४ वाम्शसोः । ६ । ४ । ८० ॥

(वा-वि०मव्ययप० । अम्शसोः-सप्तम्यन्तम् ॥) अमि शसि च परे स्त्रियाः इयङ् वा स्यात् ॥

अम् और शस् परे रहै तौ स्त्रीकू इयङ् आदेश विकल्प करके होय । स्त्रियम् । वा (मू० १५५) से । स्त्रीम् । स्त्री+शस्-स्त्रियः, वा (मू० १४७) से । स्त्रीः । स्त्रिया । स्त्रीभ्याम् ३ । स्त्रीभिः । स्त्री+ङे (मू०२१८।२१९।१५३) से। स्त्रियै। स्त्रीभ्यः २ । स्त्रियाः२। स्त्रियोः २ । स्त्री+आम् । परत्वान्नुट् । 'स्त्रियाः' सूत्रसे 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' अष्टाध्यायीके क्रमानुसार पर है इस कारण आम् परे रहते नुट्ही होता है । स्त्रीणाम । स्त्री+ङि-(मू०२२० । २५३) से । स्त्रियाम् । स्त्रीषु ॥ श्री-(शोभा) । श्रीः । श्री+औ (मू०२२१)

१ अवीतन्त्रीतरीलक्ष्मीधीह्रीश्रीणामुणादिषु ।
सप्तस्त्रीलिङ्गशब्दाना न सुलोप कदाचन ॥ १ ॥

से । श्रियौ २ । श्रियः २ । श्रियम् । श्रिया। श्रीभ्याम् ३ ।श्रीभिः। श्री+ङे–(सू०२४८।२१८।२२१) से । श्रियै, वा श्रिये । श्रीभ्यः२। श्रियाः २, श्रियः २ । श्रियोः २ । श्रि+आम्–॥

२५५ वामि । १ । ४ ।५ ॥

(वा-वि०म०प० । आमि-सप्तम्य० ॥) इयङुवङ्स्थानौ स्त्र्याख्यौ यू आमि वा नदी-संज्ञौ स्तो नतु स्त्री ॥

जिन ईकारान्त-ऊकारान्त शब्दोंकू इयङ् उवङ् होते है वोह शब्द आम् परे रहते विकल्पसे नदीसंज्ञक हो,स्त्री-शब्दको छोडकर अर्थात् यह विकल्पविधि स्त्री-शब्दमें न लगे । नदीत्वपक्षमें (सू०१६८)से । श्रीणाम् , वा (सू०२२१) से । श्रियाम । श्रियाम् , श्रियि। श्रीषु। हे श्री+सु–॥

२५६ नेयङुवङ्स्थानावस्त्री । १ । ४ । ४ ॥

(न निपा०म०प० । इयङुवङ्स्थानौ प्रथ० । अस्त्री-लु० प० प० ॥) इयङुवङोः स्थितियोग्यौ यावीतौ नदीसंज्ञौ न स्तो नतु स्त्री ॥ •

जिन ईकारान्त-ऊकारान्त शब्दोंकू इयङ् उवङ् होते हो उनकी नदीसंज्ञा न हो स्त्रीशब्दको त्यागकर । इस सूत्रके अनुसार नदीसं-ज्ञा न होनेके कारण (सू०२१७) से ' श्री ' कू ह्रस्व न हुआ । हे श्रीः ॥ धेनुर्मतिवत् ॥ धेनु–(गौ) के रूप मति-शब्दकी सदृश होते है ॥ क्रोष्टु–(गीदडी) । क्रोष्टु+सु–॥

२५७ स्त्रियाञ्च । ७ । १ । ९६ ॥

(स्त्रियाम्–सप्त० । च-अव्ययपदम ॥) स्त्रीवाची क्रोष्टुशब्दस्तृजन्त-वद्रूप लभते ॥

स्त्रीवाचक क्रोष्टु-शब्द तृच्-प्रत्ययान्तकी समान हो जाय । क्रोष्टृ+सु । ऐसा होनेपर–॥

२५८ ऋन्नेभ्यो ङीप् । ४ । १ । ५ ॥

(ऋन्नेभ्यः–पच० । ङीप्–प्रथमा० ॥) ऋदन्तेभ्यो नान्तेभ्यश्च स्त्रियां ङीप् स्यात् ॥

ऋत् जिनके अन्तमें हो उन तथा नकारान्त-शब्दोंसे परे ङीप्-प्रत्यय.हो, (मू० १५६) से ङ-कारकी इत्संज्ञा हो गई (मू० ३) से पकारकी इत्संज्ञा हो गई । क्रोष्टृ+ई+सु (मू०१९) से । क्रोष्ट्री +सु-(मू०२००) से । क्रोष्ट्री ॥ शेषं गौरीवत् ॥ शेष रूप गौरीकी समान होते हैं । भ्रू-(भौं) शब्दके रूप श्री-शब्दकी समान होते हैं ॥ स्वयम्भूः स्वभूवत् ॥ स्वयंभू-(ब्रह्मा) शब्दके रूप स्वभू-शब्दकी समान जानो ॥ स्वसृ-(बहिन) । स्वसृ+सु । यहां (मू० १५८) से ङीप्की प्राप्ति हुई तो, फिर-॥

२५९ न षट्स्वस्रादिभ्यः । ४ । १ । १० ॥

(न-नि० म० प० । षट्स्वस्रादिभ्यः-पच० ॥) ङीप्टापौ न स्तः ॥

षट्संज्ञक-(मू०२०८) और स्वसृ-आदि (सात) शब्दोंसे ङीप् और टाप्-प्रत्यय न होय ॥ " स्वसा तिस्रश्चतस्रश्च ननान्दा दुहिता तथा । याता मातेति सप्तैते स्वस्रादय उदाहृताः ॥ १ ॥ " स्वसा-(बहिन १) तिस्र-(तीन २) चतस्र-(चार ३) ननान्दा-(ननद ४) दुहिता-(बेटी५) याता-(भाईकी स्त्री६) माता-(जननी ७) यह सात शब्द स्वसृ-आदि कहे जाते हैं । इसके अनुसार ङीप् न हुआ तो (मू० २२८ । २२९ । ३ । ३४) से । स्वसा-न्+सु (मू० २०० । २०१) से । स्वसा । स्वसृ+औ (मू० २२७ । ३५ । २२९) से । स्वसारौ २ । स्वसारः । स्वसारम् । स्वसृ+शस् (मू० १४७ । १२५ । ११३) से । स्वसॄः । स्वस्रा । स्वसृभ्याम् ३ । स्वसृभिः । स्वस्रे । स्वसृभ्यः २ । स्वसृ+ङसि (मू० २३१ । ३५ । २३२ । ११३) से । स्वसुः २ । स्वस्रोः २ । स्वसॄणाम् । स्वसृ+ङि (इ) (मू० २२७ । ३५) से । स्वसरि । स्वसृषु । हे स्वसृ+सु (मू० २२७ । ३५ । २३२ । ११३) से । हे स्वसः । इत्यादि ॥ माता पितृवत् , शसि मातॄः ॥ मातृ-(माता) के रूप पितृ-शब्दके समान होते हैं, केवल शस्में (मू० १५७) से सकारकू नकार न होकर-। मातॄः । बन जाता है ॥ द्यौर्गोवत् । राः पुंवत् । नौर्ग्लौवत् ॥ द्यो-(आ-

काश) के रूप गो-शब्दकी समान जानो । रै-(धन) शब्दके रूप जैसे पुंल्लिंगमें होते हैं उसीप्रकार यहांभी होते हैं। नौ-(घन्नई) शब्दके रूप ग्लौ-शब्दके समान होते हैं ॥

॥ इत्यजन्ताः स्त्रीलिंगाः ॥

अथाजन्तनपुंसकलिङ्गम् ।

२६० अतोऽम् । ७ । १ । २४ ॥

(अतः-पञ्च० । अम्-प्रथमा० ॥) अतोऽङ्गात् क्लीबात् स्वमोरम्[3] ॥

अदन्त नपुंसकलिंग अंगसे परे जो सु और अम् उनको अम् हो। ज्ञान+सु = ज्ञान+अम (सू० १५५) से । ज्ञानम् । ज्ञान+औ-॥

२६१ नपुंसकाच्च । ७ । १ । १९ ॥

(नपुंसकात्-पञ्च० । च-अव्ययपदम् ॥) क्लीबादौङः शी स्यात् । भसंज्ञायाम् ॥

नपुंसक-लिंगसे परे औङ्(औ) को शी हो । ज्ञान+शी (सू० १५६) से श-कारकी इत्संज्ञा होकर (सू० १८६) से भसंज्ञा हुई तो-॥

२६२ यस्येति च । ६ । ४ । १४८ ॥

(यस्य-षष्ठ्य० । इति-अव्य० । च-अव्ययपदम् ॥) ईकारे तद्धिते च परे भस्येवर्णावर्णयोर्लोपः । इत्यल्लोपे प्राप्ते ॥

ईकार और तद्धित-प्रत्यय परे रहते भसंज्ञक-इवर्ण और अवर्ण-का लोप हो । इस सूत्रसे ज्ञान-शब्दके नकारोत्तरवर्त्ती अकारके लोपकी प्राप्ति होनेपर-॥

२६३ (औङः श्यां प्रतिषेधो वाच्यः) ॥

१ मूल २४९ और २५० में गो-शब्दके रूप देखने चाहिये । २ पुंल्लिंगमें रै शब्दके रूप, और ग्लौ-शब्दके मू० २५१ में देखो । ३ अमोऽम्ग्रहण लुग्व्यावृत्त्यर्थम् । ४ औङ् इत्यौकारविभक्तेः संज्ञा ।

यदि औ-के स्थानमें हुई शी परे हो तौ अकार और इकारके लोपका निषेध है। (मू०३३) से। ज्ञाने २। ज्ञान+जस्-॥

२६४ जश्शसोः शिः। ७। १। २०॥

(जश्शसोः-षष्ठ्य० । शिः-प्रथ० ॥) क्लीबादनयोः शिः स्यात् ॥

नपुंसक-अंगसे परे जस् और शस्कू शि आदेश हो॥ ज्ञान+शि-॥

२६५ शि सर्वनामस्थानम्। १। १। ४२॥

(शि-प्र० । सर्वनामस्थानम्-प्रथ०॥) शि सर्वनामस्थानसंज्ञं स्यात् ॥

शि-आदेश सर्वनामस्थान-संज्ञक हो ॥

२६६ नपुंसकस्य झलचः। ७। १। ७२॥

(नपुंसकस्य-षष्ठ्य० । झलचः-षष्ठ्यन्तम् ॥) झलन्तस्याजन्तस्य च क्लीबस्य नुम् सर्वनामस्थाने परे ॥

सर्वनामस्थान परे रहते झलन्त और अजन्त नपुंसकअंगकू नुम्-का आगम हो। नुम् अंगसे पूर्व हो वा पीछे, यह शंका होनेपर-॥

२६७ मिदचोऽन्त्यात्परः। १। १। ४७॥

(मित्-प्र० । अचः-षष्ठ्य० । अत्यात्-प० । परः-प्रथ० ॥) अचा-म्मध्ये योऽन्त्यस्तस्मात्परस्तस्यैवान्तावयवो मित् स्यात् ॥

मित् (जिसके मकारकी इत्संज्ञा हो) आगम जिसको विधान किया है उसके अचोंमें जो अन्त्यका अच् उससे परे हो,और जिससे विधान किया है उसकाही अवयव माना जाय । ज्ञान+नुम्+शि । (मू०३।३४) से उम्की इत्संज्ञा हो गई। (मू०१५६) से शकार-की इत्संज्ञा हो गई। (मू०१९८) से उपधाके दीर्घ हो गया। ज्ञा-नानि २॥ पुनरपि तद्वत् ॥ द्वितीयामेंभी इसी प्रकार रूप होते हैं॥ शेषं पुंवत् ॥ शेष रूप अदन्त शब्दकी समान पुल्लिंगवत् जानो। हे ज्ञान+स्-(मू०२६०। १५५) से। हे ज्ञानम् ॥ एङ्ह्रस्वादिति हल्मात्रलोपः॥ (मू०१९४) से हल्मात्रका लोप हो गया। हे

---

१ अच इति निर्धारणे षष्ठी ।

ज्ञान ॥ एवं धनवनफलादयः ॥ इसी प्रकार ह्रस्व अकारान्त धन (द्रव्य), वन और फल आदिक नपुंसक-शब्दोंके रूप होते हैं । कतर+सु-॥

२६८ अद्ड्डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः । ७ । १ । २५ ॥

(अद्ड-प्रथमांतम् । डतरादिभ्यः-पच० । पञ्चभ्यः-पच० ॥) पञ्चभ्यो डतरादिभ्यः क्लीबेभ्यः स्वमोरद्डादेशः स्यात् ॥

नपुंसकवाची पांच डतरादि अर्थात्-डतर, डतम, अन्य, अन्यतर, इतर, इन शब्दोंसे परे सु और अम्‌को अद्ड् (अद्) आदेश हो । कतर+अद् । रहा तब-॥

२६९ टेः । ६ । ४ । १४३ ॥

(षष्ठ्यन्तम् ॥) डिति परे भस्य टेर्लोपः स्यात् ॥

डित् (डकार इत्संज्ञक) प्रत्यय परे रहते भसंज्ञक-टि (मू०४२) का लोप हो । कतरद् (मू०१६६), कतरत् २ । कतरे २ । कतराणि २ । हे कतरत-द् ॥ शेषं पुंवत् ॥ शेष रूप रामकी सदृश होते हैं॥ एवं-कतमत्, इतरत्, अन्यत्, अन्यतरत ॥ इसी प्रकार कतम आदि शब्दोंके 'कतमत्' आदि रूप होते हैं ॥ अन्यतमशब्दस्य तु अन्यतममित्येव ॥ और अन्यतम-शब्दका तो ' अन्यतमम् ' रूपही होता है (अर्थात्-अन्यतम-शब्द तमप-प्रत्ययान्त होनेसे मू० २६८ का कार्य नहीं होता) ॥

२७० (एकतरात्प्रतिषेधो वाच्यः) ॥

महर्षिकात्यायनजीका मत है कि-एकतरशब्दसे परे पूर्वोक्त विधिका निषेध है, अर्थात्-सु-अम्-कू अद्ड् आदेश नहीं होता। एकतर+सु-(मू०२६०।१५५) । एकतरम् २ । एकतरे २ । एकतराणि, इत्यादि पुल्लिंगके समान जानो ॥ श्रीपा-(लक्ष्मीकी रक्षा करनेवाला)। श्रीपा+सु-॥

२७१ ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य । १ । २ । ४७ ॥

(ह्रस्वः-प्र० । नपुंसके-स० । प्रातिपदिक स्य-षष्ठ्यन्तम् ॥) क्लीबेऽजन्तस्य प्रातिपदिकस्य ह्रस्वः स्यात् ॥

नपुंसक-लिंगमें (दीर्घ) अजन्त-प्रातिपदि क-संज्ञककू ह्रस्व हो । श्रीप+सु-(मू०२६०।१५५) श्रीपम् ॥ ज्ञानवत् ॥ शेष रूप ज्ञान-शब्दकी समान होते हैं । द्वि+औ (मू० २१४ । २६१ । ३३) द्वे २ ॥ पुंवत् ॥ शेष रूप पुंवत् जानो । त्रि+जस्-(मू० २६४ । २६६ । १०८) त्रीणि २ ॥ पुंवत् ॥ इसकेभी शेष रू प पुंल्लिंग-की समान होते हैं ॥ वारि-(जल) । वारि+सु- ॥

२७१ स्वमोर्नपुंसकात् । ७ । १ । २३ ॥

(स्वमोः-षष्ठ्य०।नपुंसकात्-पञ्चम्यन्तम्॥) नपुंसकादङ्गात्स्वमोर्लुक् स्यात्॥

क्लीब-अंगसे परे सु और अम्-का लुक् (लोप) हो । वारि २ । वारि+औ-॥

२७२ इकोऽचि विभक्तौ । ७ । १ । ७३ ॥

(इकः-षष्ठ्य० । अचि-सप्तम्य० । विभक्तौ-सप्त० ॥) इगन्तस्य क्लीबस्य नुमचि विभक्तौ ॥

जिसके इक अन्तमें हो ऐसे क्लीब-अंगकू नुम् (न्) का आगम हो अजादि-विभक्ति परे रहते । वारि+न्+औ-(मू०२६१ । १५८) वारिणी २ । वारि+जस्-(मू० २६४ । २७२ । १९८ । १५८) वारीणि २ । हे वारि+सु-(मू०२७१) हे वारि ॥ नलुमतेति निषेधस्यानित्यत्वात्पक्षे सम्बुद्धिनिमित्तो गुणः ॥ " न लुमताङ्गस्य " इस निषेधविधिके अनित्य होनेके कारण एकपक्षमें सम्बुद्धिकू गुण (मू०१९०) भी हो जाता है । हे वारे, वारि । वारि+टा-(मू० १९२) वारिणा । वारिभ्याम् ३ । वारिभिः ॥ घेर्ङितीति गुण प्राप्ते ॥ वारि+ङे (ए), यहां (मू० २७२) से नुम् और " घेर्ङिति" से गुणकी प्राप्ति होनेपर-॥

२७३ (वृद्ध्यौत्वतृज्वद्भावगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन)॥

वृद्धि (मू० २०३) औत्व (मू० १९५) तृज्वत्भाव (मू०

२२६) और गुण (सू० १९३) इनकी अपेक्षा (सू० १३३) के अनुसार पूर्वविप्रतिषेधकरके नुम्ही होता है । वारिणे । वारिभ्यः २ । वारिणः २ । वारिणोः २ । वारि+आम (सू० २३३ । १६९) वारीणाम् । वारिणि । वारिषु ॥ दधि-(दही) । दधि २ । दधिनी २ दधीनि २ । दधि+टा (आ)-॥

२७४ अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः । ७ । १ । ७५॥

(अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णाम्-षष्ठ्य० । अनङ्-प्रथ० । उदात्तः-प्रथमान्तम् ॥) एषामुदात्तोऽनङ् स्याट्टादावचि ॥

अस्थि-(हड्डी),दधि-(दही), सक्थि-(जंघा),अक्षि-(नेत्र), इन शब्दोंसे उदात्त अनङ् (अन्) आदेश हो टा-आदि अजादि विभक्ति परे रहते । दध्+अन्+आ-॥

२७५ अल्लोपोऽनः । ६ । ४ । १३४ ॥

(अन्-लुप्तषष्ठी० । लोपः-प्रथ० । अनः-षष्ठ्यन्तम् ॥) अंगावयवोऽसर्वनामस्थानयजादिस्वादिपरे योऽन् तस्याकारस्य लोपः ॥

जो अन् अंगका अवयव हो और उससे सर्वनामस्थानभिन्न यजादि वा स्वादि-प्रत्यय परे हो तो उस अन्के अकारका लोप हो । दध्ना । दधिभ्याम् ३ । दधिभिः । दध्ने । दधिभ्यः २ । दध्नः २ । दध्नोः २ । दध्नाम । दध्+अन्+ङि (इ)-॥

२७६ विभाषा ङिश्योः । ६ । ४ । १३६ ॥

(विभाषा-वि०म०प० । ङिश्योः-सप्तम्यन्तम् ॥) अंगावयवोऽसर्वनामस्थानपरयोऽन् तस्याकारस्य लोपो वा ङिश्योः परयोः ॥

अंगका अवयव जो अन् उसके अकारका लोप विकल्पसे हो सर्वनामस्थानभिन्न ङि और शी परे रहते । दध्नि, दधनि । दधिषु । हे दधे, हे दधि ॥ एवं अस्थिसक्थ्यक्षि ॥ इसी प्रकार अस्थि, सक्थि, अक्षि, शब्दोंके रूप होते हैं ॥ सुधी-(भली बुद्धिवाला) । सुधी+सु-(सू० २७० । २७१) सुधि २ । सुधिनी २ । सुधीनि २ । हे सुधे, हे सुधि । सुधि+टा (आ)-॥

२७७ तृतीयादिषु भाषितपुंस्कम्पुंवद्गालवस्य ।७।१।७४॥

(तृतीयादिषु सप्त० । भाषितपुंस्कम्–प्रथ० । पुंवत्- प्रथ० । गालवस्य-षष्ठ्यन्तम् ॥) प्रवृत्तिनिमित्तैक्ये भाषितपुंस्कमिगन्त क्लीबं पुंवद्वा टादावचि ॥

पुल्लिंगमें कथित इगन्त-क्लीब-शब्द-प्रवृत्तिके[1] निमित्तकी एकतामें विकल्पसे पुल्लिंगके सदृश हो, टा-आदि अच् पर रहते गालव-आचार्यके मतमें । जब पुंवत माना तब (सू० १९२) से । सुधिना, सुधिया । (सू० २२१) सुधिने, सुधिये । सुधिनः, सुधियः ॥ मधु २ । मधुनी २ । मधूनि २ । हे मधु, हे मधो । मधुना ॥ सुलु २ । सुलुनी २ । सुलूनि २ । सुलुना, सुल्वा ॥ धातृ २ । धातृणी २ । धातॄणि २ । हे धातः, हे धातृ । धात्रा, धातृणा ॥ एवं ज्ञात्रादयः॥

२७८ एच इग्घ्रस्वादेशे ।१।१।४८॥

(एचः–षष्ठ्य० । इक्–प्रथ० । ह्रस्वादेशे-सप्तम्यन्तम् ॥) आदिश्यमानेषु ह्रस्वेषु एच इगेव स्यात् ॥

जब एचोंको ह्रस्व (सू० २७०) आदेश किया जाय तो एचोंको इक् अर्थात्–ए-ऐ-को इ ओ-औ-को उ-ही हों । प्रद्यो+सु–(सू० २७० । २७८ । २७१) प्रद्यु २ । प्रद्युनी २ । प्रद्यूनि २ । (सू० २७२) प्रद्युना । प्रद्युभ्याम ३ । प्रद्युभिः । प्रद्युने । प्रद्युभ्यः २ । प्रद्युनः २ । प्रद्युनोः २ । प्रद्यु+आम्–(सू० २३३ । १६९) प्रद्यूनाम् । प्रद्युनि । प्रद्युषु । हे प्रद्यो,हे प्रद्यु ॥ प्ररै–(श्रेष्ठधन) । प्ररै+सु–(सू० २७० । २७८ । २७१) प्ररि २ । प्ररिणी २ । प्ररीणि २ । प्ररिणा । प्ररि+भ्याम् ॥ एकदेशविकृतमनन्यवत् ॥ एकदेशविकारी होनेवाला अन्यकी सदृश न होनेके कारण (सू० २४१)[2] से आकार-आदेश हो जाता है । प्राराभ्याम् ३ । प्राराभिः । (सू०

१ प्रवृत्तिके निमित्तकी एकता उसको कहते हैं, जैसे–सुधी-शब्द तीनों लिङ्गोंमें शोभनबुद्धिके अर्थको लेकर प्रवृत्त होता है, और पीलु-शब्दके प्रवृत्तिके निमित्तकी एकता नहीं है, कारण कि–पीलु-शब्द पुल्लिंगमें वृक्ष और नपुंसकमें फलके अर्थको लेकर प्रवृत्त होता है । २ न लुमताङ्गस्य निषेधस्यानित्यत्वात्पक्षे सर्वद्धिनिमित्तो गुण ।

२७२) । प्ररिणे । प्रराभ्यः २ । प्ररिणः २ । प्ररिणोः २ । प्ररीणाम् । प्ररिणि । प्ररासु । हे प्ररि, हे प्ररे ॥ सुनौ–(शुभ नौका) । सुनु २ । सुनुनी २ । सुनु+जस्–(सू० २६४ । २६५ । १९८) सुनूनि २ । सुनुना । सुनुभ्याम् ३ । सुनुभिः । सुनुने । सुनुभ्यः २ । सुनुनः २ । सुनुनोः २। सुनूनाम् । सुनुनि । सुनुषु । हे सुनो, हे सुनु । हे सुनुनी । हे सुनूनि ॥

॥ इत्यजन्ता नपुंसकलिंगाः ॥

हलन्तपुँल्लिङ्गम् ।

लिह्–(चाटनेवाला) । लिह्+सु (सू० २००) से 'सु' का लोप । लिह् ॥

२७९ हो ढः । ८ । २ । ३१ ॥

(ह –षष्ठ्यन्तम् । ढ प्रथमान्तम् ॥) हस्य ढः स्याज्झलि पदान्ते च ॥

झल् परे रहते अथवा पदान्तमें हकारकू ढ-आदेश हो, लिढ् (सू० १६६ । ८३ । २१)-लिट् , लिड् । लिहौ २ । लिहः २। लिहम् । लिहा । लिड्+भ्याम् , (सू० २७९)-लिड्भ्याम् ३ । लिड्भिः । लिहे । लिड्भ्यः २। लिहः २। लिहोः २ । लिहाम् । लिहि । लिह्+सु–(सू० २७९ । ९१) लिड्+सु (सू० १०३ । ९१) लिट्त्सु, लिट्सु । हे लिट् (ड्)। हे लिहौ । हे लिहः । दुह्+सु(सू० २००) दुह्– ॥

२८० दादेर्धातोर्घः । ८ । २ । ३२॥

(दादेः–षष्ठ्य० । धातोः–षष्ठ्य० । घः–प्रथमान्तम् ॥) उपदेशे दादेर्धातोर्हस्य घः स्याज्झलि पदान्ते च ॥

उपदेशके विषय दकारादि-धातुके हकारकू घकारादेश हो झल् परे रहते वा पदान्तमें । दुघ् ॥

२८१ एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः । ८ । २।३७॥

(एकाचः-षष्ठ्य० । बशः-षष्ठ्य० । भष्-प्रथ० । झषन्तस्य-षष्ठ्य० । स्ध्वोः-सप्तम्यन्तम् ॥) धात्ववयवस्यैकाचो झषन्तस्य बशो भष् से ध्वे पदान्ते च ॥

एकाच्-धातुका अवयव जो झषन्त बश् उसके भष् हो सकार और ध्व-शब्द परे रहते वा पदान्तमें । पूर्वोक्त रूपमें एकाच्-धातु 'दुघ्' है, उसका अवयव है 'दु' वो घ अन्तमें होनेसे झषन्त बश् 'द' है उसको भष् हुआ, (सू० २८) धुघ्-(सू० १६६ । ८३) धुक्, धुग् । दुहौ २ । दुहः २ । दुहम् । दुहा । दुह्+भ्याम् (सू० २८० । २८१ । २१ । ८३) धुग्भ्याम् ३ । धुग्भिः । दुहे । दुहः २। दुहोः २। दुहाम् । दुहि । दुह्+ सुप् (सू० २८०। २८१। २१ । ९१। १७०)-' कषसंयोगे क्षः ' धुक्षु ॥ द्रुह्-(अनिष्टचिन्तन करनेवाला) । द्रुह्+सु (सू०२००) द्रुह्-(सू० २८१) ध्रुह्-॥

२८२ वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम् । ८ । २ । ३३ ॥

(वा-वि०म०प० । द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम्-षष्ठ्य० ॥) एषां हस्य वा घो झलि पदान्ते च ॥

द्रुह्-(द्रोह करना), मुह्-(मोहित होना), ष्णुह् (वमन करना), ष्णिह्-(स्नेह करना), इनके हकारकू घकार विकल्पसे हो झल् परे रहते और पदान्तमें । जिस पक्षमे इस सूत्रसे 'ह' कू 'घ' होता है तब (सू० १६६ । ८३) से 'क' और 'ग' हो जाते हैं । दूसरे पक्षमे-ध्रुह्-के 'ह' कू (सू० २७९ । १६६ । ८३ । २१) से 'ट' और 'ड' होते है । ध्रुक्, ध्रुग्, ध्रुट्, ध्रुड् । द्रुहौ २ । द्रुहः २ । द्रुहम । द्रुहा । द्रुह्+भ्याम (सू० २८२ । १८५। ८३ । २८१)-ध्रुग्भ्याम् ३, वा (सू० २७९ । ८३) ध्रुड्भ्याम् ३ । ध्रुग्भिः, ध्रुड्भिः । द्रुहे । ध्रुग्भ्यः २, ध्रुड्भ्यः २ । द्रुहः २ । द्रुहोः २ । द्रुहाम् । द्रुहि । द्रुह्+सुप् (सू० २८२ । ९१ । १७० । २८१) ध्रुक्षु, वा (सू० २७९ । ८३ । २८१ । १०३) ध्रुट्त्सु-वा (सू २७९ । ९१) ध्रुट्सु । ष्णुह्+सु (सू० २००) ष्णुह्-॥

२८३ धात्वादेः षः सः । ६ । १ । ६४ ॥

(धात्वादेः-षष्ठ्य० । षः-षष्ठ्य० । सः-प्रथमा० ॥) धातुकी आदि-के मूर्द्धन्य-षकारकू दन्त्य-सकार हो ॥ स्नुह् द्रुहवत् ॥

स्नुह-शब्दमें शेष संपूर्ण कार्य द्रुहकी समान होकर उसीकी समान रूप होते हैं ॥ एवं स्निह् ॥ इसी प्रकार स्निह्-आदिके रूप जानो ॥ विश्ववाह्-(संसारका धारण करनेवाला) । विश्ववाह्+सु (सू० २०० । २७० । २६६ । ८३)-विश्ववाट , विश्ववाड् । विश्ववाहौ २ । विश्ववाहः । विश्ववाहम् । विश्ववाह्+शस् (अस्)-॥

२८४ इग्यणः सम्प्रसारणम् । १ । १ । ४५ ॥

(इक्-प्रथ० । यणः-षष्ठ्य० । सम्प्रसारणम्-प्रथमान्तम् ॥) यणः स्थाने प्रयुज्यमानो य इक् स सम्प्रसारणसंज्ञः स्यात् ॥

यणके स्थानमें जो इकका प्रयोग किया जाता है उसको सम्प्र-सारण कहते है ॥

२८५ वाह ऊठ् । ६ । ४ । १३२ ॥

(वाहः षष्ठ्य० । ऊठ्-प्रथमान्तम् ॥) भस्य वाहः सम्प्रसारणमूठ् स्यात् ॥

भसंज्ञक-वाहकू ऊठ् (ऊ) सम्प्रसारण हो । विश्व-वाह्+अस् । का-विश्व+ऊ+आह्+अस् । इस अवस्थामें-॥

२८६ सम्प्रसारणाच्च । ६ । १ । १०८ ॥

(सम्प्रसारणात्-पच० । च-अव्ययपदम् ॥) सम्प्रसारणादचि पूर्वरूपमे-कादेशः ॥

सम्प्रसारणसे यदि अच् परे हो तो पूर्वका रूप हो जाय । विश्व+ऊह्+अस् (सू० ४०) विश्वौहः । विश्ववाह्+टा (आ) (सू० २८५ । २८६ । ४०)-विश्वौहा । विश्ववाह्+भ्याम् (सू० २७९ । ८३)-विश्ववाड्भ्याम् ३ । विश्ववाड्भिः । विश्वौहे । विश्ववाड्भ्यः २ । विश्वौहः २ । विश्वौहोः २ । विश्वौहाम् । विश्वौहि । विश्व-वाह्+सुप् (सू० २७९ । ८३ । १०३ । ९१) विश्ववाट्त्सु, विश्व-वाट्सु ॥ अनडुह्-(वृषभ) । अनडुह्+सु-॥

२८७ चतुरनडुहोरामुदात्तः । ७ । १ । ९८ ॥

(चतुरनडुहोः-षष्ठ्य० । आम्-प्रथ० । उदात्तः-प्रथमा० ॥) अनयोराम् स्यात्सर्वनामस्थाने परे ॥

चतुर् और अनडुह्-शब्दकू उदात्त-आम्का आगम हो सर्वनामस्थान परे रहते । आम्का आगम (सू० २६७) के अनुसार 'उ' के अन्तमें होता है । अनडु+आम्+ह्+सु(सू० १९)-अनड्वाह्+सु-॥

२८८ सावनडुहः । ७ । १ । ८२ ॥

(सौ-सप्त० । अनडुहः-षष्ठ्यन्तम् ॥) अस्य नुम् स्यात्सौ परे ॥

सु परे रहनेपर अनडुह्-शब्दको नुम् (न्) का आगम हो । अनड्वान्+ह्+स् (सू० २०० । २४) -अनड्वान् । अनड्वाहौ २ । अनड्वाहः । हे अनडुह्+सु-॥

२८९ अम् सम्बुद्धौ । ७ । १ । ९९ ॥

(अम् प्रथमा० । सम्बुद्धौ सप्तम्यन्तम् ॥) अनयोरम् स्यात्सम्बुद्धौ ॥

चतुर् और अनडुह्-शब्दकू अम् (अ) आगम हो सम्बुद्धि(सू० १५२) परे रहते । हे अनडुह्+सु (सू० २८८ । २०० । २४)-हे अनड्वन् । अनडुह्+श (अ) स्-अनडुहः । यहां सर्वनामस्थान परे न होनेके कारण (सू० २८७) से आम् नहीं होता । अनडुहा । अनडुह्+भ्याम्-॥

२९० वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः । ८ । २ । ७२ ॥

(वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहाम् षष्ठ्य० । द-प्रथ० ॥) सान्तवस्वन्तस्य स्रंसादेश्च दः स्यात्पदान्ते ॥

सकारान्त जो वसु-प्रत्ययान्त तथा स्रंसु, ध्वंसु और अनडुह्-शब्दोंके अंत्यको दकार आदेश हो पदान्तमें । अनडुद्भ्याम् ३ । अनडुद्भिः । अनडुहे । अनडुद्भ्यः २ । अनडुहः २ । अनडुहोः २ । अनडुहाम् । अनडुहि । अनडुह्+सुप् (सू० २९० । ९१)-अनडुत्सु ॥ सान्तेति किम् । विद्वान् ॥ सकारान्त वसु-प्रत्ययान्त कहनेसे

' विद्वान् ' में दकार न हुआ, कारण यह वस्वन्त तो है परन्तु सान्त नहीं ॥ पदान्ते किम्—स्रस्तम्, ध्वस्तम् ॥ पदान्तमें कहनेके कारण ' स्रस्तम्, ध्वस्तम ' यहां स्रंसु और ध्वंसुको दकार नहीं हुआ॥ तुरासाह्—(इन्द्र) । तुरासाह्+सु (सू० २०० । २७१ । १६६ । ८३) का कार्य्य होकर—। तुरासाट्–ड् ॥

२९१ सहेः साडः सः ।८ । ३ । ५६ ॥

(सहे -षष्ठ्य० । साड.-षष्ठ्य० । सः-षष्ठ्यन्तम ॥) साड्रूपस्य सहेः सस्य मूर्द्धन्यादेशः ॥

साड्-रूप (अर्थात्–' हो ढः ' आदि कार्योंके पीछे) सह्-के सकारको मूर्द्धन्य (ष) आदेश हो । तुराषाट्, तुराषाड् । तुरासाहौ २ । तुरासाहः २ । तुरासाहम् । तुरासाहा । तुरासाड्+भ्याम् । (सू०२७९ । ८३।२९१)–तुराषाड्भ्याम् ३ । तुराषाड्भिः । तुरासाहे । तुराषाड्भ्यः २ । तुरासाहः २। तुरासाहोः २ । तुरासाहाम् । तुरासाहि । तुराषाट्त्सु, तुराषाट्सु ॥ सुदिव्–(सुन्दर आकाश) । सुदिव्+सु–॥

२९२ दिव औत् । ७ । १ । ८४ ॥

(दिवः-षष्ठ्य० । औत प्रथमान्तम॥) दिविति प्रातिपदिकस्यौत्स्यात्सौ॥

सु परे रहते प्रातिपदिक-संज्ञक दिव्-शब्दको औकार आदेश हो। सुदि+औ+सु (सू० १९)–सुद्यौ+सु (सू० १२५ । ११३)–सुद्यौः । सुदिवौ २ । सुदिवः २ । सुदिवम । सुदिवा । सुदिव्+भ्याम्–॥

२९३ दिव उत् । ६ । १ । १३१ ॥

(दिव -षष्ठ्यन्तम्। उत्–प्रथमा०॥) दिवोऽन्तादेश उकारः स्यात्पदान्ते॥

पदान्तमें विद्यमान दिव्-शब्दको उकार अन्तादेश हो। सुद्युभ्याम् ३ । सुद्युभिः । सुदिवे । सुद्युभ्यः २ । सुदिवः २ । सुदिवोः २ । सुदिवाम । सुदिवि । सुद्युषु ॥ चतुर्–(चार) । चतुर्+जस (सू० २८७)–चत्वारः । चतुरः । चतुर्भिः । चतुर्भ्यः २ । चतुर्+आम् । इस दशामें–॥

२९४ षट्चतुर्भ्यश्च । ७ । १ । ५५ ॥

(षट्चतुर्भ्यः-पञ्च० । च-अव्ययपदम् ॥) एभ्य आमो नुडागमः स्यात् ॥

षट्-संज्ञक (सू० ३२६ । २०८) शब्द और चतुर्-शब्दसे परे जो आम् उसको नुट् (न्) का आगम हो । चतुर्+न्+आम् । इस दशामें—॥

२९५ रषाभ्यां नो णः समानपदे।८।४।१॥

(रषाभ्याम्-पञ्च० । नः-षष्ठ्य० । णः-प्र० । समानपदे-सप्तम्य० ॥) एकपदस्थाभ्यां रषाभ्यां परस्य नस्य णस्यात्समानपदे ॥

एकपदमें स्थित रकार व षकारसे परे जो नकार उसको णकार हो समानपदमें । (सू० ७४)-चतुर्ण्णाम्, चतुर्णाम् । चतुर्+सुप् । इस दशामें-(सू० ११३) से रकारकी विसर्ग प्राप्त हुई, परन्तु—॥

२९६ रोः सुपि । ८ । ३ । १६ ॥

(रोः-षष्ठ्य० । सुपि सप्तम्यन्तम् ॥) रोरेव विसर्गः सुपि नान्यरेफस्य षत्वम् । षस्य द्वित्वे प्राप्ते ॥

सुप (सप्तमीका बहुवचन) परे रहते रुकेही रकारकी विसर्ग हो और रकारकी नहीं । चतुर्का रकार रुके स्थानका नहीं (सू०१७०) से षत्व हुआ । और (सू०७४) से षकारको द्वित्व प्राप्त हुआ तो—॥

२९७ शरोऽचि । ८ । ४ । ४९ ॥

(शरः-षष्ठ्य० । अचि-सप्तम्यन्तम् ॥) अचि परे शरो न द्वे स्तः ॥

जिस शर् से अच् परे हो उस शर्को द्वित्व नहीं हो । चतुर्षु । यहां षकारोत्तरवर्त्ती उकारको अच् समझना । हे चत्वारः ॥ प्रशाम् (शान्त) । प्रशाम्+सु (सू० २००)—॥

२९८ मो नो धातोः । ८ । २ । ६४॥

(मः-षष्ठ्य० । नः-प्रथ० । धातोः-षष्ठ्यन्तम् ॥) धातोर्मस्य नः स्यात्पदान्ते ॥

पदान्तमें वर्त्तमान धातुके मकारकू नकार हो । प्रशान् । प्रशामौ । प्रशामः । प्रशान्भ्याम् । इत्यादि । इसका साधन सरलही है॥ किम्-(क्या) । किम्+सु । इस अवस्थामें-॥

२९९ किमः कः । ७ । २ । १०३ ॥

(किमः-षष्ठ्यन्तम् । कः-प्रथमान्तम् ॥) किमः कः स्याद्विभक्तौ ॥

विभक्ति परे रहते किम्-शब्दके स्थानमें क-आदेश हो । कः । कौ। किम्+जस् । (सू० २०९।१७२।३३) के ॥ इत्यादि सर्ववत् ॥ शेष रूप सर्वशब्दकी समान होते हैं ॥ इदम्-(यह) । इदम्+सु-॥

३०० इदमो मः । ७ । २ । १०८ ॥

(इदमः-षष्ठ्य० । मः-प्रथमा० ॥) इदमो मस्य मस्स्यात्सौ । त्यदाद्यत्वापवादः ॥

इदम् शब्दके मकारको मकारही हो सु परे रहते । यह सूत्र 'त्यदादीनामः' का अपवाद है । फिर- ॥

३०१ इदोऽय् पुंसि । ७ । २ । १११ ॥

(इदः-षष्ठ्य० । अय्-प्रथ० । पुंसि-सप्तम्य० ॥) इदम इदोऽय् स्यात्सौ पुंसि ॥

सु परे रहते पुल्लिंगमें इदम्-शब्दके इद्कू अय् आदेश हो। अय्-अम्+सु (सू०२००) अयम् । इदम्+औ (सू०२१४)-इद्+अ+औ-॥

३०२ अतो गुणे । ६ । १ । ९७ ॥

(अतः-पञ्च० । गुणे-सप्त० ॥) अपदान्तादतो गुणे पररूपमेकादेशः॥

अपदान्त अत्से परे यदि गुण (अ-ए-ओ) परे होय तौ दोनोंके स्थानमें पररूप एकादेश हो । इद+औ ऐसी अवस्थामें-॥

३०३ दश्च । ७ । २ । १०९ ॥

(दः-षष्ठ्य० । च-अव्ययपदम् ॥) इदमो दस्य मः स्याद्विभक्तौ ॥

विभक्ति परे रहते इदम्-के दकारकू मकार हो । इम+औ (सू० ३९) इमौ २ । इदम्+जस् (सू० २१४ । ३०२ । ३०३ ।

१७२।३३)-इमे ॥ त्यदादेः सम्बोधनं नास्तीत्युत्सर्गः ॥ त्यदादि-शब्दोंका यह उत्सर्ग[1] (स्वभाव) ही है कि-वे सम्बोधनमें नहीं होते । इदम्+टा (सू० २१४।३०२)-इद+टा । ऐसी अवस्थामें-॥

३०४ अनाप्यकः ।७।२।११२ ॥

(अन्-प्रथमा० । आपि-सप्त० । अकः-षष्ठ्य० ॥) अककारस्येदम इदोऽनापि विभक्तौ । आबिति टा इत्यारभ्य सुपः पकारेण प्रत्याहारः ॥

ककाररहित इदम्-शब्दके इद्को अन आदेश हो आप्-विभक्ति परे रहते । आप् यह टाके आसे लेकर सुप्-के पकारपर्य्यंत प्रत्याहार है । अन+टा (सू० १६०।३३)अनेन। इदम्+भ्याम् (सू०२१४।३०२ इद+भ्याम्- ॥

३०५ हलि लोपः ।७।२।११३ ॥

(हलि सप्त० । लोपः-प्रथमान्तम् ॥) अककारस्येदम इदो लोपः स्यादापि हलादौ ॥

इदम्-शब्दके इद्-का लोप हो हलादि आप्-प्रत्याहार (भ्याम् । भिस् । भ्यस् । सुप्) परे रहते । यहां (सू० २५) से अंत्य द्-कारका लोप प्राप्त हुआ ॥ नानर्थकेऽलोन्त्यविधिरनभ्यासविकारे ॥ अभ्यासविकार (पूर्वोऽभ्यासः । और-। उरत । जो वक्ष्यमाण सूत्रोंमें आवेगा) को छोडकर निरर्थकमें 'अलोन्त्यस्य' नहीं लगता और यहांभी इद्-भाग निरर्थक है, इस कारण द्-मात्रका लोप नहीं होता तो इद् मात्रकाही लोप होता है । अ भ्याम्-॥

३०६ आद्यन्तवदेकस्मिन् । १ । १ । २१ ॥

(आद्यन्तवत् तद्धितान्तमव्ययपदम् । एकस्मिन्-सप्तम्यन्तम् ॥) एकस्मिन् क्रियमाणं कार्य्यमादाविवान्त इव स्यात् ॥

जो कार्य्य आदि और अन्तमें किया जाता है वोही कार्य एकवर्णमेंभी हो. अर्थात्-(सुपि च १६१) से जो दीर्घ अदन्तकू होता है

[1] उत्सर्ग उसको कहते हैं जो शिष्टप्रयोगोंमें दृष्टान्तादिके लिये कभी न किया जाय, इसी कारण महाभाष्यकारने 'इमे' यह उत्सर्गका उदाहरण दिया है ।

वोह दीर्घ केवल 'अ' कोभी हो। (सू० १६१) से दीर्घ- । आ-भ्याम् ३ । इदम्+भिस् (सू०२१४ । ३०२ । ३०५)-अं+भिस् । इस अवस्थामेंभी (सू० १६२) से भिस्को ऐस् प्राप्त था सो न हुआ, कारण कि-॥

३०७ नेदमदसोरकोः । ७ । १ । ११ ॥

(न-नि० म० प० । इदमदसो' पच० । अकोः-पचम्यन्तम् ॥) अककारयोरिदमदसोर्भिस ऐस् न स्यात् ॥

ककाररहित इदम और अदस् शब्दसे परे जो भिस उसको ऐस् आदेश नहीं हो । तो फिर (सू०१६५) से- । एभिः । इदम्+ङे (सू०२१४।३०२)-इद+ङे (सू०१७३।३०५)-अस्मै। एभ्यः२। इदम+ङसि (सू० २१४।३०२।१७४।३०५)-अस्मात, अस्माद् । अस्य। इदम+ओस (सू०२१४।३०२।३०४।१६७।२७)-अनयोः २ । इदम-इद्+आम (सू० १७५ । ३०५।१६५।१७०) एषाम् । (इदम-) इद+ङि (सू०१७४।३०५) अस्मिन । एषु ॥

किञ्चित् कार्य्यं विधातुमुपात्तस्य कार्य्यान्तरं विधातुं पुनरुपादानमन्वादेशः ॥

जिसका एकवाक्यमें प्रयोग हो गया हो फिर कुछ एक कार्य करनेके अर्थ पुनः उसी शब्दका जो प्रयोग किया जाय उसे अन्वादेश कहते हैं ॥ इसका फल-॥

३०८ द्वितीयाटौस्स्वेनः । २ । ४ । ३४॥

(द्वितीयाटौःसु सप्त० । एन प्रथमा० ॥) द्वितीयायां टौसोश्च परत इदमेतदोरेनादेशः स्यादन्वादेशे ॥

द्वितीया (अम्-औट्-शस्) टा और ओस् परे रहते इदम् और एतद्-शब्दको एन आदेश हो अन्वादेशमें । यथा । "अनेन व्याकरणमधीतमेनं छन्दोऽध्यापयेति" "अनयोः पवित्रं कुलमेनयोः प्रभूतं स्वमिति" अब अन्वादेशमें एन-आदेशका उदाहरण देते हैं। जैसे- (अनेन) इसने व्याकरण तो अध्ययन किया और अब (एनम)

इसकू वेद अध्ययन कराओ । (अनयोः) इन दोनोंका कुल पवित्र है और (एनयोः) इन दोनोंका विपुल धन है । यहां एक २ कार्य कर दूसरी वार्ता कही तब ए-आदेश हो गया, ऐसेही सर्वत्र जानो । एवम् । एनौ । एनान् । एनेन । एनयोः २ । इनकी साधनका सरलही है ॥

राजन्-(राजा) । राजन्+सु (सू० १९८ । २०० । २०१) राजा । हे राजन्+सु । इस अवस्थामें-॥

३०९ न ङिसम्बुद्ध्योः । ८ । २ । ८ ॥

(न-निषेधार्थक० । ङिसम्बुद्ध्योः-सप्तम्य० ॥) नस्य लोपो न स्यात् ङौ सम्बुद्धौ च ॥

ङि और सम्बुद्धि (संबोधन) का सु परे रहते नकारका लोप न हो । (सू० २००) से सुका लोप हो गया । हे राजन् ॥ ङौ तु छन्दस्युदाहरणम् । परमे व्योमन् ॥ ङि परे रहते नकारके लोपका निषेध वेदमें आता है, जैसे-व्योमन्+ङि । यहां (सू० ३०९) से नलोपका निषेध होकर (सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः ।७।१।३९॥) इस वैदिकप्रक्रियाके सूत्रसे ङिका लुक् हो गया तो-। व्योमन् । ऐसा सिद्ध हो गया । और 'परमे' इस सप्तम्यन्तके साथ होनेसे 'व्योमन्' सप्तम्यन्तही स्पष्ट है ॥[1]

३१० (ङावुत्तरपदे प्रतिषेधो वक्तव्यः) ॥

जिसके उत्तर (परे) पद हो ऐसे ङिके परे होनेपर (सू०३०९) की विधिका निषेध है । ब्रह्मणि निष्ठा अस्य ब्रह्मनिष्ठः । ब्रह्मन्-ङि-निष्ठः । म ङिसे 'निष्ठः' यह पद परे है, अत एव 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' इस सूत्रसे ङिका लोप होकर नकारका लोप हुआ

१ 'परमे व्योमन्०' इत्यादि यह श्रुति उपनिषद्की है, इससे स्पष्टरूपसे ज्ञात होता है कि-वेद कहनेसे उपनिषद्काभी ग्रहण होता है, कारण कि-"ङौ तु छन्दस्युदाहरण' लिखकर श्रीयुत भट्टोजीदीक्षितने उपनिषद्का प्रमाण दिया है, इस कारण स्वामी दयानन्दसरस्वतीका यह कहना सर्वथा असत्य है कि उपनिषद् वेद नहीं ।

तौ-। ब्रह्मनिष्ठः। रूप सिद्ध हुआ (ब्रह्मन् निष्ठः। नहीं सिद्ध होता।) राजन्+औ (मू० १९८) राजानौ २। राजानः। राजानम्। राजन्+शस् (मू० २७५)-राज्-न्+शस् (मू० ७७। १५६) +राज्-ञ्+अस् (जञोर्ज्ञः) जकार और ञकारको मिलकर ज्ञ बन जाता है। राज्ञः। राज्ञा। राजन्+भ्याम् (मू० १८५। २०१) से जब-राज+भ्याम्-ऐसा हो गया तब (मू० १६१) से जकारकू दीर्घकी प्राप्ति हुई-॥

३११ नलोपः सुप्स्वरसञ्ज्ञातुग्विधिषु कृति। ८। २।२॥

(नलोपः-प्रथमा०। सुपस्वरसज्ञातुग्विधिषु-सप्त०। कृति-सप्तम्य०॥) सुब्विधौ स्वरविधौ सञ्ज्ञाविधौ कृति तुग्विधौ च नलोपोऽसिद्धः। नान्यत्र राजाश्व इत्यादौ। इत्यसिद्धत्वादात्वमेत्वमैस्त्वं च न॥

सुप्-विधिमें स्वर-विधिमें संज्ञा-विधिमें और कृदन्त परे रहते तुक्-विधिमें नकारका लोप असिद्ध होता है। सुप्विधिमें दो प्रकारके समास होते है, जैसे-सुपके परे रहते जो विधि और सुप्के स्थानमें जो विधि, सुपके परे रहते विधि-राज+भ्याम्। यहां सुप् परे रहते (मू० १६१) से जो दीर्घ प्राप्त है सो नलोप असिद्ध होनेसे दीर्घ नहीं होता। सुप्के स्थानमें विधि राज+भिस्। यहां (मू० १६२) से भिस्के स्थानमें ऐस् प्राप्त है सो नहीं होता। स्वर-विधिके उदाहरण कठिन होनेके कारण यहां नहीं लिखे, देखनेवालेको स्वरप्रक्रियामें देख लेने चाहिये। संज्ञाविधि-पंचन्+जस्-(मू० २०१) से नलोप होकरभी नलोपको असिद्ध मान (ष्णान्ता षट्) सूत्रसे षट्-संज्ञा होकर (मू० २०९) से जश्-शस्का

१ "जञोर्ज्ञ" "कषसंयोगे क्ष" इत्यादि शिक्षाओंके देखनेसे भलीभांति प्रकट होता है कि-(ज और ञ के संयोगमें) ज्ञ वर्ण, तथा (ककार-षकारके संयोगसे) क्ष वर्ण विपर्य्य हो जाता है, और स्वामी-दयानन्दके मतानुयायी जो (ज्ञ) इस प्रकारका उच्चारण करते है सो सर्वथा उनका भ्रम है, क्योंकि यदि जैसे दो अक्षर मिलकर उनका स्वरूप और उच्चारण जैसेका तैसाही रह जाता तो उक्त शिक्षा बनानेकी आवश्यकताही नहीं थी, क्योंकि ज्योंके त्यों तो वोह स्वयही होते है।

लुक् होता है । कृत् परे रहते विधि-(ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्) सूत्रसे समझो । पूर्वोक्त विधिको परित्याग करके अन्यत्र-राजन्+अश्वः (सू० २०१ । ५३) राजाश्वः-इत्यादिमें नकारका लोप असिद्ध नहीं होता, कारण कि-यहां सुप्-आदि कोईभी विधि नहीं है । इस सूत्रसे नकारके लोपके असिद्ध होनेसे (सू० १६१ । १६५ । १६२) करके आकार एकार और ऐस नहीं होता । राजभ्याम् ३ । राजभिः । राजन्+ङे (ए) (सू० २७५ । ७७)-राज्ञे । राजभ्यः २ । राज्ञः २ । राज्ञो २ । राज्ञाम् । राजन्+ङि (इ) (सू० २७६ । ७७)-राज्ञि, राजनि । राजसु ॥ यज्वन्-(याज्ञिक) । यज्वन्+सु (सू० १९८ । २०० । २०१)-यज्वा । यज्वानौ २ । यज्वानः । यज्वानम् । यज्वन्+शस् (सू० २७५) से अल्लोप प्राप्त होनेपर-॥

३१२ न संयोगाद्वमन्तात् । ६ । ४ । १३७ ॥

(न निषेधार्थकम० प० । संयोगात्-पञ्च० ।) वमन्तसंयोगात्परस्यानोऽकारस्य लोपो न ॥

वकारान्त वा मकारान्त-संयोगसे परे जो अन् उसके अकारका लोप नहीं होय । (सू०१५६।१२५।११३) से । यज्वनः। यज्वना । यज्वन्+भ्याम (सू० २०१) यज्वभ्याम ३ । यज्वभिः । यज्वने । यज्वनः २ । यज्वनोः २ । यज्वनाम । यज्वनि । यज्वसु । हे यज्वन् । (सू० ३१२) का सूत्र (सू० २७५ । २१६) काही बाधक है ॥ ब्रह्मन्+सु (सू० १९८ । २०० । २०१)-ब्रह्मा । ब्रह्मन्+औ (सू० १९८ । १५८) से । ब्रह्माणौ । ब्रह्माणः । शेष रूप यज्वन्-शब्दकी सदृश होते हैं ॥ वृत्रहन्-(इन्द्र) । वृत्रहन्+सु । यहां (सू० १९८) से दीर्घकी प्राप्ति होनेपर-॥

३१३ इन्हन्पूषार्य्यम्णां शौ । ६ । ४ । १२ ॥

(इन्हन्पूषार्य्यम्णां-षष्ठ्यन्तम् । शौ-सप्तम्यन्तम॥) एषां शावेवोपधायाः दीर्घो नान्यत्र । इति निषेध प्राप्ते ॥

इन्-हन्-पूषन्-अर्यमन्-इन शब्दोंकी उपधाको केवल शि परे

रहतेही दीर्घ हो अन्यत्र नहीं। इस सूत्रसे पूर्वोक्त उदाहरणमें दीर्घका निषेध प्राप्त भया तौ-॥

३१४ सौ च । ६ । ४ । १३ ॥

(सौ-सप्तम्य० । च-अ०प० ॥) इन्नादीनामुपधायाः दीर्घः स्यादसम्बुद्धौ सौ परे ॥

सम्बुद्धिभिन्न सु परे रहते इन् , हन् , पूषन् , अर्यमन् इन शब्दोंकी उपधाको दीर्घ हो। (सू०२००।२०१)-वृत्रहा। (सू०३०९) हे वृत्रहन्। वृत्रहन्+औ-॥

३१५ एकाजुत्तरपदे णः । ८ । ४ । १२ ॥

(एकाच्-प्रथ० । उत्तरपदे स० । ण -प्रथमा० ॥) एकाच् उत्तरपदं यस्य तस्मिन् समासे पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिस्थस्य नस्य णः स्यात् ॥

एक अच जिसके उत्तर (दूसरे) पद हो उस समासमें पूर्वपदमें स्थित रकार वा षकार हो उससे परे प्रातिपदिकान्तका वा नुम्का अथवा विभक्तिमें स्थित जो नकार उसको णकार हो जाय। पूर्वोक्त प्रयोगमें प्रातिपदिकान्तका नकार होनेसे णकार हो गया। वृत्रहणौ २। वृत्रहणः। वृत्रहणम् । वृत्रहन्+श(अ)स् । ऐसी अवस्थामें-॥

३१६ हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु । ७ । ३ । ५४ ॥

(हः-षष्ठ्य० । हन्तेः-षष्ठ्य० । ञ्णिन्नेषु सप्तम्यन्तम् ॥) ञिति णिति च प्रत्यये नकारे च परे हन्तेर्हकारस्य कुत्वम् ॥

ञित वा णित् प्रत्यय परे होय तौ वा नकार परे रहे तब हन्ति (हन्) के हकारकू कुत्व (कवर्गादेश) हो जाय। वृत्रघन्+अस् (सू० १२५)-वृत्रघ्नः। वृत्रघ्ना। वृत्रहन+भ्याम् (सू०२०१) वृत्रहभ्याम् ३। वृत्रहाभिः। वृत्रघ्ने। वृत्रहभ्यः २। वृत्रघ्नः २। वृत्रघ्नोः २। वृत्रघ्नाम्। वृत्रहन्+ङि (इ) सू०२७६।३१६) वृत्रघ्नि, वा (सू०३१५) वृत्रहणि। वृत्रहसु ॥ एवं-शार्ङ्गिन् , यशस्विन् , अर्य-

१ नादस्य घोषस्य संवारस्य महाप्राणस्य हस्य तादृशो वर्गचतुर्थः ।

मन्, पूषन् ॥ ऐसेही शार्ङ्गिन्–(विष्णु) , यशस्विन्–(यशवान्), अर्य्यमन्–(सूर्य), पूषन्–(सूर्य), शब्दोंके रूप होते हैं ॥ मघवन्–(इंद्र) । मघवन्+सु । इस दशामें–॥

३१७ मघवा बहुलम् । ६ । ४ । १२८॥

(मघवा–प्रथमा० । बहुलम्–अ०प०॥) मघवन्शब्दस्य वा तृ इत्यन्तादेशः । ऋ इत् ॥

मघवन्-शब्दकू विकल्प करके 'तृ' यह अन्तकू आदेश हो । (सू०३४) से ऋकारकी इत्संज्ञा है । मघवत्+सु । इस अवस्थामें–॥

३१८ उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः । ७ । १ । ७० ॥

(उगिदचाम्–षष्ठ्य० । सर्वनामस्थाने–सप्त० । अधातोः–षष्ठ्य०॥) अधातोरुगितो नलोपिनोऽञ्चतेश्च नुम् स्यात् सर्वनामस्थाने ॥

धातुसे भिन्न तो उगित् (उ ऋ ऌ–जिसकी इत् हों) शब्दकू और जिसके नकारका लोप हो गया हो ऐसी अञ्च धातुकोभी नुम् (न्) का आगम हो सर्वनामस्थान पर रहते । पूर्वोक्त प्रयोगमें ऋ इत् होनेसे उगित हुआ तो नुम् हो गया । मघवन्–त्+सु (सू० २००। २४ । २०१)–मघवान् । मघवन्+औ (सू०३१७।३१८) मघवन्तौ २ । मघवन्तः । मघवन्तम् । मघवतः । मघवता । मघवद्भ्याम् ३ । मघवद्भिः । मघवते । मघवद्भ्यः २ । मघवतः २ । मघवतोः२। मघवताम् । मघवति । मघवत्सु । हे मघवन् ॥ तृत्वाभावे सुटि राजवत् ॥ जिस पक्षमें तृ-आदेश नहीं होता उस पक्षमें सुसे लेकर औट् पर्यन्त तथा हलादि विभक्तिमें मघवन्के रूप राजन्-की समान होते है, जहां विशेष होता है सो अधो लिखते है–मघवन्+शस् ॥

३१९ श्वयुवमघोनामतद्धिते । ६ । ४ । १३३ ॥

(श्वयुवमघोनाम्–षष्ठ्यन्तम् । अतद्धिते–सप्तम्यन्तम् ॥) अन्नन्तानाम् भसञ्ज्ञकानामेषामतद्धिते परे सम्प्रसारण स्यात् ॥

अन् जिनके अन्तमे हो ऐसे भसंज्ञक श्वन्–(कुत्ता), युवन्–(त-

रुण), मघवन् (इन्द्र), इन शब्दोंको सम्प्रसारण हो, यदि तद्धित-का प्रत्यय परे न होय तो । मघ-उन्+अस् (सू० ३३) मघोनस् (सू० १२९।११३) मघोनः । मघोना । मघोने । मघोनः २ । मघोनोः २ । मघोनाम् । मघोनि । हे मघवन् ॥ एवं-श्वन् । इसी प्रकार श्वन्-शब्दके रूप होते है । और निम्न लिखित रूपोंके अतिरिक्त शेष रूप युवन्-केभी श्वन्-की समान होते है । युवन्+शस् (सू० ३१९) से- । यु-उ-न्+अस् । इस दशामें (सू०३१९) से यकारकूभी ' इ ' संप्रसारण प्राप्त है-॥

३२० न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम् । ६ । १ । ३७॥

(न-नि० म० प० । सम्प्रसारणे-सप्त०। सम्प्रसारणम्-प्रथमा० ॥) सम्प्रसारणे परतः पूर्वस्य यणः सम्प्रसारणं न स्यात् । इति यकारस्य नेत्वम् । अतएव ज्ञापकादन्त्यस्य यणः पूर्वं सम्प्रसारणम् ॥

यदि सम्प्रसारण परे रहे तो पूर्वके यण्-कू सम्प्रसारण न हो । इस सूत्रके अनुसार यकारकू इकार नहीं होता, क्योंकि-संप्रसारण उकार परे है । यहां यह शंका नहीं हो सक्ती कि-प्रथम यकारकूही संप्रसारण करके पश्चात् वकारकू उकार-संप्रसारण कर लेंगे, कारण कि-इसी (३२०) सूत्रकेही विधानसे पहले अन्त्य यण्-कू सम्प्रसारण होता है अर्थात्-प्रथम ' य ' कू ' इ ' करनेसे (सू० ३२०) व्यर्थ हो जायगा । पूर्वोक्त उदाहरणमें (सू० ५३) से दीर्घ हो गया । यूनः । यूना । यूने । यूनः २ । यूनोः २। यूनाम् । यूनि ॥ अर्वन्-(अश्व) । अर्वन्+सु (सू० २०० । १९८ । २०१)-अर्वा । हे अर्वन् । अर्वन्+औ-॥

३२१ अर्वणस्त्रसावनञः । ६।४।१२७ ॥

(अर्वणः-षष्ठ्य० । तृ-प्र० । असौ-सप्त० । अनञः-षष्ठ्य० ॥) नञा रहितस्यार्वन्नित्यस्याङ्गस्य तृ इत्यन्तादेशो न तु सौ परे । ऋ इत् ॥

नञ्समास भिन्न जो अर्वन्-शब्द अंग तिसको तृ यह अन्तादेश हो, सु परे रहते न हो । अर्वत्+औ (सू० ३१८) अर्वन्तौ २ ।

अर्वन्तः। अर्वन्तम्। अर्वतः। अर्वता। अर्वत्+भ्याम् (सू० ३२१। ८३)–अर्वद्भ्याम् ३। अर्वद्भिः। अर्वते। अर्वद्भ्यः २। अर्वतः २। अर्वतोः २। अर्वताम्। अर्वति। अर्वत्सु॥ अनञः किम्, अनर्वा यज्ववत्॥ नञ्भिन्न कहनेसे अनर्वन्-शब्दके रूप यज्वन्-शब्दकी समान होते हैं॥ पथिन् (मार्ग)। पथिन्+सु। इस अवस्थामें–॥

३२२ पथिमथ्यृभुक्षामात्। ७। १। ८५॥

(पथिमथ्यृभुक्षाम्–षष्ठ्य०। आत्–प्रथमान्तम्॥) एषामाकारोऽन्तादेशः स्यात्सौ परे॥

पथिन् (मार्ग), माथिन् (मंथन करनेवाला), ऋभुक्षिन् (इंद्र), इन शब्दोंको आकार अन्तादेश हो सु-विभक्ति परे रहते। पथि–आ+सु। इस दशामें (सू० १९) से यण् प्राप्त था, उसका बाधक निम्न सूत्र प्रवृत्त होता है–॥

३२३ इतोऽत्सर्वनामस्थाने। ७। १। ८६॥

(इतः-षष्ठ्य०। अत्–प्रथमा०। सर्वनामस्थाने–सप्तम्य०॥) पथ्यादेरिकारस्याकारः स्यात्सर्वनामस्थाने॥

पथिन्, मथिन् और ऋभुक्षिन्–शब्दोंके इकारकू अकार हो सर्वनामस्थान परे रहते। पथ–आ+सु। इस अवस्थामें–॥

३२४ थो न्थः। ७। १। ८७॥

(थः-षष्ठ्य०। न्थ-प्रथमा०॥) पथिमथोस्थस्य न्थादेशः सर्वनामस्थाने परे॥

पथिन् और मथिन्-शब्दके थकारकू न्थ् आदेश हो। पन्थाः। पथिन्+औ (सू० ३२३। ३२४) पन्थ्–अ–न्+औ (सू० ५३) से–पन्थानौ २। पन्थानः। पन्थानम्। पथिन्+श(अ)स्। यहां (सू० ४९) से इन्-मात्रकी टि-संज्ञा होकर–॥

३२५ भस्य टेर्लोपः। ७। १। ८८॥

(भस्य-षष्ठ्य०। टेः–षष्ठ्य०। लोपः–प्रथमा०॥) भस्य पथ्यादेष्टेर्लोपः स्यात्॥

भ-संज्ञक जो पथिन् मथिन् और ऋभुक्षिन् शब्द उनकी टि-का लोप हो। पथः। पथा। पथिन्+भ्याम् (सू० २०१)-पथिभ्याम् ३। पथिभिः। पथे। पथिभ्यः २। पथः२। पथोः २। पथाम्। पथि। पथिषु॥ एवं मथिन् ऋभुक्षिन्॥ इसी प्रकार मथिन् और ऋभुक्षिन्-शब्दोंके रूपभी जानो॥ पञ्चन्शब्दो नित्यम्बहुवचनान्तः॥ पञ्चन् (पांच) शब्द नित्यही बहुवचनान्त होता है। पञ्चन्+जस्। इस दशामें-॥

३२६ ष्णान्ता षट्। १। १। २४॥

(ष्णान्ता-प्रथमा० । षट्-प्रथमा० ॥) षान्ता नान्ता च सङ्ख्या षट्सञ्ज्ञा स्यात्॥

संख्यावाची षकारान्त और नकारान्त-शब्दोंकी षट्-संज्ञा हो। पंचन्-शब्द नान्तसंख्यावाची होनेसे षट्-संज्ञक होकर (सू०२०९)से जश्शस्-का लुक् हो गया, तदनन्तर (सू०२०१) से नकारका लोप हुआ। पञ्च २। पंचभिः। पंचभ्यः २। पंचन्+आम् (सू० २९४)-पञ्चन्+न्+आम्-॥

३२७ नोपधायाः। ६। ४। ७॥

(न-लु०प०प० । उपधायाः-षष्ठ्य० ।) नान्तस्योपधाया दीर्घो नामि॥

नाम् परे रहते नकारान्तकी उपधा (सू०१९७) को दीर्घ हो। पंचान्+नाम् (सू० २०१)-पंचानाम्। पंचसु॥ एवं सप्तन्-नवन्दशन्प्रभृतयः॥ इसी प्रकार सप्तन्-(सात), नवन्-(नौ), दशन्-(दश) इत्यादिक शब्दोंके रूप होते हैं॥ अष्टन् (आठ)॥

३२८ अष्टन आ विभक्तौ। ७। २। ८४॥

(अष्टनः-षष्ठ्य० । आ-प्रथ० से विहित भक्तौ-सप्तम्यन्तम्") अष्टन आत्व वा स्याद्धलादौ विभक्तौ परे॥ चोः कुः सूत्र० मा०।

यदि हलादि-विभक्ति परे क्षा असिद्ध है। (सू० १६६) हो॥

३ अष्टाभ्य औश् जौ । ऋत्विजः ४। ऋत्विजम्।

(अष्टाभ्यः-पच० । औश्-प्रथमा० ॥) कृताकारादष्टनः परयोर्जश्शसोरौश् ॥

जिस अष्टन्-शब्दको पूर्वोक्त (सू० ३२८) सूत्रसे आकार करलिया हो उस अष्टन्-से परे जो जस् और शस् तिनको औश् (औ) आदेश हो ॥

अष्टभ्य इति वक्तव्ये कृतात्वनिर्देशो जश्शसोर्विषये आत्वं ज्ञापयति ॥

'अष्टभ्य औश्' ऐसा कहनेमें 'अष्टाभ्यः' यह दीर्घनिर्देश जस् और शस् परे रहतेभी आकारादेशको बोधन कराता है, अर्थात् यद्यपि जस् तथा शस्के परे रहते आत्वकी प्राप्ति नहीं है तथापि सूत्रकारने 'अष्टभ्यः' ऐसा लाघव छोडकर 'अष्टाभ्यः' ऐसा जो पढा अतएव ज्ञात होता है कि, जस्-शस् परे रहतेभी आत्व होता है । अष्टन्+जस् (सू०३२८।५३।६२९)-अष्टा+औ (सू० ३९)-अष्टौ २। अष्टाभिः । अष्टाभ्यः २। अष्टन्+आम् (सू०२९४।३२७। २०१)-अष्टानाम । अष्टासु ॥ आत्वाभावे-अष्ट पंचवत् ॥ जहां आत्व नहीं होता उस पक्षमें अष्टन्-शब्दके रूप पंचन्-शब्दकी समान होते है ॥

३३० ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगंचुयुजिक्रुंचां च ।३।१।५९॥

(क्रुञ्चाम (यहांतक) षष्ठ्यन्तम । च-अ०प० ॥) एभ्यः क्विन् स्यात् । अञ्च सुप्युपपदे, युजिक्रुंचो' केवलयोः, क्रुञ्चेर्नलोपाभावश्च निपात्यते । कनाविनौ ॥

ऋत्विज् (प्रति ऋतुमें यज्ञ करने वा करानेवाला), दधृक् (धारणकर्ता), स्रज् (माला), दिक् (दिशा), उष्णिक् (छंद), अञ्चु (गत्यर्थ और पूजार्थ धातु) युजि (सम्मेलनार्थ धातु), क्रुंच् (अनादरार्थक), इनसे -संज्ञा होकत्यय होय । परन्तु अंचुधातुसे म्न्जस्य टलःपः । ७ । १ । युजि और क्रुंच् यह दो धातु भस्य-षष्ठ्य० । टेः-षष्ठ्य० । लोपः-प्रथ निपातन किया जाता है पः स्यात् ॥

नहीं :

कि कुञ्च्-धातुके नकारका लोप (सू० ३७७) न हो। क्विन्-प्रत्ययके ककार-नकारकी (सू० १५६।३) से इत्संज्ञा है। ऋत्विज्+क्विन्-ऋत्विज्+वि । इस अवस्थामें (सू० ३४) से इकारकी इत्संज्ञा हो गई तो । ऋत्विज्+व् । इस दशामें (सू० १९९) से वकारकी अपृक्त-संज्ञा हो गई । उसका फल-॥

३३१ वेरपृक्तस्य । ६ । १ । ६७ ॥

(वेः-षष्ठ्यन्तम् । अपृक्तस्य षष्ठ्यन्त०॥)अपृक्तस्य वस्य लोपः स्यात्॥

अपृक्त-संज्ञक जो वि अर्थात् इकारेत्संज्ञक व उसका लोप हो । यदि सम्पूर्ण क्विन् लोप किया तो, उसके करनेहीसे क्या फल हुआ सो दिखलाते हैं-॥

३३२ कृदतिङ् । ३ । १ । ९३ ॥

(कृत्-प्रथमा० । अतिङ्- प्रथमा० ॥) अत्र धात्वधिकारे तिङ्भिन्नः प्रत्ययः कृत्सञ्ज्ञः स्यात् ॥

(धातोः ३ । १ । ९१) इस सूत्रके अधिकारमें (अर्थात् तीसरे अध्यायकी समाप्ति पर्यन्त) जो तिङ्भिन्न प्रत्यय हैं उनकी कृत्-संज्ञा हो । क्विन्-प्रत्यय द्वितीयाध्यायका होनेके कारण कृत् माना जाकर (सू० १३७) से कृदन्तकी प्रातिपदिक-संज्ञा होकर स्वादि-प्रत्यय आते हैं । ऋत्विज्+सु (सू० २००)-ऋत्विज् । इस अवस्थामें-॥

३३३ क्विन्प्रत्ययस्य कुः । ८ । २ । ६२॥

(क्विन्प्रत्ययस्य-षष्ठ्य० । कुः-प्रथमा० ॥) क्विन्प्रत्ययो यस्मात्तस्य कवर्गोन्तादेशः स्यात्पदान्ते । अस्यासिद्धत्वाच्चोः कुरिति कुत्वम् ॥

क्विन्-प्रत्यय जिस शब्दसे विहित हो उसको पदान्तमें कवर्ग अन्तादेश हो । पूर्वोक्तरूपमें ' चोः कुः ' सूत्र लगता होता है, कारण कि यह सूत्र उसकी अपेक्षा असिद्ध है । (सू० १६६ । ८३) ऋत्विक्, ऋत्विग् । ऋत्विजौ २ । ऋत्विजः ४ । ऋत्विजम् ।

ऋत्विजा । ऋत्विग्भ्याम् ३ । ऋत्विग्भिः । ऋत्विजे। ऋत्विग्भ्यः २ । ऋत्विजोः २ । ऋत्विक्षु ॥ युज्+सु–॥

३३४ युजेरसमासे । ७ । १ । ७१ ॥

(युजेः–षष्ठ्य० । असमासे–सप्तम्यन्तम् ॥) युजेः सर्वनामस्थाने नुम् स्यादसमासे । सुलोपः । संयोगान्तलोपः । कुत्वेन नस्य ङः ॥

यदि समास न हो तो सर्वनामस्थान परे रहते युज्-कू नुम् (न्) आगम हो । यु–न्–ज्+सु (सू०२००) से सुका लोप (सू०२४) से संयोगान्त जकारका लोप हो गया तब । युन् । इस दशामें–॥

३३५ चोः कुः ।८ । २ । ३० ॥

(चोः–षष्ठ्य० । कुः–प्रथमान्तम् ॥) चवर्गस्य कवर्गः स्याज्झलि पदान्ते च॥

झल् परे रहते तथा पदान्तमें चवर्गकू कवर्ग हो । इस सूत्रमे नकारकू ङकार हुआ । युङ् ॥ अनुस्वारपरसवर्णौ ॥ युन्ज्+औ । यहां (सू० ९६ । ९७) से अनुस्वार और परसवर्ण ञकार होता है । युञ्जौ २ । युञ्जः । युञ्जम् । नुम् न होकर–। युजः । युजा । युग्भ्याम् ३ । युग्भिः । युजे । युग्भ्यः २ । युजः २ । युजोः २ । युजाम् । युजि । युज्+सु (सू०३३५।१७०)–॥ कषसंयोगे क्षः ॥ युक्षु ॥ असमासे किम् । सुयुक्, सुयुग् ॥ (सू० ३३४) में असमास कहनेसे–सुयुज्+सु (सू० २०० । ३३५ । ८३ । १६६)–सुयुक्,(ग्) । यहां नुम् नहीं होता, क्योंकि, यहां सु-के साथ समास है । सुयुजौ २ । सुयुजः २ । सुयुजम् । शेष रूप युज्की समान जानो ॥ खञ्ज् (पङ्गु) । खञ्ज्+सु (सू० २०० । २४) से 'सु' और जकारका लोप हुआ । जब जकारकाही लोप हो गया तो (सू० ७७) से जो नकारकू ञकार हुआ था सोभी न रहा कारण कि– "निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः" अर्थात्–जब निमित्तका अभाव होता है तब नैमित्तिक (निमित्तके आश्रयीभूत कार्य) काभी अभाव हो जाता है । खन् । खञ्जौ । खन्ज्+भ्याम् (सू० २४) खन्भ्याम् । खन्सु । हे खन् ॥ राज्+सु–॥

३३६ व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः।८।२।३६॥

(छशाम् (तक)षष्ठ्यन्तम् । षः प्रथमा० ॥) व्रश्चादीनां सप्तानां छशान्तयोश्च षकारोऽन्तादेशः स्याज्झलि पदान्ते च । जश्त्वचर्त्वे ॥०

व्रश्च १ भ्रस्ज २ सृज ३ मृज ४ यज ५ राज ६ भ्राज ७ सात तौ इन पूर्वोक्त शब्दोंकू और छकारान्त वा शकारान्त शब्दोंकू षकार अन्तादेश हो झल् परे रहते और पदान्तमें, उस षकारकू (मू० १६६ । ८३) से जश् और चर् हो । राष्+सु (मू०२००) राट्, ड् । राजौ २ । राजः । राज्+भ्याम् (मू० ३३६ । ८३), राड्भ्याम् । राज्+सुप् (मू० ३३६ । ८३ । १०३)–राट्त्सु, राट्सु ॥ एवं विभ्राट् । देवेट् । विश्वसृट् ॥ इसी प्रकार–विभ्राट् (विशेष शोभित), देवेट (देवप्रीत्यर्थ यज्ञ करनेवाला), विश्वसृट् (विधाता)–शब्दके रूप होते हैं ॥ परि-व्रज्–॥

३३७ (परौ व्रजेः षः पदान्ते) ॥

परावुपपदे व्रजेः क्विप् स्यात् दीर्घश्च पदान्तविषये षत्वं च । सर्वं परित्यज्य व्रजतीति परिव्राट् ॥

व्रज–(गतौ) धातुसे परि-उपपद (प्रथम) हो तो क्विप्-प्रत्यय और दीर्घ हो तथा पदान्त-विषयमें षत्वभी हो । क्विप्का पूर्ववत् सर्वापहारी लोप होता है । जो सम्पूर्णकू परित्याग कर चला जाय वोह, परिव्राट्–(संन्यासी) । परिव्राष्+सु (मू०२०० । १६६ । ८३) परिव्राट्-ड् । परिव्राजौ । परिव्राजः । परिव्राज्+भ्याम् (मू० ३३७। ८३)–परिव्राड्भ्याम् । परिव्राट्त्सु, परिव्राट्सु ॥ विश्व–राज्+सु (मू० २०० । १६६ । ८३) विश्व–राट् (ड्)–इस अवस्थामें–॥

३३८ विश्वस्य वसुराटोः । ६ । ३ । १२८ ॥

(विश्वस्य-षष्ठ्य० । वसुराटोः–सप्तम्य० ॥) विश्वशब्दस्य दीर्घः स्याद्वसौ राट्शब्दे च परे । राडिति पदान्तोपलक्षणम् ॥

विश्व-शब्दको दीर्घ हो वसु और राट्-शब्दके परे रहनेपर । सूत्रमें

कू क्रमसे युव और आव-आदेश हों विभक्ति परे रहते। युव+अद्+औ। आव+अद्+औ (सू० ३४३) युव+औ। आव+औ-॥

३४५ प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम्। ७। २। ८८॥

(प्रथमायाः-षष्ठ्य० । च-अ० प० । द्विवचने-सप्त० । भाषायाम्-सप्त० ॥) औङ्येतयोरात्व लोके ॥

औङ् परे रहते युष्मद् और अस्मद्-शब्दकू आकार हो लोकमें, अर्थात् वेदमें न हो। (सू०३४१।५३) युवाम् २। आवाम् २। युष्मद्+जस्। अस्मद्+जस् (सू०३४१)-युष्मद्+अम्। अस्मद्+अम्-॥

३४६ यूयवयौ जसि। ७। २। ९३॥

(यूयवयौ-प्रथमा० । जसि-सप्तम्य० ॥) अनयोर्मपर्यन्तस्य यूयवयौ स्तो जसि ॥

जस परे रहते युष्मद् और अस्मद्-शब्दके मपर्यन्त-भागकू क्रमसे यूय और वय हों (सू० ३४३) यूयम्। वयम्। युष्मद्+अम्। अस्मद्+अम्। इस दशामें-॥

३४७ त्वमावेकवचने। ७। २। ९७॥

(त्वमौ-प्रथमा० । एकवचने-सप्त० ॥) एकस्योक्तावनयोर्मपर्यन्तस्य त्वमौ स्तो विभक्तौ ॥

एकके वाची युष्मद्-अस्मद्-के मपर्यन्त-भागको त्व और म यह आदेश क्रमसे हो विभक्ति परे रहते। (सू० ३४१) त्व+अम। अह+अम। ऐसी अवस्थामें-॥

३४८ द्वितीयायाञ्च। ७। २। ८७॥

(द्वितीयायाम्-सप्त० । च-अ० प० ॥) अनयोरात्स्यात् ॥

द्वितीया-विभक्ति परे रहतेभी युष्मद् और अस्मद्-शब्दकू आकार होय। त्वाम्। माम्। युष्मद्+शस्। अस्मद्+शस्-(सू०११६)॥

३४९ शसो न। ७। १। २९॥

(शसः-षष्ठ्य० । न-निर्विभक्तिक पदम् ॥) आभ्या शसो नः स्यादमोपवादः ॥

युष्मद् और अस्मद्-शब्दोंसे परे जो शस् तिसे न-आदेश हो। यह सूत्र अम् (सू० ३४१) का अपवाद है। (सू० ८९)–युष्मद्+नस्। अस्मद्+नस् (सू० २४।३४३।३४८) युष्मान्। अस्मान्॥ युष्मद्+(टा) आ। अस्मद्+(टा) आ–॥

३५० योऽचि। ७। २। ८९॥

(यः–प्रथमा०। अचि–सप्तम्य०॥) अनयोर्यकारादेशः स्यादनादेशेऽजादौ परतः॥

जिसको कोई आदेश न हुआ हो ऐसी अजादि-विभक्ति परे रहते युष्मद्-अस्मद्-शब्दकू यकार-आदेश हो। (सू० ३४७)–त्व-अ-य+आ। म-अ-य+आ (सू० ३०२।५३)–त्वया। मया। युष्मद्+भ्याम्। अस्मद्+भ्याम्। (सू० ३४४) युव–अद्+भ्याम्। आव-अद्+भ्याम। इस प्रकार होनेपर–॥

३५१ युष्मदस्मदोरनादेशे। ७। २। ८६॥

(युष्मदस्मदोः–षष्ठ्य०। अनादेशे–सप्त०॥) अनयोराकारः स्यादनादेशे हलादौ विभक्तौ॥

अनादेश अर्थात्–जिसको कोई आदेश न हुआ हो ऐसी हलादि-विभक्ति परे रहते युष्मद्-अस्मद्-शब्दको आकार हो। यहां अन्त्य-दकारकू आकार होकर (सू० ५३)–से। युवाभ्याम् ३। आवाभ्याम् ३। युष्माभिः। अस्माभिः। युष्मद्+ङे। अस्मद्+ङे॥

३५२ तुभ्यमह्यौ ङयि। ७। २। ९५॥

(तुभ्यमह्यौ–प्रथमा०। ङयि–सप्तम्य०॥) अनयोर्मपर्यन्तस्य तुभ्यमह्यौ स्तो ङयि॥

ङे परे रहते युष्मद्-अस्मद्-शब्दोंके मपर्यन्त-भागको क्रमसे तुभ्य और मह्य-आदेश हों। तदनन्तर (सू० ३४१। ३४३) का कार्य होय। तुभ्यम्। मह्यम्। युष्मद्+भ्यस्। अस्मद्+भ्यस्–॥

३५३ भ्यसोऽभ्यम्। ७। १। ३०॥

(भ्यसः-षष्ठ्य० । अभ्यम्-प्रथमा० ॥) आभ्याम्परस्य भ्यसोऽभ्यमादेशः स्यात् ॥

युष्मद्-अस्मद्-शब्दोंसे परे भ्यस्-कू अभ्यम्-आदेश हो । (मू० ३४३) युष्मभ्यम् । अस्मभ्यम् । युष्मद्+ङसि । अस्मद्+ङसि (मू० ३४७ । ३४३)-त्व+ङसि । म+ङसि । फिर-॥

३५४ एकवचनस्य च । ७ । १ । ३२ ॥

(एकवचनस्य-षष्ठ्य० । च-अव्य० ॥) आभ्यां ङसेरत् स्यात् ॥

युष्मद् और अस्मद्-शब्दके परे जो ङसि उसके स्थानमें अत् होय । त्व+अत् । म+अत् (मू०३०२)-त्वत् । मत् । युष्मद्+भ्यस् । अस्मद्+भ्यस् । यहां अद्-भागका लोप होकर-॥

३५५ पञ्चम्या अत् । ७ । १ । ३१ ॥

(पचम्याः-षष्ठ्य०। अत्-प्रथमा०॥) आभ्याम्पंचम्या भ्यसोऽत्स्यात्॥

यदि युष्मद् और अस्मद्-शब्दसे परे पंचमी-विभक्तिका प्रत्यय भ्यस् होय तो उसको अत् हो जाय । युष्मत् । अस्मत् । युष्मद्+ङस् । अस्मद्+ङस् । इस अवस्थामें-॥

३६६ तवममौ ङसि । ७ । २ । ९६ ॥

(तवममौ-प्रथमा० । ङसि-सप्तम्य० ॥) अनयोर्मपर्यन्तस्य तवममौ स्तो ङसि ॥

ङस् परे रहते युष्मद्-अस्मद्-के मपर्यन्त-भागको क्रमसे तव और मम-आदेश हों । और अद्-भागका लोप होकर । तव्+ङस् । मम्+ङस् । ऐसी सिद्धि होने पर-॥

३६७ युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश् । ७ । १ । २७ ॥

(युष्मदस्मद्भ्याम्-पच० । ङसः-षष्ठ्य० । अश्-प्रथमा० ॥)

युष्मद्-अस्मद्-शब्दसे परे जो ङस् उसको अश्-आदेश हो । (मू० ५८) तव्+अश् । मम्+अश् (मू० ३ । ५) तव । मम ।

३६६ यहांसे मूलाङ्क क्रमसे लगे है, द्वितीयावृत्तिमें ठीक हो जायेंगे ।

युष्मद्+ओस् । अस्मद्+ओस् (सू० ३४४ । ३५०) युवयोः २ । आवयोः २ । युष्मद्+आम् । अस्मद्+आम् (सू० ३४३) युष्म+आम् । अस्म+आम् । इस अवस्थामें–॥

३६८ साम आकम् । ७ । १ ३३ ॥

(सामः–षष्ठ्य० । आकम्–प्रथमा० ॥) आभ्याम्परस्य साम आक स्यात् । भाविनः सुटो निवृत्त्यर्थं ससुट्कनिर्देशः ॥

युष्मद् और अस्मद्-शब्दसे परे जो साम् अर्थात् विद्यमान जो आम् और भविष्यत् जो सुट् उसके स्थानमें आकम्-आदेश हो । यहां भविष्यत्-सुट्की निवृत्ति करनेके अर्थ सुट्-सहित आम्-का निर्देश किया है । तदनन्तर (सू० ५३) से दीर्घ हो जाय । युष्माकम् । अस्माकम् । युष्मद्+ङि (इ) । अस्मद्+ङि (इ) (सू०३४७ । ३५०)–त्वयि । मयि । युष्मद्+सु । अस्मद्+सु (सू० ३५१।५३) युष्मासु । अस्मासु । जो इन दो शब्दोंमें विशेषता है उसको निम्नलिखित चार सूत्रोंसे स्पष्ट लिखते हैं–॥

३६९ युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वान्नावौ । ८ । १ । २० ॥

(युष्मदस्मदोः–षष्ठ्य० । षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोः–षष्ठ्य० । वान्नावौ–प्रथमान्तम् ॥) पदात्परयोरपादादौ स्थितयोः षष्ठ्यादिविशिष्टयोरनयोर्वां नौ इत्यादेशौ स्तः ॥

जो षष्ठी-चतुर्थी-द्वितीयासे युक्त युष्मद् और अस्मद्-शब्द पदसे परे हों और पाद (श्लोकके चरण) की आदिमें न हों तो उनको

---

१ युष्मद्+आम । अस्मद्+आम । यहां 'शेषे लोपः' से अन्त्यदकारका लोप करनेपर 'आमि सर्वनाम्नः सुट्' इस सूत्रसे सुट्की प्राप्ति है कारण कि अब आम् अदन्तसे परेभी है, यदि सुट्का आगमभी मान लिया जाय तोभी आकम् हो जाता है । और 'शेषे लोपः' सूत्रमें दो पक्ष हैं–एकमें तो टि-का लोप माना है, दूसरेमें आदेशसे शेषका लोप माना है, पूर्वपक्षमें तो सुट्की प्राप्तिही नहीं है, परन्तु सुकुमारमति-विद्यार्थियोंका दूसरा पक्ष ग्रहण करनेमें सुगमता रहेगी और सुट्-सहित निर्देशकी शंकाभी सहजमेंही निवृत्त हो जायगी । 'ब्रजरत्नभट्टाचार्य'

क्रमसे वाम् और नौ यह आदेश हो जांय । निम्न लिखित तीन सूत्रोंसे बांधित होकर यह सूत्र केवल द्विवचनमेंही लगता है ॥

३७० बहुवचनस्य वस्नसौ । ८ । १ । २१ ॥

(बहुवचनस्य-षष्ठ्य० । वस्नसौ-प्रथमा० ॥) उक्तविधयोरनयोः षष्ठ्यादिबहुवचनान्तयोर्वस्नसौ स्तः ॥

पदसे परे अपादादिमें स्थित षष्ठी-चतुर्थी-द्वितीयाके बहुवचन-सहित युष्मद्-अस्मद्-कू क्रमसे वस् (वः) और नस् (नः) आदेश हों ॥

३७१ तेमयावेकवचनस्य । ८ । १ । २२ ॥

(तेमयौ-प्रथमा० । एकवचनस्य-षष्ठ्यन्तम् ॥) उक्तविधयोरनयोः षष्ठीचतुर्थ्येकवचनान्तयोस्तेमे एतौ स्तः ॥

पूर्वोक्तविधिमें षष्ठी-चतुर्थी-के एकवचनान्त युष्मद्-अस्मद्-शब्द-कू क्रमसे त और मे आदेश हों-॥

३७२ त्वामौ द्वितीयायाः ।८।१।२३ ॥

(त्वामौ-प्रथमा० । द्वितीयायाः-षष्ठ्यन्तम् ॥) उक्तविधयोः द्वितीयैकवचनान्तयोस्त्वामा इत्यादेशौ स्तः ॥

पूर्वोक्तविषयमें द्वितीया-विभक्तिके एकवचन-साहित युष्मद्-अस्मद्-शब्दको क्रमसे त्वा और मा आदेश हों,-॥

वचन	द्वितीया	आदेश	चतुर्थी	आदेश	षष्ठी	आदेश
एकवचन.	त्वाम्	त्वा	तुभ्यम	ते	तव	ते
द्विवचन.	युवाम्	वाम्	युवाभ्याम्	वाम्	युवयो	वाम्
बहुवचन.	युस्मान्	व	युष्मभ्यम्	व	युष्माकम्	व

वचन	द्वितीया	आदेश	चतुर्थी	आदेश	षष्ठी	आदेश
एकवचन.	माम्	मा	मह्यम्	मे	मम	मे
द्विवचन.	आवाम्	नौ	आवाभ्याम्	नौ	आवयो	नौ
बहुवचन.	अस्मान्	न॰	अस्मभ्यम्	नः	अस्माकम्	न॰

श्रीशस्त्वाऽवतु मापीह, दत्तात्ते मेऽपि शर्म सः ।
स्वामी ते मेऽपि स हरिः, पातु वामपि नौ विभुः ॥ १ ॥
सुखं वां नौ ददात्वीशः, पतिर्वामपि नौ हरिः ।
सोऽव्याद्वो नः शिवं वो नो, दद्यात्सेव्योऽत्र वः स नः ॥ २ ॥

श्रीशः–लक्ष्मीपती **त्वा** (त्वाम्) तुझको **मा** (माम्)-मुझको **अपि**–भी **इह**–इस संसारमें **अवतु**–रक्षा करैं । **सः**–वोही परमेश्वर **ते**–(तुभ्यम्) तेरे अर्थ **मे**-(मह्यम्) मेरे अर्थभी **शर्म**-कल्याण **दत्तात्**-देवें । **सः**-**हरिः**-वोह भगवान **ते**-(तव) तेरा **मे**-(मम) **अपि**–मेराभी **स्वामी**-स्वामी है, **विभुः**-सर्वव्यापक नारायण **वाम्**-(युवाम्) तुम दोनोंको **नौ**-(आवाम्) **अपि**-हम दोनोकोभी **पातु**-पालन करै ॥ १ ॥ **ईशः**-ईश्वर **वाम्**-(युवाभ्याम्) तुम दोनोंके अर्थ **नौ** (आवाभ्याम्) हम दोनोंके अर्थ **सुखम्**–सुख **ददातु**-देवे, **हरिः**-परमात्मा **वाम्**–(युवयोः) तुम दोनोंका **नौ**-(आवयोः) हम दोनोंकाभी **पतिः**-स्वामी है । **सः**-वोही **वः**-(युष्मान्) तुमको **नः**-(अस्मान्) हमको **अव्यात्**-पालन करे, **वः**-(युष्मभ्यम्) तुह्मारे निमित्त **नः**-(अस्मभ्यम्) हमारे निमित्त **शिवम्**-कल्याण **दद्यात्**-दे, **सः**–वोही परमेश्वर **वः**-(युष्माकम्) तुह्मारे **नः**-(अस्माकम्) हमारे **सेव्यः**-सेवन करने योग्य है ॥ २ ॥ इति ॥ पदात परयोः किम ॥ पदसे परे कहनेके कारण ' त्वाम्पातु ' इत्यादिमें उक्त आदेश नहीं होता ॥ अपादादौ किम् ॥ पादकी आदिमें न हो, ऐसा कहनेसे ' अस्मान् कृष्णः सर्वदावतु ' यहां पादकी आदिमें आदेश न हो जाय ॥

३७३ (एकतिङ् वाक्यम्) ॥

जिसमें एक तिङ् अर्थात् एकही क्रिया हो उसको वाक्य कहते हैं । इसका फल–॥

३७४ (एकवाक्ये युष्मदस्मदादेशा वक्तव्याः) ॥

युष्मद्-अस्मद्-शब्दोंको जो आदेश उक्त चार सूत्रोंसे कहे हैं

वोह आदेश एकवाक्यमेंही हों अर्थात् जहां एकही क्रिया हो तहां आदेश हों । जैसे–शालीनां ते ओदनं दास्यामि ॥ चावलोंका भात मैं (ते) तुझको दूंगा, यहां 'दास्यामि' इस एक क्रियाके होनेसे 'ते' आदेश हो गया ॥ ते॰॰॰ न ॥ 'एकतिङ्' कहनेसे यहां नहीं होता 'ओदनं पच तव ष्यति' क्योंकि यहां 'पच' और 'भविष्यति' यह दो क्रिया हैं ॥

३७५ (एते वान्नावादय आदेशा अनन्वादेशे वा वक्तव्याः)। अन्वादेशे तु नित्यं स्युः ॥

यह वाम् और नौ-आदि आदेश अनन्वादेशमें विकल्प करके हों । और अन्वादेश (सू० ३०८) में तो नित्यही होय । "धाता ते भक्तोऽस्ति, धाता तव भक्तोऽस्ति वा" यहां अन्वादेश न होनेसे तव-कू ते-आदेश विकल्पसे हुआ और 'तस्मै ते नमः' अर्थात्-धाता जिसका भक्त है उसी तुझको नमस्कार है, यहां अन्वादेशमें तुभ्यं-कू ते-आदेश नित्यही हुआ ॥

सुपाद् (सुन्दर चरणवाला) । सुपाद्+सु (सू० २००।१६६)–सुपात् (द्) । सुपादौ २ । सुपादः । सुपादम् । सुपाद्+शस् (अ) स्–॥

३७६ पादः पत् । ६ । ४ । १३० ॥

(पादः षष्ठ्य०। पत्-प्रथमा०॥)पाच्छब्दान्त यदङ्ग भं तदवयवस्य पाच्छब्दस्य पदादेशः ॥

पाद्-शब्द जिसके अन्तमें हो ऐसा जो भ-संज्ञक अंग उसके अवयव पाद्-शब्दकू पद्-आदेश हो । सुपदः । सुपदा । सुपाद्भ्याम् ३ । सुपाद्भिः । सुपदे । सुपाद्भ्यः २ । सुपदः २ । सुपदोः २ । सुपदाम् । सुपदि । सुपात्सु ॥

अग्निमथ् (मंथनकर अग्निका निकालनेवाला) । अग्निमथ्+सु । (सू० २००।८३।१६६) अग्निमत्–द् । अग्निमथौ २ । अग्निमथः२।

अग्निमथम् । अग्निमथा । अग्निमथ्+भ्याम् (सू० ८३) अग्निमद्भ्याम् ३ । अग्निमद्भिः । अग्निमथे । अग्निमद्भ्यः २ । अग्निमथः२ । अग्निमथोः २ । अग्निमथाम् । अग्निमथि । अग्निमत्सु ॥

३७७ अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति । ६ । ४ । २४॥

(अनिदिताम्–षष्ठ्य० । हलः षष्ठ्य० । उपधायाः -ष० । क्ङिति–सप्त० ॥)
हलन्तानामनिदितामङ्गानामुपधाया नस्य लोपः किति ङिति । नुम् । संयोगान्तलोपः । नस्य कुत्वेन ङः ॥

जिसके नकारकी इत्संज्ञा न होती हो ऐसा जो हलन्त-अंग उसकी उपधाके नकारका लोप हो कित् वा ङित्-प्रत्यय परे रहते । प्राञ्च् (पूर्वदिशा) यहां प्र-पूर्वक अञ्चु-धातुमें (सू०३३०) करके जो क्विन्-प्रत्यय होकर लोप हो जाता है, उस लुप्त क्विन्-को कित् परे मानकर अञ्चुमें जिस नकारको चकार परे रहते (सू०७७) से ञकार हो रहा है उसी नकारका लोप हो गया । प्राच्+सु । इस दशामें (सू०३१८) से नुम हुआ । प्रान्च्+सु–(सू० २००।२४) प्रान् । इस अवस्थामें (सू० ३३३) नकारको ङ-कार हुआ तो । प्राङ् । प्राञ्चौ २ । प्राञ्चः । प्राञ्चम् । प्राच्+श (अ) स् ॥

३७८ अचः । ६ । ४ । १३८ ॥

(षष्ठ्यन्तम् ॥) लुप्तनकारस्याञ्चेर्भस्याकारस्य लोपः ॥

जिसके नकारका लोप हो गया हो ऐसे अंचु-धातुके भ-संज्ञक अकारका लोप हो । प्र–च्+अस् । फिर–॥

३७९ चौ । ६ । ३ । १३८ ॥

(सप्तम्यन्तम् ॥) लुप्तनकाराकारेऽञ्चतौ परे पूर्वस्याणो दीर्घः स्यात् ॥

जिसके नकार और अकारका लोप हो गया हो ऐसे अञ्चु-धातुके परे रहते पूर्ववर्त्ती अण्-को दीर्घ हो । इसमें 'प्र' के अकारको

१ यद्यपि 'प्राच' इस प्रयोगमें प्रथम अकारका लोप किया, फिर दीर्घ किया अतः अकारका लोप व्यर्थसा ज्ञात होता है, परन्तु 'प्रति-अच् शस' इस अवस्थामें अकारका लोप होकर पूर्व अण् अर्थात् तकारोत्तरवर्ती इकारको दीर्घ कर 'प्रतीच' ऐसा रूप सिद्ध

पुनः दीर्घ हो गया । प्राचः । प्राचा । प्राच्+भ्याम् (सू० ३३५।८३) प्राग्भ्याम् ३ । प्राग्भिः । प्राचे । प्राग्भ्यः २। प्राचः २ । प्राचोः२। प्राचाम् । प्राचि । प्राच्+सु (सू० ३३५ । ८३ । १७०) प्राक्षु ॥ प्रत्यञ्च् (सर्वमें गमन कर्त्ता) । प्रत्यञ्च्+सु (सू०३७७ । ३१८। २०० । २४ । ३३३ से) प्रत्यङ् । प्रत्यञ्च्+शस् (सू० ३७७ । ३७८ । ३७९ से) प्रतीचः । प्रत्यच्+भ्याम् (सू० ३३५ । २३) प्रत्यग्भ्याम् । प्रत्यक्षु । इसी प्रकार—उदङ् । उदञ्चौ २ । उदञ्चः । उदञ्च्+शस् । (सू०३७७) से । उदच्+अस् । इस अवस्थामें—॥

३८० उद ईत् । ६ । ४ । १३९ ॥

(उदः—पञ्च० ।.ईत्—प्रथमा० ॥) उच्छब्दात्परस्य लुप्तनकारस्याऽञ्चतेर्भस्याकारस्य ईत् ॥

उद्-उपसर्गसे परे जिसके नकारका लोप हो गया हो ऐसे अंचु-धातुके भ-संज्ञक अकारको ईकार हो । उदीचः । उदीचा । उदग्भ्याम् । उदक्षु ॥ सम-अञ्च्+क्विन् । क्विन्का सर्वापहारी लोप हो गया । सम्-अञ्च् । इस अवस्थामें—॥

३८१ समः समि । ६ । ३ । ९३ ॥

(समः—षष्ठ्य० । समि—इति निर्विभक्तिकम्॥) अप्रत्ययान्तेऽञ्चतौ परे॥

जिसके अन्तमें प्रत्यय न हो ऐसे अञ्चु-धातुके परे रहते सम्-को समि-आदेश हो । इस सूत्रसे समि-आदेश होकर (सू० १९ से) १ ण् हो गया तो पूर्ववत् साधुत्व होकर—। सम्यङ् । सम्यच+शस् (सू०३७७ । ३७८ । ३७९ से) समीचः । सम्यग्भ्याम् । सम्यक्षु ॥ सह+अञ्चु । यहां—॥

३८२ सहस्य सध्रिः । ६ । ३ । ९५ ॥

(सहस्य—षष्ठ्य० । सध्रिः—प्रथमा० ॥) अप्रत्ययान्तेऽञ्चौ परे ॥

होता है । अतः अकारलोपका व्यर्थ समझनाही व्यर्थ है. और विद्याभिलाषियोंको ऐसेही प्रयोगोमे उक्त दो सूत्रोकी चरितार्थता स्पष्ट रूपसे ध्यानमे आवेगी ।

जिसके अन्तमें प्रत्यय न हो ऐसे अञ्चु-धातुके परे रहते सह-कू सध्रि-आदेश हो। इस सूत्रसे सध्रि-आदेश होकर (सू० १९) से यण् होता है, और पूर्वकी समान साधन है। सध्र्यङ् । सध्रीचः । सध्र्यग्भ्याम् । सध्र्यक्षु ॥ तिरस्-अञ्चु । यहां-॥

३८३ तिरसस्तिर्यलोपे । ६ । ३ । ९४ ॥

(तिरसः-षष्ठ्यः । तिर्यलोपे-सप्तः ॥)अलुप्ताकारेऽञ्चतौ वप्रत्ययान्ते परे तिरसस्तिर्यादेशः ॥

जिसके अकारका लोप न हुआ हो और जिसके अन्तमें कोई प्रत्यय न हो ऐसे अञ्चु-धातुके परे रहते तिरस्-को तिरि-आदेश हो। (सू० १९) से यण और साधुत्व पहलेकी समान जानो। तिर्यङ् । इत्यादिः ॥ प्र-अञ्च = प्राञ्च्+सु । इस अवस्थामें-॥

३८४ नाञ्चेः पूजायाम् । ६ । ४ । ३० ॥

(न-नि० म० प० । अञ्चेः षष्ठ्यः । पूजायाम् सप्तम्य० ॥) पूजार्थस्यांचेनरुपधाया नस्य लोपो न ॥

पूजा-अर्थवाले अञ्चु-धातुकी उपधाके नकारका लोप न हो। तो (सू० २०० । २४) से-प्रान्-(सू० ३३३) प्राङ् । प्राञ्चौ २ । प्राञ्चः । प्राञ्चम् । नलोपाभावादलोपो न । प्रान्+शस् । इस अवस्थामें नकारका लोप न होनेके कारण 'अचः' से अकारका लोप भी नहीं होता । प्राञ्चः । प्राञ्चा । प्राञ्च्+भ्याम् (सू०२४ । ३३३) प्राङ्भ्याम् ३ । प्राङ्भि । प्राञ्चे । प्राङ्भ्यः २ । प्राञ्चः २ । प्राञ्चोः २ । प्राञ्चाम् । प्राञ्चि । प्राञ्च्+सु (सू० २४।३३३।१७०) से-प्राङ्+षु, (सू०१०५) प्राङ्क्षु, प्राङ्सु ॥ एवं पूजार्थे प्रत्यङ्ङादयः ॥ इसी प्रकार पूजा-अर्थमें प्रत्यङ्-आदिके रूप होते हैं ॥ क्रुञ्च्+सु-(सू० २०० । २४ । ३३३) क्रुङ् । क्रुञ्चौ । क्रुञ्चः । क्रुङ्भ्याम् । क्रुङ्क्षु, क्रुङ्सु । सरलताके हेतु सब रूप नहीं लिखे॥

(पयोमुच्-मेघ)। पयोमुच्+सु (सू० २०० । ३३५ । १६६ । ८३) पयोमुक्-ग् । पयोमुचौ २। पयोमुचः । पयोमुग्भ्याम् । पयो-

मुक्षु ॥ महत् (बडा)। महत्+सु (सू० ३१८) मह-न्-त्+सु। इस दशामें-॥

३८५ सान्तमहतः संयोगस्य। ६। ४। १४॥

(सान्तमहतः-षष्ठ्य०। संयोगस्य-षष्ठ्य०॥) सान्तसंयोगस्य महतश्च यो नकारस्तस्योपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने॥

सकारान्त-संयोग और महत्-शब्दका जो नकार उसकी उपधाको दीर्घ हो सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान परे रहते। महान्-त्+सु-(सू०२००।२४) महान्। महान्तौ २। महान्तः। हे महन्। महान्तम्। महतः। महता। महत्+भ्याम्-(सू० ८३) महद्भ्याम् ३। महद्भिः। महते। महद्भ्यः २। महतः २। महतोः २। महताम्। महति। महत्सु॥ धी-से मतुप्-प्रत्यय होकर धीमत्-शब्द सिद्ध होता है। धीमत्+सु-॥

३८६ अत्वसन्तस्य चाऽधातोः। ६। ४। १४॥

(अत्वसन्तस्य-षष्ठ्य०। च-अव्यय०। अधातोः-षष्ठ्यन्तम्॥) अत्वन्तस्योपाधाया दीर्घो धातुभिन्नासन्तस्य चासम्बुद्धौ सौ परे॥

अतु जिसके अंतमें हो उसकी उपधाकू और धातुकू छोडकर असन्तको दीर्घ हो असम्बुद्धि-सु परे रहते। धीमात्+सु-(सू० ३१८। २००।२४) धीमान्। धीमत्+औ (सू०३१८) धीमन्तौ २। धीमन्तः २। हे धीमन्॥ शसादौ महद्वत्॥ शसादि-विभक्तिमें महत्-शब्दकी समान रूप होते हैं॥ भातेर्डवतुः। डित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः॥ 'भा दीप्तौ' धातुसे डवतु-प्रत्यय होता है। यद्यपि डवतु परे रहते भ-संज्ञा नहीं है, तथापि डवतुमें जो डकारकी इत्संज्ञा की है इस डित्वसामर्थ्यसेही (सू०२६१) करके टि-का लोप हो जाता है। भवत्+सु-(सू०३१८। २००। २४) भवान्। भवन्तौ। भवन्तः। शेष रूप महत्-शब्दकी समान होते हैं॥ शत्रन्तस्य तु भाषयांको ऐसेही भवत् शतृ-प्रत्ययान्त है तब-'भवन्' रूप होता है।

शतृ-प्रत्यय अत्वन्त न होनेके कारण उक्त (सू० ३८६) सूत्रसे दीर्घ नहीं होता। शेष रूप उसी प्रकार जानो॥ ददत्+सु-॥

३८७ उभे अभ्यस्तम् । ६ । १ । ५ ॥

(उभे-प्रथमा० । अभ्यस्तम् प्रथमा० ॥) षाष्ठद्वित्वप्रकरणे ये द्वे विहिते ते उभे समुदिते अभ्यस्तसंज्ञे स्तः ॥

छठे अध्यायके द्वित्वप्रकरणमें जो दो विधान किये हैं वोह दोनों अभ्यस्त-संज्ञक हों। उक्त उदाहरणें ' श्लौ ६ । १ । १० ॥ ' इस षष्ठाध्यायके सूत्रसे द्वित्व हुआ है, अतएव अभ्यस्त-संज्ञा मानी गई। अभ्यस्त-संज्ञाका फल-॥

३८८ नाभ्यस्ताच्छतुः । ७ । १ । ७८ ॥

(न-नि० प० । अभ्यस्तात्-पच० । शतुः-षष्ठ्य० ॥) अभ्यस्तात्परस्य शतुर्नुम् न ॥

अभ्यस्त-संज्ञकसे पर जो शतृ-प्रत्यय तिसको नुम् न हो। उक्त प्रयोगमें जो (सू० ३१८) से नुम प्राप्त था, उसका निषेध होकर (सू०२००) से सु-का लोप हो गया। ददत . (सू०८३) ददद् । ददतौ २ । ददतः २ । ददता । ददद्भ्याम् । ददत्सु॥ जक्षत् (खानेवाला) । जक्षत्+सु । यहांभी (सू०३१८) से नुम्-की प्राप्ति है। परन्तु-॥

३८९ जक्षित्यादयः षट् । ६ । १ । ६ ॥

(जक्षित्यादयः-प्रथ० । षट्-प्रथमा० ॥) षड् धातवोऽन्ये जक्षितिश्च सप्तम एतेऽभ्यस्तसंज्ञाः स्युः ॥

छै धातुएं तो और तथा सातमा जक्ष-धातु यह अभ्यस्त-संज्ञक होय। उक्त उदाहरणमें जक्ष-की अभ्यस्त-संज्ञा होनेके कारण (सू० ३८८) से नुमका निषेध होकर (सू० २००) से सुका लोप हो गया।

१ और छै धातु यह है जाग्रत् १, दरिद्रत् २, शासत् ३, चकासत् ४, दीध्यत् ५, वेव्यत् ६-" दीधीवेव्योर्ङित्वेऽपि छान्दसत्वात् व्यत्ययेन परस्मैपदम् ' अर्थात्-'दीधीङ' और 'वेवीङ' इन पिछले दो धातुओंके ङित्व होनेपरभी सूत्रपाठित होनेसे परस्मैपद हो जाता है। अन्यथा ङित्-धातुसे आत्मनेपद होता है।

जक्षत् (द्) । जक्षतौ २ । जक्षतः २। जक्षतम् । जक्षता । जक्षद्भ्याम् ३ । जक्षद्भिः । जक्षते । जक्षद्भ्यः २ । जक्षतः २ । जक्षतोः २ । जक्षताम् । जक्षति । जक्षत्सु ॥ एवं जाग्रत् । दरिद्रत् । शासत् । चकासत् ॥ इसी प्रकार जाग्रत् (जागनेवाला), दरिद्रत् (दरिद्री होनेवाला), शासत् (शिक्षक), चकासत् (प्रकाशक), शब्दोंके रूप होते हैं ॥ गुप्–(रक्षक) । गुप्+सु (सू० २०० । ८३ । १६६) गुप् , गुब् । गुपौ २ । गुपः २ । गुपम् । गुपा । गुप्+भ्याम्– (सू० ८३) गुब्भ्याम् ३ । गुब्भिः । गुपे । गुब्भ्यः २ । गुपः २ । गुपोः २ । गुपाम् । गुपि । गुप्सु । यहां 'खरि च' से पकारही रहता है ॥ तत्+दृश्–॥

३९० त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च । ३ । २ । ६० ॥

(त्यदादिषु–सप्त० । दृशः–षष्ठ्य० । अनालोचने–सप्त० । कञ्–प्रथमा० । च–अ० प०॥) त्यदादिषूपपदेषु अज्ञानार्थदृशेः कञ् चात् क्विन् ॥

जब त्यद्-आदि शब्द उपपद हों तो अज्ञान-अर्थवाले दृश-धातुसे कञ्-प्रत्यय हो, सूत्रमें चकार लिखनेसे ज्ञात होता है कि–क्विन्-प्रत्ययभी हो। उक्तप्रयोगमें क्विन्-प्रत्ययका सर्वापहारी लोप कर दिया, तदनु स्वादि-प्रत्यय आये । तत्+दृश्+सु (सू०२००)–॥

३९१ आ सर्वनाम्नः । ६ । ३ । ९१ ॥

(आ० प्रथमा० । सर्वनाम्नः–षष्ठ्य० ॥) सर्वनाम्न आकारोऽन्तादेशः स्यात् दृग्दृशवतुषु ॥

दृक् दृश् और वतु परे रहते सर्वनाम-शब्दोंको आकार अन्तादेश हो । तादृश्–(सू०३३६ ष । ८३ षकू ड । ३३३ से ग । १६६ पाक्षिक क्) तादृक्-ग् । तादृशौ २ । तादृशः २ । तादृशम् । तादृशा । तादृग्भ्याम् ३ । तादृग्भिः । तादृशे । तादृग्भ्यः २ । तादृशः २ । तादृशोः २ । तादृशाम् । तादृशि । तादृक्षु ॥ व्रश्चेति षः । जश्त्वचर्त्वे ॥ विश्+सु । यहां (सू० ३३६) से 'ष' और (सू० १६६ । ८३) से 'ट' और 'ड' । विट् ,विड् । विशौ । विड्भ्या-

म् । विड्+सुप् (मू० ३३६ । ८३) विड्+सु (मू० १०३।९१) विट्-त्सु, विट्सु ॥ नश्+सु (मू० २००)-॥

३९२ नशेर्वा । ८ । २ । ६३ ॥

(नशेः-षष्ठ्य० । वा-वि० म० प० ॥) नशेः कवर्गोऽन्तादेशो वा पदान्ते । पक्षे व्रश्चेति षः । जश्त्वचर्त्वे ॥

पदान्तके विषयमें नश्-धातुको कवर्ग यह अन्तकू आदेश हो । और पक्षमें 'व्रश्चभ्रस्ज०' से ष. तथा 'झलां जशोऽन्ते' और 'वावसाने' का कृत्य हो । नक्, नग्. नट्, नड । नशौ । नग्भ्याम्, नड्भ्याम् । नक्षु, नट्त्सु, नट्सु ॥ घृतस्पृश् (घीका स्पर्श करनेवाला)॥

३९३ स्पृशोऽनुदके क्विन् । ३ । २ । ५८ ॥

(स्पृश षष्ठ्य० । अनुदके-सप्तम्य० । क्विन्-प्रथमा० ॥) अनुदके सुप्युपपदे स्पृशेः क्विन् ॥

उदकभिन्न सुप् उपपद रहते स्पृश्-धातुसे क्विन हो । इस सूत्रसे क्विन् होकर सर्वापहारी लोप हो गया । फिर 'स्' काभी लोप होकर (मू० ३३३) से कुत्वमसे अल्पप्राणादि-प्रयत्नमसे 'क' हो गया । (मू० १६६ । ८३) घृतस्पृक्-ग् । घृतस्पृशौ । घृतस्पृग्भ्याम् । घृतस्पृक्षु ॥ दधृष्-(मू० ३३० । ३३३ । १६६ । ८३) दधृक्-ग् । दधृषौ । दधृषः । दधृग्भ्याम् । दधृक्षु ॥ रत्नमुष् (रत्नोंका चोर) । रत्नमुष्+सु (मू० २०० । १६६ । ८३) रत्नमट्, रत्नमुड । रत्नमुषौ । रत्नमु[illegible] (मू० २०१ । १) ड्भ्याम् । रत्नमुट्त्सु, रत्नमुट्सु ॥ षट्+जस, शस्-(मू० [illegible] । २ । ८३) षट्, षड् । षष्+भिस्-(मू० ८३) षड्भिः । षड्भ्यः [illegible] षट्त्सु, षट्सु ॥ षिष्+आम (मू० २९४ । ८३ । ८४) षण्णाम । [illegible] रुत्वम्प्रति ठिप् (पढने[illegible] ...ी करनेवाला) । पिपठिष्+सु । " [illegible] सत्वस्यासिद्धत्वात्ससजुषोरिति रुत्वम्" 'पिपठिष' में जो सन्-के [illegible] जो मूर्द्धन्य करा है, सो मूर्द्धन्यविधायक 'आदेशः प्रत्यययोः' [illegible] रुत्वके प्रति असिद्ध है, अतएव 'ससजुषो रुः'

से स होता है, अर्थात् ' ससजुषो रुः ' सूत्र सन्-के षकारकू दन्त्यही समझता है । पिपठिर्+ सु (सू० २००)–॥

३९४ र्वोरुपधाया दीर्घ इकः । ८ । २ । ७६ ॥

(र्वोः–षष्ठ्य० । उपधायाः–षष्ठ्य० । दीर्घः–प्रथ० । इकः–षष्ठ्य०॥) रेफवान्तस्य धातोरुपधाया इको दीर्घः पदान्ते ॥

रकारान्त तथा वकारान्त धातुकी उपधारूप इक्कू दीर्घ होय पदान्तमें । इससे दीर्घ हो (सू० ११३) से–पिपठीः । पिपठिषौ । पिपठीर्भ्याम् । पिपठिस्+सुप्–(सू० १२५ । ३९४ । १२४) पिपठीः+सु । इस अवस्थामें–॥

३९५ नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि । ८ । ३ । ५८ ॥

(व्यवाये (तक) सप्तम्यन्तम् । अपि–अ० प० ॥) एतैः प्रत्येक व्यवधानेऽपि इण्कुभ्याम्परस्य सस्य मूर्धन्यादेशः । ष्टुत्वेन पूर्वस्य षत्वम् ॥

नुम् , विसर्ग, शर् (प्रत्याहार) इनमेसे किसी एकके भी व्यवधान (बिचमें होनेपर) में जो इण् अथवा कवर्गसे परे जो सकार उसको मूर्धन्य-आदेश (ष) होय । ' वा शरि ' के दूसरे पक्षमें विसर्गोंको सकार होकर पूर्व-सको ' ष्टुना ष्टुः ' से ष होता है । पिपठीःषु, पिपठीष्षु ॥ चिकीर्ष् (करनेकी इच्छावाला) । चिकीर्ष्+सु (सू०२००) से सुलोप, (सू०१२५। १३१।११३) से । चिकीः । चिकीर्षौ २ । चिकीर्षः २ । चिकीर्षम् । चिकीर्षा । चिकीर्ष्+भ्याम् (सू० १२५ । १३१) चिकीर्भ्याम् ३ । चिकीर्भिः । चिकीर्षे । चिकीर्भ्यः ' चिकीर्षः २ । चिकीर्षोः २। चिकीर्षाम् । चिकीर्षि । चिकीर्ष् +सु ( ) (सू०२३२ ।२९६) चिकीर्षु ॥ विद्वस्–(ज्ञाता, अ तू–पंडित) उक्त शब्दमें विद्-धातुसे जो शतृ-प्रत्यय हुआ है,उस । ३३) अदे । उक्त शब्द सिद्ध हुआ । विद्वस्+सु–(सू० ३१८।२ नु विद्वान् । विद्वांसौ २ । यहां (सू० ९६) से अ विद्वांसः । हे विद्वन् । विद्वांसम् । विद्वस्+अ (श) अदसो दात्पर-

३९६ वसोः सम्प्रसारणम् । ६ । ४ । १

(वसोः-षष्ठ्यन्त० । सम्प्रसारणम्-प्रथमा० ॥) वस्वन्तस्य भस्य सम्प्रसारण स्यात् ॥

जिसके अन्तमें वसु-प्रत्यय हो ऐसे भ-संज्ञक अंगकू संप्रसारण हो । विदु-अस्+अस (सू० २८६।१७१) विदुषः । विदुषा । विद्वस्+भ्याम्- (सू०२९०) विद्वद्भ्याम् ३ । विद्वद्भिः । विदुषे । विद्वद्भ्यः २ । विदुषः २ । विदुषोः २ । विदुषाम् । विदुषि । विद्वत्सु ॥ पुम्स् (पुरुष) । (सू०९६) पुंस्+सु-॥

३९७ पुंसोऽसुङ् । ७ । १ । ८९ ॥

(पुंसः-षष्ठ्यन्त० । असुङ्-प्रथमा० ॥) सर्वनामस्थाने विवक्षिते पुंसोऽसुङ् स्यात् ॥

जब सर्वनामस्थान कहनेकी इच्छा हो तब पुंस्-शब्दको असुङ् (अस) आदेश हो । जब (सू०५०) के अनुसार असुङ्-आदेश सकारके स्थानमें हुआ, तब अनुस्वार अपने मकार-रूपमेंही प्राप्त हो गया । पुमस्+सु-(सू० ३१८ । १९८) पुमानस्+सु (सू०२००। २४) पुमान् । पुमांसौ २ । पुमांसः । हे पुमन् । पुमांसम् । पुंसः । पुम्स्+भ्याम् (सू० २४) पुम्भ्याम् । पुम्स+सु (पु)-(सू०२४। ०६ । ३९५) पुंसु ॥ ऋदुशनेत्यनङ् ॥ उशना । उशनस् (शुक्र) । उशनस्+सु (सू० २२८) उशन-अन्+सु (सू० २०० । १९८। ५३) उशना । हे उशनस्+सु-॥

३९८ (अस्य सम्बुद्धौ वानङ् नलोपश्च वा वाच्यः) ॥

सम्बुद्धिका सु परे रहते उशनस् शब्दको विकल्पसे अनङ् हो
औ- (सू०४००) अमू नकारका लोप हो । अनङ् होकर सुका और 'न'
अमीभिः । अद+ङे । अनङ् होकर नलोप नहीं । हे उशनन् । दोनोंही
अद्+ङसि (सू० विसर्ग । हे उशनः । उशनसौ । उशनसः । उशनस्+
- -।१२७।३३) उशनोभ्याम । उशनस्सु ॥ अनेहस्

१ अर्थात्-अद अमू में सारस्वतकारने वैकल्पिक एक 'पक्षु' रूपभी सिद्ध किया है,
अमूके 'आ' का पूर्वरू की सिद्धि करनेके अर्थही सारस्वत-ग्रन्थ निर्माण किया गया है।
रूप फिर उत्व-मत्व होते

(समय) । अनेहस्+सु (सू०२२८।१९८।२००।२०१) अनेहा । अनेहसौ । अनेहसः । हे अनेहः । अनेहोभ्याम् । अनेहस्सु ॥ वेधस् (ब्रह्मा) । वेधस्+सु–(सू० ३८६।२००। १२५।११३) वेधाः । वेधसौ । शेष रूप अनेहस्-की सदृश होते है ॥ अदस् (यह) । अदस्+सु–॥

३९९ अदस औ सुलोपश्च । ७ । २ । १०७ ॥

(अदसः–षष्ठ्य० । औ–प्रथमा० । सुलोपः–प्रथ० । च–अ० प० ॥) अदस औत्स्यात्सौ परे सुलोपश्च । तदोरिति सः ॥

सु परे रहते अदस्-शब्दकूं औ-कार (अन्तादेश) हो, और सु-का लोप हो । औ होकर 'तदोः सः सावनन्त्ययोः' से द-कूं स हो। असौ ॥ त्यदाद्यत्वम्–पररूपत्वम् ॥ अदस्+औ । इस अवस्थामें 'त्यदादीनामः' 'स' 'स' कूं 'अ' होकर 'अतोऽगुणे' से पर-रूप हुआ तौ । अद+औ (सू०३९) से– । अदौ । इस दशामें–॥

४०० अदसोऽसेर्दादुदोमः । ८ । २ । ८० ॥

(अदसः–षष्ठ्य० । असेः–षष्ठ्य० । दात्–पञ्च० । उदः–प्रथ० । मः–प्रथ०॥) अदसोऽसान्तस्य दात्परस्य उदूतौ दस्य मश्च । आन्तरतम्यात् ह्रस्वस्य उः दीर्घस्य ऊः ॥

जिसके अन्तमें सकार न हो ऐसे अदस्-शब्दके दकारसे परकूं उ और ऊ आदेश हों और दकारको मकार हो जाय । बराबरीसे ह्रस्व-स्वरकूं उ और दीर्घ-स्वरकूं ऊ हों । उक्त उदाहरणमें 'द' से परे औ दीर्घ स्वर पर है उसको दीर्घ ऊ, और 'द' कूं 'म्' हो गया । अमू २ । अदम्=अद+जस् (सू० १७२ । ३३) अदे । इस दशामें–॥

४०१ एत ईद्बहुवचने । ८ । २ । ८१ ॥

(एतः–षष्ठ्य० । ईत्–प्रथमा० । बहुवचने–सप्त० ॥) अदसो दात्परस्यैत ईद्दस्य च मो बह्वर्थोक्तौ ॥

अदस्-शब्दके दकारसे परे जो एकार उसको ईकार हो बहुवचनकी उक्तिमें और द-कारकू मकार हो । अमी ॥

पूर्वत्रासिद्धमिति विभक्तिकार्य्यम्प्राक्, पश्चात् उत्वमत्वे ॥

'पूर्वत्रासिद्धम्' इस सूत्रसे उत्व-मत्व असिद्ध होते हैं, इस कारण विभक्तिकू मानकर अत्व-आदि कार्य प्रथम होते है, पश्चात् उत्व और मत्व होते हैं । अदस्+अम्–(सू० २१४ । ३०२ । १५५ । ४००) अमुम् । अदस्+श (अ) स्–(सू० २१४ १४७।१५७ । ४००) अमून् । अदस्+टा (सू०२१४ । ३०२) अद टा॥ मुत्वे कृते घिसंज्ञायां नाभावः ॥ अर्थात् मुत्व करके लिखित सूत्रोंसे घि-संज्ञा होनेपर टाको ना होता है । (सू० ४००।१९१।१९२) अमु+ना । इस अवस्थामें जब घि-संज्ञा करते है तब अष्टाध्यायीके क्रमानुसार 'मुत्व' असिद्ध होता है । मु-भाव असिद्ध होनेसे घि-संज्ञाभी न हुई, और घि-संज्ञाके असिद्ध होनेसे 'ना' भाव जो कि घि-संज्ञाको मानकर होता है, उसकाभी निषेध प्राप्त हुआ, अतएव उन सबको समाधान करनेको वक्ष्यमाण सूत्र लिखते है-॥

४०२ न मु ने । ८ । २ । ३ ॥

(न-निषे० । मु-प्रथ० । ने सप्त० ॥) नाभावे कर्त्तव्ये कृते च मुभावो नासिद्धः ॥

ना-आदेश कर्त्तव्य हो अथवा किया हो तो मु आदेश असिद्ध नहीं होता। जब मु-भाव असिद्ध न हुआ तो उक्त प्रकारसे सिद्धि हो गई । अमुना । अदस्+भ्याम् (सू०२१४।३०२।१६१) अदा+भ्याम् (सू०४००) अमूभ्याम् ३ । अदस्+भिस् (सू० २१४।१६५।४०१) अमीभिः । अद+ङे (सू० १७३।४००।१७०) अमुष्मै । अमीभ्यः २ । अद+ङसि (सू० १७४।४००।१७०) अमुष्मात् (द्)। अद+ङस्

१ अर्थात्–अद+अम । यहां सू० ४०० से उत्व-मत्व करके फिर 'अमि पूर्व' से अमके 'आ' का पूर्वरूप इसलिये नहीं होता कि,उत्व-मत्व असिद्ध है इससे प्रथम पूर्वरूप फिर उत्व-मत्व होते है ।

(मू० १६०।४००।१७०) अमुष्य । अद+ओस् (मू० १६७।२७।४००) अमुयोः २ । अद+आम् (मू० १७५।१६५।१७०।४०१) अमीषाम् । अद+ङि (मू० १७४ । ४०० । १७०) अमुष्मिन् । अमीषु ॥

॥ इति हलन्ताः पुँल्लिङ्गाः ॥

अथ हलन्तस्त्रीलिङ्गम् ।

उपनह् (जूता) । उपनह्+सु (मू० २००) ॥

४०३ नहो धः । ८ । २ । ३४ ॥

(नहः-षष्ठ्यन्त । धः-प्रथमा०॥)नहो हस्य धस्स्यात् झलि पदान्ते च॥

नह् (बंधने) धातुके हकारकू धकार हो झल् परे रहते वा पदान्तमें । इस सूत्रसे हकारकू ध-कार हुवा । उप-नध् । इस दशामें-॥

४०५ नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषि क्वौ।६।३।११६॥

(निषि (तक)-सप्तम्य०। क्वौ-सप्त० ॥) क्विवन्तेषु पूर्वपदस्य दीर्घः ॥

नह्[1]-वृत्-वृष्-व्यध्-रुच्-सह्-तन्, जब यह धातु क्विप्-प्रत्ययान्त हों अर्थात् जब इनसे क्विप्-प्रत्यय हुआ हो तब इनके पूर्वपदकू दीर्घ हो । (" सर्वधातुभ्यः क्विब्वक्तव्यः । " अर्थात्-सर्वधातुओंसे क्विप् होता है । इससे उक्त उप-नधमेंभी क्विप् होता है । और क्विप्-का सर्वापहारी लोप हो गया है) तो इस सूत्रसे पूर्वपद उप-को दीर्घ हो गया । और (मू० १६६ । ८३) से-। उपानत् , उपानद् । उपानहौ । उपानहः । उपानद्भ्याम् । उपानत्सु ॥ क्विन्नन्तत्वात् कुत्वेन घः ॥ उष्णिह्-शब्दसे (मू० ३३०) करके क्विन्-प्रत्यय होता है, अतः क्विन्-प्रत्ययान्त होनेके कारण (मू० ३३३) से ' ह ' कू स्थान-प्रयत्न मिलाके तत्सदृश वर्गचतुर्थ ' घ ' होता है,

१ नह्-बाधना । वृत्-होना । वृष-वर्षना । व्यध्-बेधना वा ताडन करना । रुच्-चमकना वा प्यार करना । सह-सहन करना । तन्-विस्तार करना ।

और (सू० १६६।८३) से 'घ' को 'क' और 'ग' भी होता है । उष्णिक् (ग्) । उष्णिहौ । उष्णिहः । उष्णिग्भ्याम् । उष्णिक्षु ॥ दिव्–(स्वर्ग) । दिव्+सु (सू० २९२ । १९ । १२५ । ११३) द्यौः । दिवौ । दिवः । दिव्+भ्याम् (सू०२९३ । १९) द्युभ्याम् । द्युषु ॥ गिर् (वाणी) । गिर्+सु (सू० २०० । ३९४ । ११३) गीः । गिरौ २ । गिरः २ । गिरम् । गिरा ।गिर्+भ्याम्-(सू०३९४) गीर्भ्याम् ३ । गीर्भिः । गिरे । गीर्भ्यः २ । गिरः २ । गिरोः २ । गिराम् । गिरि । गीर्षु । यहां 'रोः सुपि' के अनुसार विसर्ग नहीं होते ॥ एवं पूः ॥ इसी प्रकार पुर् (नगरी)-शब्दके रूप होते हैं ॥ चतुर्=चार (स्त्री) । चतुर्+जस् (सू० २५० । २५१) चतस्रः २ । चतसृभिः । चतसृभ्यः २ । चतुर्+आम् (सू० २५०) चतसृ+आम् (सू० १६८ । २५२) चतसृणाम् । चतसृषु ॥ किम्=क्या, कौन (स्त्री) । किम्+सु (सू० २०९) से 'अजाद्यतष्टाप्' के फलितार्थकू लेकर स्त्रीलिंगमें 'का' आदेश होता है, तब–का+सु-(सू० २००) का । के । काः ॥ सर्वावत् ॥ इसके रूप स्त्रीलिंगवाची आकारान्त सर्वा-शब्दकी समान होते हैं ॥ इदम्–यह (स्त्री) । इदम्+सु–॥

४०५ यः सौ । ७ । २ । ११० ॥

(यः-प्रथमा० । सौ-सप्तम्य० ॥) इदमो दस्य यः स्यात्सौ ॥

यदि सु परे रहै तौ इदम्-शब्दके द-कारको यकार आदेश हो । इस सूत्रसे 'द' कू 'य' हो गया तौ (सू०३००।२००)इयम् । इदम्+औ (सू० २१४ । ३०२) इद+औ (यहां स्त्रीत्व होनेसे टाप् होता है) इदा+औ (सू०३०३।२४२।३३) इमे २। इमाः २। इमाम् । इदा+टा (आ) (सू० ३०४) अना+आ (सू० २४४ । २७) अनया । [illegible] ३०५ । ३०६) आभ्याम् ३ । [illegible] २४६) इद+स्या+ए (सू०३०५। [illegible] भ्यः २ । अस्याः २ । इदा+ओस्

(सू० ३०४।२४४) अने+ओः (सू० २७) अनयोः २। इदा+आम् (सू० १७५। ३०५) आसाम्। इदा+ङि (सू० २२०।२४६। ३०५) अस्याम्। आसु ॥ त्यद् (वोह-स्त्री) ॥ त्यदाद्यत्वं। टाप् ॥ उक्त रूपमें ' त्यदादीनामः ' से अकार होकर स्त्रीत्व-टाप् होता है। त्या+सु-(सू० २००) त्या। त्या+औ (सू० २४२ । ३३) त्ये। त्याः। इत्यादि ॥ एवं तद् एतद् ॥ इसी प्रकार तद्के (सा। ते। ताः। इत्यादि) और एतद्के (एषा। एते। एताः। इत्यादिक) रूप होते हैं ॥ वाच् (वाणी)। वाच्+सु (सू० २००। ३३५। १६६। ८३) वाक् (ग्)। वाचौ। वाचः। वाग्भ्याम्। वाक्षु ॥

अप्शब्दो नित्यं बहुवचनान्तः। अप्तृन्निति दीर्घः ॥

अप् (जल) शब्द नित्य बहुवचनान्त है, सर्वनामस्थान-जस्में उपधाको दीर्घ (सू० २२९) होता है। आपः। अपः। अप्+भिस्। इस दशामें-॥

३०६ अपो भि। ७। ४। ४८ ॥

(अपः-षष्ठ्य०। भि-सप्तम्य०॥) अपस्तकारः स्याद्भादौ प्रत्यये परे ॥

अप्-शब्दकू तकार अन्तादेश हो भकारादि-प्रत्यय परे रहते। इस सूत्रसे पकारको तकार होकर (सू० ८३) से ' त ' कू ' द ' होकर-। अद्भिः। अद्भ्यः २। अपाम्। अप्सु ॥ दिश् (दिशा) दिश् (सू० ३३०) से क्विन्-प्रत्यय होकर सर्वापहारी लोप हुआ। दिश्+सु (सू०२००। ३३३। १६६। ८३) दिक् (ग्)। दिशौ। दिशः। दिग्भ्याम्। दिक्षु ॥

त्यदादिष्विति दृशेः क्विनो विधानादन्यत्रापि कुत्वम् ॥

(सू० ३९०) करके दृश्-धातुसे क्विन्-का विधान किय इस कारण अन्यत्रभी (अर्थात्-जहां दृश्-धातुसे त्यदादि उपपद [illegible] तौभी) इसके अन्त्यकू कुत्व [illegible] ' जैसे' दृश्+सु (सू० ३३३। १६६। ८३) दृक् ([illegible] रूप [illegible] की समान होते हैं ॥ त्विष् (का

८३ । १६६) त्विट् (ड्) । त्विषौ । त्विषः । त्विड्भ्याम् । त्विष्+सुप् (सू० ८३ । १०३ । ९१) त्विट्त्सु, वा त्विट्सु ॥ सजुष्-(मित्र) । सजुष्+सु (सू०२००) ॥ ससजुषोः इति रुत्वम् ॥ यहां 'ससजुषो रुः' से रु हुआ, (सू०३९४।११३) सजूः । सजुषौ । सजुषः । सजुष्+भ्याम् (सू० १२५ । ३४) सजूर्भ्याम् । सजुष्+सुप् (सू० १२५ । ३९४) सजू+र्+सु । यहां 'खरि च' से रकारकू सकार होकर । सजूष्षु । रूप होता है ॥ आशिष्-(आशीर्वाद) । इस उक्त शब्दमें मूर्धन्य-षत्वके असिद्ध होनेसे 'ससजुषो रुः' द्वारा रु होकर सजुष्-शब्दकी समान रूप होते हैं ॥ अदस्-(यह स्त्री) । अदस्+सु-(सू० ३९९ । ३४० । ३९) असौ । अदस्+औ (सू०२१४।३९ । ४००) अमू २ । अमुम । अदा+ज (अ) स् (सू० १४७ । ४००) अमूः २ । अमुम । अदा+टा(सू०२४४। २७ । ४००) अमुया । अमूभ्याम् ३ । अमूभिः । अदा+ङसि (सू० २४६) अद+स्या+अम्-(सू० ४०० । १७० । ४३) अमुष्याः २ । अमूभ्यः २ । अमुयोः २ । अदा+आम् (सू० १७५ । ४०० । १७०) अमूषाम् । अदा+ङि (सू० २२० । २४६।४००। १७०) अमुष्याम् । अमूषु ॥

॥ इति हलन्तस्त्रीलिंगम् ॥

अथ हलन्तनपुंसकलिङ्गम् ।

स्वनडुह् (सुन्दर वृषभवाला) । स्वनडुह्+सु- ॥

४०७ स्वमोर्नपुंसकात् । ७ । १ । २३॥

स्वमोर्लुक् । दत्वम् ॥

नपुंसकलिंगवाची शब्दसे परे जो सु और अम् उनका लुक् हो । लुक् होकर (सू० २९०) से अंत्यको

' द ' होकर (मू० १६६।८३) से । स्वनडुत्-द् २ । स्वनडुह्+औ (मू० २६१) स्वनडुही २ । स्वनडुह्+जस् (मू० २६४ । २६५) स्वनडुह्+इ (मू० २८७ । २६६।१९। ९६) स्वनड्वांहि २ ॥ पुनरपि तद्वत् । शेषं पुंवत् ॥ द्वितीयामेंभी इसी प्रकार रूप होते हैं । शेष रूप पुँल्लिंग ' अनडुह् ' की समान जानो ॥ वार् (जल)। वार्+सु (मू० २७१ । ११३) वाः २ । वारी २ । वारि २ । वारा । वार्भ्याम् ३ । वार्भिः । वार्+सुप् (मू० २९६ । १७०) वार्षु ॥ चतुर् (चार) । चतुर्+जस् (मू० २८७ । २६४) चत्वारि २ । शेष रूप पुलिंग चतुर्-शब्दकी सदृश होते हैं॥किम् (कौन वा क्या)। किम्+सु (मू०२७१) किम् २। किम्+औ (मू०२९९।२६१।३३) । के २ । किम्+जस् (मू० २९९ । २६४।२६६।११९) । कानि२। शेष रूप पुल्लिंगकी समान होते हैं ॥ इदम् (यह) । इदम्+सु (मू० ३०० । २७१) इदम् २ । इदम्+औ (मू०२१४ । ३०२ । ३०३ । २६१) इमे २ । इमानि २ । शेष रूप पुल्लिंगकी समान होते हैं ॥ परन्तु इस शब्दमें कुछ विशेषता है सो नीचे लिखते हैं-॥

४०७ (अन्वादेशे नपुंसके एनद्वक्तव्यः) ॥

नपुंसक लिंगमें अन्वादेशके विषय इदम् और एतत्-शब्दको एनत् आदेश होय॥ (मू०२७१)से-। एनत् (द्)२। (मू०२१४।२६१) से-।एने २ । एनानि २। (मू० ३०८ से)-। एनेन,एतेन । एनयोः २ ॥ ब्रह्मन् (परब्रह्म) । ब्रह्मन्+सु (मू० २७१ । २०१) ब्रह्म२। ब्रह्मणी २ । (मू० १०८ से) ब्रह्माणि २ । हे ब्रह्मन्, हे ब्रह्म । शेष रूप पुल्लिंगकी समान होते हैं ॥ अहन् (दिन) । अहन्+सु (मू० २७१ । १३० । ११३) अहः २ । अहन्+औ (मू० २६१ । २७६) अन्ही २, अहनी २ । अहन्+जस्-(मू० २६४ । २६५ । ११८) अहानि २ । (मू० से)- । अन्हा । अहन्+भ्याम्- ॥

४०७ यह मूलाक क्रमसे लगा है, द्वितीया

४०८ अहन् । ८ । २ । ६८॥

अहन्नित्यस्य रुः स्यात्पदान्ते ॥

पदान्तके विषयमें अहन्-शब्दकू रु अन्तादेश हो । (सू० १२७) से रु-कू उ हो (सू०३३) से ओ-गुण हो । अहोभ्याम् ३ । अहोभिः । अन्हे । अहोभ्यः २ । अन्हः २ । अन्होः २ । अह्नाम् । (सू० २७६) से-। अह्नि+अहनि । अहन्+सुप (सू० ४०८ । ११३ । ११७) अहस्सु ॥ दण्डिन् = दण्ड धारण करनेवाला (सन्यासियोंकी जाति विशेष) । दण्डिन्+सु (सू० २७१ । २०१) दण्डि २ । दण्डिन्+औ (सू० २६१) दण्डिनी २ । दण्डिन्+जस् (सू० २६४ । १९८) दण्डीनि २ । हे दण्डिन्-सु-॥

४०९ (सम्बुद्धौ नपुंसकानां नलोपो वा वाच्यः) ॥

सम्बुद्धि परे रहते नपुंसकलिंग-शब्दोंके नकारका लोप विकल्पसे वक्तव्य है । हे दण्डि, हे दण्डिन् । दण्डिना । दण्डिन्+भ्याम (सू० २०१) दण्डिभ्याम् । दण्डिषु ॥ सुपथिन (सुन्दर मार्गवाला) । सुपथिन्+सु (सू० २७१ । २०१) सुपथि २ । सुपथिन्+औ (सू० २६१ । ३२५) सुपथी २ । सुपथिन्+जस (सू० २६४ । २६५ । ३२३ । ३२४ । '१९८') सुपन्थानि २ । शेष रूप पुल्लिंगकी सदृश होते हैं ॥ ऊर्ज् (बलवान) । ऊर्ज्+सु (सू० २७१।३३५। १६६ । ८३) ऊर्क्, ऊर्ग २ । ऊर्ज+औ (सू० २६१) ऊर्जी २ । ऊर्ज्+जस (सू० २६४ । २६५ । २६६) ऊर्न्जि २ ॥ नरजानां संयोगः ॥ उक्त '[1] ऊर्नर्जि ' रूपमें न, र, ज इन तीन वर्णोंका संयोग है । ऊर्जा । ऊर्ग्भ्याम । ऊर्क्षु ॥ तत (वोह) । तत् सु

१ शंका-जब 'ऊर्नर्जि' यह रूप दिखा दिया था तो 'नरजानां संयोगः' यह लिखनेकी क्या आवश्यकता थी? क्योंकि वाचकजन उक्त रूपको देखनेसे उक्त तीनों वर्णोंका संयोग जान लेते । उत्तर-कोई २ सुकुमारमति उक्त सिद्ध रूपमें यह शंका करते हैं कि, इस सूत्रसे 'न' को 'ञ' क्यों नहीं होता, इसी आशयसे प्रथ-लिखा है कि, न-र-ज-के संयोगमें 'न' को 'ञ' का योग है, 'ज' का नहीं, उक्त सूत्रसे 'न' को 'ञ' नहीं होता ।

(मू० १६६) तत् , तद् २ । तद्+औ (मू० २१४ । २६१ । ३३ । तद्+जस् (मू० २१४ । २६४ । २६६ । १९८) तानि रूप पुल्लिंगकी समान जानो ॥ यत्-(जो) । यत् (द्) २ । ये २ । यानि २ । शेषरूप पुल्लिंगकी सदृश होते हैं ॥ एतत् (यह) । एतत् (द्) २ । एते । एतानि २ । और अन्वादेशमें-। एनत् २ । एने २ । एनानि २ । शेषरूप पुल्लिंगकी समान होते हैं ॥ अञ्च्-धातुके दो अर्थ हैं, एक तो-गति १ दूसरा-पूजा २, अतएव निम्न लिखित शब्दके दो अर्थ होते हैं। उनमें प्रथम गत्यर्थ रूप लिखेंगे- । गो-अञ्च (गौकी सदृश गतिवाला, गौकी पूजा करनेवाला) । गो-अन्च्+सु-॥ गतौ नलोपः । अवङ् ॥ गत्यर्थमें (मू० ३७७) से नलोप, (मू० ६०) से अवङ् होकर (मू० ३३५) से-

एकवचन.	द्विवचन.	बहुवचन.
गवाक्-ग् २ [1]	गोची (३७७ । ३७८ २६१) २	गवाञ्चि २ (३७७ । २६६ २६४ । १९८ । ६०)
गोअक्-ग् (५७) २		गोअञ्चि २ (५७)
गोऽक्-ग् (५६) २		गोऽञ्चि २ (५६)
गोचा (३७७ । ३७८)	गवाग्भ्याम् ३ (६० । ३३५)	गवाग्भिः
	गोअग्भ्याम् ३ (५७ । ३३५)	गोअग्भिः
	गोऽग्भ्याम् ३ (५६ । ३३५)	गोऽग्भिः
गोचे	"	गवाग्भ्यः २
		गोअग्भ्यः २
		गोऽग्भ्यः २
गोचः २	"	"
"	गोचोः २	गोचाम्

१ गवाक्शब्दस्य रूपाणि क्लीबेऽर्चागतिभेदतः । असन्ध्यवङ्पवरूपैर्नवाधिकशतं मतम् ॥१॥ स्वमसुप्सु नव, षड् भादौ षट्के, स्युस्त्रीणि जश्शसोः । चत्वारि शेषे दशके रूपाणीति विभावय ॥ २ ॥

गोचि	"	गवाक्षु
		गोअक्षु
		गोऽक्षु

पूजार्थमे ' नाञ्चेः पूजायाम ' इस सूत्रसे नकारके लोपका निषेध है. इस कारण पूजा-अर्थमे (सू० २७१) से सुका लोप होकर (सू० २४) से चकारका लोप होता है. पुनः (सू० ३३३) का कार्य होकर उक्त अवङ् आदि गत्यर्थके कृत्य होते हैं—॥

गवाङ्२(३३३।६०)	गवाञ्ची२(६०।५३।७७।२६१)	गवाञ्चि२
गोअङ्२(५७)	गोअञ्ची२(५७।५३।७७।२६१)	गोअञ्चि२
गोऽङ्२(५६)	गोऽञ्ची२(५६।५३।७७।२६१)	गोऽञ्चि२
गवाञ्चा	गवाङ्भ्याम् ३	गवाङ्भिः
गोअञ्चा	गोअङ्भ्याम ३	गोअङ्भिः
गोऽञ्चा	गोऽङ्भ्याम ३	गोऽङ्भिः
गवाञ्चे	"	गवाङ्भ्यः२
गोअञ्चे		गोअङ्भ्यः२
गोऽञ्चे		गोऽङ्भ्यः२
गवाञ्चः२	"	"
गोअञ्चः२		
गोऽञ्चः२		
	गवाञ्चोः२	गवाञ्चाम
	गोअञ्चो २	गोअञ्चाम
	गोऽञ्चोः२	गोऽञ्चाम
गवाञ्चि	"	गवाङ्क्षु(२४।३३५।१०५)
अदोऽञ्चि		गोअङ्क्षु(५७।३३५।१०५)
उत्वमत्व		गोऽङ्क्षु(५६।३३५।१०५)
विभक्तिक		गवाङ्षु(२४।३३५।१७०)
उत्व-मत्व ६		गोअङ्षु(५७।३३५।१७०)

गोऽक्षु(५६।३३५।१७०)
गवाक्षु
गोअक्षु
गोऽक्षु

शकृत् (विष्ठा) । शकृत्+सु (सू० २७१) शकृत् २ । शकृती २ । (सू० २६१) शकृत्+जस् (सू० २६४ । २६६) शकृन्ति २ । शकृता । शकृद्भ्याम । शकृत्सु ॥ ददत् (दाता) । ददत् २ । (सू० २७१) ददती २ । (सू० २६१) ददत्+जस्–(सू०२६४) ददत्+शि । इस अवस्थामें –॥

४१० वा नपुंसकस्य । ७ । १ । ७९ ॥

(वा–वि०म०प० । नपुंसकस्य–षष्ठ्यन्तम् ॥) अभ्यस्तात्परो यः शता तदन्तस्य क्लीबस्य वा नुम् सर्वनामस्थाने परे ॥

अभ्यस्त-संज्ञक (सू० ३८७ । ३८९) से परे जो शतृ-प्रत्यय तदन्त नपुंसकलिंगवाची शब्दको नुम् (न्) का आगम विकल्पसे हो सर्वनामस्थान परे रहते । उक्त उदाहरणमें ' त् ' शतृ-प्रत्ययका चिन्ह है । ददन्ति २, ददति २। शेष रूप पुल्लिंगकी समान होते हैं ॥ तुदत् (व्यथित) । तुदत्+सु (सू० २७१) तुदत् २ । तुदत्+औ (सू० २६१) तुदत्+शी । इस दशामें–॥

४११ आच्छीनद्योर्नुम् । ७ । १ । ८० ॥

(आत्–पच०। शीनद्योः–सप्तम्य० । नुम्–प्रथमा०॥) अवर्णान्तादङ्गात्परो यः शतुरवयवस्तदन्तस्य वा नुम् शीनद्योः परतः ॥

अवर्णान्त-अंगसे परे जो शतृ-प्रत्ययका अवयव (त्) तदन्तकू विकल्पसे नुम् (न) का आगम हो शी और नदी-संज्ञक परे रहते । तुदन्ती २, तुदती २ । तुदन्ति २ (सू०२६४ । २६६)। शेष पुल्लिंगवाची ददत्-शब्दकी समान होते हैं ॥

पचत् (रसोइया) । यह शब्द ' पच् ' धातुसे '

---

१ अत्र च वस्तुतः सद्भावाच्छेदो द्वितीया इति खलन ।

'शतृ' प्रत्यय होकर सिद्ध होता। पचत्+सु (सू० २७१) पचत् २। पचत्+औ (सू० २६१) पचत+शी। इस अवस्थामें-॥

४१२ शप्श्यनोर्नित्यम् । ७ । १ । ८१ ॥

(शप्श्यनोः-षष्ठ्यन्तम् । नित्यम्-प्रथमान्तम् ॥) शप्श्यनोरात्परो यः शतुरवयवस्तदन्तस्य नित्यं नुम् शीनद्योः परतः ॥

शप तथा श्यन-सम्बंधी अकारसे परे जो शतृ-प्रत्ययका अवयव उस शतृ-प्रत्ययान्त शब्दकू नित्य नुम (न्) हो शी और नदी परे रहते। शप। पचन्ती २। पचन्ति २। शेष रूप तुदत्-की समान होते हैं॥ श्यन्-। दीव्यत्-(क्रीडा करनेवाला)। दीव्यत् २। दीव्यन्ती २। दीव्यन्ति २। शेष रूप तुदत्-की सदृश जानो॥ धनुष्+सु-(सू० २७१ । १२५ । ११३) धनुः २। धनुषी २। धनुष+जस (सू०२६३।२६४।३८५।३९५) धनूंषि २। धनुषा। धनुष+भ्याम (सू० १२५) धनुर्भ्याम। धनुष+सुप (सू० १२५। ११३। १२४) धनुःषु, धनुष्षु॥ एवं चक्षुर्हविरादयः॥ इसी प्रकार चक्षुष (नेत्र), हविष (शाकल्य), आदि शब्दोंके रूप होते हैं॥ पयस (दूध वा जल)। पयस+सु (सू० २७१।१२५। ११३) पयः २। पयसी २। (सू०२६१) पयांसि २। पयस+भ्याम् (सू० १२६। १२७। ३३) पयोभ्याम। पयस्सु॥ सुपुंस (सुन्दर पुरुषवाला-वन)। सुपुंस+सु (सू० २७१। २४) सुपुम २। सुपुंस+औ (सू० २६१) सुपुंसी २। सुपुंस+जस (सू० ३९७। ३९८। ३८५। २६४) सुपुमांसि २। सुपुंसा। सुपुंस+भ्याम (सू० २४) सुपुंभ्याम ३। सुपुंभिः। सुपुंसे। सुपुंभ्यः २। सुपुंसः २। सुपुंसोः २। सुपुंसाम। सुपुंसि। सुपुंसु॥ अदस (यह)। अदस+सु (सू० २७१। १२५। ११३) अदः २॥ विभक्तिकार्यम् उत्वमत्वे॥ अदस+औ। इस अवस्थामें प्रथम (सू० २१४) से विभक्तिकार्य होता है। फिर (सू० २६१) का (सू० ४००) से उत्व-मत्व होते हैं। अमू २। अदस+जस (सू० २१४। २६४)

अद्+इ (सू० २६६ । ४०० । १९८) अमूनि २ ॥ शेषं पुंवत् ॥

शेष रूप पुल्लिंगकी समान होते हैं ॥

॥ इति हलन्तनपुंसकलिंगं समाप्तम् ॥

॥ इति षड्लिंगं समाप्तम् ॥

अथाव्ययानि।

४१३ स्वरादिनिपातमव्ययम् । १ । १ । ३७॥

स्वरादयो निपाताश्चाव्ययसंज्ञाः स्युः ॥

स्वर-आदिक शब्द और निपात-संज्ञक शब्दोंकी अव्यय संज्ञा हो॥

अव्ययोंका कोष भाषाटीकासमन्वित।

स्वर्-स्वर्ग परलोक।

अन्तर्-मध्य, बिच।

प्रातर्-प्रभातकाल (सबेरा)।

पुनर्-अप्रथम, फिर विशेष।

सनुतर्-छिपना।

उच्चैस्-ऊंचा बडा।

नीचैस्-नीचे छोटा थोडा

शनैस्-धीरे २ विलम्बमें।

ऋधक्-सत्य धीरे २ वियोग, समीप शीघ्र अल्पावस्था यथार्थ सद्।

ऋते-रहित-बिना-छोडकर।

युगपद्-एकसाथम।

आरात्-दूर समीप।

पृथक्-भिन्न बिना, अनेकरूप।

ह्यस्-व्यतीत दिन।

श्वस्-आगामी दिन।

दिवा-दिन।

रात्रौ-रात्रीम।

सायम्-संध्या-दिनका अंत।

चिरम्-बहुत समय।

मनाक्, ईषत् } थोडा थोडासा।

जोषम्-सुख मौन।

तूष्णीम्-चुपचाप मौन।

बहिस्, अवस् } बाहर बाहरका

अधस्-नीचे।

समया-समीप मध्य

निकषा-[illegible]।

स्वयम्-आपही।

वृथा-निरर्थक।

नक्तम्-रात्रि।

न-नहीं।

नञ्-निषेध अभाव

हेतौ-कारण (निमित्त)।

इद्धा-प्रकाश मङ्गल गीत।

अद्धा-निश्चय, स्पष्ट साक्षात, तत्त्व अतिशय।

सामि-आधा जुगुप्सित (निन्दित)।

वत्-अर्थात वतिप्रत्ययान्त शब्दोंकीभी

अव्यय संज्ञा है। जैसे-'**ब्राह्मणवत्, क्षत्रियवत्**' अर्थात् ब्राह्मण और क्षत्रियकी तुल्य क्रिया करनेवाला।

सना }
सनत् } नित्य।
सनात् }

उपधा- भेद।

तिरस्-अन्तर्धान तिरछा तिरस्कार।

अन्तरा-मध्य, विना।

अन्तरेण- छोडकर विना।

ज्योक-प्रश्न [illegible] अब शीघ्र [illegible]।

कम- जल मस्तक निन्दा सुख।

शम्- सुख कल्याण।

सहसा शीघ्र एकाएक [illegible], विना विचार।

विना- छोडकर।

नाना विना, अनेक।

स्वस्ति मंगल [illegible]

स्वधा [illegible]।

अलम् भूषण पर्याप्त (बस) शक्ति निषेध निवारण।

वषट् }
श्रौषट् } देवताओंको [illegible] करनेमें।
वौषट् }

अन्यत्-और।

अस्ति- होना।

उपांशु [illegible] गोपनीय।

क्षम[illegible]

मृषा }
मिथ्या } असत्य।

मुधा-व्यर्थ।

पुरा-पहिले निरन्तर अधिक समयमे, व्यतीत हुआ अधिक समय।

मिथो }
मिथ(:)स् } अन्योन्य एकान्त साथ।

प्राय(:)स्- बहुधा बहुतायतसे।

मुहु( )स-बारम्बार फिर फिर।

प्रवाहिका }
प्रवाहुकम् } [illegible], समानकाल।

आर्यहलम बलात्कारमे।

आर्य [illegible]।

हलम [illegible], प्रतिषेध।

आभीक्ष्णम् अत्यन्त, बारम्बार।

नमस( ) नमस्कार प्रणाम।

साकम् }
सार्द्धम् } साथ।
समम् }
सह }

हिरुक छोडकर विना।

धिक [illegible]। [illegible], धिक्कार देना।

अम [illegible] शीघ्र [illegible]।

आम् स्वीकार हाँ।

प्रताम(न्) ग्लानी [illegible], विस्तार।

प्रशाम(न्) [illegible] [illegible]।

मा }
माङ् } निषेध [illegible]।

आकृतिगणोऽयम् यह स्वरादि आकृतिगण है, अर्थात्-इनकी समानके और शब्दोंकोभी अव्यय जानो।

[illegible] प्रकामम [illegible]।

भूय( )स फिर।

साम्प्रतम्-अब, उचित।

नु किन्तु (लेकिन)।

च–समुच्चय, और, अन्वाचय, इतरेतरयोग, समाहार ।

वा–विकल्प, उपमा, निश्चय, एव, समुच्चय ।

ह–प्रसिद्ध ।

अह–पूजा, आदरसे सम्बोधन ।

एव–निश्चय, केवल ।

एवम्–ऐसेही ।

नूनम्–वितर्क निश्चय, सम्भावना ।

शश्वत्–निरन्तर, सहाय बारबार, साथ ।

युगपत्–एकसाथ ।

भूयस्–बहुधा अधिकता फिर ।

कू (कु) पत्–प्रश्न, प्रशंसा ।

कुवित्–बहुतायत, प्रशंसा ।

सूपत्- अच्छा, प्रशंसा, प्रश्न ।

नेत्–शंका, विचार निषेध, समुच्चय ।

चेत्–जो, यदि ।

चण्–यदि जो ।

कच्चित्–प्रश्न क्या ।

साक्षात–प्रत्यक्ष ।

साचि- तिरछा, कुटिल ।

सत्यम–कुछ स्वीकार ।

मक्षु, आशु–शीघ्र ।

सवद–चुप ।

अवश्यम–निश्चय, जरूर ।

सपदि–शीघ्रही ।

बलवत्–अतिशय, बलिष्ट ।

प्रादुस–प्रकाश, स्फुट, सम्भावना ।

अनिशम–प्रातसमय ।

नित्यम्–सदा, हमेशा ।

अजस्रम–निरन्तर ।

उषा–रात्री ।

किंचित्–कुछ, क्या ।

यत्र–अनिश्चय, आश्चर्य, निन्दा, अमर्ष ।

तत्र–तहा ।

नह–नहीं, प्रत्यारम्भ ।

हन्त–वाक्यारम्भ, हर्ष, खेद, कृपा ।

माकिः, **माकि (की) म्**, **नाकिः**, **नकि (की) म्**–छोडकर ।

माङ्, **नञ्**–नहीं ।

यावत्–जबतक, प्रथम सपण, परिमाण, निश्चय अवधि ।

तावत्–तबतक-अवधि सपूर्ण, परिमाण, निश्चय ।

त्वै–विशेष, वितर्क, कदाचित ।

द्वै (चै), **न्वै**–वितर्क ।

रै–अनादर दान ।

झटिति, झगिति, तरसा–शीघ्र ।

सुष्टु–अच्छा ।

दुष्टु–बुरा ।

सु–सुन्दर, अच्छा, भला ।

कु–कुत्सित, स्वल्प ।

अञ्जसा–जल्दी, यथार्थ

मिथु–दोनों ।

स्थाने-उचित, यें

परम–श्रेष्ट ।

मृदि–शुक्रण

वदि–

श्रौषट् } हविर्दानवाची ।
वौषट् }
स्वाहा-देवार्पणविषयक ।
स्वधा-पितृदानवाची ।
वषट्-ईश्वरार्पणवाची ।
ओम्-ब्रह्मा-विष्णु-महेशवाची, अङ्गीकार ।
तुम्-तुङ्कारना ।
तथाहि-देखो इसीप्रकार ।
खलु-निश्चय, वाक्यालंकार, निषेध ।
किल-निश्चय, मिथ्या वार्ता ।
अथो } इसके पीछे मङ्गलवाचक प्रश्न ।
अथ }
सुष्ठु-उत्तम ।
स्म-भूतकालवाचक पादपूरक ।
आहह-आरम्भ निन्दा हिंसा विकार ।

उपसर्गविभक्तिस्वरप्रतिरूपकाश्च ॥

जो शब्द उपसर्ग तथा विभक्ति और स्वरके तुल्य हो (अर्थात्-वस्तुतः उपसर्ग विभक्ति स्वर न हों) उनकीभी अव्यय संज्ञा हो । जैसे-उपसर्गप्रतिरूपक-**अवदत्तम्**-इस प्रयोगमें अव उपसर्ग नहीं है, किन्तु उपसर्गकी समान प्रतीत होता है, यदि-उपसर्गही होता तो **अवत्तम्** हो जाता, अतएव अव्यय-संज्ञक है ॥

विभक्तिप्रतिरूपक-**अहंयुः**-इस प्रयोगमें ' अहं ' प्रथमाविभक्ति-का रूप नहीं है, किन्तु-उसकी तुल्य है, यदि प्रथमाविभक्तिकाही रूप होता तो (**मद्युः**) रूप हो जाता, अतएव अव्ययोंमें गिना जाता है । ऐसेही-**अस्तिक्षीरा**-इस प्रयोगमें ' अस्ति ' तिङन्त-विभक्ति नहीं है, किन्तु तिङ-विभक्तिकी समान है, यदि तिङन्त-विभक्तिकाही ' अस्ति ' रूप होता तो (अस्ति क्षीरं यस्याः सा अस्तिक्षीरा-गौः) यह बहुव्रीहि-समास नहीं घटता, अतएव अव्यय-संज्ञक शब्दोंमें गणना है ॥

स्वरप्रतिरूपक=अ-(सम्बोधन । अधिक्षेप । निषेध), आ-(स्मरण), इ-(सम्बोधन । निन्दा । विस्मय), ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ-(सम्बोधनवाचक) यह उक्त ' अ ' आ-दि स्वर नहीं है उनकी तुल्य है, इसी कारण अव्ययोंमें

पशु–अच्छा ।
शुकम्–शीघ्रता ।
यथाकथाच–अनादर ।
पाट्
प्याट्
अंग
हे
है
भो
अये } सम्बोधनवाचक ।
घ–हिंसा सम्बोधन पादपूरण प्रतिकूल ।
विषु–अनेक, चारों ओर ।
एकपदे–इसमें अकस्मात् ।
युत्–कुत्सित, निन्दा ।
आतः–इसमेंभी ।
चादिरप्याकृतिगणः–यह चकारादिभी आकृतिगण है ।
¹यत्
तत् } हेतु ।
अनुकम्–वितर्क ।
शब्दद्–आनुकूल्य अतःकरण ।
व–समान पादपूरण ।
चाटु–प्रियवाक्य ।
हूम्–ललकारना । इत्यादिक जानो ॥

तसिलादयः प्राक् पाशपः । शस्प्रभृतयः प्राक् समासान्तेभ्यः । अम्, आम, कृत्वोर्थाः, तसिवती, नानाञौ, एतदन्तमव्ययम् ॥

तसिल्-से लेकर पाशप् के पहले । और शस्-प्रत्ययसे लेकर समासान्तके पहले जो प्रत्यय हैं, उनकी अव्यय-संज्ञा हो । अम्, आम् , कृत्वोऽर्थ, अर्थात्–कृत्वसुच् , सुच् , धा, । और तसि, वति, ना, नाञ् , यह प्रत्यय जिन शब्दोंके अन्तमें हों उनकीभी अव्यय-संज्ञा होय ॥

४१४ कृन्मेजन्तः । १ । १ । ३९ ॥

कृद्यो मान्त एजन्तश्च तदन्तमव्ययं स्यात् ॥

मकारान्त तथा एजन्त (ए ओ ऐ औ, जिनके अन्तमें हों) जो कृत् प्रत्यय वोह जिसके अन्तमें हो उसकी अव्यय-संज्ञा हो । जैसे–' स्मारम् स्मारम् ' (वारंवार स्मरण करके) यहां स्मृ-धातुसे णमुल् प्रत्यय हुआ है । जीवसे (जीवन) । यहां जीव-धातुसे असे-

१ इनमेंसे कुछ प्रसिद्ध शब्द नीचे लिखे जाते हैं–अतः–यहांसे इससे । कुतः–कहांसे । यतः–जहांसे, क्योंकि । ततः–तहांसे । इतः–यहांसे इधर इससे ओरसे । कुत्र–कहां । इह–यहां इसमें । क्व–कहां किसमें । सर्वदा–नि[illegible] एतर्हि–इससमय । अधुना–अब । यर्हि–जब । तर्हि–तो तब । [illegible] सब दिन । तथा–इसीप्रकार । इत्थम्–इसप्रकार । कथम्–कि[illegible] अल्पशः–थोड़ा । आदितः–पहले आदिमें । [illegible] -दाहि[illegible]

प्रत्यय है। पिबध्यै (पीना)। यहां पा-धातुसे शध्यै प्रत्यय हुआ है॥

४१५ क्त्वातोसुन्कसुनः। १। १। ४०॥

एतदन्तमव्ययं स्यात्॥

क्त्वा, तोसुन्, कसुन्, यह प्रत्यय जिन शब्दोंके अन्तमें हों उनकी अव्यय-संज्ञा हो॥ जैसे—क्त्वा—कृत्वा (करके). तोसुन्—उदेतोः (उदय), कसुन्—विसृपः (गमन). इत्यादिक॥

४१६ अव्ययीभावश्च। १। १। ४१॥

अव्ययीभाव-समासकी अव्यय-संज्ञा हो। जैसे—। अधिहरि। अर्थात्-हरिमें॥

४१७ अव्ययादाप्सुपः। २। ४। ८२॥

अव्ययाद्विहितस्यापः सुपश्च लुक्॥

अव्यय-संज्ञक शब्दसे विधान किया हुआ जो आप् (स्त्रीलिंग-का चिन्ह) और सुप् तिसका लुक् (लोप) हो। जैसे। "तत्र शालायाम्" (उस शालामें)। यहां तत्र शब्दसे विहित आप् और सुपका लुक् हो गया है॥

४१८ सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्॥ १॥

जो शब्द तीनों लिंग सातों विभक्ति और सम्पूर्ण वचनोंमें विकार-को न प्राप्त हो उसको अव्यय कहते है॥ १॥

वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः।
आपं चैव हलन्तानां यथा वाचा निशा दिशा॥ २॥

श्रीभागुरि-व्याकरणाचार्यका यह मत है कि "अव" और "अपि" इन दो उपसर्गोंके अकारका लोप होय। और हलन्त-शब्दोंसे आप् प्रत्यय हो जाय. जैसे हलन्तोंमें आप् वाच्-से **वाचा**, निश्-से **निशा**, दिश्-से **दिशा**॥ २॥ अवगाहः, वगाहः (स्नान)।

अब परस्मैपद और आत्मनेपद तथा उभयपदके प्रयोगका क्रम लिखते हैं ॥

४२४ अनुदात्तङित आत्मनेपदम् । १ । ३ । १२ ॥

अनुदात्तेतो ङितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात् ॥

जिस धातुका अनुदात्त (सू० ९) इत् हो तथा जिस धातुके ङ-कारकी इत्संज्ञा हो उससे आत्मनेपदका प्रयोग किया जाता है ॥

४२५ स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले । १ । ३ । ७२ ॥

स्वरितेतो ञितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात्-कर्तृगामिनि क्रियाफले ॥

जिस धातुमें स्वरित (सू० १०) हो तथा जिसके ञकारकी इत्संज्ञा हो उससे आत्मनेपदका प्रयोग हो यदि क्रियाका फल कर्त्तामें जाता हो ॥

४२६ शेषात्कर्त्तरि परस्मैपदम् । १ । ३ । ७८ ॥

आत्मनेपदनिमित्तहीनाद्धातोः कर्त्तरि परस्मैपदं स्यात् ॥

जो धातु आत्मनेपद-प्रत्ययके स्थापनरूप निमित्तसे हीन हो उस धातुसे कर्त्ता-अर्थमें परस्मैपद-संज्ञक प्रत्यय हों ॥

परस्मैपद-संज्ञक प्रत्यय कर्मको कभी नहीं दिखाता । और यह सामान्य नियम है कि—दशगणके प्रत्यय सब कर्त्ता-अर्थमें होते हैं ॥

४२७ तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः । १ । ४ । १०१ ॥

तिङ उभयोः पदयोस्त्रयस्त्रिकाः क्रमादेतत्संज्ञाः स्युः ॥

तिङ्-प्रत्याहारके दोनों (परस्मैपद, आत्मनेपद) पदके तीन २ त्रिक क्रमसे प्रथम-मध्यम-उत्तम-संज्ञावाले हों अर्थात्—तिप्-के ति-से लेकर महिङ्-के ङ-पर्यन्त तीन २ प्रत्ययोंका समुदाय लेकर उस एक २ समुदायकी इस प्रकार प्रथमादि-संज्ञा हों जैसे पहले तीनकी प्रथमपुरुष संज्ञा, दूसरेकी मध्यमपुरुष संज्ञा, तीसरेकी उत्तम-पुरुष संज्ञा होती है, ऐसीही आत्मनेपदमें जान लेना । इन उक्त सूत्रकृत-संज्ञाकी विधि और निम्नलिखित सूत्रकी संज्ञाविधि (सू० ४२३) के नीचे पढो और समझो ॥ (म्भ तौ

१ किस धातुका क्या इत है यह ज्ञान धातुपाठमें होगा । २४१३) से

४२८ तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः। १।४।१०२॥

लब्धप्रथमादिसंज्ञानि तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रत्येकमेकवचनादिसंज्ञानि स्युः॥

जिन तिङ्के तीन २ प्रत्ययोंकी प्रथमपुरुषादि संज्ञा करी है, उन तीनमेंसे एक २ की क्रमसे एकवचन-द्विवचन-बहुवचन-संज्ञा हो. अर्थात्–तिप्–एकवचन. तस्–द्विवचन. झि–बहुवचन। इसी रीतिसे आगेको समझ लेना॥

४२९ युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः। १।४।१०५॥

तिङ्वाच्यकारकवाचिनि युष्मदि प्रयुज्यमानेऽप्रयुज्यमाने च मध्यमः॥

तिङ् (लकार) जिस कारक (कर्त्ता–कर्म) को कहता हो, यदि युष्मद्-शब्दभी उसी कारकका बोध करे तो तहां युष्मद्-शब्दका प्रयोग किया हो वा नहीं तोभी उस लकारके स्थानमें मध्यमपुरुषही होता है॥

४३० अस्मद्युत्तमः। १।४।१०७॥

तथाभूतेऽस्मद्युत्तमः स्यात्॥

लकार जिस कर्म वा कर्त्ताको कहता हो यदि अस्मद्-शब्दभी उसी कर्म कर्त्ताको कहे तो अस्मद्-शब्दका प्रयोग हो वा न हो परन्तु उस लकारके स्थानमें उत्तमपुरुषहीका प्रयोग हो॥

४३१ शेषे प्रथमः। १।४।१०८॥

मध्यमोत्तमयोगविषये प्रथमः स्यात्। भ ति इति जाते॥

जो विषय उक्त दो (सू० ४२९। ४३०) सूत्रोंमें लिखा है उन मध्यम और उत्तमपुरुष-के विषयको छोडकर लकारके स्थानमें प्रथम पुरुष हो। अर्थात् हम–उत्तमपुरुष। तुम–मध्यमपुरुष। हम-तुमसे अन्य प्रथमपुरुष होता है। इस सूत्रके अनुसार 'भू+ल्' इस प्रयोगमें लकारके स्थानमें प्रथमपुरुष-के एकवचन (ति) का प्रयोग होकर–। भू+ति। हो गया, इस अवस्थामें॥

४३२ तिङ् शित् सार्वधातुकम् । ३ । ४ । ११३ ॥

तिङः शितश्च धात्वधिकारोक्ता एतत्सञ्ज्ञाः स्युः ॥

"धातोः" इस सूत्रके अधिकारमें कहे हुए जो तिङ् (सू०४२१) तथा शित्-प्रत्यय उनकी **सार्वधातुक** संज्ञा हो । इस सूत्रसे 'ति' की सार्वधातुक-संज्ञा हुई, उसका फल—॥

४३३ कर्त्तरि शप् । ३ । १ । ६८ ॥

कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे धातोः शप् ॥

कर्त्ताअर्थ-वाचक सार्वधातुक परे रहते धातुसे शप् प्रत्यय हो । शप्में (सू० ३ । १५६) से 'श्' और 'प्' की इत्संज्ञा है ॥

भू+अ+ति । इस अवस्थामें ॥

४३४ सार्वधातुकार्द्धधातुकयोः । ७ । ३ । ८४ ॥

अनयोः परयोरिगन्ताङ्गस्य गुणः ॥

सार्वधातुक और आर्द्धधातुक परे रहते इगन्त-अंगकू गुण हो । इस सूत्रसे भू-के 'ऊ' कू 'ओ' गुण होकर (सू० २७) से अव्-आदेश होकर । भवति (होता है) । रूप बनता है । इसी प्रकार ।

भू+अ+तः (स)-भवतः (दो होते है) । भू+अ+झि । (सू० ४३४ । २७)-। भव+झि । इस दशामें ॥

४३५ झोऽन्तः । ७ । १ । ३ ॥

प्रत्ययावयवस्य झस्यान्तादेशः । अतो गुणे ॥

प्रत्ययका अवयव जो झ् उसको अन्त्-आदेश हो अन्त्-के और भव-के अकारकू (सू० ३०२) से पररूप हो गया । भवन्ति (होते हैं) । भवसि (तू होता है) । भवथः (तुम दो होते हो) । भवथ (तुम होते हो) ॥

भू+अ+मि (प्) (सू० ४३४ । २७) से । भव+मि । इस दशामें ॥

४३६ अतो दीर्घो यञि। ७। ३। १०१॥

अतोऽङ्गस्य दीर्घो यञादौ सार्वधातुके परे॥

यञादि सार्वधातुक परे रहते अदन्त-अंगको दीर्घ हो। भवामि (मैं होता हूं)। भवावः (हम दो होते है)। भवामः (हम होते हैं)॥

	एकवचन।	द्विवचन।	बहुवचन।
प्रथमपुरुष	सः भवति।	तौ भवतः।	ते भवन्ति।
"	वोह होता है।	वो दो होते है।	वे होते है।
मध्यमपुरुष	त्वं भवसि।	युवां भवथः।	यूयं भवथ।
"	तू होता है।	तुम दो होते हो।	तुम होते हो।
उत्तमपुरुष	अहं भवामि।	आवां भवावः	वयं भवामः।
"	मै होता हूं।	हम दो होते है।	हम होते है।

४३७ परोक्षे लिट्। ३। २। ११५॥

भूतानद्यतनपरोक्षार्थवृत्तेर्धातोर्लिट् स्यात्। लस्य तिबादयः॥

अनद्यतनभूत-अर्थमें जो बात नेत्रोंसे न देखी हो उसके प्रकट करनेके निमित्त जिस धातुका व्यवहार किया जाय उससे परे लिट्-लकार हो। लिट् मे 'इ' और 'ट्' की इत्संज्ञा होकर (सू० ४२१) से तिप्-आदि आदेश हो। भू+लिट्=भू+ति। इस अवस्थामें—॥

४३८ परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः। ३। ४। ८२॥

लिटस्तिबादीनां नवानां णलादयः स्युः॥

१ अनद्यतन-भूत उस कालको कहते हैं—जो [illegible] आधी रातसे आरम्भ होकर गत [illegible] हुआ। जैसे प्रथम [illegible] अनद्यतनकालमें [illegible] होता है। [illegible] आगामी [illegible] और आधी-राततकका समय [illegible] अनद्यतन कहाता है [illegible] होता है। इससे आगे आनेवाली [illegible] आधी रातसे लेकर आगामी [illegible] भविष्यकाल कहाते हैं भविष्यकालमें [illegible]। और भूत-अनद्यतन तथा भविष्य-अनद्यतनको छोड़कर मध्यस्थ समय (आज) को अद्यतन (वर्तमान) कहते हैं।

लिट्-के स्थानमें किये गये जो तिप्-आदि नव परस्मैपद-प्रत्यय उनको णल्-आदि नव आदेश हों । निम्नलिखित चक्रमें देखो ॥

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	
प्रथमपुरुष-	तिप् १	तस् २	झि ३	णल्में (सू० २४९) से णकार और (सू० ३) से लकारकी इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है.
आदेश-	णल् (अ) १	अतुस् २	उस् ३	
मध्यमपुरुष-	सिप् ४	थस् ५	थ ६	
आदेश-	थल् ४	अथुस् ५	अ ६	
उत्तमपुरुष-	मिप् ७	वस् ८	मस् ९	
आदेश-	णल् (अ) ७	व ८	म ९	

भू+अ । ऐसी स्थिति होनेपर ॥

४३९. भुवो वुग् लुङ्लिटोः । ६ । ४ । ८८ ॥

भुवो वुगागमः स्यात् लुङ्लिटोरचि ॥

भू धातुको वुक् (व्) का आगम हो यदि लुङ् अथवा लिट्-सम्बन्धी अच् परे हो तो । भू+व्+अ इस दशामें-॥

४४० लिटि धातोरनभ्यासस्य । ६ । १ । ८ ॥

लिटि परेऽनभ्यासधात्ववयवस्यैकाचः प्रथमस्य द्वे स्तः, आदिभूतादचः परस्य तु द्वितीयस्य ॥

जिस धातुसे लिट् परे हो और उसको द्वित्व न हुआ हो तो उसके एकाच्-प्रथमभागको द्वित्व हो, यदि आदिमें अच् हो तो द्वितीयएकाच्भागको द्वित्व होय ॥ जैसे वृक्षके हिलनेसे शाखाभी हिलती हैं, इसी प्रकार एकाच्को द्वित्व करनेमें उसके साथी वर्णकोभी द्वित्व होता है । भूव् भूव्+अ । ऐसी स्थिति होने पर-॥

४४१ पूर्वोऽभ्यासः । ६ । १ । ४ ॥

अत्र ये द्वे विहिते तयोः पूर्वोऽभ्याससंज्ञः स्यात् ॥

यहां जो उक्तसूत्रसे द्वित्व-विधान किया है उसमें प्रथमभागकी अभ्यास-संज्ञा हो । इस सूत्रसे पहले भूव्-की अभ्यास-संज्ञा हो गई । अभ्यास-संज्ञाका फल-॥

४४२ हलादिः शेषः । ७ । ४ । ६० ॥

अभ्यासस्यादिर्हल् शिष्यते. अन्ये हलो लुप्यन्ते ॥

अभ्यास-संज्ञककी आदिका हल् (वर्ण) शेष रहता है, और शेषहलोंका लोप होता है। इस सूत्रके अनुसार अभ्यासकी आदिका हल् जो 'भ' से 'भ' है सो तो शेष रहा बाकी दूसरे हल्-वकारका लोप हो गया । भ भू+अ । ऐसी अवस्थामें-॥

४४३ ह्रस्वः । ७ । ४ । ५९ ॥

अभ्यासस्याचो ह्रस्वः स्यात् ॥

अभ्यासके अच्‌कू ह्रस्व हो । इस रीतिसे । भु भूव+अ । हुआ ॥

४४४ भवतेरः । ७ । ४ । ७३ ॥

भवतेरभ्यासस्योकारस्य अः स्याल्लिटि ॥

भू-धातुके अभ्यास-सम्बन्धी उकारकू अकार हो लिट् परे रहते । भ भव्+अ । ऐसी दशामें-॥

४४५ अभ्यासे चर्च । ८ । ४ । ५४ ॥

अभ्यासे झलां चरः स्युर्जशश्च । झशां जशः, खयां चर इति विवेकः ॥

अभ्यास-संबन्धी झलके स्थानमें चर् और जश् हों। अर्थात्-झश्के स्थानमें जश् हों. और खय्-के स्थानमें चर् हों। इस सूत्रसे (सू०२१) के अनुसार भ-कारकू ब-कार हो गया । बभूव (वह हुआ) । भू+लिट्=तम (सू० ४३८ । ४३९ । ४४० । ४४१ । ४४२ । ४४३ । ४४४ । ४४५ । से) बभूवतुः । (वोह दो हुए) । बभूवुः (वे हुए) । बभूव्+थल् (थ) । इस अवस्थामें-॥

४४६ लिट् च । ३ । ४ । ११५ ॥

लिडादेशस्तिङार्धधातुकसंज्ञः ॥

लिटके स्थानमें जो आदेश (सू० ४२१) तिङ् सो आर्धधातुकसंज्ञक हों, इसका फल-॥

४४७ आर्धधातुकस्येड्वलादेः । ७ । २ । ३५ ॥

वलादेरार्धधातुकस्येडागमः स्यात् ॥

जिसके आदिमें वल्-प्रत्याहार हो उसे इट् (इ) का आगम हो। बभूविथ (तू हुआ)। बभूवथुः (तुम दो हुए) । बभूव (तुम हुए)। बभूव (मैं हुआ) । बभूविव (हम दो हुए) । बभूविम(हम हुए) ॥

४४८ अनद्यतने लुट् । ३ । ३ । १५ ॥

भविष्यत्यनद्यतनेऽर्थे धातोर्लुट् स्यात् ॥

भविष्यत्-अनद्यतन-अर्थ-प्रकाश करनेमे धातुसे परे लुट्-लकार हो । भू+लुट्=ति । अब-॥

४४९. स्यतासी लृलुटोः । ३ । १ । ३३ ॥

धातोः स्यतासी एतौ प्रत्ययौ स्तो लृलुटोः परतः । शबाद्यपवादः । लृ इति लृङ्लृटोर्ग्रहणम् ॥

लृ और लुट पर रहते धातुसे स्य और तास प्रत्यय क्रमसे हों । यह सूत्र शप्-आदिका अपवाद है । लृ कहनेसे लृङ् और लृट्-का ग्रहण होता है अर्थात्-लृट और लृङ पर रहते स्य हो । भू+तास+ति । इस अवस्थामें-॥

४५० आर्धधातुकं शेषः । ३ । ४ । ११४ ॥

तिङ्शिद्भ्योऽन्यो धातोरिति विहितः प्रत्यय एतत्संज्ञः स्यात् इट् ॥

तिङ् और शित-प्रत्ययोंको छोडकर ' धातोः ' ऐसा कह धातुसे जो प्रत्यय विधान किया जाय वोह प्रत्यय आर्धधातुक संज्ञावाला हो । आर्धधातुक-संज्ञा हो (सू० ४८ । ७) से इट हो गया । और (सू० ४३४ । २७) से । भवितास् ति । हुआ, फिर-॥

४५१ लुटः प्रथमस्य डारौरसः । २ । ४ । ८५ ॥

डित्त्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः ॥

लुट् लकारके प्रथमपुरुष-संज्ञक प्रत्ययोंको क्रमसे डा-रौ-रस्-ए आदेश हो ॥ यद्यपि यहां ' भवितास् ' मे भ-संज्ञा नहीं होती है तथापि डा इस डित्-के कहनेसेही अभसंज्ञकभी टि-का ' टेः ' सूत्रसे

लोप होता है । भवित+डा=भविता (वोह होगा) । भवितास्+रौ । यहां—॥

४७२ तासस्त्योर्लोपः । ७ । ४ । ५० ॥

तासेरस्तेश्च लोपः स्यात्सादौ प्रत्यये परे ॥

तास-प्रत्यय और अस धातुके सकारका लोप हो, सकारादि-प्रत्यय परे रहते । इस सूत्रकी निम्नलिखित सूत्रमें अनुवृत्ति जाती है, इस कारण उक्तसूत्र यहां लिखा ॥

४७३ रि च । ७ । ४ । ५१ ॥

रादौ प्रत्यये तथा ॥

रकारादि-प्रत्यय परे रहतेभी तास-प्रत्यय और अस्-धातुके सकारका लोप हो । भवितारौ (वो दो होंगे) । भवितारः (वे होंगे) । भवितास+सि (प) (सू० ४७२) से । भवितासि (तू होगा) । भवितास्थः (तुम दो होंगे) । भवितास्थ (तुम होंगे) । भवितास्मि (मै होऊंगा) । भवितास्वः (हम दो होंगे) । भवितास्मः (हम होंगे) ॥

४७४ लृट् शेषे च । ३ । ३ । १३ ॥

भविष्यदर्थाद्धातोर्लृट् क्रियार्थायां क्रियायां सत्यामसत्यां वा ॥

भविष्यत-अर्थमे धातुसे लृट्-लकार हो क्रियार्था-क्रिया विद्यमान हो वा न हो ॥ क्रियार्था-क्रिया उसे कहते है, जैसे 'स पठितुं याति' (वोह पढनेको जाता है) इस उदाहरणमे पढनाक्रिया भविष्य-कालका बोधक है, कारण कि—पढना अभीतक हुआ नहीं किन्तु होगा, इस पठनरूप कार्यको फलप्राप्तिके अर्थ जाना दूसरी क्रिया आई है इसी क्रियाकू क्रियार्थाक्रिया कहते है । "तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् ३ । ३ । १० ॥" इस वक्ष्यमाण सूत्रका यह नियम है कि, क्रियार्थाक्रिया हो तो धातुसे तुमुन और ण्वुल्–प्रत्यय हो । परन्तु इस (सू० ४७४) का यह आशय है कि—उक्त क्रिया विद्यमान हो वा न हो परन्तु भविष्य-अर्थमें धातुसे लृट्-लकार हो ॥ भू+लृट्=ति

(मृ० ४४९ । ४४७ । ४३४ । २७) भविष्यति (वह होगा) । भविष्यतः–(वोह दो होंगे) । भविष्यन्ति (मृ०४३५) (वे होंगे)। भविष्यसि (तू होगा) । भविष्यथः (तुम दो होंगे) । भविष्यथ (तुम होंगे) । भविष्यामि (मृ० ४३६) (मैं हूंगा) । भविष्यावः (हम दो होंगे) । भविष्यामः (हम होंगे) ॥

४५५ लोट् च । ३ । ३ । १६२ ॥

विध्याद्यर्थेषु धातोर्लोट् ॥

विधि-आदि अर्थोंमें (मृ० ४७३) धातुसे लोट्-लकार हो ॥

४५६ आशिषि लिङ्लोटौ । ३ । ३ । १७३ ॥

आशीर्वाद-अर्थमें धातुसे परे लिङ् और लोट् हों ॥ भू+लोट्=ति–(मृ० ४३३।४३४।२७) भव+ति । इस दशामें–॥

४५७ एरुः । ३ । ४ । ८६ ॥

लोट इकारस्य उः ॥

लोट्के स्थानमें जो प्रत्यय हो उसके इकारकू उ हो । भवतु (वोह होय) । ' भवतु ' जब सिद्ध हो जाता है, तब–॥

४५८ तुह्योस्तातङाशिष्यन्यतरस्याम् । ७ । १ । ३५ ॥

आशिषि तुह्योस्तातङ् वा । परत्वात्सर्वादेशः ॥

आशीर्वाद अर्थमें तु और हि-कू तातङ् (तात) आदेश विकल्पकरके हो ॥ यद्यपि 'तातङ्' आदेश ङित होनेके कारण ' ङिच्च ' से अन्त्यकू प्राप्त है, तथापि अष्टाध्यायीके क्रमानुसार (मृ०५९)से (मू० ५८) पर है,इसी लिये परत्वके कारण ' तु ' और ' हि ' सम्पूर्णको तातङ् आदेश होता है ॥ भवतात (वह होय)॥ **शङ्का**–(मूल ५८) तो (मूल १३३) के अनुसार (मूल ५९) से सदाही पर है, फिर (मृ०५९) कहां चरितार्थ होगा?॥ **समाधान**–जब ङकार केवल इत्-कार्यके निमित्तही है तब तो हमें (मृ०५८)-ही इष्ट है, और जो वोह और कोई कार्य दिखावे तो (मृ० ५९)

सफल होगा । तातङ्-के ङकारसे गुण-वृद्धिका निषेध और संप्रसारण-आदि कार्य होते हैं ॥ भव+तस् । इस अवस्थामें-॥

४५९ लोटो लङ्वत् । ३ । ४ । ८५ ॥

लोटस्तामादय. सलोपश्च ॥

लोट्-को लङ्-की समान ताम् (सू० ४६०) आदि आदेश हों और सकारका लोप हो ॥

४६० तस्थस्थमिपां तांतंतामः । ३ । ४ । १०१ ॥

ङितश्चतुर्णां तामादयः क्रमात्स्युः' ॥

ङित्-लकारोंके चार आदेशोंको (अर्थात-तस्-थस-थ-मिप्-को) क्रमसे ताम आदिक (ताम्-तम्-त-अम्) आदेश हो । इस सूत्रसे तस्-को ताम-आदेश हो गया । भवताम् (वे दो होंय) । भवन्तु (सू० ४३५।४५७) (वे होंय) । भव+सि-॥

ङितलकार	प्रत्यय	आदेश
लङ	तस	ताम
लिङ	थस	तम
लुङ	थ	त
लृङ	मिप	अम

४६१ सेर्ह्यपिच्च । ३ । ४ । ८७ ॥

लोटः सेर्हिः सोऽपिच्च ॥

लोटके स्थानमें जो सि (सिप) उसे ' हि ' आदेश हो और हि अपित माना जाय अर्थात-पित मानकर जो कार्य किया सो न हो । भव+हि । इस अवस्थामें-॥

४६२ अतो हेः । ६ । ४ । १०५ ॥

अतः परस्य हेर्लुक् ॥

अत्-से पर जो ' हि ' तिसका लुक (लोप) हो । भव,भवतात् (सू० ४५८) (तू हो) । भवतम् (सू० ४६०) (तुम दो हों) । भवत (सू० ४६०) (तुम हो) । भव+मि ॥

४६३ मेर्निः । ३ । ४ । ८९ ॥

' लोटो लङ्वत् ' इस सूत्रके अनुसार लोटको भी यह आदेश होते हैं ।

लोटो मेर्निः स्यात् ॥

लोट्-के स्थानमें जो मि (मिप्) उसे नि-आदेश हो । भव+नि॥

४६४ आडुत्तमस्य पिच्च । ३ । ४ । ९२ ॥

लोडुत्तमस्याट् पिच्च ॥

लोट्कू उत्तमपुरुष-संज्ञक प्रत्ययकू आट् (आ) का आगम हो, वोह आट् पित् हो । भव+आ+नि (सू० २६७।५३) भवा+नि । इस अवस्थामें (सू०४५७) से ' नि ' के ' इ ' कू ' उ ' प्राप्त है,– परन्तु–निम्न लिखित नियमसे नहीं होता–॥

हिन्योरुत्वं न । इत्वोच्चारणसामर्थ्यात् ॥

हि (सू० ४६१) और नि (सू० ४६३) के इकारकू उत्व नहीं होता, कारण कि इत्व-उच्चारणकी सामर्थ्यसे, अर्थात् यदि हि-नि-को उकार करना होता तो हु और नु-आदेशही करते, अत एव ' हि ' ' नि ' इनमें इत्वपाठसेही ज्ञान होता है कि उत्व नहीं होता। भवानि (मैं होऊं) ॥

४६५ ते प्राग्धातोः । १ । ४ । ८० ॥

ते गत्युपसर्गसंज्ञका धातोः प्रागेव प्रयोक्तव्याः ॥

जिनकी गति (सू०२२३) और उपसर्गसंज्ञा (सू०४५) है उनका धातुसे प्रथमही प्रयोग करना कर्त्तव्य है । प्र+भवानि ॥

४६६ आनि लोट् । ८ । ४ । १६ ॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य लोडादेशस्यानीत्यस्य नस्य णः स्यात् ॥

उपसर्गमें स्थित निमित्त (र-ष) से परे लोट्के स्थानमें जो आनि-(सू० ४६३।४६४) आदेश उसके नकारकू णकार हो । प्रभवाणि (मैं समर्थ होऊं)॥

४६७ (दुरः षत्वणत्वयोरुपसर्गत्वप्रतिषेधो वक्तव्यः) ॥

जब सकारकू षकार और नकारकू णकार करना हो तब दुर्-कू उपसर्गत्वका निषेध कहना, जैसे । दुःस्थितिः (दुर्भाग्य)। दुर्भवानि

(मैं दुःखी होऊं)। यहां 'स' कू 'ष' और 'न' कू 'ण' नहीं हुआ कारण कि दुर्‌कू उपसर्गही नहीं माना॥

४६८ (अन्तःशब्दस्याङ्किविधिणत्वेषूपसर्गत्वं वाच्यम्)॥

अङ्-प्रत्यय और कि-प्रत्ययका विधान करनेके लिये तथा नकारकू णकार करनेके लिये अन्तर्-शब्दकू उपसर्ग मानना चाहिये। अन्तर्भवाणि (मैं भीतर होऊं)। यहां 'भवानि' के नकारकू ण किया है॥ भव+आ+नम्=भवा नम। इस अवस्थामें॥

४६९ नित्यं ङितः। ३। ४। ९९॥

सकारान्तस्य ङिदुत्तमस्य नित्यं लोपः। अलोऽन्त्यस्य॥

ङित-लकारका सकारान्त जो उत्तम-पुरुष उसका नित्य लोप हो। (सू० २५) से अन्त्य-सकारकाही लोप होता है। यह सूत्र (सू० ४५२) के अनुसार लोट्-मेंभी लगता है। भवाव (हम दो हों)। भवाम (हम हों)॥

४७० अनद्यतने लङ्। ३। २। १११॥

अनद्यतनभूतार्थवृत्तेर्धातोर्लङ् स्यात्॥

जब धातु अनद्यतनभूतअर्थप्रकाश करती हो तब धातुमें लङ्-लकार हो। भू+लङ् (सू० ४२१।४३३।४३४।२७) भव+ति। इस दशामें—॥

४७१ लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः। ६। ४। ७१॥

एष्वङ्गस्याट् स्यात्॥

लुङ् (सू०४८२) लङ् (सू०४७०) लृङ् (सू०४९०) इन लकारोंके परे रहते अङ्गकू उदात्त-संज्ञक अट् (अ)का (सू०१०४) आगम हो। इस प्रकार। अ भव+ति। इस दशामें—॥

४७२ इतश्च। ३। ४। १००॥

ङितो लस्य परस्मैपदमिकारान्तं यत्तदन्तस्य लोपः॥

ङित्-लकारके स्थानमें इकारांत परस्मैपद-संज्ञक जो (ति, अन्ति,

सि, मि) आदेश उसके अन्त्य ' इ ' का लोप हो । अभवत् (वोह हुआ) । अभवताम् (सू० ४६०) (वोह दो हुए) । अभवन् (सू० ४३५ । ४७२ । २४) (वे हुए) । अभवः (सू० ४७२ । १२५ । ११३) (तू हुआ) । अभवतम् (सू० ४६०) (तुम दो हुए) । अभवत (सू० ४६०) (तुम हुए) । अभवम् (सू० ४६०) (मैं हुआ) । अभवाव (सू० ४६९) (हम दो हुए) । अभवाम (हम हुए) ॥

४७३ विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् । ३ । ३ । १६१ ॥

एष्वर्थेषु धातोर्लिङ् ॥

विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, सम्प्रश्न, प्रार्थना, इन छे अर्थोंके प्रकाश करनेमें धातुसे लिङ्-लकार हो ॥ भू+लिङ्=ति (सू० ४३३ । ४३४ । २७) भव+ति । इस दशामें-॥

४७४ यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च । ३ । ४ । १०३ ॥

लिङः परस्मैपदानां यासुडागमो ङिच्च ॥

लिङ्-के स्थानमें जो परस्मैपद-संज्ञक प्रत्यय उनै यासुट् (यास्)-का आगम (सू० १०४) हो, और वोह यासुट उदात्त और ङित् हो । भव+यास्+ति (सू० ४७०) इस अवस्थामें-॥

४७५ लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य । ७ । २ । ७९ ॥

१ विधि आज्ञाको कहते हैं जैसे किसीने पुरोहितसे कहा कि ' यजेत ' । वोह यज्ञ करे । २ निमन्त्रण कहिये मानने योग्य आज्ञा जैसे किसीने आवश्यक श्राद्धभोजनादि-कर्म कहा ' इह भुञ्जीत ' वोह यहां खाय । ३ आमन्त्रण कहिये किसीकी इच्छानुसार सम्मति देना जैसे ' इहासीत ' आपकी इच्छा हो तो यहां बैठो । ४ अधीष्ट कहिये आदरसे प्रेरणा जैसे कोई गुरुसे नम्रतासे कहे ' पुत्रमध्यापयेत ' आप पुत्रको पढ़ाओ । ५ सम्प्रश्न कहिये पूछना जैसे ' वेदमधीयीय ' उत तर्कम् ' क्या मैं वेद पढ़ूं वा न्यायशास्त्र । ६ प्रार्थना कहिये मांगना जैसे ' भोजनं लभेय ' मुझे भोजन मिलेगा । इन्हीं अर्थोंमें लोट्भी होता है । इनका विशेष विवरण लकारार्थ प्रक्रियाके अन्तमें देखो ।

सार्वधातुकलिङोऽनन्त्यस्य सस्य लोपः। इति प्राप्ते॥

लिङ्-के स्थानमें जो सार्वधातुक (सू० ४३२) आदेश उसके अवयव-सकारका लोप हो, यदि वोह सकार अन्तका न हो तो। इस प्रकार यास्-के सकारका लोप प्राप्त हुआ॥

४७६ अतो येयः। ७। २। ८०॥

अतः परस्य सार्वधातुकावयवस्य यास् इत्यस्य इय्। गुण.॥

अत्-से सार्वधातुकका अवयव जो यास् (सू० ४७४) उसे इय्-आदेश हो। भव+इय्+त् (सू० ३३) भवे+य्+त। इस दशामें॥

४७७ लोपो व्योर्वलि। ६। १। ६६॥

वकारयकारयोर्लोपः स्याद्वलि परे॥

वल्-प्रत्याहार परे रहते वकार और यकारका लोप हो। इस सूत्रसे यकारका लोप हो गया। भवेत् (वह होय)। भव+तस् (सू० ४६०। ४७४। ४७६। ३३। ४७७) भवेताम् (वे दो हों)। भव+झि (सू० ४७४। ४७६। ३३)। भवे+य्+झि॥

४७८ झेर्जुस्। ३। ४। १०८॥

लिङो झेर्जुस् स्यात्॥

लिङ्-की झिको जुस् (सू० १४९) हो। भवे+य्+जुस् = उस्। भवेयुः (वे हों)। भवे+य्+सि (सू० ४७७। ४७२। १०५। ११३) भवेः (तू हो)। भवेतम् (सू० ४६०) (तुम दो हो)। भवेत (तुम हो)। भवे+य्+मिप् (सू० ४६०) भवेयम् (मैं होऊं)। भवेव (सू० ४६१) (हम दो हों)। भवेम (हम हों)। अब आशिष-अर्थमें लिङ्-के रूप लिखते हैं—॥

भू+लिङ्=ति (सू० ४७४। ४७२) भू+यास्+त। इस अवस्थामें (सू० ४३३) से शप् प्राप्त है, परन्तु—निम्न लिखित सूत्रसे आर्धधातुक-संज्ञा होनेके कारण नहीं होता॥

४७९. लिङाशिषि। ३। ४। ११६॥

आशिषि लिङस्तिङार्धधातुकसंज्ञः॥

आशीर्वाद-अर्थमें जो लिङ्-के स्थानमें तिङ्-आदेश होते हैं उनकी आर्धधातुक-संज्ञा हो । भू+यास्+त्—॥

४८० किदाशिषि । ३ । ४ । १०४ ॥

आशिषि लिङो यासुट् कित् । स्कोः संयोगाद्योरिति सलोपः ॥

आशीर्वाद-अर्थमें लिङके स्थानमें जो यासुट् वोह कित्-संज्ञक हो (सू० ३३०) से सकारका लोप हो गया । भूया+त । यहां (सू० ४३४) से गुणकी प्राप्ति होनेपर—॥

४८१ क्ङिति च । १ । १ । ५ ॥

गित्किन्ङिन्निमित्ते इग्लक्षणे गुणवृद्धी न स्तः ॥

जिस निमित्तको मानकर इक्-लक्षण गुण वा वृद्धि हो यदि वोह निमित्त गित वा कित या ङित्-संज्ञक हो तो गुण-वृद्धि न हों । उक्त उदाहरणमें (सू० ४८०) में यासुट-की कित्-संज्ञा है, अतएव गुण नहीं होता ॥ इक्-लक्षण उसे कहते हैं—जिस सूत्रसे गुण या वृद्धि-का विधान हो उसमें इक्-पदकी उपस्थिति होती हो ॥ भूयात् । भूयास्ताम् (सू० ४६०) । भूयासुः (सू० ४७८) । भूयाः (सू० ३३०[1]) । भूयास्तम् । भूयास्त । भूयासम् (सू० ४६०) । भूयास्व (सू० ४६१) । भूयास्म । इनके अर्थ पहलेकी समान जान लेने ॥

४८२ लुङ् । ३ । २ । ११० ॥

भूतार्थे धातोर्लुङ् स्यात् ॥

भूतअर्थ-प्रकाश करनेमें धातुसे लुङ् लकार हो। फलितार्थ-अद्यतनभूत तथा केवल भूत अर्थके प्रगट करनेमें तो लुङ्-लकारही होता है तथा परोक्ष अनद्यतनभूतमें लिट्, और अपरोक्ष-अनद्यतनमें लङ् होते हैं ॥ भू लुङ् = ति ॥

४८३ च्लि लुङि । ३ । १ । ४३ ॥

शबाद्यपवादः ॥

1 यहां तकार सस्वर होनेके कारण संयोग-संज्ञा नहीं है, इसीसे स् का लोप (सू० ३३०) नहीं होता ।

लुङ् परे रहते धातुसे परे च्लि-प्रत्यय हो। यह सूत्र शप् (सू० ४३३) आदिको अपवाद है। भू+च्लि+ति (सू० ४७२)॥

४८४ च्लेः सिच् । ३ । १ । ४४ ॥

इचावितौ ॥

च्लि-प्रत्यय (सू० ४८३) के स्थानमें सिच् हो। सिच्-में 'इ, च' इत्संज्ञक (सू० ३।३४) हैं॥ प्रश्न–यदि सम्पूर्ण च्लि-के स्थानमें ही सिच होता है तो च्लि करना व्यर्थही है॥ उत्तर–च्लिके स्थानमें सर्वत्रही सिच् नहीं होता है, किन्तु अन्यत्र अन्य २ आदेशभी होते हैं॥ भू+स्+त (सू० ४७१) अभू+स्+त॥

४८५ गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु ।२।४।७७॥

एभ्यः सिचो लुक् । गापाविहेणादेशपिबती गृह्येते ॥

गा (जाना), स्था (ठहरना), घुसंज्ञक (सू० ६७६) तथा पा (पीना), भू (होना), इन धातुओंसे जब परस्मैपद-संज्ञक प्रत्यय परे हो तो सिच (सू० ४८४) का लुक्-(लोप) हो। 'गा' कहनेसे 'इण (गतौ)' धातुको जो गमन अर्थमें 'गा' आदेश होता है उसका ग्रहण है, 'पा' कहनेसे 'पा (पाने)' धातु जिसे पान अर्थमें पिब आदेश होता है उसका ग्रहण है। अभू+त। इस अवस्थामें (सू० ४३४) से गुणकी प्राप्ति है परन्तु निम्नलिखित सूत्र बाधक है॥

४८६ भूसुवोस्तिङि । ७ । ३ । ८८ ॥

भू सू एतयोः सार्वधातुके तिङि परे गुणो न ॥

भू और सू इन दो धातुओंको गुण न हो सार्वधातुक-तिङ् परे रहते॥ अभूत (वह हुआ था)। अभूताम् (सू० ३६०) (वे दो हुए थे)। अभूवन् (सू० ४३५।४३९।४७२) (वे हुए थे)। अभूः (तू हुआ था)। अभूतम् (सू० ४६०) (तुम दो हुए थे)। अभूत (तुम हुए थे)। अभूवम् (सू० ४७०।४३९) (मैं हुआ

था) । अभव (सू० ४६१) (हम दो हुए थे) । अभूम (हम हुए थे) ॥

४८७ माङि लुङ् । ३ । ३ । १७५ ॥

सर्वलकारापवादः ॥

धातुके पूर्व माङ्-उपपद रहते धातुसे परे लुङ्-लकार हो । यह लुङ्-विधायक सूत्र सब लकारोंका अपवाद है । ऐसी अवस्थामें वर्त्तमानआदि कालका ज्ञान प्रसंगसे होता है ॥

४८८ स्मोत्तरे लङ् च । ३ । ३ । १७६ ॥

स्मोत्तरे माङि लङ् स्याच्चाल्लुङ् ॥

जिससे परे स्म हो ऐसे माङ्-उपपद हुए संते धातुसे लङ् हो, चकारसे लुङ्भी हो । ऐसे स्थानमें जो लकार दोनोंमें इष्ट हो उसहीका प्रयोग करना ॥

४८९ न माङ्योगे । ६ । ४ । ७४ ॥

अडाटौ न स्तः ॥

जब धातुके साथ माङ्का योग हो तो अट् (सू०४७१) और आट् (सू० ४९२) न हों । मा भवान् भूत् (सू० ४८७) । मा स्म भवत् (सू० ४८८) । मा स्म भूत् ॥

४९० लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ । ३।३ । १३९ ॥

हेतुहेतुमद्भावादि लिङ्निमित्तं तत्र भविष्यत्यर्थे लृङ् स्यात् क्रियाया अनिष्पत्तौ गम्यमानायाम् ॥

जहां लिङ् स्थापन करनेके अर्थ कार्य कारण भाव विधि-निमंत्रण आदि (सू० ४७३) अर्थोंमेंसे कोई अर्थ हो तहां भविष्यअर्थमें लृङ्-लकार हो यदि क्रियाकी असिद्धि समझी जाती हो तो ॥ भू+लृङ्=ति (सू० ४७१ । ४७२) अभू+त् (सू० ४४९ । ४४७ । ४३४ । २७) अभविष्यत् (सू० १७०) (जो वह हो) । अभविष्यताम् (सू० ४६०) (जो वोह दो हों) । अभविष्यन् (सू० ४३५ । ४७२) (जो वे हों) । अभविष्यः

(जो तू हो) । अभविष्यतम् (जो तुम दो हों) । अभविष्यत (जो तुम हों) । अभविष्यम् (जो मैं होऊं) । अभविष्याव (सू० ४३६।४६१) (जो हम दो हों) । अभविष्याम (जो हम हों) ॥ उक्त प्रकारसे भविष्य-अर्थमें लृङ्-का उदाहरण ॥ " सुवृष्टिश्चेदभविष्यत् तदा सुभिक्षमभविष्यत" यदि अच्छी वर्षा होयगी तो सुकाल होगा । इस उदाहरणमें कार्यकी असिद्धिका प्रकाश है ॥ यद्यपि इस सूत्रकी वृत्तिमें यह लिखा है कि-भविष्य अर्थमें लृङ् हो, तथापि भूतअर्थमेंभी लृङ् होता है जैसे- " नचेदिदं द्वंद्वमयोजयिष्यत् पत्युः प्रजानां विफलोभविष्यत ॥" जो विधाता इस अज और इन्दुमती-के मिथुन (जोडे) को न मिलाता तो प्रजापतिका यत्न विफल होता । ऐसेही " जो ईंधन होता तो रसोई बनाता " इत्यादि उदाहरण जानो ॥

अत सातत्यगमने । परस्मैपदी सकर्मक सेट् ॥

अत-(जाना) धातुका रूप धातु-पाठमें अदन्त-रूप है; अकार केवल अनुबन्ध मात्र है । अत+लट्=ति (सू० ४३३) अतति (वोह निरन्तर गमन करता है) । म० पु० १ व०-अतसि (तू निरन्तर गमन करता है) । अतामि (सू० ४३६) (मैं निरन्तर गमन करता हूं) । अत+लिट्=ति (सू० ४३८) अत+अत (सू० ४४० । ४४२) अअत्+अ-॥

४९१ अत आदेः । ७ । ४ । ७० ॥

अभ्यासस्यादेरतो दीर्घः स्यात ॥

अभ्यास (सू० ४४१) के आदिभूत ह्रस्व-अकारको दीर्घ हो ॥ आत (वोह गया) । आततुः (वे दो गये) । आतुः (वे गये) । आतिथ (सू० ४४७) (तू गया) । आतथुः (तुम दो गये) । आत (तुम गये) । आत (मैं गया) । आतिव (सू० ४४७) (हम दो गये) । आतिम (हम गये) ॥ लुट् प्र० पु० १ व०-अतिता (सू० ४९१) (वह जायगा) । म० पु० १ व०-अतितासि

(सू० ४५२) (तू जायगा) । उ० पु० १ व०–अतितास्मि (मैं जाऊंगा) ॥ लृट्–अतिष्यति (सू० ४४०) (वह जायगा) । अतिष्यसि (तू जायगा) । अतिष्यामि (मैं जाऊंगा) ॥ लोट्–अततु, (सू० ४५७ । ४५८) अततात (वोह जाव) । अत (सू० ४६१ । ४६२) (तू जा) । अतानि (सू० ४६३।४६४) (मैं जाऊं) ॥ अत्+लङ्=ति (सू० ४३३ । ४७२) अत+त् । इस दशामें–॥

४९२ आडजादीनाम् । ६ । ४ । ७२ ॥

अजादेरङ्गस्याट् लुङ्लङ्लृङ्क्षु ॥

अजादि-अंगको आट् (आ) का आगम हो लुङ्, लङ्, लृङ् परे रहते ॥ आतत् (वोह गया) । आतः (तू गया) । आतम् (मैं गया) ॥ लिङ्–अतेत् (वह जाय) । इत्यादि ॥ आशिषि लिङ्–अत्यात् (ईश्वर करे वह जाय) । अत्यास्ताम् । अत्यासुः । इत्यादि ॥

लुङि सिचि इडागमे कृते ॥

लुङ् परे हुए सन्ते जब च्लि-(सू० ४८३) के स्थानमें सिच् (सू० ४८४) कर लिया और जब सिच्-को इट्-(सू० ४४७) का आगमभी हो चुका तब निम्नलिखित सूत्र प्रवृत्त होते हैं । अत्-इ+स्+ति (सू० [illegible] । ४७२) आत् इ स् त–॥

४९३ अस्तिसिचोऽपृक्ते । ७ । ३ । ९६ ॥

विद्यमानात् सिचः अस्तेश्च परस्यापृक्तस्य हल ईडागमः ॥

विद्यमान सिच्-से परे तथा अस् धातुसे परे जो अपृक्त (सू० १००) हल् उसे ईट् (ई) का आगम हो । आत्+इ+स्+ई+त् (सू० १०४) इस अवस्थामें–॥

४९४ इट ईटि । ८ । २ । २८ ॥

इटः परस्य सस्य लोपः स्यादीटि परे ॥

इट्-से परे जो सकार उसका लोप हो ईट् परे रहते । आति+

ई+त्। यहां सिच्के 'स' का लोप त्रिपादीके सूत्र (मू०४९४) से किया है, इस कारण सवासात अध्यायीका सूत्र (मू० ५३) उसे असिद्ध मानता है, अतः यहां संधि नहीं होनी चाहिये। इसका समाधान-॥

४९५ (सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वाच्यः)॥

जहां एकमें अधिक स्वरके स्थानमें एकादेश करना हो तहां सिच्-का लोप सिद्ध माना जाय। जैसे-उक्त उदाहरणमें इ-ई-के स्थानमें एकादेश 'ई' होता है, यहां सिच्-लोप सिद्ध है। आ-तीत (वह गया)। आतिष्टाम (मू० ४६० | ४२७ | १७० | ९) (वे दो गये)। आति+स झि॥

४९६ सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च। ३। ४। १०९॥

सिचोऽभ्यस्तात् विदेश्च परस्य ङित्सम्बन्धिनो झेर्जुस्॥

सिच्-से परे वा अभ्यस्त-संज्ञक (मू० ३८९) से परे, अथवा विद्-धातुसे परे जो ङित्-लकार-सम्बन्धी झि उस जुस (उस) आदेश हो। आतिषुः (मू०१७०|१२७|११३) (वे गये)। आतीः (मू० ४९३ | ४९४) (तू गया)। आतिष्टम (तुम दो गये)। आतिष्ट (तुम गये)। आतिषम् (मैं गया)। आतिष्व (हम दो गये)। आतिष्म (हम गये)॥ लृङ्-आतिष्यत् (मू० ४४९ | १७०) (वह जायगा)। इत्यादि॥ षिधु-गत्याम्। सक० पर० से०। षिध (जाना) षिध् ति (मू० २८३ | ४३३) सिध्+अ+ति। इस अवस्थामें-॥

४९७ ह्रस्वं लघु। १। ४। १०॥

ह्रस्व अच्-की लघु-संज्ञा हो॥

४९८ संयोगे गुरु। १। ४। ११॥

संयोगे परे ह्रस्वं गुरु स्यात्॥

संयोग परे रहते ह्रस्व-अच्-की गुरु-संज्ञा हो॥

४९९ दीर्घञ्च । १ । ४ । १२ ॥

गुरु स्यात् ॥

दीर्घ अच्-कोभी गुरु-संज्ञा हो ॥

५०० पुगन्तलघूपधस्य च । ७ । ३ । ८६ ॥

पुगन्तस्य लघूपधस्य चाङ्गस्येको गुणः सार्वधातुकार्धधातुकयोः ॥

जिस अंगके अन्तमें पुक् (सू० ७६२) हो अथवा जिसकी उपधामें लघु (सू० ४९७) हो उस अंगको गुण हो सार्वधातुक और आर्धधातुक पर रहते । सेधति (वोह जाता है) । सेधसि (तू जाता है) । सेधामि (सू० ४३६) (मैं जाता हूं) । सिध्+लिट्=ति (सू० ४३८ । ४४० । ४७० । ५००) सिषेध (वह गया) । सिषिध+अतुस् । यहां निम्नलिखित सूत्र गुणको बाधता है॥

५०१ असंयोगाल्लिट् कित् । १ । २ । ५ ॥

असंयोगात्परोऽपिल्लिट् कित् स्यात् ॥

असंयोगसे परे (अर्थात्-जिसके प्रथम संयोग न हो) जो अपित (जिसकी पित्-संज्ञा न हो) लिट्-(आदेश) की कित्-संज्ञा हो ॥ सिषिधतुः (सू० ४८१) (वे दो गये) । सिषिधुः (वे गये) । सिषेधिथ (सू० ४४७) (तू गया) । सिषिधथुः (तुम दो गये) । सिषिध (तुम गये) । सिषेध (मैं गया) । सिषिधिव (हम दो गये) । सिषिधिम (हम गये) ॥ लुट्-सेधिता (सू० ४४९ । ४५१) (वह जायगा) ॥ लृट्-सेधिष्यति (सू० ४४९ । ४४०) (वह जायगा) ॥ लोट्-सेधतु (सू० ४३३ । ४५७) (वह जावे) ॥ लङ्-असेधत (सू० ४७२) (वोह गया) । वि० लिङ्-सेधेत (सू० ४७४ । ४७६ । ४७७) (वोह जाय) ॥ आ० लिङ्-सिध्यात् (सू०४८० । ४८१)(ईश्वर करे वोह जाय) ॥ लुङ्-असेधीत् (सू०४८३ । ४८४ । ४४७ । ४७२। ४७१ । ४९३ । ४९४ । ५००) (वोह गया)॥ लृङ्-असेधिष्यत् (सू० ४७२) (जो वह जाय) ॥

एव चिती-सञ्ज्ञाने ।४। सक० पर० सेट् ॥ शुच-शोके ।५। सक० पर० सेट् ॥

इसी षिध्-धातुकी समान चिती = चित (चेत करना) और शुच = शुच् (खेद करना) इन दो धातुओंके रूप होते हैं ॥

गद-व्यक्तायां वाचि । ६ । सक० पर० सेट् ॥

गद = गद्-(स्पष्ट बोलना) धातुके रूप लिखते हैं । गदति (वोह बोलता है) ॥

७०२ नेर्गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु च । ८ । ४ । १७ ॥

उपसर्गान्निमित्तात्परस्य नेर्णो गदादिषु परेषु ॥

उपसर्गमें स्थित निमित्त (र-ष) से परे जो नकार तिसकू णकार हो गद-आदि धातु परे रहते ॥ गद-(स्पष्ट बोलना), नद-(नाद करना), पत (गिरना), पद (जाना), घु-संज्ञक (मू० ६७६), मा (मापना), षो (नष्ट होना), हन (मारना-जाना), या (जाना) वा (गमन), द्रा (भागना), प्सा (भक्षण करना), वपति (बोना), वह (ले जाना), शम (शान्त होना), चि (इकट्ठा करना), दिह (लीपना-पोतना) ॥ जैसे-प्र-नि-गदति (मू० ७०२) प्रणिगदति ॥ गद-लिट् = ति (मू० ४३८ । ४४०) गद्-गद्+अ (मू० ४४२) ॥

७०३ कुहोश्चुः । ७ । ४ । ६२ ॥

[१]अभ्यास (मू० ४४१) के क-वर्ग तथा हकारकू च-वर्ग आदेश हो ॥ जगद्-अ । इस दशामें-॥

७०४ अत उपधायाः । ७ । २ । ११६ ॥

उपधाया अतो वृद्धिः स्यात् ञिति णिति च प्रत्यये परे ॥

उपधा (मू० १९७) के अत्-कू वृद्धि हो ञित वा णित-प्रत्यय परे रहते । उक्त उदाहरणमें णल-का 'अ' णित-प्रत्यय परे है ।

१ ताहाद्यायवानके वेद, इति काचन ।

जगाद (वोह स्पष्ट बोला) । जगदतुः (वे दो स्पष्ट बोले) । जगदुः (वे स्पष्ट बोले) । जगदिथ (सू० ४४७) (तू स्पष्ट बोला) । जगदथुः (तुम दो स्पष्ट बोले) । जगद (तुम स्पष्ट बोले) । जगद्+अ (णल्)–॥

५०५ णलुत्तमो वा । ७ । १ । ९१ ॥

उत्तमो णल् वा णित् स्यात् ॥

उत्तमपुरुष (सू० ४३०) का णल् (सू० ४३८) विकल्पसे णित् माना जाय । जगाद, (सू० ५०४) जगद (मैं स्पष्ट बोला)। जगदिव (हम दो स्पष्ट बोले) । जगदिम (हम स्पष्ट बोले) ॥ लुट्–गदिता (सू० ४५१।४४९ । ४४७) (वोह बोलेगा) ॥ लृट्–गदिष्यति (वोह बोलेगा) ॥ लोट्–गदतु (सू० ४५७) (वह बोले) ॥ लङ्–अगदत् (सू०४७२।४७१) (वह स्पष्ट बोला) ॥ लिङ्–गदेत् (सू०४७४।४७६।४७७।४७२) (वह स्पष्ट बोले) ॥ आ० लिङ्–गद्यात् (ईश्वर करै वह स्पष्ट बोले) ॥ लुङ्–गद्+ति (सू० ४८३ । ४८४ । ४४७ । ४७२ । ४७१ । ४९३) अ गद्+इ+स्+ई+त् । इस दशामें–॥

५०६ अतो हलादेर्लघोः । ७ । २ । ७ ॥

हलादेर्लघोरकारस्य वृद्धिरिडादौ परस्मैपदे सिचि ॥

जिसके आदिमें इट् हो ऐसे परस्मैपद-संज्ञक सिच परे रहते हलादि-धातुके लघु-(सू० ४१७) अकारको विकल्पकरके वृद्धि हो। अगादीत् , (सू० ४९४) अगदीत् (वह स्पष्ट बोला था)॥ लृङ्–अगदिष्यत् (जो वोह स्पष्ट बोले) ॥

णद–अव्यक्ते शब्दे । ७ । अकर्मक परस्मै० सेट् ॥

...णद = णद्-(अस्पष्ट शब्द करना) धातुके रूप लिखते हैं ॥

५०७ णो नः । ६ । १ । ६५ ॥

धात्वादेर्णस्य नः स्यात् ॥ णोपदेशास्त्वनर्दनाटिनाथनाध्नन्दनक्कनृनृत ॥

धातुके आदि-णकारकू नकार हो ॥ नर्द (शब्द करना), नाटि (नृत्य करना). नाथ (मांगना), नाध (मांगना), नन्द (समृद्ध होना). नक्क (नाश करना). नृ (ले जाना), इन धातुओंकू छोडकर नकारादि और धातु णोपदेश हैं, अर्थात इन उक्त धातुओंके अतिरिक्त नकारादि और धातुओंके उपदेशमें णकार जानना ॥

७०८ उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य । ८ । ४ । १४ ॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य णोपदेशस्य धातोर्नस्य णः ॥

उपसर्गमें स्थित निमित्त (र-ष) से परे णोपदेश-(सू० ७०७) धातुके नकारकू णकार हो । जैसे- प्र-नदति = प्रणदति (वह भली भांति शब्द करता है) । प्रणिनदति (सू० ७०२) (वोह अत्यंत भली भांति शब्द करता है) ॥ नदति (वह शब्द करता है) ॥ लिट्-ननाद (सू० ७०४) (उसने शब्द करा) । नद-नद्+अ-नस । इस अवस्थामें -॥

७०९ अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि । ६ । ४ । १२० ॥

लिण्निमित्तादेशादिकं न भवति यदङ्गं तदवयवस्यासंयुक्तहल्मध्यस्थस्यात एत्वमभ्यासलोपश्च किति लिटि ॥

लिट् निमित्त मानके जिस अंगके आदि-अक्षरके स्थानमें आदेश न हुए हो, उसके अवयव असंयुक्त-हलोंके बीचमें जो अकार उसको एकार हो और अभ्यासका लोप हो. कित-(सू०७०७) संज्ञक लिट् परे रहते । इस प्रकारसे पहले 'नद' का लोप हुआ, दूसरे नकारोत्तरवर्ती-अकारकू ए हो गया । नेदतुः (उन दोने शब्द किया) । नेदुः (उन्होंने शब्द किया) । नद-नद्+इ+थ । इस अवस्थामें-॥

७१० थलि च सेटि । ६ । ४ । १२१ ॥

प्रागुक्तं स्यात् ॥

जब सेट्-(इट्सहित) थल् परे हो तौभी पूर्वोक्त कार्य्य हो, अर्थात् लिट्-कू निमित्त मानके जिस अंगके आदि-अक्षरके स्थानमें

आदेश न हुए हों उसके अवयव असंयुक्त-हलोंके बीचमें जो अकार उसे एकार हो और अभ्यासका लोप हो । नेदिथ (तूने शब्द किया)। नेदथुः (तुम दोने शब्द किया) । नेद (तुमने शब्द किया)। ननाद, (सू० ५०५) ननद (मैंने शब्द किया) । नेदिव (हम दोने शब्द किया) । नेदिम (हमने शब्द किया) ॥ लुट्—नदिता (वह शब्द करेगा) । नदितासि (तू शब्द करेगा) । नदितास्मि (मैं शब्द करूंगा) ॥ लृट्—नदिष्यति (वह शब्द करेगा) । नदतु (सू० ४५७), नदतात् (सू० ४५८) (वह शब्द करे) । नद, नदतात् (तू शब्द कर) । नदानि (सू०४६३।४६४) (मैं शब्द करूं) ॥ लङ्—अनदत् (सू०४७२) (उसने शब्द किया) । अनदः (तूने शब्द किया) । अनदम् (सू०४६०) (मैंने शब्द किया)॥ लिङ्—नदेत् (वह शब्द करे)। नदेः (तू शब्द कर) । नदेयम् (मैं शब्द करूं) । नद्यात (ईश्वर करे कि वोह शब्द करे) । नद्याः (ईश्वर करे तू शब्द करे) । नद्यासम् (मैं शब्द करूं) ॥ लुङ्—अनादीत, (सू०५०६) अनदीत (उसने शब्द किया)। अनदिष्यत् (जो वोह शब्द करे) ॥

टु नदि—समृद्धौ । ८ । अक० पर० सेट् ॥

(टु) नदि = नद्-(समृद्धि—हर्ष) धातुको साधते है ॥

५११ आदिर्ञिटुडवः । १ । ३ । ५ ॥

उपदेशे धातोराद्या एते इत. स्यु. ॥

उपदेश (आदिके उच्चारण) में धातुकी आदिके जो ञि-टु और डु इनकी इत्संज्ञा हो । नद्+लट्=(सू० ४२१।४३३) नद+ति । इस अवस्थामें—॥

५१२ इदितो नुम् धातोः । ७ । १ । ५८ ॥

इदित-(जिसके इकारकी इत्संज्ञा हो) धातुको नुम् (न्) का आगम (सू० २६७) हो । नन्दति (वोह आनन्द होता है) । न-

न्दसि (तू आनन्द होता है) । नन्दामि (मैं आनन्द होता हूं) । नद्+लिट्=ति (मू० ४३८।४४०।४४२) न-नद्+अ (मू० ५१२) ननन्द (वह समृद्ध हुआ) । ननन्दिथ (मू० ४४७) (तू समृद्ध हुआ) । ननन्द (मैं समृद्ध हुआ) ॥ लुट्-नन्दिता (वह समृद्ध होगा) । नन्दितासि (तू समृद्ध होगा) । नन्दितास्मि (मैं समृद्ध होऊंगा) ॥ लृट्-नन्दिष्यति (वह आनन्द होगा) । नन्दिष्यसि (तू आनन्द होगा) । नन्दिष्यामि (मैं आनन्द होऊंगा) ॥ लोट्-नन्दतु (मू० ४५७), नन्दतात् (मू० ४५८) (वह समृद्ध होवै) । नन्द (मू० ४६१।४६२), नन्दतात (मू० ४५८) (तू आनन्द हो) । नन्दानि (मैं आनन्द होऊं) । अनन्दत् (मू०४७१। ४७२) (वह समृद्ध हुआ)। अनन्दः (तू समृद्ध हुआ) । अनन्दम् (मैं समृद्ध हुआ) ॥ लिङ्-नन्देत् (वह समृद्ध हो) । नन्देः (तू समृद्ध हो) । नन्देयम (मैं समृद्ध होऊं) ॥ आ० लिङ्-नन्द्यात् (मू०४७४) (ईश्वर करे कि वह समृद्ध हो) । नन्द्याः (ई० तू समृद्ध हो)। नन्द्यासम् (ई० मैं समृद्ध हूं) ॥ लुङ्-अनन्द+इ+स्+त-(मू० ४०३।४०४) अनन्दीत (वह समृद्ध हुआ) । अनन्दीः (तू समृद्ध हुआ) । अनन्दिषम (मैं समृद्ध हुआ) । अनन्दिष्यत् (जो तू समृद्ध हो) ॥

अर्च-पूजायाम् । ० । सक० प० सेट् ॥

अर्च = अर्च-(पूजा) धातुके रूप दिखाते है ॥ अर्च्+लट्= ति (मू० ४३३) अर्चति (वह पूजता है) । अर्च्+लिट्=अ(ति) (मू० ४४० । ४९१) आ-अर्च+अ । इस दशामें-॥

५१३ तस्मान्नुड् द्विहलः । ७ । ४ । ७१ ॥

द्विहलो धातोर्दीर्घीभूतादभ्यासात्परस्य नुट् स्यात् ॥

जिसमें दो हल् हो ऐसे धातुके अभ्यासमें दीर्घ किये हुए स्वरसे पर जो वर्ण उसे नुट् (न्) का आगम हो । आनर्च (मू०१०४) (उसने पूजा की) ॥ लुट्-अर्चिता (वह पूजेगा) ॥ लृट्-अर्चि-

ष्यति (वह पूजा करेगा)॥ लोट्—अर्चतु, अर्चतात् (वह पूजा करे)॥ लङ्—आर्चत् (सू० ४९७) (उसने पूजा करी)। आर्चः (तूने पूजा करी)। आर्चम् (मैंने पूजा करी)॥ लिङ्—अर्चेत् (वह पूजा करे)॥ आ० लिङ्—अर्च्यात् (ई० वह पूजा करे)। आर्चीत् (सू०४९३) (उसने पूजा की)॥ लृङ्—आर्चिष्यत (जो वह पूजा करे)॥

व्रज-गतौ। ११। सक० पर० सेट्॥

व्रज=व्रज्-(गमन) धातुके रूप लिखते हैं। व्रजति (वोह जाता है)। वव्राज (सू० ४४२। ५०४) (वोह गया)। व्रजिता (वोह जायगा)। व्रजिष्यति (वोह जायगा)। व्रजतु (वोह जाय)। अव्रजत (वोह गया)। व्रजेत् (वोह जाय)। व्रज्यात् (ई० वोह जाय)। व्रज्+लुङ=ति (सू०४८३।४८४।४७१।४७२। ४४७।४९३) अव्रज्+इ+स+ई+त्। इस अवस्थामें—॥

५१४ वदव्रजहलन्तस्याचः। ७। २। ३॥

एषामचो वृद्धिः सिचि परस्मैपदेषु॥

वद्-(स्पष्ट बोलना), व्रज-(जाना) और हलन्त-धातु इनके अच्‌को वृद्धि हो जिसमें परस्मैपद-संज्ञक प्रत्यय परे हो ऐसे सिच्-के परे रहते। अव्राजीत (सू० ४९४) (वोह गया था)। अव्रजिष्यत् (जो वह जाय)॥

कटे-वर्षावरणयोः। १२। सक० पर० सेट्॥

कटे=कट्-(वर्षा और घेरना) धातुको साधते हैं॥ कटति (वह बरसता है)। चकाट (सू०५०३।५०४) (वह बरसा)। कटिता (वह बरसेगा)। कटिष्यति (वह बरसेगा)। कटतु (वह बरसे)। अकटत (वह बरसा)। कटेत् (वह बरसे)। कट्यात् (ई० वह बरसे)॥ लुङ्—अकट्+इ+स्+ई+त। यहां (सू० ५१४) आदिसे वृद्धि निम्नलिखित सूत्रके अनुसार नहीं होती—॥

५१५ ह्मयन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम्। ७। २। ५॥

हमयान्तस्य क्षणादेर्ण्यन्तस्य श्वयतेरेदितश्च वृद्धिर्नेडादौ सिचि ॥

जिसके अन्तमें ह, म, और य हो उसे; और क्षण-(मरना), श्वस्-(श्वास लेना), जागृ-(जागना), तथा जिनके अन्तमें णि-प्रत्यय (सू० ७७४ । ७६०) हो उन्हें; और श्वि-(बढना वा जाना), तथा एदित धातु इन सबको वृद्धि न हो जिसके आदिमें इट् हो ऐसे सिच्के परे रहते ॥ अकटीत (सू० ४९४) (वोह बरसा था) । अकटिष्यत (जो वह बरसे) ॥

गुपू-रक्षणे । १२ । सक० पर० वेट् ॥

गुपू = गुप-(रक्षण) धातुके रूप लिखते हैं ॥

५१६ गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः । ३ । १ । २८॥

एभ्य आयप्रत्ययः स्यात्स्वार्थे ॥

गुपू (रक्षा करना), धूप (तप्त करना), विच्छ (निकट आना), पण (स्तुति करना), पन (स्तुति करना), इन धातुओंसे स्वार्थमेंही आय-प्रत्यय हो । बहुत प्रत्यय ऐसे होते हैं कि जब वे प्रत्यय किसी धातुके अगाडी आते हैं तो धातुका अर्थ बदल जाता है, परन्तु आय्-प्रत्ययके आनेसे धातुका अर्थ वैसाही रहता है ॥ गुप+आय्-॥

५१७ सनाद्यन्ता धातवः । ३ । १ । ३२ ॥

सनादयः कर्मणिङन्ताः प्रत्यया अन्ते येषां ते धातुसंज्ञकाः । धातुत्वाल्लडादयः ॥

सनसे लेकर ' कर्मणिङ (सू० ५७५) ' सूत्रतक जो बारह प्रत्यय हैं वे जिसके अन्तमें हों उस प्रत्यय-विशिष्टकी धातु-संज्ञा हो । धातु-संज्ञा होनेसे लट्-आदि होते हैं । गुप+आय्+लट्=ति (सू० ४३३ । ५८०) गोपायति (वोह रक्षा करता है) । गोपायतः (वे दो रक्षा करते हैं) । गोपायन्ति (वे रक्षा करते हैं) । गोपायसि (तू रक्षा करता है) । गोपायथः (तुम दो रक्षा करते हो) । गोपायथ (तुम रक्षा करते हो) । गोपायामि (मैं रक्षा करता हूं) ।

गोपायावः (हम दो रक्षा करते है) । गोपायामः (हम रक्षा करते हैं)॥

५१८ आयादय आर्धधातुके वा । ३ । १ । ३१ ॥

आर्धधातुकविवक्षायामायादयो वा स्युः ॥

जब आर्धधातुक कहनेकी इच्छा हो तब आय्-आदि द्वादश प्रत्ययोंमेसे केवल आय्, ईयङ् और णिङ् यह तीन प्रत्यय विकल्पसे हों ॥ गुप्–आय्+लिट् (सू० ५००) ॥

५१९ (कास्यनेकाच आम्वक्तव्यः) ॥

लिटि । आस्कासोराम्विधानान्मस्य नेत्त्वम् ॥

सूत्रकारको ऐसा कहना उचित है कि–लिट् परे रहते कास् (दीप्ति) और अनेकाच्-धातुसे परे आम्-प्रत्यय हो । आस(बैठना), कास् (चमकना) इन दो धातुओंसे परे आम्-प्रत्यय करनेसे यह बोध होता है कि–आम्-के मकारकी इत्संज्ञा नहीं है, कारण कि–जो मित् होगा तो अच्-के अन्त-(सू० २६७) में होगा, पुनः दीर्घ (सू० ५३) होकर आस्-कास्-का जैसा रूप है वैसाही रह जायगा तो आम्-का करनाही व्यर्थ होगा । गोपाय्+आम्+लिट्–॥

५२० अतो लोपः । ६ । ४ । ४८ ॥

आर्धधातुकोपदेशे यदन्तं तस्यातो लोप आर्धधातुके ॥

आर्धधातुक करनेकी इच्छामें जिस धातुके अन्तमें अकार हो उस अकारका लोप हो आर्धधातुक परे रहते । ' गोपाय ' जो प्रत्यय-विशिष्ट अदन्त-धातु है, उसमें यकारोत्तरवर्त्ती जो अकार है तिसका लोप हो गया । गोपाय्+आम् = गोपायाम्+लिट् = ति (सू० ४३८) गोपायाम्+अ ॥

५२१ आमः । २ । ४ । ८१ ॥

आमः परस्य लुक् ॥

आम्-से परे जो प्रत्यय उसका लुक् (लोप) हो । गोपायाम् । ऐसी स्थिति रहनेपर–॥

५२२ कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि । ३ । १ । ४० ॥

आमन्ताल्लिट्परा: कृभ्वस्तयोऽनुप्रयुज्यन्ते । तेषां द्वित्वादि ॥

आमन्त-(सू० ५१९) धातुसे परे ऐसी कृ (करना), भू (होना), अस् (होना) का प्रयोग हो जिनके अन्तमें लिट् हो और इन कृ-आदि धातुओंकोही द्वित्वादि लिट्-के कार्य हो ॥ गोपायाम्+कृ+लिट् = ण (सू० ४४०) गोपायाम्+कृ—कृ+अ—॥

५२३ उरत् । ७ । ४ । ६६ ॥

अभ्यासऋवर्णस्यात्स्यात । वृद्धिः ॥

अभ्यास-(सू० ४४१) के ऋकारकू अकार हो । गोपायाम्+क—कृ+अ-(सू० ५०३ । २०३ । ९५ । ९८) गोपायाञ्चकार (उसने रक्षा करी) । गोपायाम+कृ+अतुस् । इस अवस्थामें--"द्वित्वात्परत्वाद्यणि प्राप्ते" द्वित्वविधायी सूत्र (सू० ४४०) से पर होनेके कारण सूत्र (सू० १३३) के अनुसार सूत्र (सू० १९) से यणकी प्राप्ति होनेपर—॥

५२४ द्विर्वचनेऽचि । १ । १ । ५९ ॥

द्वित्वनिमित्तेऽचि अच आदेशो न द्वित्वे कर्तव्ये ॥

जो द्वित्व करनेका निमित्त हो ऐसे अच- प्रत्यय पर रहते पूर्व अच-कू कोई आदेश न हो, जबतक द्वित्व न किया हो अर्थात्-द्वित्व हो जानेपर तो आदेश होताही है । गोपायाम ... अतुस (सू० ४४० । ५२३ । ५०३ । १९) गोपायाञ्चक्रतुः (उन दोने रक्षा की) । गोपायाञ्चक्रुः (उन्होंने रक्षा की) । गोपायाम+चकृ+थ—॥

५२५ एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् । ७ । २ । १० ॥

उपदेशे यो धातुरेकाजनुदात्तश्च तत आर्धधातुकस्येण् न ॥

उपदेशमें जो धातु एकाच और अनुदात्त हो तिससे परे जो वलादि आर्धधातुक-प्रत्यय उसे इट्-का आगम न हो ॥

(१) ऊदृदन्तैर्यौतिरुक्ष्णुशीङ्स्नुनुक्षुश्विडीङ्श्रिभिः ।
वृङ्वृञ्भ्यां च विनैकाचोऽजन्तेषु निहताः स्मृताः ॥ १ ॥

ऊकारान्त और ऋकारान्त धातुओंकू छोडकर, तथा यु (मिलाना—पृथक् करना), रु (शब्द करना), क्ष्णु (तीक्ष्ण करना), शीङ् (शयन करना), स्नु (चूना), नु (प्रशंसा करना), क्षु (छींकना), श्वि (गमन-वृद्धि), डीङ् (उडना), श्रि (सेवा करना), वृङ् (सेवा करना), वृञ् (स्वीकार करना) इन धातुओंका छोडकर अजन्तोंमें सब एकाच् अनुदात्त है ॥ १ ॥

एकाच् हलन्त-धातु जो अनुदात्त हैं उनका विवरण नीचे लिखते है—॥

कान्तेषु-शक्ल् एकः ॥

ककारान्तोंमें—शक् (शक्ऌ) (समर्थ होना) एकही धातु है । अर्थात्—ककारान्त एकही धातु अनुदात्त है ऐसेही सर्वत्र समझना ॥

चान्तेषु-पच्-मुच्-रिच्-वच्-विच्-सिच्' षट् ॥

चकारान्तोंमें—पच् (पकाना), मुच् (छोडना), रिच् (रेचक औषधिसे पेट चलाना), वच (बोलना), विच् (पृथक् करना), सिच् (छिडकना) यह छै धातु अनुदात्त है ॥

छान्तेषु—प्रच्छ् एकः ॥

छकारान्तोंमें—प्रच्छ (पूछना) यह एकही धातु है ॥

जान्तेषु—त्यज्-निजिर्-भज-भञ्ज्-भुज-भ्रस्ज्-मस्ज्-यज्-युज्-रुज्-रञ्ज्-विजिर्-स्वञ्ज्-सञ्ज-सृज पञ्चदश ॥

जकारान्तोंमें—त्यज् (त्यागना), निज (शुद्ध करना), भज (सेवा करना), भञ्ज (तोडना), भुज् (भोगना), भ्रस्ज (भूंजना-भनना), मस्ज (डूबना), यज् (यज्ञादि करना), युज् (मिलाना), रुज (रोगी होना), रञ्ज् (रंगना), विज (अलग करना), स्वञ्ज् (आलिंगन करना), सञ्ज (मिलाना), सृज् (छोडना) यह पन्द्रह धातु अनुदात्त है ॥

दान्तेषु अद्-क्षुद्-खिद्-छिद्-तुद्-नुद्-पद्य-भिद्-विद्यति-विनद्-विन्द्-शद-सद्-स्विद्य-स्कन्द्-हद षोडश ॥

1 इर इत्संज्ञा वाच्या । २ यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु ।

दकारान्तोंमें–अद् (भक्षण करना), क्षुद् (कूटना), खिद् (खेद करना), छिद् (काटना), तुद् (व्यथा देना), नुद् (प्रेरण करना), पद्य = पद् (जाना), भिद् (तोडना), विद्य = विद् (होना), विन्द् = विद् (विचारना), विन्द = विद् (उपार्जन करना), शद् (नष्ट करना), सद् (गमनादिक), स्विद्य = स्विद् (पसीजना), स्कन्द (जाना–सूखना), हद् (मलत्याग करना), यह सोलह धातु अनुदात्त है ॥

धान्तेषु क्रुध-क्षुध-बुध्य-बन्ध युध रुध-राध व्यध शुध-साध सिध्या एकादश ॥

धकारान्तोंमें–क्रुध (क्रोध करना), क्षुध (बुभुक्षित होना), बुध्य = बुध (जानना), बन्ध (बांधना), युध (लडना), रुध् (घेरना), राध् (सिद्ध करना), व्यध (ताडन करना), शुध् (शुद्ध होना), साध् (सिद्ध करना), सिध्य = सिध् (पूर्ण होना) यह ग्यारह धातु अनुदात्त है ॥

नान्तेषु मन्यहनौ द्वौ ॥

नकारान्तोंमें–मन्य = मन (मानना), हन (मारना) यह दो धातु अनुदात्त है ॥

पान्तेषु–आप् छुप-क्षिप् तप् तिप् तृप्य-दृप्य लिप् लुप वप् शप-स्वप् सृप स्त्रयोदश ॥

पकारान्तोंमें–आप (व्याप्त होना), छुप (स्पर्श करना), क्षिप (फेंकना), तप (तपना), तिप (टपकना), तृप्य = तृप (संतुष्ट होना, संतुष्ट करना), दृप्य = दृप (अभिमान करना), लिप (लीपना), लुप (काटना), वप (बोना), शप (शाप देना), स्वप् (शयन करना), सृप (जाना) यह तेरह धातु अनुदात्त है ॥

भान्तेषु यभ-रभ-लभस्त्रयः ॥

भकारान्तोंमें–यभ (मैथुन करना), रभ (शीघ्रता करना), लभ (प्राप्त करना) यह तीन धातु अनुदात्त है ॥

मान्तेषु गम नम यम-रमश्चत्वारः ॥

१ स्वाद्यन्तः । २ स्पर्शे पर्णाय । ३ तर्पणे गणाय । ४ मद विशाणगत्यवमार्दनेषु ।

मकारान्तोंमें–गम् (गमन करना), नम् (नमस्कार करना), यम् (दान करना, निवृत्त होना), रम् (क्रीडा करना) यह चार धातु अनुदात्त है ॥

शान्तेषु–क्रुश-दंश-दिश-दृश-मृश-रिश-रुश-लिश-विश-स्पृशो दश ॥

शकारान्तोंमें–क्रुश (उच्च स्वरसे रोदन करना), दंश (डसना), दिश (दिखाना, दान करना) दृश (देखना), मृश् (स्पर्श करना), रिश (हिंसा करना), रुश (हिंसा करना), लिश् (घटना), विश् (प्रवेश करना), स्पृश (स्पर्श करना) यह दश धातु अनुदात्त है ॥

षान्तेषु–कृष-त्विष-तुष-द्विष-दुष-पुष्य-पिष-विष-शिष-शुष-श्लिष एकादश ॥

षकारान्तोंमें–कृष (खींचना), त्विष (चमकना), तुष (तृप्त होना), द्विष (द्वेष करना), दुष (बिगडना), पुष्य = पुष् (पुष्ट करना), पिष (पीसना), विष (व्याप्त होना), शिष् (विशिष्ट करना), शुष (सूखना), श्लिष (आलिङ्गन करना). यह ग्यारह धातु अनुदात्त है ॥

सान्तेषु घस-वसती द्वौ ॥

सकारान्तोंमें– घस (भक्षण करना), वस (बसना) यह दो धातु अनुदात्त है ॥

हान्तेषु दह-दिह-दुह-नह-मिह-रुह-लिह-वहोऽष्टौ ॥

हकारान्तोंमें–दह (जलाना), दिह (लीपना), दुह (दुहना), नह (बांधना), मिह (सींचना), रुह (उपजना), लिह (चाटना), वह (ले जाना, प्राप्त करना) यह आठ धातु अनुदात्त हैं ॥

अनुदात्ता हलन्तेषु धातवस्त्र्यधिकं शतम् ॥

इस प्रकार हलन्त धातुओंमेंसे एक सौ तीन (१०३) धातु अनुदात्त है ॥

जिस कारणसे कि कृ-धातु अनुदात्त और एकाच् है अतः अव्यवहित पूर्व-सूत्रसे संबंध रखता है, परन्तु–तथापि लिट् पर रहते इट्-

१ दिशादिगणीय ।

का निषेध (सू० ५२९) है। गोपायाञ्चकर्थ (तूने रक्षा की)। गोपायाञ्चक्रथुः (सू० १९) (तुम दोने रक्षा की)। गोपायांचक्र (तुमने रक्षा की)। गोपायाञ्चकार (सू० २०३), गोपायाञ्चकर (सू० ५०५) (मैने रक्षा की)। गोपायांचकृव (सू० ५०१। ४८१) (हम दोने रक्षा की)। गोपायाञ्चकृम (हमने रक्षा की)। इसी अर्थमे। गोपायांबभूव, (सू० ५२२) गोपायामास। इत्यादिरूप जानो। (सू० ५१८) संन्यक सूत्रके वैकल्पिक होनेसे ऐसेभी रूप होते है–। जुगोप (सू० ४४० । ५०३)। जुगुपतुः (सू० ५०१। ४८१)। जुगुपुः। जुगोप मिप = थल्। जुगोपिथ। इस दशामे–॥

५२६ स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा। ७। २। ४४॥

स्वरत्यादेरूदितश्च परस्य वलादेरार्धधातुकस्येड्वा॥

स्वरति आदि अर्थात्–स्वृ (शब्द करना), सू (उत्पन्न करना), सू (उत्पन्न करना), धूञ् (कांपना), इन धातुओंमे परे और ऊदित-धातुसे परे वलादि-आर्धधातुकको विकल्पसे इट् (इ) का आगम हो। गुपू-धातु ऊदित है। जुगोपिथ, जुगोप्थ। जुगुपथुः। जुगुप। जुगोप। जुगुपिव, जुगुप्व। जुगुपिम, जुगुप्म॥ लुट्–गोपायिता (सू० ५१६), गोपिता (सू० ५१८), गोप्ता (सू० ५२६) (वह रक्षा करेगा)। गोपायितासि, गोपितासि, गोप्तासि (तू रक्षा करेगा)। गोपायितास्मि, गोपितास्मि, गोप्तास्मि (मै रक्षा करूंगा)॥ लृट्[1]–गोपायिष्यति, गोपिष्यति, गोप्स्यति (वह रक्षा करेगा)। गोपायिष्यसि, गोपिष्यसि, गोप्स्यसि (तू रक्षा करेगा)। गोपायिष्यामि, गोपिष्यामि, गोप्स्यामि (मै रक्षा करूंगा)॥ लोट्[2]–गोपायतु (सू० ४५७) (वाह रक्षा करे)। गोपाय (सू० ४६१। ४६२), गोपायतात् (सू० ४५८) (तू रक्षा करे)। गोपायानि (सू० ४६३। ४६४) (मै रक्षा करूं)॥ लङ्–अगोपायत् (सू० ४७१। ४७२)(उसने रक्षा की)। अगोपायः (तूने रक्षा की)।

1 अनद्यतनवर्णाय। 2 विध्याद्यर्णाय।

अगोपायम् (मैंने रक्षा की) ॥ वि० लिङ्–गोपायेत् (वोह रक्षा करे) ॥ आ०लिङ्–गोपाय्यात् (सू०५१६), गुप्यात् (सू०५१८) (ई०वह रक्षा करे) । गोपाय्याः, गुप्याः (ई०तू रक्षा करे) । गोपाय्यासम्, गुप्यासम् (मैं रक्षा करूं) ॥ लुङ्–अगुप्+आय्+स्+त (सू०५२६ । ४९३ । ५००) अगोपाय्+इ+स्+ई+त । यहां (सू०५१४) से वृद्धिकी प्राप्ति है, उसका निषेध– ॥

५२७ नेटि । ७ । २ । ४ ॥

इडादौ सिचि हलन्तस्य वृद्धिर्न ॥

जिसके आदिमें इट् हो ऐसे सिच परे रहते हलन्त-धातुको वृद्धि न हो । अगोपायीत् (सू० ४९४), अगोपीत् (सू० ५२६ । ४९३ । ५१८), अगौप्सीत् (सू० ५१४ । ४९३) (उसने रक्षा की) । अगुप्+स+तम (सू० ४६०)–॥

५२८ झलो झलि । ८ । २ । २६ ॥

झलः परस्य सस्य लोपो झलि ॥

झल्-से परे जो सकार तिसका लोप हो झल् परे रहते ॥ अगुप्+ताम (सू० ५१४) अगौप्ताम् (उन दोने रक्षा की) । अगौप्सुः (उन्होंने रक्षा की) । अगौप्सीः (तूने रक्षा की) । अगौप्तम् (तुम दोने रक्षा की) । अगौप्त (तुमने रक्षा की) । अगौप्सम् (मैंने रक्षा की) । अगौप्स्व (हम दोने रक्षा की) । अगौप्स्म (हमने रक्षा की) । अगोपायिष्यत्, अगोपिष्यत्, अगोप्स्यत् (जो वोह रक्षा करे) ॥

क्षि क्षये । ? ३ । अकः परः अनिट् ॥

क्षि-(घटना) धातुको साधते हैं॥ क्षि+लट्=ति (सू० ४३३ । ४३४।२७) क्षयति (वह घटता है)। क्षि-क्षि+अ (सू०४४२।५०३। ?-?।२७) चिक्षाय (वोह घटा) । चिक्षियतुः (सू०२२१) (वे दो घटे)। चिक्षियुः (वे घटे)। चिक्षि+थ । यहां (सू०४४७) से इट् प्राप्त था उसे (सू०५२५) ने बाधा, परन्तु विशेषता लिखते हैं–॥

५२९ कसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि। ७।२।१३॥

क्रादिभ्य एव लिट इण्न स्यादन्यस्मादनिटोऽपि स्यात॥

कृ (करना), सृ (जाना), भृ (पोषण करना), वृ (स्वीकार करना), स्तु (ष्टु) (प्रशंसा करना), द्रु (जाना), स्रु (टपकना), श्रु (श्रवण करना), केवल इन धातुओंसे परे लिट्-कू इट्-का आगम न हो और यदि अनिट्-धातुभी (सू० ५२५) हो तौभी लिट्-कू इट्-का आगम हो जाय॥

५३० अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम्। ७।२।६१॥

उपदेशेऽजन्तो यो धातुस्तासौ नित्यानिट् ततस्थल इण्न॥

जो धातु उपदेशमें अजन्त हो और तास्-प्रत्यय परे रहते नित्य अनिट् हो उस धातुसे परे थल्-कू इट् न हो॥

५३१ उपदेशेऽत्वतः। ७।२।६२॥

उपदेशेऽकारवतस्तासौ नित्यानिटः परस्य थल इण्न॥

जो हलन्त धातु उपदेशमें अकारवान हो तथा तासिमें नित्य अनिट् हो उस धातुसे परे थल्-कू इट् न हो॥

५३२ ऋतो भारद्वाजस्य। ७।२।६३॥

तासौ नित्यानिट ऋदन्तादेव थलो नेट् भारद्वाजस्य मते॥

श्रीभारद्वाजआचार्य्यके मतमें जो धातु तास् प्रत्यय पर रहते नित्य अनिट् हो ऐसी ऋदन्त-धातुसे परेही थल्-कू इट् न हो, अर्थात्-भारद्वाजके मतमें ऋदन्त-धातुसे परेही थल्-कू इट् का निषेध है, और ऋदन्तोंसे भिन्न धातुओंसे परे थल्-कू इट् होना चाहिये॥

अयमत्र संग्रहः।

अजन्तोऽकारवान्वा यस्तास्यनिट् थलि वेडयम्।
ऋदन्त ईदृङ् नित्यानिट् क्राद्यन्यो लिटि सेड् भवेत्॥ १॥

जो तासि-प्रत्यय परे रहते नित्य अनिट् हो ऐसे अजन्त और

अकारवान् धातुओंसे परे थल्-कू विकल्पसे इट् हो। यदि ऐसी अवस्थामें ऋदन्त धातु हो तो नित्य अनिट् होता है, और कृ-आदि (मू०५२९) धातुओंको छोडकर और धातुओंसे इट् होता है॥१॥ यह सबका तात्पर्य्य है॥ चिक्षयिथ, (मू० ४३४) चिक्षेथ (तू घटा)। चिक्षियथुः (मू० २२१) (तुम दो घटे)। चिक्षिय (तुम घटे)। चिक्षाय (मू० २०३), चिक्षय (मू० ५०५) (मैं घटा)। चिक्षियिव (हम दो घटे)। चिक्षियिम (हम घटे)॥ लुट्—क्षेता (वह घटेगा)॥ लृट्—क्षेष्यति (वह घटेगा)॥ लोट्—क्षयतु (वह घटे)॥ लङ्—अक्षयत (वह घटा)। क्षयेत् (वह घटे)॥ आशीर्लिङ्—क्षि+यास्+त्॥

५३३ अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः। ७। ४। २५॥

अजन्ताङ्गस्य दीर्घो यादौ प्रत्यये न तु कृत्सार्वधातुकयोः॥

कृत्-(मू० ३३२) संज्ञक भिन्न प्रत्यय और सार्वधातुक-प्रत्ययको छोडकर यादि-प्रत्यय परे रहते अजन्त-अंगकू दीर्घ हो। क्षीयात् (मू० ३३९) (ई० वोह घटे)॥ लुङ्—अक्षि+स्+त्। इस अवस्थामें—॥

५३४ सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु। ७। २। १॥

इगन्ताङ्गस्य वृद्धिः परस्मैपदे सिचि॥

परस्मैपदपरक सिच् परे रहते इगन्त-अंगकू वृद्धि हो॥ अक्षैषीत् (मू०४९३) (वोह घटा)। अक्षेष्यत् (जो वह घटेगा)॥

तप-सन्तापे। १४। अक० पर० अनिट्॥

तप = तप्-(तपना) धातुको साधते हैं॥ लट्—तपति (वह तपता है)॥ लिट्—तताप (मू० २०३) (वह तपा)। तेपतुः (मू०५०९) (वे दो तपे)। तेपुः (वे तपे)। तेपिथ (मू० ५१०), ततप्थ (मू० ५३२) (तू तपा)। तताप, ततप (मू० ५०५) (मैं

१ परन्तु यहाभी थल् परे रहते वैकल्पिक सूत्रोपर ध्यान रखना चाहिये।

तपा) ॥ लुट्–तप्ता (वह तपैगा) ॥ लृट्–तप्स्यति (वह तपेगा) ॥ लोट्–तपतु (वह तपै) ॥ लङ्–अतपत (वह तपा) ॥ लिङ्–तपेत् (वह तपै) ॥ आ० लिङ्–तप्यात् (ई० वह तपै) ॥ लुङ्–अताप्सीत् (सू० ५१४) (वह तपा था) । अताप्ताम् (सू०५२८) (वे दो तपे थे) । अताप्सुः (वे तपे थे) ॥ लृङ्–अतप्स्यत् (जो वह तपै) ॥

क्रमु-पादविक्षेपे । ७७ । पर० सक० सेट् ॥

क्रमु = क्रम् (चरण रखना) ॥ क्रम्+लट् = ति ॥

५३५ वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः। ३।१।७०॥

एभ्यः श्यन्वा कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे । पक्षे शप् ॥

भ्राश (चमकना), भ्लाश (चमकना), भ्रमु (भ्रमण करना), क्रमु (चरण रखना), क्लमु (खेदित होना), त्रस (डरना), त्रुटि (काटना), लष (चाहना), इन धातुओंसे परे विकल्प कर श्यन-प्रत्यय हो कर्त्ता-अर्थ बोधक सार्वधातुक परे रहते । दूसरे पक्षमें शप (सू० ४३३) हो । क्रम+श्यन+ति (सू० ३ ।१५६) । क्रम+य+ति ॥

५३६ क्रमः परस्मैपदेषु । ७ । ३ । ७६ ॥

क्रमो दीर्घः स्यात्परस्मैपदे शिति ॥

जिससे परस्मैपद परे हो ऐसे शित के परे रहते क्रम्-धातुको दीर्घ हो । क्राम्यति, क्रामति (वह टहलता है) । क्राम्यसि, क्रामसि (तू टहलता है) । क्राम्यामि, क्रामामि (मैं टहलता हूं) ॥ लिट्–चक्राम (वह टहलता है) । चक्रमिथ (तू टहलता है) । चक्राम, चक्रम (सू० ५०५) (मैं टहला) । क्रमिता (वह टहलेगा) । क्रमिष्यति (वह टहलेगा) । क्राम्यतु, क्रामतु (वह टहलै) । अक्राम्यत , अक्रामत (वह टहला) । क्राम्येत , क्रामेत ,(वह टहलै)।

१ क्राम्यतात् । २ क्रामतात् ।

क्रम्यात् (ई० वह टहले) । अक्रमीत् (मू० ४९४) (वह टहला था) । अक्रमिष्यत् (जो वोह टहले) ॥

पा–पाने । १६ । सक० पर० अनिट ॥

पा-धातु पीनेमें होती है । पा+शप्+ति । इस अवस्थामें–॥

५३७ पाघ्राध्मास्थाम्नादाणदृश्यर्त्तिसर्त्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदाः । ७ । ३ । ७८ ॥

पादीनां पिबादयः स्युः इत्संज्ञकशकारादौ प्रत्यये परे । पिबादेशोऽदन्तस्तेन न गुणः ॥

पा १ (पीना), घ्रा २ (सूंघना), ध्मा ३ (फूंकना), स्था ४ (खडा होना), म्ना ५ (अभ्यास करना), दाण ६ (देना), दृश ७ (देखना), ऋ ८ (जाना), सृ ९ (चलना), शद् १० (मुरझाना), सद ११ (नाश होना), इन ग्यारह धातुओंको क्रमसे–पिब १, जिघ्र २, धम् ३, तिष्ठ ४, मन ५, यच्छ ६, पश्य ७, ऋच्छ ८, धौ ९, शीय १०, सीद् ११, यह ग्यारह आदेश हों इत्संज्ञावाला शकार जिसके आदिमें हो ऐसे शकारादि प्रत्यय परे रहते । पिब-आदेश अदन्त है इस कारण गुण (मू० ५००) नहीं होता । पिबति (वह पीता है) ॥ लिट्–पा पा+णल् ॥

५३८ आत औ णलः । ७ । १ । ३४ ॥

आदन्ताद्धातोर्णल औकारादेशः स्यात् ॥

आकारान्त-धातुसे परे णल् (मू० ४३८) को औ-आदेश हो । पपौ (मू० ४८३ । ३०) (उसने पिया) । पपा+अतुस्(मू०४४३)॥

५३९ आतो लोप इटि च । ६ । ४ । ६४ ॥

अजाद्योरार्धधातुकयोः क्ङिदिटोः परयोरातो लोपः ॥

क्ङित वा ङित अजादि-आर्धधातुक परे रहते अथवा इट् परे रहते आकारका लोप हो । पपतुः (मू० ५०१) (उन दोने पिया) । पपुः (उन्होंने पिया) । पपिथ, पपाथ (मू०५३२) (तूने पिया) । पपथुः (तुम दोने पिया) । पप (तुमने पिया) । पपौ (मू०५३८)

(मैने पिया)। पपिव (सू० ५२९) (हम दोने पिया)। पपिम (हमने पिया)॥ लुट्-पाता (वह पियेगा)॥ लृट्-पास्यति (वह पियेगा)॥ लोट्-पिबतु (सू० ५३७। ४५७) (वह पिये)। अपिबत (उसने पिया)॥लिङ्-पिबेत् (वह पिये)। पा+लिङ=ति (सू० ४७२। ४७४। ३३९) पा+या+त्। इस अवस्थामे-॥

५४० एर्लिङि। ६। ४। ६७॥

घुमास्थागापाजहातिसां हलि ॥ घुसंज्ञकानां मास्थादीनां च एत्वं स्यादार्धधातुके किति लिङि॥

घु-संज्ञक(सू० ६७६) धातुओंके तथा मा, स्था(सू० ६३९)इत्यादि धातुओंके अच्-कू ए हो यदि लिङ्-के स्थानमे कित (सू० ४८०) आर्धधातुक (सू०४७९) परे हो। पेयात (ईश्वर करे वोह पिये)। पेयाः (ई० तू पिये)। पेयासम (ई० मे पिऊं)॥ लुङ्-अ पा+ति (सू० ४८३। ४८४। ४८५। ४७२) अपात् (उसने पिया था)। अपाताम (सू०४६०।४८५) (उन दोने पिया था)। अ पा सू+झि (सू० ४८५) इस अवस्थामे-॥

५४१ आतः। ३। ४। ११०॥

सिज्लुकि आदन्तादेव झेर्जुस्॥

सिच्-का लुक (लोप) हो जाने पर आदन्त-धातुसे परे झि-कू जुस (सू० ४४९) हो। अ पा+उस। पुनः-॥

५४२ उस्य पदान्तात। ६। १। ९६॥

अपदान्तादकारादुसि पररूपमेकादेशः॥

अपदान्तके अकारसे उस परे रहते पूर्व-परके स्थानमें पररूप एकादेश हो॥ अपुः (उन्होंने पिया)॥ लृङ्-अपास्यत (जो वह पिये)॥

ग्लै हर्षक्षये। १५। अकः परः अनिट्॥

ग्लै-(ग्लानि करना) धातुको साधते है॥ ग्लै+लट=ति (सू० ४३३।२७) ग्लायति (वह ग्लानि करता है)॥

५४३ आदेच उपदेशेऽशिति।६। १। ४५॥

उपदेशे एजन्तस्य धातोरात्त्वं, न तु शिति॥

उपदेशमें जो धातु एजन्त हो उसे आकार हो, परन्तु शित् परे रहते न हो। ग्लै+लिट्=ति(मू०४३८ । ४४० । ४४२ । ५०३ । ५३८) जग्लौ (उसने ग्लानी की) । जग्लतुः (मू० ५३९) (उन दोने ग्लानि की) ॥ लुट्—ग्लाता (वह ग्लानि करेगा) । ग्लास्यति (वह ग्लानि करेगा) । ग्लायतु (वह ग्लानि करे) ॥ लङ्—अग्लायत् (उसने ग्लानी की) ॥ लिङ्—ग्लायेत् (वह ग्लानि करे) ॥ आ० लिङ्—ग्लै+या+त् (मू० ५४३) ॥

५४४ वाऽन्यस्य संयोगादेः । ६ । ४ । ६८ ॥

घुमास्थादेरन्यस्य संयोगादेर्धातोरात एत्वं वाऽऽर्धधातुके किति लिङि ॥

घु-संज्ञक (मू०६७६) तथा मा स्था (मू०६३९) आदि धातुओंसे अन्य संयोगादि-धातुके आ-कू एत्व विकल्पसे हो, आर्धधातुक कित् लिङ् परे रहते । ग्लेयात् , ग्लायात् (ई०वह ग्लानि करे) । ग्लेयाः, ग्लायाः (तू ग्लानि करे) । ग्लेयासम्, ग्लायासम् (मैं ग्लानि करूं) ॥ लुङ्—अग्ला+स्+त्— ॥

५४५ यमरमनमातां सक् च । ७ । २ । ७३ ॥

एषां सक् स्यादेभ्यः सिच इट् परस्मैपदेषु ॥

यम् (निवृत्त होना), रम् (क्रीडा करना), नम् (नमस्कार करना)इन धातुओंकू तथा आकारान्त-धातुओंकू सक्-का आगम हो, और उससे परे सिच्-कू इट्-का आगम हो परस्मैपद परे रहते । अ-ग्ला+सक्+इ+स्+त् (मू० ४९३ । ४९४ । ५३)अग्ला+सक्+ई+त् (मू०३।३४)अग्लासीत् (उसने ग्लानी की) । अग्लासिष्टाम् (मू० ५४५ । १७० । ७९) (उन दोने ग्लानी की) ॥ लृङ्—अग्लास्यत् (मू० ५४३) (जो वह ग्लानी करे) ॥

ह्वृ कौटिल्ये । १८ । अक० पर० अनिट् ॥

ह्वृ-(कुटिलता करना) धातुके रूप लिखते हैं ॥ ह्वृ+लट्=ति (मू० ४३३ । ४३४) ह्वरति (वह कुटिलता करता है) ॥ लिट्—ह्वृह्वृ+अ (मू० ५२३ । ४४२ । ५०३) जह्वृ+अ । इस दशामें—॥

५४६ ऋतश्च संयोगादेर्गुणः। ७। ४। १०॥

ऋदन्तस्य संयोगादेरङ्गस्य गुणो लिटि॥

जिसके आदिमें संयोग हो ऐसे ऋदन्त-अंगकू गुण हो लिट् परे रहते। ज ह्व र्+अ (सू० ५०४) जह्वार (उसने कुटिलता की)। जह्वरतुः (सू० ५४६) (उन दोने कुटिलता करी)। जह्वरुः (उन्होंने कुटिलता की)। जह्वर्थ (तूने कुटिलता की)। जह्वरथुः (तुम दोने कुटिलता की)। जह्वर (तुमने कुटिलता की)। जह्वार (सू० ५०४), जह्वर (सू० ५०५) (मैने कुटिलता की)। जह्वरिव (हम दोने कुटिलता की)। जह्वरिम (हमने कुटिलता की)॥ लुट्—ह्वर्त्ता (वोह कुटिलता करेगा)। ह्वर्त्तासि (तू कुटिलता करेगा)। ह्वर्त्तास्मि (मै कुटिलता करूंगा)॥ लृट्—ह्वृ+स्य+ति॥

५४७ ऋद्धनोः स्ये। ७। २। ७०॥

ऋतो हन्तेश्च स्यस्येट्॥

ऋदन्त-धातुसे परे तथा हन-धातुसे परे स्य-(सू० ४४९)कू इट् (इ) का आगम हो। ह्वृ+इ+स्य+ति (सू० ४३४) ह्वरिष्यति (वोह कुटिलता करेगा)॥ लोट्—ह्वरतु (वोह कुटिलता करे)॥ लङ्—अह्वरत (उसने कुटिलता की)॥ लिङ्—ह्वरेत (वह कुटिलता करे)॥ आशीर्लिङ्—ह्वृ+या+त्—॥

५४८ गुणोऽर्त्तिसंयोगाद्योः। ७। ४। २९॥

अर्त्तेः संयोगादेरृदन्तस्य च गुणः स्यात् यकि यादावार्धधातुके लिङि च॥

ऋ-(गतौ) कू और संयोगादि-ऋदन्त-धातुकू गुण हो यक् (सू०८१५) परे रहते और यकारादि-आर्धधातुक-लिङ् परे रहते। ह्वर्यात (ई०वह कुटिलता करे)॥लुङ्—अह्वार्षीत (सू०५३४)(उसने कुटिलता की थी)। अह्वार्ष्टाम् (उन दोने कुटिलता की थी)। अह्वरिष्यत् (सू० ५४७) (जो वह कुटिलता करे)॥

श्रु-श्रवणे। ९०। सक० पर० अनिट्॥

श्रु-(सुनना) धातुके रूप सिद्ध करते है॥

५४९ श्रुवः शृ च । ३ । १ । ७४ ॥

श्रुवः शृ इत्यादेशः स्यात् श्नुप्रत्ययश्च । शपोऽपवादः ॥

श्रु-धातुकू शृ-आदेश हो और श्नु-प्रत्यय हो । शप्-(सू० ४३३) का अपवाद है । शृ+श्नु+ति (सू०१५६ । २३७ । ४३४) शृणोति (वह सुनता है) । शृणु+तस्—॥

५५० सार्वधातुकमपित् । १ । २ । ४ ॥

अपित्सार्वधातुकं ङिद्वत् ॥

अपित् सार्वधातुक प्रत्यय ङित् की समान माना जाय । शृणुतः (सू० ४८१) (वे दो सुनते हैं) । शृ+णु+झि (सू० ४३५) ॥

५५१ हुश्नुवोः सार्वधातुके । ६ । ४ । ८७ ॥

हुश्नुवोरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्योवर्णस्य यण् स्यादचि सार्वधातुके परे ॥

हु-धातु और श्नु-प्रत्ययान्त अनेकाच् धातुओंके ऐसे उकारकू कि जिसके पूर्व संयोग न हो तब यण् हो, जब अजादि सार्वधातुक परे रहे। शृण्वन्ति (वे सुनते हैं) । शृणोषि (तू सुनता है)। शृणुथः(तुम दो सुनते हो)। शृणुथ (तुम सुनते हो) । शृणोमि (मैं सुनता हूं) । शृ+णु +वस् (:) इस अवस्थामें—॥

५५२ लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः । ६ । ४ । १०७ ॥

असंयोगपूर्वस्य प्रत्ययोकारस्य लोपो वा म्वोः परयोः ॥

जिसके पहले संयोग न हो ऐसे प्रत्ययके उकारका विकल्पसे लोप हो मकार और वकार पर रहते । शृण्वः, शृणुवः (हम दो सुनते हैं) । शृण्मः, शृणुमः (हम सुनते हैं) ॥ लिट्—श्रुश्रु+अ (सू० ४४२ । २०३ । २७) शुश्राव (उसने सुना) । शुश्रुवतुः (सू० २२१) (उन दोने सुना) । शुश्रुवुः (उन्होंने सुना) । शुश्रुविथ, शुश्रोथ (सू० ५३२) (तूने सुना)। शुश्रुवथुः (तुम दोने सुना) । शुश्रुव (तुमने सुना) । शुश्राव (सू० २०३), शुश्रव (सू० ४३४।५०५) (मैंने सुना) । शुश्रुव (हम दोने सुना) ।

शुश्रुम (हमने सुना) ॥ लुट्—श्रोता (वह सुनेगा) । श्रोष्यति (वह सुनेगा) ॥ लोट्—शृणोतु, शृणुतात् (सू० ४५८) (वोह सुने) । शृणुताम् (सू० ५५०) (वे दो सुनें) । शृण्वन्तु (सू० ५५१ । ४५७) (वे सुनें) । शृ+णु+सि (सू० ४६१) शृणु+हि । इस दशामें-॥

५५३ उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात् । ६ । ४ । १०६ ॥

असंयोगपूर्वात्प्रत्ययोतो हेर्लुक् ॥

जिसके प्रथम संयोग न हो ऐसे प्रत्ययके उकारसे परे हि (सू० ४६१) का लुक् (लोप) हो । शृणु, शृणुतात् (सू० ४५८) (तू सुन) । शृणुतम् (तुम दो सुनो) । शृणुत (तुम सुनो) । शृणु+मि (सू० ४६३ । ४६४ । ४३५ । २७) शृणवानि (मैं सुनूं) । शृणवाव (हम दो सुनें) । शृणवाम (हम सुनें) ॥ लङ्—अशृणोत् (उसने सुना) । अशृणुताम् (उन दोने सुना) । अशृण्वन् (सू० ४७२ । ५५१) (उनोंने सुना) । अशृणोः (तैने सुना) । अशृणुतम् (तुम दोने सुना) । अशृणुत (तुमने सुना) । अशृणवम् (सू०४३४ । २७) (मैंने सुना) । अशृण्व (सू० ५५२), अशृणुव (हम दोने सुना) । अशृण्म, अशृणुम (हमने सुना) ॥ लिङ्—शृणुयात् (सू० ४७४ । ४७५ ।) (वोह सुने) । शृणुयाताम् (वे दो सुनें) । शृणुयुः (सू० ४७५ । ५४२) (वे सुनें) । शृणुयाः (तू सुने) । शृणुयातम् (तुम दो सुनो) । शृणुयात (तुम सुनो) । शृणुयाम् (मैं सुनूं) । शृणुयाव (हम दो सुनें) । शृणुयाम (हम सुनें) ॥ आ० लिङ्—श्रूयात् (सू० ५३३ । ४८१) (ई० वह सुने) । श्रूयास्ताम् (वे दो सुनें) । इत्यादि ॥ लुङ्—अश्रौषीत् (सू०५०३।५३४) (उसने सुना था) । अश्रौष्टाम् (उन दोने सुना था) । अश्रौषीः (तूने सुना था) । अश्रौषम् (मैंने सुना था) ॥ लृङ्—अश्रोष्यत् (जो वह सुने) ॥

गम्लृ गतौ । २० । सक० पर० अनिट् ॥

गम्लृ = गम्-(जाना) धातु सामने । गम+लट् = ति (सू० ४३३) इस दशामें-॥

५५४ इषुगमियमां छः । ७ । ३ । ७७ ॥

एषां छः स्यात् शिति ॥

इष् (इच्छा करना), गम् (जाना), यम् (निवृत्त होना), इन धातुओंकू (मू० २५) छकार हो शित् परे रहते। गछ्+अ+ति (मू० १२२) गच्छति (वोह जाता है) ॥ लिट्—जगाम (मू० ५०३ । ५०४) (वोह गया) । जगम्+अतुस्—॥

५५५ गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि ।६।४।९८॥

एषामुपधाया लोपोऽजादौ क्ङिति नत्वङि ॥

गम (जाना), हन (मारना), जन (उत्पन्न होना), खन (खोदना), घस (खाना), इन उक्त धातुओंकी उपधाका लोप हो अङ् (मू० ५५७) प्रत्ययभिन्न अजादि कित् वा ङित् प्रत्यय परे रहते । जग्मतुः (वे दो गये) । जग्मुः (वे गये) । जगमिथ (मू०५३२), जगन्थ (मू० ९६ । ९७) (तू गया) । जग्मथुः (तुम दो गये) । जग्म (तुम गये) । जगाम, जगम (मू० ५०५) (मैं गया) । जग्मिव (मू० ४४७ ।५५५) (हम दो गये) । जग्मिम (हम गये)। लुट्—गन्ता (मू० ५२५) (वोह जायगा) । गन्तासि (तू जायगा) । गन्तास्मि (मे जाऊंगा) ॥ लृट्—गम्+स्य+ति ॥

५५६ गमेरिट् परस्मैपदेषु । ७ । २ । ५८ ॥

गमेः परस्य सादेरार्धधातुकस्येट् स्यात् परस्मैपदेषु ॥

गम् धातुसे परे सकारादि-प्रत्ययकू इट् (इ) का आगम हो परस्मैपदमें । गमिष्यति (वोह जायगा) ॥ लोट्—गच्छतु (मू०५५४। ४५७।१२२) (वोह जाय) । अगच्छत् (वोह गया) । गच्छेत् (वोह जाय) ॥ आ० लिङ्—गम्यात् (ई० वोह जाय) ॥ लुङ्—अगम्+ति (मू०४७२।४८३) अगम्+च्लि+त् । इस अवस्थामें—॥

५५७ पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु । ३ । १ । ५५ ॥

श्यन्विकरणपुषादेर्द्युतादेर्ॢदितश्च परस्य च्लेरङ् परस्मैपदेषु ॥

श्यन्-विकरण (जिसे श्यन् होता है) अर्थात्-दिवादिगणपठित पुष-(पुष्ट करना) आदि धातुओंसे परे और द्युत-(दीप्ति) आदि धातुओसे परे तथा लृदित्-(जिनके लृकारकी इत्संज्ञा हो) धातुओंसे परे च्लि-(सू० ४८३) कू अङ् (अ) हो । अगमत् (वोह गया था) । अगमः (तू गया था) । अगमम् (मै गया था) ॥ लृङ्–अगमिष्यत (सू० ५५६) (जो वोह जाय) । अगमिष्यः (जो तू जाय) । अगमिष्यम् (जो मै जाऊं) ॥ इति परस्मैपदिनः॥

अथ आत्मनेपदप्रारम्भः ।

१ एध वृद्धौ । २१ । अक० आत्मने० सेट् ॥

एध्-(बढना) धातु साधते है । एध्+त (सू०४२३ । ४२४ । ४३३) एध्+अ+त । इस दशामें–॥

५५८ टित आत्मनेपदानां टेरे । ३ । ४ । ७९ ॥

टितो लस्यात्मनेपदानां टेरेत्वम् ॥

टित्-लकारोंके स्थानमें जो आत्मनेपद-संज्ञक आदेश उनकी टि-(सू० ४९) कू ए हो । एधते (वोह बढता है) । एध+अ+आताम् (सू० ५५८) ॥

५५९ आतो ङितः । ७ । २ । ८१ ॥

अतः परस्य ङितामाकारस्य इय् स्यात ॥

अकारसे परे ङित्-(सू० ५५०) प्रत्ययोंके आकारकू इय् हो । एध+इय्+ते (सू०४७७।३३) एधेते (वे दो बढते है)। एध्+अ+झ (सू०४३५।५५८।३०२) एधन्ते (वे बढते है) । एध्+लट (सू० ४२१।४३३) एध्+अ+थास–॥

५६० थासः से । ३ । ४ ।८० ॥

टितो लस्य थासः से स्यात ॥

टित्-लकारके थास्-कू से-आदेश हो । एधसे (तू बढता है) । एधेथे (सू० ५५९) (तुम दो बढते हो) । एधध्वे (सू० ५५८)

(तुम बढते हो) । एध्+अ+इट् (सू० ५५८।३०२) एधे (मैं बढता हूं) । एधावहे (सू० ५५८।४३६) (हम दो बढते हैं) । एधामहे (हम बढते हैं) । एध्+लिट्=त-॥

५६१ इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः । ३ । १ । ३६ ॥

इजादिर्यो धातुर्गुरुमानृच्छत्यन्यस्तत आम् स्याल्लिटि ॥

ऋच्छ-धातुको छोडकर इच्-आदि तथा गुरु-संज्ञक (सू० ४९८ । ४९०) अच्सहित जो धातु तिससे परे आम्-प्रत्यय हो लिट् परे रहते । एध्+आम्+त (सू० ५२१) एध्+आम् । यहां (सू० ५२२) से कृ-आदिके प्रयोगकी प्राप्ति हुई । परन्तु—यह सन्देह हुआ कि कृ-धातुके परे जो लिट का प्रयोग (सू० ५२२) हो उसे आत्मनेपद-संज्ञक आदेश हों वा परस्मैपद-संज्ञक ? ॥

५६२ आम्प्रत्ययवत् कृञोऽनुप्रयोगस्य । १ । ३ । ६३ ॥

आम्प्रकृत्या तुल्यमनुप्रयुज्यमानात् कृञोऽप्यात्मनेपदम् । आम् प्रत्ययो यस्मात्तत् आम्प्रत्ययवदित्यतद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः ॥

आम् की प्रकृतिके सदृश अर्थात् आम्-प्रत्ययान्त धातुकी प्रकृति-(स्वभाव) के सदृश कृ-धातुसेभी आत्मनेपद हो । सूत्र (सू०५६२) में जो ' आम्प्रत्ययवत् ' शब्द लिखा है, यह अतद्गुणसंविज्ञानबहु-

१ बहुव्रीहि-समास दोप्रकारका होता है, एक तो तद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि । दूसरा—अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि । तद्गुणसंविज्ञान उसे कहते हैं कि- जिस लक्षणसे किसी पदार्थका ज्ञान हो वोह लक्षण उस पदार्थमें दृष्टिगोचर हो, और उस लक्षणके साथही पदार्थका विशिष्ट-ज्ञान होना अभीष्ट हो, जैसे—' लम्बोदरमानय ' दीर्घ उदरवालेको लाओ । इस वाक्यमें लम्बा उदर उस व्यक्तिका लक्षण है कि—जिसे हम मागते हैं और उसीमें रहता है, तथा उसीके साथ उसका विशिष्टज्ञान होता है । अतद्गुणसंविज्ञानमें यह क्रम नहीं है, जैसे ' दृष्टगमगगमानय जिसने गमगगा देखी है, उसे लाओ । इस वाक्यमें गमगगा उसका लक्षण तो है परन्तु उसमें रहती नहीं है और गमगगाविशिष्टका लानाभी अभीष्ट नहीं है । इसी प्रकार सूत्रस्थ ' आम्प्रत्ययवत ' से यह ज्ञान होता है कि जिस धातुसे केवल आम होता है उसीका ग्रहण है, न कि आम्-प्रत्ययविशिष्टका । अर्थात्—जिस धातुसे आम्-प्रत्यय आता है, यदि वोह धातु आत्मनेपदी हो तो कृ-धातुसेभी आत्मनेपद हो । यदि वोह धातु परस्मैपदी होय तो कृ-धातुसेभी परस्मैपद हो ।

व्रीहि-समास (मू० १०४९) है, इस शब्दका यह अर्थ है कि-'आम्-प्रत्यय जिससे किया हो'। अर्थात्-जिससे आम्-प्रत्यय आता है उसे 'आम्प्रत्ययवत' कहते हे। एध्+आम्+कृ+त (मू० ४४० । ५२३ । ५०३) एधाम्+चकृ+त। इस अवस्थामें-॥

५६३ लिटस्तझयोरेशिरेच्। ३। ४। ८१॥

लिडादेशयोस्तझयोरेश् इरेच् एतौ स्तः ॥

लिट्-के स्थानमें आदेश हुये जो त और झ उनको क्रमसे एश और इरेच्-आदेश हो। एधाञ्चक्रे (मू० १९) (वह बढा)। एधाञ्चक्राते (मू० ५५८) (वे दो बढे)। एधाञ्चक्रिरे (वे बढे)। एधाञ्चकृषे (मू० ५६० । १७०) (तू बढा)। एधाञ्चक्राथे (तुम दो बढे)। एधाञ्चकृ+ध्वे (मू० ५५८)॥

५६४ इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात्। ८। ३। ७८॥

इण्णन्तादङ्गात्परेषां षीध्वंलुङ्लिटां धस्य ढः स्यात् ॥

जिस अंगके अन्तमें इण् प्रत्याहारका कोई अक्षर हो उस अंगसे परे षीध्वं और लुङ्-लिट्-के धकारको ढकार हो। एधाञ्चकृढ्वे (तुम बढे)। एधाञ्चक्रे (मैं बढा)। एधाञ्चकृवहे (हम दो बढे)। एधाञ्चकृमहे (हम बढे)। एधांबभूव (मू० ५२२) एधाम्बभूविथ। एधाम्बभूव। एधामास। एधामासिथ। एधामास। इनके अर्थ पूर्ववत समझ लेने॥ लुट्-एधिता (मू० ४४१ । ४५१ । ४४७) (वोह बढेगा)। एधितारौ (वे दो बढेंगे)। एधितारः (वे बढेंगे)। एधितासे (मू० ५६०) (तू बढेगा)। एधितासाथे (तुम दो बढोगे)। एधि-तास्+ध्वे (मू० ५५८)॥

५६५ धि च। ८। २। २५॥

धादौ प्रत्यये परे सस्य लोपः स्यात् ॥

जिसके आदिमें धकार हो ऐसा प्रत्यय परे रहते सकारका लोप हो। एधिताध्वे (तुम बढोगे)। एधि-तास्+इट् (मू० ५५८)॥

५६६ ह एति । ७ । ४ । ५२ ॥

तासस्त्योः सस्य हः स्यादेति परे ॥

तास्-के और अस्-धातुके सकारकू हकार हो एकार परे रहते। एधिताहे (मैं बढूंगा)। एधितास्वहे (हम दो बढेंगे)। एधितास्महे (हम बढेंगे) ॥ लृट्-एधिष्यते (वह बढेगा) । एधिष्येते (सू० ५५९) (वे दो बढेंगे)। एधिष्यन्ते (वे बढेंगे)। एधिष्यसे (तू बढेगा)। एधिष्येथे (तुम दो बढोगे)। एधिष्यध्वे (तुम बढोगे)। एधिष्ये (मैं बढूंगा)। एधिष्यावहे (हम दो बढेंगे)। एधिष्यामहे (हम बढेंगे) ॥ लोट्-एध्+त (सू० ४३३ । ५५८) एध+ते । इस दशामें-॥

५६७ आमेतः । ३ । ४ । ९० ॥

लोट एकारस्याम् स्यात् ॥

लोट्-लकार-सम्बधी एकारकू आम् हो । एधताम् (वोह बढे)। एधेताम्(सू० ५५९ । ५६७) (वे दो बढे)। एधन्ताम् (वे बढे)। एध+थास् (सू० ५६०) एध+से । इस अवस्थामें-॥

५६८ सवाभ्यां वामौ । ३ । ४ । ९१ ॥

सवाभ्याम्परस्य लोडेत: क्रमाद्वामा स्तः ॥

सकार और वकारसे परे जो लोट्-का एकार तिसे क्रमसे 'व' और 'अम्' हों, अर्थात्-'स' से परे 'व' और 'व' से परे 'अम्' हो। एधस्व (तू बढ)। एधेथाम् (सू० ५५९ । ५६७) (तुम दो बढो)। एधध्वम् (सू० ५५८।५६८) (तुम बढो) । एध्+इट् (सू० ४३३ । ५५८) एध+ए-॥

५६९ एत ऐ । ३ । ४ । ९३ ॥

लोडुत्तमस्य एत ऐ स्यात् ॥

लोट्-लकारके उत्तमपुरुष-सम्बंधी एकारकू ऐ हो । एधै (मैं बढूं)। एधावहै (हम दो बढे)। एधामहै (हम बढे) ॥ लङ्-एध्+

अ+त (सू० ४९२।२११) ऐधत (वोह बढा) । ऐधेताम् (सू० ५५९) (वे दो बढे) । ऐधन्त (वे बढे) । ऐधथाः (तू बढा) । ऐधेथाम् (तुम दो बढे) । ऐधध्वम् (तुम बढे) । ऐधे (सू० ३३ । ३) (मैं बढा) । ऐधावहि (सू० ४३६) (हम दो बढे) । ऐधामहि (हम बढे) ॥ विधिलिङ्-एध्+अ+त-॥

५७० लिङः सीयुट् । ३ । ४ । १०२ ॥

लिङ्-लकारको सीयुट्-का आगम हो । एध+सीयुट्+त (सू० ४७५ । ४७७) एधेत (वोह बढे) । एधेयाताम् (वे दो बढे)। एध+सीय्+झ (सू० ४७५ । ४७७) ॥

५७१ झस्य रन् । ३ । ४ । १०५ ॥

लिङो झस्य रन् स्यात् ॥

लिङ्-लकार-सम्बंधी झकारको रन हो । एधेरन् (वे बढे) । एधेथाः (तू बढे) । एधेयाथाम् (तुम दो बढो) । एधेध्वम् (तुम बढो) । एध+सीय्+इट् ॥

५७२ इटोऽत् । ३ । ४ । १०६ ॥

लिङादेशस्य इटोऽत् स्यात् ॥

लिङ्-के आदेश जो इट उसको अत (अ) हो । एधेय (सू० (४७५) (मैं बढूं) । एधेवहि (हम दो बढे) । एधेमहि (हम बढे) ॥ आशीर्लिङ्-एध्+सीय्+त (सू० ४७७ । ४४७) एधि+सी+त ॥

५७३ सुट् तिथोः । ३ । ४ । १०७ ॥

लिङस्तयोः सुट् स्यात् । आर्धधातुकत्वात्सलोपो न ॥

लिङ्-के स्थानमें आदेश जो तकार और थकार उनको सुट् (स) का आगम हो । आशीर्लिङ्-की आर्धधातुक संज्ञा होनेसे सकारका लोप (सू० ४७७) नहीं होता । एधि+सी+स+त (सू० १७० । १९) एधिषीष्ट (ईश्वर करे कि वोह बढे) एधिषीया-

स्ताम् (बढें)। एधिषीरन् (सू० ५७१) (ई० वे बढैं)। एधिषी [० ५७३। ७९) (ई०तू बढे)। एधिषीयास्थाम् (ई० तुम दो । एधिषीध्वम् (तुम बढो)। एधिषीय (सू०५७२) (मैं ब एधिषीवहि (ई० हम दो बढें)। एधिषीमहि (ई० हम बढें)॥ लुङ्–एध्+त (सू० ४१२। ४८३। ४८४। ४४७। २१९) ऐधि+स्+त (सू० १७०। १९) ऐधिष्ट (वोह बढा था)। ऐधिषाताम् (वे दो बढे थे)। ऐधिष्+झ–॥

५७४ आत्मनेपदेष्वनतः। ७। १। ५॥

अनकारात्परस्यात्मनेपदेषु झस्य अत् इत्यादेशः स्यात्॥

आत्मनेपदमें यदि अकारसे परे न हो तो झकारकू अ आदेश हो। ऐधिषत (वे बढे थे)। ऐधिष्ठाः (तू बढा था)। ऐधिषाथाम् (तुम दो बढे थे)। ऐधिढ्वम् (सू० ५६५। ५६४) (तुम बढे थे)। ऐधिषि (मैं बढा)। ऐधिष्वहि (हम दो बढे)। ऐधिष्महि (हम बढे)॥ लृङ्–ऐधिष्यत (जो वोह बढे)। ऐधिष्येताम् (सू०-५९) (जो वोह दो बढे)। ऐधिष्यन्त (जो वे बढे)। ऐधिष्यथाः (जो तू बढे)। ऐधिष्येथाम् (जो तुम दो बढो)। ऐधिष्यध्वम् (जो तुम बढो)। ऐधिष्ये (जो मैं बढूं)। ऐधिष्यावहि (सू० ४३६) (जो हम दो बढे)। ऐधिष्यामहि (जो हम बढे)॥

२ कमु–कान्तौ। २२। सक० आत्म० सेट्॥

कमु = कम्-(इच्छा करना) धातु साधते हैं॥

५७५ कमेर्णिङ्। ३। १। ३०॥

स्वार्थे। ङित्वात्तङ्॥

कम् धातुसे परे स्वार्थमें णिङ् (इ) प्रत्यय हो। सू० ५१७ से णिङ्-प्रत्ययान्तकी धातु-संज्ञा होती है। णिङ् के ङित् होनेसे सू० ४२४ से आत्मनेपद होता है। कम्+इ+अ+त (सू० ५०४। ४३४। २७। ५५८) कामयते (वह इच्छा करता है)। कामयेते

(सू०५५९) (वे दो इच्छा करते हैं)। कामयसे (तू इच्छा करता है)। कामये(मैं इच्छा करता हूं)॥ लिट्—काम्+इ+ते (सू० ५१९)॥

५७६ अयामन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु। ६। ४। ५५॥

आम् अन्त आलु आय्य इत्नु इष्णु एषु णेरयादेशः स्यात्॥

आम्, अन्त, आलु, आय्य, इत्नु, इष्णु इन प्रत्ययोंके परे रहते णि-कू अय्-आदेश हो। काम्+अय्+आम्+ते (सू० ५६३। ५२२) कामयाञ्चक्रे (उसने इच्छा की)। इत्यादि॥ और (सू० ५१८) से णिङ्-भी विकल्प करके होता है। कम् कम्+त (सू० ५६३। ४४२। ५०३) चकमे (उसने इच्छा की)। चकमाते (उन दोने इच्छा की)। चकमिरे (सू०५६३) (उनोने इच्छा की)। चकमिषे (सू० ५६०) (तूने इच्छा की)। चकमाथे (तुम दोने इच्छा की) चकमिढ्वे (सू० ५६४) (तुमने इच्छा की)। चकमे (मैने इच्छा की)। चकमिवहे (हम दोने इच्छा की)। चकमिमहे (हमने इच्छा की)॥ लुट्—कामयिता, कमिता (सू०५१८) (वोह इच्छा करेगा)। कामयितासे (सू०५७५), कमितासे (सू०५१८) (तू इच्छा करेगा)। कामयिताहे (सू० ५७५। ५६६), कमिताहे (सू० ५१८। ५६६) (मै इच्छा करूंगा)॥ लृट्—कामयिष्यते, कमिष्यते (वोह इच्छा करेगा)। इत्यादि॥ लोट्—कामयताम् (सू० ५६७) (वोह इच्छा करे)॥ लङ्—अकामयत (उसने इच्छा की)॥ लिङ्—कामयेत (सू०५७०) (वोह इच्छा करे)। कामयेथाः (तू इच्छा करे)। कामयेय (सू० ५७२) (मै इच्छा करूं)॥ आ० लिङ्—कामयिषीष्ट, कमिषीष्ट (सू०५७३) (ई०वोह इच्छा करे)। कामयिषीष्ठाः, कमिषीष्ठाः (ई०तू इच्छा करे)। कामयिषी+ध्वम्॥

५७७ विभाषेटः। ८। ३। ७९॥

इणः परो य इट् ततः परेषां षीध्वं लुङ्लिटां धस्य वा ढः॥

इण्-प्रत्याहारसे पर जो इट् तिससे पर षीध्वं और लुङ् तथा लिट्-के धकारकू विकल्पसे ढ हो। कामयिषीढ्वम्, कामयिषीध्वम्,

कमिषीध्वम् (तुम इच्छा करो) । कामयिषीय, कमिषीय (मैं इच्छा करूं) ॥ लुङ्—कामि+त (सू० ४८३) कामि+च्लि+त—॥

५७८ णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्त्तरि चङ् । ३ । १ । ४८ ॥

ण्यन्तात् श्र्यादिभ्यश्च च्लेश्चङ् कर्त्रर्थे लुङि परे ॥

ण्यन्त-धातुओंसे परे तथा श्रि (सेवा करना), द्रु (दौडना), स्रु (टपकना) इन धातुओंसे परे च्लि-कू चङ् (अ) हो, कर्त्ता-अर्थवाची लुङ् परे रहते । कामि+अ+त । ऐसी स्थिति हुई, तौ—॥

५७९ णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः । ७ । ४ । १ ॥

चङ् परे णौ यदङ्गं तस्योपधाया ह्रस्वः स्यात् ॥

जिसके परे चङ् हो ऐसी णि-के परे रहते जो अंग तिसकी उपधा-(सू० १९७) को ह्रस्व हो । कमि+अ+त—॥

५८० णेरनिटि । ६ । ४ । ५१ ॥

अनिडादावार्धधातुके परे णेर्लोपः स्यात् ॥

जिसके आदिमें इट् न हो ऐसा आर्धधातुक परे रहते णि-का लोप हो । कम्+अ+त—॥

५८१ चङि । ६ । १ । ११ ।

चङि परे अनभ्यासस्य धात्ववयवस्यैकाचः प्रथमस्य द्वे स्तोऽजादेर्द्वितीयस्य॥

चङ् परे रहते अनभ्यास-धातुका अवयव जो एकाच्-प्रथमभाग उसे द्वित्व हो, यदि अजादि होय तौ दूसरे एकाच्भागकू द्वित्व हो । चकम्+अ+त (सू० ५०३) ॥

५८२ सन्वल्लघुनि चङ् परेऽनग्लोपे । ७ । ४ । ९३ ॥

चङ्परे णौ यदङ्गं तस्य योऽभ्यासो लघुपरः तस्य सनीवागकार्य्यं स्यात् णावग्लोपेऽसति ॥

जिससे परे चङ् हो ऐसी णि परे रहते जो अङ्ग उसका ऐसा जो अभ्यास कि–जिससे लघु (सू० ४९७) परे हो, उस अभ्यासकू ऐसा कार्य हो, जैसा सन् (सू० ७६५) परे रहते होता है, यदि णि निमित्त मानके अक्-प्रत्याहारके वर्णका लोप न हुआ होय तौ—॥

५८३ सन्यतः। ७। ४। ७९॥

अभ्यासस्यात इत् स्यात् सनि॥

सन् परे रहते अभ्यासके अत्-कू इ हो। उक्त उदाहरणमें सन् परे (मू० ५८२) मानाही गया है। चिकम्+अ+त-॥

५८४ दीर्घो लघोः। ७। ४। ९४॥

लघोरभ्यासस्य दीर्घः स्यात् सनवद्भावविषये॥

अभ्यासके लघुको दीर्घ हो सन्वद्भावके (मू० ५८२) विषयमें। अचीकमत् (मू० ४७१) (उसने इच्छा की)॥

णिङभावपक्षे तु॥

जिस पक्षमें णिङ्-का अभाव (मू० ५७८) होता है, उस पक्षमें निम्नलिखित वार्तिक लगता है॥ कम्+च्लि+त॥

५८५ (कमेश्च्लेश्चङ् वाच्यः)॥

कम्-धातुसे परे जो च्लि उसे चङ् (अ) हो। चकम्+अ+त (मू० ५८१) अचकमत (मू० ४७१) (उसने इच्छा की)॥ लृङ्-अकामयिष्यत (मू० ५७९), अकमिष्यत (मू० ५७८) (जो वोह इच्छा करे)॥

३ अय गतौ। २३। सकः-आत्मने०सेट्॥

अय=अय्-(जाना) धातुके रूप लिखते हैं॥ अयते (मू० ४२३। ५५८) (वोह जाता है)। अयसे (तू जाता है)। अये (मैं जाता हूं)॥

५८६ उपसर्गस्यायतौ। ८। २। १९॥

अयतिपरस्योपसर्गस्य रेफस्य लत्वं स्यात्॥

जब अय्-धातु परे हो तो उपसर्ग (मू० ४५) के रकारको लकार हो। जैसे-प्र+अयते (मू० ५३) प्लायते (वोह भागता है)। परा+अयते (मू० ५३) पलायते (वोह भागता है)। अय्+लिट्=त-॥

५८७ दयायासश्च । ३ । १ । ३७ ॥

दय् अय् आस् एभ्य आम् स्याल्लिटि ॥

दय् (देना), अय् (जाना), आस् (बैठना) इन धातुओंसे परे आम् हो लिट् परे रहते । अयाञ्चक्रे (सू०५६३) (वोह गया)॥ लुट्–अयिता (वोह जायगा)॥ लृट्–अयिष्यते (वोह जायगा) ॥ लोट्–अयताम् (सू० ५६७) (वोह जाय) ॥ लङ्–आयत (वोह गया)॥ लिङ्–अयेत (सू०५७०) (वोह जाय)। अयिषीष्ट (सू० ५७३) (ई० वोह जाय)। अयिषीढ्वम् , अयिषीध्वम् (सू०५७७), (ई० तुम जाओ) ॥ लुङ्–आयिष्ट (सू० ४९२ । ४८४) (वोह गया) । आयिष्ठाः (तू गया) । आयिढ्वं (सू० ५६५।५७७), आयिध्वम् (तुम गये) । आयिषि (मै गया) । आयिष्यत (जो तू जाय) ॥

४ द्युत–दीप्तौ । २४ । अक० आत्मने० सेट ॥

द्युर्त = द्युत्–(दीप्ति, चमकना) धातुके रूप लिखते है ॥ द्योतते (सू० ४३३।५००) (वोह चमकता है) ॥ लिट्–द्यु द्युत्+त–॥

५८८ द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम् । ७ । ४ । ६७ ॥

अनयोरभ्यासस्य सम्प्रसारणं स्यात् ॥

द्युत (चमकना), स्वापि (सोना), इन दो धातुके अभ्यासकू सम्प्रसारण (सू० २८४) हो । दिद्युते (सू० ५६३) (वोह चमका)॥ लुट्–द्योतिता (वोह चमकेगा) । द्योतिष्यते (वोह चमकेगा) ॥ लोट्–द्योतताम् (सू० ५६७) (वोह चमके) ॥ लङ्–अद्योतत (वोह चमका) ॥ लिङ्–द्योतेत (वोह चमके) ॥ आ० लि०–द्योतिषीष्ट (ई०वह चमके) । अद्युत्+लुङ् (सू० ४८३) ॥

५८९ द्युद्भ्यो लुङि । १ । ३ । ९१ ॥

द्युद्भ्यो लुङः परस्मैपदं वा स्यात् ॥

द्युत आदि धातुओंसे परे लुङ्-कू परस्मैपद विकल्पसे हो। अद्युत्+च्लि+त् (सू० ५५७) अद्युतत् , अद्योतिष्ट (सू०१८४।४४७।

१७०।५००) (वोह चमका था)। अद्योतिष्यत (जो वोह चमके)। इसी प्रकार निम्नलिखित धातुओंके रूप जानो॥

५ श्विता-वर्णे। २५। अक० आत्म० सेट्॥

श्विता = श्वित् (श्वेत होना)। लट्-श्वेतते। लिट्-शिश्विते। लुट्-श्वेतिता। लृट्-श्वेतिष्यते। लोट्-श्वेतताम्। लङ्-अश्वेतत। लिङ्-श्वेतेत। आ० लि०-श्वेतिषीष्ट। लुङ-अश्वितत,अश्वेतिष्ट। लृङ्-अश्वेतिष्यत॥

६ ञिमिदा-स्नेहने। २६। अक० आत्म० सेट्॥

ञिमिदा = मिद् (चिकना होना)॥

७ ञिष्विदा-स्नेहनमोचनयोः मोहनयोरित्येके। २७। अक० आत्म० सेट्॥

ञिष्विदा = ष्विद्-धातु (चिकना होना, और छुडाना) अर्थमें होती है। कोई २ आचार्य चिकना होना वा मोहित होना अर्थमें कहते है।

ञिक्ष्विदा चेत्येके॥

कोई कहते है कि चिकना होना और मोहित होना अर्थमें ष्विद् नहीं, बल्कि क्ष्विदधातु है।

८ रुच-दीप्तावभिप्रीतौ च। २८। अक० आ० सेट्॥

रुच = रुच् (प्रकाश करना। और प्रीति करना)॥

९ घुट-परिवर्त्तने। २९। आत्मने० सकर्म० सेट्॥

घुट = घुट् (घोटना। बदलना)॥

१० शुभ दीप्तौ। ३०। अक० आ० सेट्॥

शुभ = शुभ् (शोभित होना। चमकना)॥

११ क्षुभ-सञ्चलने। ३१। अक० आत्म० सेट्॥

क्षुभ = क्षुभ (घबडाके कंपित होना)॥

१२।१३ णभ तुभ-हिंसायाम्। ३२।३३। सक० आ० से०॥

णभ = णभ्, और तुभ = तुभ् (हिंसा करना)॥

१४।१५।१६ स्रंसु, भ्रंसु, ध्वंसु-अवस्रंसने। ३४।३५।३६। अक० आत्मने० सेट्॥

स्रंसु = स्रंस्, भ्रंसु = भ्रंस्, ध्वंसु = ध्वंस् (गिरना) ॥

१७ ध्वसु-गतौ । ३७ । सक० आत्म० सेट् ॥

ध्वंसु = ध्वंस् (जाना) ॥

१८ स्रम्भु-विश्वासे । ३८ । अक० आ० सेट् ॥

स्रंभु = स्रम्भ् (विश्वास करना) ॥

१९ वृतु-वर्त्तने । ३९ । अक० आ० सेट् वृतादि ॥

वृतु = वृत् (होना) ॥ लट्-वर्त्तते (वोह है) । लिट्-ववृते (सू० ५२३ । ५६३) (वोह था) । लुट्-वर्त्तिता (वोह होगा) । वृत्+स्य+लट्-॥

५९० वृद्भ्यः स्यसनोः । १ । ३ । ९२ ॥

वृतादिभ्यः पञ्चभ्यो वा परस्मैपदं स्ये सनि च ॥

वृत आदि पांच धातुओंसे विकल्प करके परस्मैपद हो, स्य और सन परे रहते । वृत्+स्य+ति ॥

५९१ न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः । ७ । २ । ५९ ॥

वृतु-वृधु-शृधु-स्यन्दूभ्यः सकारादेरार्धधातुकस्येण् न तङानयोरभावे ॥

वृत् (होना), वृध् (बढना), शृध् (कुत्सित शब्द करना), स्यन्द् (वहना) इन चार धातुओंसे परे सकारादि आर्धधातुकको इट् न हो, जब आत्मनेपदका अभाव (परस्मैपदका विषय) हो । वर्त्स्यति, वर्तिष्यते (वोह होगा) । लोट्-वर्त्तताम् (वोह हो) । अवर्त्तत (वोह था) । वर्त्तेत (वोह होय) । वर्त्तिषीष्ट (सू० ५७३) (ई०वोह होय) । अवर्त्तिष्ट (वह था) । अवर्त्स्यत, अवर्तिष्यत (सू० ५९० । ५९१) (जो वोह होय) ॥

२० दद-दाने । ४० । सक० आत्मने० सेट् ॥

दद = दद्-(देना) धातुके रूप लिखते हैं ॥ ददते (वोह देता है) । दद्+लिट्=त ॥

५९२ न शसददवादिगुणानाम् । ६ । ४ । १२६ ॥

शसेर्ददेर्वकारादीनां गुणशब्देन विहितो योऽकारस्तस्य एत्वाभ्यासलोपौ न ॥

शस् (हिंसा करना), दद् (देना), तथा वकारादि धातु और गुणशब्दसे विहित जो अकार (सू० ६६७) इनको एकार और अभ्यासका लोप न हो । ददंदे (सू० ५६३) (उसने दिया) । ददंदाते (उन दोने दिया) । ददंदिरे (उन्होंने दिया) । ददिता (वोह देगा) । ददिष्यते (वह देगा) । ददताम् (वोह दे) । ददस्व (सू० ५६८) (तू दे) । ददै (सू० ५६९) (मैं दूं) । अददत (उसने दिया) । ददेत (वोह दे) । ददिषीष्ट (सू० ५७३) (ई० वोह दे) । अददिष्ट (उसने दिया) । अददिष्यत (जो वोह दे) ॥

२१ त्रपूष-लज्जायाम् । ४१ । अक० आत्म० वेट् ॥

त्रपूष्=त्रप्-(लज्जित होना) धातुको साधते हैं ॥ त्रपते (वह लज्जित होता है) ॥ लिट्—तत्रप्+त ॥

५९३ तॄफलभजत्रपश्च । ६ । ४ । १२२ ॥

एषामात एत्वमभ्यासलोपश्च किति लिटि सेटि थलि च ॥

तॄ (तरना), फल (फलना), भज (सेवा करना), त्रप् (लज्जित होना) इन धातुओंके अकार-को एकार हो और अभ्यासका लोप हो कित्-(सू० ५०१) संज्ञक लिट् पर रहते, और सेट् थल् परे रहते । त्रेपे (सू० ५६३) (वोह लज्जित हुआ) । त्रेपिसे (तू लज्जित हुआ) । त्रेपे (मैं लज्जित हुआ) । त्रपिता, त्रप्ता (सू० ५२६) (वह लज्जित होगा) । त्रप्स्यते, त्रपिष्यते (वोह लज्जित होगा) । त्रपताम् (वोह लज्जित हो) । अत्रपत (वोह लज्जित हुआ) । त्रपेत (वोह लज्जित होय) । त्रपिषीष्ट, त्रप्सीष्ट (सू०५७३ । ५२६) (ईश्वर करे वोह लज्जित हो) । अत्रपिष्ट, अत्रप्त (सू०५२८। ५२६) (वोह लज्जित हुआ था) । अत्रपिष्यत, अत्रप्स्यत (जो वह लज्जित हो) ॥

इत्यात्मनेपदिनः ।

उभयपदिनः ।

१ श्रिञ्-सेवायाम् । ४२ । सक० उभयपदीयः सेट् ॥

श्रिञ्=श्रि-(सेवा करना) धातुके रूप लिखते हैं । श्रिञ्-आदि धातुओंसे आत्मनेपद और परस्मैपद दोनों प्रत्यय आते हैं ॥ श्रयति, श्रयते (वोह सेवा करता है) । शिश्राय, शिश्रिये (उसने सेवा की)। श्रयिता (वोह सेवा करैगा)।श्रयितासि, श्रयितासे (तू सेवा करैगा)। श्रयिष्यति,श्रयिष्यते (वोह सेवा करैगा)। श्रयतु, श्रयताम् (वोह सेवा करै) । अश्रयत्, अश्रयत (उसने सेवा की) । श्रयेत्, श्रयेत (वोह सेवा करै) । श्रीयात् (मू० ५३३), श्रयिषीष्ट (मू० ५७३) (ई० वोह सेवा करै) । अशिश्रियत् (मू० ५७८), अशिश्रियत (उसने सेवा की) । अश्रयिष्यत् , अश्रयिष्यत (जो वह सेवा करै) ॥

२ भृञ्-भरणे । ४३ । सक० उभय० अनिट् ॥

भृञ्=भृ-(पालना) धातुके रूप लिखते हैं ॥ भरति, भरते (वह पालता है) । बभार (उसने पाला) । बभ्रतुः (मू० ४३८। १९) (उन दोने पाला) । बभ्रुः (उन्होंने पाला) । बभर्थ(तूने पाला) । बभृव (मू० ५०१ । ४८१) (हम दोने पाला) । बभृम (हमने पाला) ॥ आ०प०—बभ्रे (मू०५६३) बभृषे । इत्यादि ॥ भर्त्तासि, भर्त्तासे (वह पालैगा) । भरिष्यति, भरिष्यते (वोह पालैगा) । भरतु—भरतात्, भरताम् (वोह पालै) । अभरत्, अभरत (उसने पाला) । भरेत् , भरेत (वोह पालै) ॥ भृ+या+त् (लिङ्)—॥

५९४ रिङ्शयग्लिङ्क्षु । ७ । ४ । २८ ॥

शे यकि यादावार्धधातुके लिङि च ऋतो रिङ् आदेशः । रीङि प्रकृते रिङ्विधानसामर्थ्यात् दीर्घो न ॥

श (मू० ७०५) वा यक् (मू० ८१५) अथवा यकारादि आ-

र्धधातुक (मू० ४७९) लिङ् परे रहते ऋकारके स्थानमें रिङ् (रि) आदेश हो ॥ इस स्थानमें सूत्र (मू० ११४२) से अनुवृत्ति आकर रिङ् आदेश करके प्रयोजन सिद्ध हो जाता, पुनः यहां रिङ्-विधान करनेसे क्या फल सिद्ध हुआ? यहां रिङ् करनेसे यह ज्ञात होता है कि मू० ५३३ से रिङ्-को दीर्घ नहीं होता कारण कि–यदि दीर्घ करना इष्ट होता तो उक्त (मू० ५९४) सूत्रमेंही दीर्घ रीङ् विधान कर देते ॥ भ्रियात् (ई० वोह पाले)। भृ+त (मू०५१७०।५७३) भृ+सी+स्+त्–॥

५९५ उश्च। १। २। १२॥

ऋवर्णात्परौ झलादी लिङ्सिचौ कितौ स्तस्तङि॥

ऋवर्णसे परे जो झलादि लिङ् और सिच् वोह कित्-संज्ञक हों, तङ् (आत्मनेपद) परे रहते। भृपीष्ट (मू० १७० । ४८१) (ई० वोह पालें)। भृषीयास्ताम् (ई० वे दो पालें)। अभृ+स्+त् (मू० ४९३। १७०। ५३४) अभार्षीत् (उसने पाला)। अभृ+स्+त। आत्मनेपदकी इस अवस्थामें--॥

५९६ ह्रस्वादङ्गात्। ८। २। २७॥

सिचो लोपो झलि॥

ह्रस्व-अंगसे परे जो सिच् उसका लोप हो.झल्-प्रत्याहारान्तर्गत वर्ण परे रहते। अभृत (उसने पाला)। अभृषाताम् (उन दोने पाला)। अभरिष्यत्, अभरिष्यत (जो वोह पाले)॥

३ हृञ्–हरणे। ४४। द्विकर्मकः उभय० अनिट्॥

हृञ्=हृ-(हरना) धातुके रूप लिखते हैं॥

हरति, हरते (वोह हरता है)। जहार (मू० २०३। ५०३), जह्रे (मू० ५६३) (उसने हरा)। जहर्थ, जह्रिषे (मू०५६०। ५२९) (तूने हरा) जह्रिव। जह्रिवहे (हम दोने हरा)। हर्त्ता (वोह हरेगा)। हरिष्यति, हरिष्यते (वोह हरेगा)। हरतु,हरताम्

(वह हरे) । अहरत् , अहरत (उसने हरा) । हरेत् , हरेत (वह हरे)। ह्रियात् (सू० ५९४), हृषीष्ट (सू० ५७०।५७३ । ५९५) (इ० वोह हरे) । अहार्षीत् (सू० ५३४), अहृत (सू० ५९६) (उसने हरा था) । अहरिष्यत् , अहरिष्यत (जो वह हरे) ॥

४ धृञ्-धरणे । ४५ । सकर्म० उभय० अनिट् ॥

धृञ् = धृ-(धरना) धातुको दिखाते हैं ॥

धरति, धरते (वोह धरता है) इत्यादि सुगमम् ॥

५ णीञ्-प्रापणे । ४६ । द्विक० उभय० अनि० ॥

णीञ् = णी (ले जाना) । नयति (सू० ५०७), नयते (वह ले जाता है) इत्यादि ॥

६ डुपचष्-पाके । ४७ । सक० उभय० अनिट् ॥

डुपचष् = (सू० ५११ । ३ । ३४) पच् (पकाना) । पचति, पचते (वह पकाता है)। पपाच, पेचे (सू०५०९) (उसने पकाया) । पेचिथ (सू० ५३२ । ५१०), पपक्थ (सू० ५३१) (तूने पकाया) । पक्ता (वोह पकावेगा) । पक्ष्यति, पक्ष्यते (वह पकावेगा) इत्यादि ॥

७ भज-सेवायाम् । ४८ । सक० उभ० अनि० ॥

भज = भज् (सेवा करना) । भजति, भजते (वह सेवा करता है) । बभाज, भेजे (सू० ५९३) (उसने सेवा की) । भक्ता(वह सेवा करेगा) । भक्ष्यति, भक्ष्यते (वह सेवा करेगा) । अभाक्षीत् (सू० ५१४), अभक्त (सू० ५२८) (उसने सेवा की) । अभाक्षाम् , अभक्षाताम् (उन दोने सेवा की) इत्यादि ॥

८ यज-देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु । ४९ । सक० उभय० अनि० ॥

यज = यज् (देवीपूजा करना । संग करना । दान करना) ॥ यजति, यजते (वह यज्ञ करता है)।यज् यज्+ति = अ (सू०४४२)॥

५९७ लिट्यभ्यासस्योभयेषाम् । ६ । १ । १७ ॥

वच्यादीनां ग्रह्यादीनां चाभ्यासस्य सम्प्रसारणं लिटि ॥

वच्-आदि धातु (मू० ५९८) तथा ग्रह-आदि धातु-(मू० ६८६) ओंके अभ्यासकू सम्प्रसारण हो, लिट् परे रहते ॥ इयाज (मू० २०३) (उसने पूजा की)। यज्+त ॥

५९८ वचिस्वपियजादीनां किति। ६। १। १५॥

वचिस्वप्योर्यजादीनां च सम्प्रसारण किति ॥

वच् (बोलना), स्वप् (सोना) और यज्-आदि धातुओंको सम्प्रसारण हो, कित् परे रहते। इ-अज्+त (मू० ५०१। २८६) इज्+त (मू० ४४०। ५६३) ईजे (उसने पूजा की)। ईजतुः, ईजाते (उन दोने पूजा की)। ईजुः, ईजिरे (मू० ५६३) (उनने पूजा की)। इयजिथ (मू०५९७), इयष्ठ (मू० ५३१। ३३६। ७९) (तूने पूजा की)। यष्टा (मू०३३६) (वह पूजा करैगा)। यज्+स्य+ति (ते) (मू० ३३६) यष्+स्य+ति (ते)-॥

५९९ षढोः कः सि। ८। २। ४१॥

षस्य ढस्य च कः स्यात्सकारे परे ॥

षकार तथा ढ-कारकू क हो सकार परे रहते। यक्+स्याति (ते) (मू० १७०) यक्ष्यति, यक्ष्यते (वोह पूजा करैगा)। इज्यात् (मू० ५९८। ३३९), यक्षीष्ट (मू० ५७०। ५७३) (ई० वह पूजा करे)। अयाक्षीत् (मू० ५१४), अयष्ट (मू० ३३६। ५२८ (उसने पूजा की) इत्यादि ॥

९ वह-प्रापणे। ६०। द्विक० उभय० अनिट्. यजादि ॥

वह = वह (ले जाना)। वहति, वहते (वह ले जाता है)। परस्मैपद-उवाह (मू० ५९७) (वोह ले गया)। ऊहतुः (मू० ५९८) (वे दो ले गये)। ऊहुः (वे ले गये)। उवहिथ (मू० ५९७। ५३०) (तू ले गया)। उवह्+थ। इस अवस्थामें-॥

६०० झषस्तथोर्धोऽधः। ८। २। ४०॥

झषः परयोस्तथोर्धः स्यान्न तु दधातेः ॥

धारणार्थ धा-धातुकू छोडकर झषूसे परे जो त और थ तिनकू ध हो । उवह्+ध (मू० २७९ । ७९) उवढ्+ ढ ॥

६०१ ढो ढे लोपः । ८ । ३ । १३ ॥

ढस्य लोपः स्याड्ढे परे ॥

ढकार परे रहते पूर्व ढ-कारका लोप हो । उव+ढ ॥

६०२ सहिवहोरोदवर्णस्य । ६ । ३ । ११२ ॥

अनयोरवर्णस्य ओत् स्यात् ढलोपे सति ॥

सह (सहना), वह (ले जाना) इन दो धातुओंके अकारकू ओ-कार हो जब कि-ढकारका लोप (मू० ६०१) हो गया हो ॥ उवोढ (तू ले गया)। ऊहथुः (तुम दो ले गये)। ऊह (तुम ले गये) । उवाह, उवह (मैं ले गया) । ऊहिव (हम दो ले गये) । ऊहिम (हम ले गये)॥ आ०प०–ऊहे । ऊहाते । ऊहिरे । ऊहिषे । ऊहाथे । ऊहिध्वे । ऊहे । ऊहिवहे । ऊहिमहे । इनका अर्थ पूर्ववत् जानो ॥ लुट्–वोढा (मू० ६०० । २७९ । ७९ । ६०१ । ६०२) (वोह ले जायगा) । वोढासि, वोढासे (तू ले जायगा) । वोढास्मि, वोढाहे (मैं लाऊंगा) ॥ लृट्–वक्ष्यति (मू० ५९९), वक्ष्यते (वोह ले जायगा) ॥ लोट्– वहतु, वहताम् (वोह ले जावे)। अवहत, अवहत् (वोह ले गया) । वहेत्, वहेत (वोह ले जाय)॥ आ० लि०–उह्यात्, वक्षीष्ट (ई०वोह ले जाय)॥ लुङ्–अवाक्षीत् (मू० ५१४ । ५९९) (वोह ले गया था) । अवोढाम् (मू० ५२८ । ६०० । २७९) (वे दो ले गये थे) । अवाक्षुः (वे ले गये थे) । अवाक्षीः (तू ले गया था) । अवोढम् (तुम दो ले गये थे) । अवोढ (तुम ले गये थे) । अवाक्षम् (मैं ले गया था) । अवाक्ष्व (हम दो ले गये थे) । अवाक्ष्म (हम ले गये थे) ॥ आ० पदं–अवोढ (मू० ५२८ । ६०० । २७९ । ७९। ६०१ । ६०२) । अवक्षाताम् (मू० ५९९)। अवक्षत । अवोढाः । अवक्षाथाम् । अवोढ्वम् । अवक्षि । अवक्ष्वहि । अवक्ष्महि । इनके

अर्थभी परस्मैपदवत् जानो ॥ लृङ्-अवक्ष्यत्, अवक्ष्यत (जो वोह ले जाय)। अवक्ष्यः, अवक्ष्यथाः (जो तू ले जाय)। अवक्ष्यम्, अवक्ष्ये (जो मैं ले जाऊं)। इत्यादि ॥

॥ इति भ्वादयः ॥

अथादादयः ।

अद्-भक्षणे । १ । सक० पर० अनिट् ॥

अद्- (खाना) धातुके रूप सिद्ध करते हैं ॥ अद्+शप्+ति ॥

६०३ अदिप्रभृतिभ्यः शपः । २ । ४ । ७२ ॥

लुक् स्यात् ॥

अद्आदि धातुओंसे परे शप्- (सू० ४३३) का लुक् (लोप) हो । अत्ति (सू० ९१) (वह खाता है)। अत्तः (वे दो खाते हैं)। अदन्ति (सू० ४३५) (वे खाते है)। अत्सि (तू खाता है)। अत्थः (तुम दो खाते हो)। अत्थ (तुम खाते हो)। अद्मि (मै खाता हूं)। अद्वः (हम दो खाते है)। अद्मः (हम खाते हैं)। अद्+लिट्=ति ॥

६०४ लिट्यन्यतरस्याम् । २ । ४ । ४० ॥

अदो घस्लृ वा स्याल्लिटि ॥

अद्-धातुको घस्लृ-(घस्) आदेश विकल्पकरके हो, लिट् परे रहते । घस्+ति (सू० ४४० । ४४२ । ४३८) घघस्+अ (सू० २०३ । ५०३) जघास (उसने खाया)। जघस्+अतुस् (सू० ५५५) जघ्-स्+अतुस् ॥

६०५ शासिवसिघसीनाञ्च । ८ । ३ । ६० ॥

इण्कुभ्याम्परस्यैषां सस्य षः स्यात् । घस्य चर्त्वम् ॥

इण् अथवा कवर्गसे परे जो शास् (शिक्षा करना), वस् (बसना), घस् (खाना) यह धातु इनके स-कारकू ष-कार हो । और यहां

(सू० ९१) से 'घ' कू चर् (क्) होता है । जक्षतुः (उन दोने खाया) । जक्षुः (उनोंने खाया) । जघसिथ (सू० ५२९) (तू-ने खाया) । जक्षथुः (तुम दोने खाया) । जक्ष (तुमने खाया)। जघास, जघस (सू०५०५) (मैंने खाया) । जक्षिव (हम दोने खाया) । जक्षिम (हमने खाया) । सू० ६०४ के दूसरे पक्षमें आद (सू० ४९१) । आदतुः । आदुः । आद्+सिप्=थ । इस अवस्थामें-॥

६०६ इडत्यर्तिव्ययतीनाम् । ७ । २ । ६६ ॥

अद्ऋव्येञ्भ्यस्थलो नित्यमिट् स्यात् ॥

अद् (खाना), ऋ (जाना), और व्येञ् (आच्छादन करना) इन धातुओंसे परे जो थल् तिसे नित्य इट्-(इ) का आगम हो । आदिथ । आदथुः । आद । आद । आदिव । आदिम । इन रूपोंके अर्थभी घस्-आदेशकी समानही होते हैं । अत्ता (वोह खायगा) । अत्तासि (तू खायगा)। अत्तास्मि (मैं खाऊंगा) । अत्स्यति (वोह खायगा) । अत्स्यसि (तू खायगा) । अत्स्यामि (मै खाऊंगा) । अत्तु (सू० ४५७), अत्तात् (सू० ४५८) (वोह खावे) । अ-त्ताम् (सू०४६०) (वे दो खांय) । अदन्तु (वे खांय)। अद्+सिप् (सू० ४६१) अद्+हि ॥

६०७ हुझल्भ्यो हेर्धिः । ६ । ४ । १०१ ॥

होर्झलन्तेभ्यश्च हेर्धिः स्यात् ॥

हु-(होम करना, खाना) धातु तथा झलन्त-धातुओंसे परे जो हि उसे धि-आदेश हो । अद्धि, अत्तात् (सू०४५८) (तू खाय)। अत्तम् (तुम दो खाओ) । अत्त (तुम खाओ) । अदानि (सू० ४६३ । ४६४) (मैं खाऊं) । अदाव (सू० ४५९ । ४६९) (हम दो खायें) । अदाम (हम खायें)। अद्+ति (सू०४७२)॥

६०८ अदः सर्वेषाम् । ७ । ३ । १०० ॥

अदः परस्यापृक्तसार्वधातुकस्याट् स्यात्सर्वमतेन ॥

अद्-धातुसे परे अपृक्त-(सू० १९९) सार्वधातुककू अट्-(अ) का आगम हो, यह सम्पूर्ण वैयाकरणोंका मत है । आदत् (सू० ४९२) (उसने खाया) । आत्ताम् (उन दोने खाया) । आदन् (उनोंने खाया) । आदः (तूने खाया) । आत्तम् (तुम दोने खाया) । आत्त (तमने खाया) । आदम (मैने खाया) । आद्व (सू० ४६९) (हम दोने खाया) । आद्म (हमने खाया) । अद्यात् (सू० ४७५) (वोह खाय) । अद्याताम् (वे दो खायँ) । अद्युः (सू० ५४२) (वे खायँ) । अद्याः (तू खा) । अद्याम् (मैं खाऊं) । अद्यात् (सू० ३३९) (ई० वह खाय) । अद्यास्ताम् (ई० वे दो खायें) । अद्यासुः (वे खांय) । अद्याः (ई० तू खा) । अद्यासम् (मैं खाऊं) । अद्+लङ्=त (सू०४८३) ॥

६०९ लुङ्सनोर्घस्लृ । २ । ४ । ३७॥

अदो घस्लृ स्याल्लुङि सनि च । लृदित्वादङ् ॥

अद्-धातुकू घस्लृ-(घस्) आदेश हो, लुङ् और सन् (सू० ७६५) परे रहते । उक्त आदेशके लृदित होनेसे च्लिकू अङ् (सू० ५५७) होता है । अघसत् (सू० ४७१) (उसने खाया था) । अघसः (तूने खाया था) । अघसम् (मैने खाया था) । आत्स्यत् (सू० ४९२) (जो वोह खाय) । आत्स्यः (जो तू खाय) । आत्स्यम (जो मै खाऊं) ॥

हन-हिंसागत्योः । २ । सक० पर० अनिट् ॥

हन=हन्- (मारना । जाना) धातुकी साधनका करते हैं ॥

हन्ति (वह मारता है) । हन+तस् ॥

६१० अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति । ६ । ४ । ३७॥

अनुनासिकान्तानामेषां वनतेश्च लोपः स्याज्झलादौ किति ङिति ॥

उपदेशमे जो अनुदात्त-धातु है वे, तथा वन् (मांगना) और तन् (विस्तार करना) यह धातु यदि अनुनासिकान्त हों तो इन-

के अनुनासिक-(सू० ११) वर्णका लोप हो । उपदेशमें अनुदात्त-धातु लिखते हैं–॥

यमि-रमि-नमि-गमि-हनि-मन्यतयोऽनुदात्तोपदेशाः ॥

यम् (निवृत्त होना), रम् (क्रीडा करना), नम् (नमस्कार करना), गम् (जाना), हन् (मारना । जाना), मन्य = मन् (मानना) इतने धातु अनुनासिकान्त उपदेशमें अनुदात्त हैं ॥ तनोत्यादि-धातु नीचे लिखते हैं–॥

तनु क्षणु-क्षिणु-ऋणु-तृणु-घृणु-वनु-मनु-तनोत्यादयः ॥

तन् (फैलाना), क्षण् (मारना), क्षिण् (मारना), ऋण् (जाना), तृण् (खाना), घृण् (चमकना), वन् (माँगना), मन् (समझाना), यह तन्-आदि अनुनासिकान्त धातु हैं । इस उक्त सूत्रानुसार नकार-का लोप हुआ । हतः (सू० ५५०)(वे दो मारते हैं) । घ्नन्ति (सू० ५५५ । ३१६ । ९६ । ९७) (वे मारते हैं) । हंसि (सू० ९६) (तू मारता है) । हथः (सू० ६१०) (तुम दो मारते हो) । हथ (तुम मारते हो) हन्मि (मैं मारता हूं) । हन्वः (हम दो मारते है) । हन्मः (हम मारते हैं)। जघान (सू० ३१६ । ५०३ । ५०४) (उसने मारा) । जघ्नतुः (सू० ५५५) (उन दोने मारा) । जघ्नुः (उन्होने मारा) । जहन्+थ ॥

६११ अभ्यासाच्च । ७ । ३ । ५५ ॥

अभ्यासात्परस्य हन्तेर्हस्य कुत्वं स्यात् ॥

अभ्याससे पर हन-धातुके हकार-कू कवर्ग हो । जघनिथ (सू० ५३२), जघन्थ (सू० ५३१) (तूने मारा) । जघ्नथुः (सू०५५५) (तुम दोने मारा) । जघ्न (तुमने मारा) । जघान (सू० ५०४), जघन (सू० ५०५) (मैने मारा) । जघ्निव (सू० ५२९) (हम दोने मारा) । जघ्निम (हमने मारा) । हन्ता (सू० ५२५)(वह

१ दिवादिगणाय ।

मारेगा)। हन्तासि (तू मारेगा)। हन्तास्मि (मैं मारूंगा)। हनिष्यति (सू० ५४७) (वह मारेगा)। हनिष्यसि (तू मारेगा)। हनिष्यामि (मैं मारूंगा)। हन्तु, हतात् (सू० ४५८। ६१०) (वह मारे)। हताम् (वे दो मारें)। घ्नन्तु (सू० ५५५। ३१६) (वे मारें)। हन+हि (सू० ४६१)। इस अवस्थामें—॥

६१२ हन्तेर्जः। ६। ४। ३६ ॥

हौ परे ॥

हि परे रहते हन-धातुको ज-आदेश हो। ज+हि। यहां हि-का लोप (सू० ४६२) प्राप्त हुआ, तब—॥

६१३ असिद्धवदत्राभात्। ६। ४। २२॥

इत ऊर्ध्वमापादपरिसमाप्तेराभीयम्। समानाश्रये तस्मिन् कर्त्तव्ये तदसिद्धम्। इति जस्यासिद्धत्वान्न हेर्लुक् ॥

इस सूत्रसे आगे छठे अध्यायके चतुर्थ-पादकी समाप्तिपर्य्यन्त जितने सूत्र हैं, वे सब आभीय कहाते हैं। जब एक आभीयका कार्य्य किसी निमित्तको मानके किया हो और दूसरे आभीयका कार्य्य भी उसी प्रयोगमें उसी निमित्तको मानके किया जाय तो—प्रथम प्रवृत्त हुआ आभीय (अर्थात् जिस आभीयका कार्य्य कर चुके हैं) असिद्ध होता है। इसी कारण छठे अध्यायसम्बंधी चौथे पादके सूत्र (सू० ६१२) से हन्-को ज आदेश हुआ है, वोह आदेश दूसरे आभीय (सू० ४६२) की दृष्टिमें असिद्ध हुआ तो—हि-का लुक् नहीं होता कारण कि दोनोंही सूत्र (सू० ४६१। ४६२) प्रकृति-प्रत्ययका आश्रय करते हैं। जहि, हतात् (सू० ४५८) (तू मार)। हतम् (सू० ६१०) (तुम दोनों मारो)। हत (तुम मारो)। हनानि (सू० ४६३। ४६४) (मैं मारूं)। हनाव (हम दो मारें)। हनाम (हम मारें)। अहन् (सू० ४७२।२००) (उसने मारा)। अहताम् (सू० ६१०) (उन दोने मारा)। अघ्नन् (सू० ५५५। ३१६। २४) (उन्होंने मारा)। अहन् (सू० २००) (तूने

मारा) । अहतम् (तुम दोने मारा) । अहत (तुमने मारा) । अहनम् (मैने मारा) । अहन्व (हम दोने मारा) । अहन्म (हमने मारा) । हन्यात् (सू० ४७४ । ४७५) (वह मारै) । हन्युः (सू० ४७८) (वे मारें) । हन्याः (तू मारे) । हन्याम् (मैं मारूं) । हन्+या+त् (सू० ४७९)–॥

६१४ आर्धधातुके । २ । ४ । ३५ ॥

इत्यधिकृत्य ॥

आर्धधातुक-प्रत्यय परे रहते हो । जहां सम्भव होता है तहां आर्धधातुकको मानके कार्य हो । अधिकार-सूत्रका फलितार्थ विषय-सूत्रसे विदित होता है, जैसे– सू० ६१५ में–॥

६१५ हनो वध लिङि । २ । ४ । ४२ ॥

आर्धधातुक लिङ् परे रहते हन्-धातुकू वध आदेश हो ॥

६१६ लुङि च । २ । ४ । ४३ ॥

वधादेशोऽदन्तः । आर्धधातुके इति विषयसप्तमी । तेनार्धधातुकोपदेशे अकारान्तत्वादतो लोपः ॥

और लुङ् पर रहतेभी हन्-धातुकू वध-आदेश हो ॥ वध-आदेश अदन्त है । आर्धधातुके (सू० ६१४) यहां विषय-अर्थमें सप्तमी है, अर्थात्–आर्धधातुकके विषयमें हो । इसीसे– जब आर्धधातुक होनेवाला हो तब वधके अदन्त होनेसे अकारका लोप (सू० ५२०) होता है । वध्यात् (सू० ३३९) (ई० वह मारे) । वध्यास्ताम् (वे दोनो मारे) । वध्याः (तू मारे) । वध्यासम (मै मारूं) । अवधीत् (सू० ४९४) (उसने मारा था) । अवधीः (तूने मारा था) । अवधिषम् (मैने मारा था) । अहनिष्यत् (जो वह मारै) । अहनिष्यः (जो तू मारै) । अहनिष्यम् (जो मै मारूं)॥

यु–मिश्रणामिश्रणयोः । ३ । सक० पर० सेट् ॥

यु-(मिलाना वा अलग करना) धातुको साधते हैं ॥ यु+ति (सू० ६०३)–॥

६१७ उतो वृद्धिर्लुकि हलि । ७ । ३ । ८९ ॥

लुग्विषये उतो वृद्धिः पिति हलादौ सार्वधातुके. नत्वभ्यस्तस्य ॥

लुक्-विषयमें उत (उ) को वृद्धि हो. हलादि पित्-सार्वधातुक परे रहते, परन्तु-अभ्यस्त-(सू० ३८७) संज्ञकके उ-को वृद्धि न हो । यौति (वह मिलाता है) । युतः (सू० ५५०।४८१) (वे दो मिलाते है) । युवन्ति (सू० २२१) (वे मिलाते है) । यौषि (सू० १७०) (तू मिलाता है)। युथः (तुम दो मिलाते हो) । युथ (तुम मिलाते हो) । यौमि (मै मिलाता हूं) । युवः (हम दो मिलाते है) । युमः (हम मिलाते है) । युयाव (सू० २०३ । २७) (उसने मिलाया) । युयुवतः (सू० २२१) (उन दोने मिलाया) । युयविथ (तूने मिलाया) । युयाव, युयव (मैने मिलाया) । यविता (सू० ४४७ । ४३४) (वह मिलावेगा) । यवितासि (तू मिलावेगा) । यवितास्मि (मै मिलाऊंगा) । यविष्यति (वह मिलावेगा) । यविष्यसि (तू मिलावेगा)। यविष्यामि (मै मिलाऊंगा)। यौतु, युतात (सू० ४५८) (वह मिलावे)। यौहि (तू मिला)।अयौत (उसने मिलाया)। अयुताम (उन दोने मिलाया)। अयुवन (सू० ४७१ । ४७२ । २२१) (उनने मिलाया) । अयौः (तूने मिलाया) । अयुवम (मैने मिलाया) । युयात (वह मिलावे) । " इह उतो वृद्धिर्न-भाष्ये " पिच्च ङिन्न, ङिच्च पिन्न " इति व्याख्यानात । " युयात-मे उकारकू वृद्धि (सू० ६१७) नहीं होती-भाष्यमे लिखा है कि--पित तो ङित नही माना जाता और ङित पित नही माना जाता । यासुट् (सू० ४७४) तो ङित है, इस कारण किसी प्रकार पित नही हो सक्ता, पित न होनेसे यह सूत्र (सू० ६१७) नहीं लगता । युयाताम (वे दो मिलावे) । युयुः (सू० ४७८ । ५४२) (वे मिलावे) । यूयात (सू० ३३१ । ५२३) (ई० वह मिलावे) । यूयास्ताम (वे दो मिलावे) । यूयासुः (ई० वे मिलावें) । यूयाः (तू मिला) । यूयासम् (मैं मिलाऊं) । अया-

वीत् (मू० ५३४) (उसने मिलाया) । अयावीः (तूने मिलाया)। अयाविषम् (मैने मिलाया) । अयविष्यत् (मू० ४३४ । ४४७ । २७) (जो वह मिलावे) । अयविष्यः (जो तू मिलावे) । अयाविष्यम् (जो मैं मिलाऊं) ॥

या-प्रापणे । ४ । सक० पर० अनिट् ॥

या-(जाना) धातुके रूप लिखते हैं ॥ याति (वह जाता है) । यातः (वे दो जाते हैं) । यान्ति (वे जाते हैं) । यासि (तू जाता है) । यामि (मै जाता हूं) । ययौ (मू० ५३८ । ४४३) (वोह गया) । ययतुः (मू० ५३९) (वे दो गये) । ययिथ, ययाथ (तू गया) । ययौ (मैं गया) । याता (वोह जायगा) । यातासि (त जायगा) । यातास्मि (मै जाऊंगा) । यास्यति (वह जायगा)। यास्यसि (त जायगा) । यास्यामि (मैं जाऊंगा) । यातु, यातात् (वोह जाय) । याहि, यातात् (तू जा) । यानि (मै जाऊं) । अयात् (वोह गया) । अयाताम् (वे दो गये) ! अया+झि—॥

६१८ लङः शाकटायनस्यैव । ३ । ४ । १११ ॥

आदन्तात्परस्य लङो झेर्जुस् वा स्यात् ॥

अकारान्त-धातुसे परे लङ्-के स्थानमें जो झि उसे विकल्पसे जुस् (उस्) हो, श्रीशाकटायन आचार्यके मतमें । अयुः (मू०५४२), अयान् (मू० ४३५ । ४७२) (वे गये) । यातात् (मू०४७५) (वोह जाय) । यायाताम (वे दो जाय) । यायुः (मू० ५४२) (वे गये) । यायाः (तू जा) । यायाम् (मै जाऊं) । यायात् (ई० वोह जाय) । यायास्ताम् (ई० वे दो जाय) । यायासुः (ई० वे जांय) । यायाः (ई० तू जा) । यायासम् (ई० मै जाऊं) । अयासीत् (मू० ४९३) (वोह गया) । अयासीः (तू गया) । अयास्यत् (जो वह जाय) । अयास्यः (जो तू जाय) । अयास्यम् (जो मै जाऊं) ॥ इसी प्रकार निम्न-लिखत धातुओंके रूप जानो ॥

वा-गतिगन्धनयोः । ७ । सक० पर० अनिट् ॥

वा (जाना वा सुगंधित करना) । वाति । ववौ । वाता । वास्यति । वातु । अवात् । वायात । वायात् । अवासीत् । अवास्यत् । अर्थज्ञान स्वयं करो ॥

भा-दीप्तौ । ६ । अक० पर० अनिट् ॥

भा (चमकना) । भाति । बभौ । भाता । भास्यति । भातु । अभात् । भायात । भायात । अभासीत् । अभास्यत ॥

ष्णा-शौचे । ७ । अकर्म० पर० अनिट् ॥

स्ना (शुद्ध होना) । स्नाति । सस्नौ । स्नाता । स्नास्यति । स्नातु । अस्नात् । स्नेयात् । स्नायात । अस्नासीत । अस्नास्यत ॥

श्रा पाके । ८ । अक० पर० अनि० ॥

श्रा (पकाना) । श्राति । शश्रौ । श्राता । श्रास्यति । श्रातु । अश्रात । श्रेयात । श्रायात् । अश्रासीत । अश्रास्यत ॥

द्रा कुत्सायां गतौ । ९ । परस्मै० अक० अनिट् ॥

द्रा (कुगह जाना) । द्राति । दद्रौ । द्राता द्रास्यति । द्रातु । अद्रात । द्रायात । द्रेयात (म० ५४४) । अद्रासीत । अद्रास्यत ॥

प्सा भक्षणे । १० । सक० पर० अनिट् ॥

प्सा (खाना) । प्साति । पप्सौ । प्साता । प्सास्यति । प्सातु । अप्सात । प्सायात २ । अप्सासीत । अप्सास्यत् ॥

रा दाने । ११ । सक० पर० अनिट् ॥

रा (देना) । राति । ररौ । राता । रास्यति । रातु । अरात् । रायात २ । अरासीत । अरास्यत ॥

ला-आदाने । १२ । सकर्म० पर० अनिट् ॥

ला (लेना) । लाति । ललौ । लाता । लास्यति । लातु । अलात् । लायात् २ । अलासीत । अलास्यत ॥

दाप्-लवने । १३ । सक० पर० अनिट् ॥

दाप्=दा (काटना) । दाति । ददौ । दाता । दास्यति । दातु । अदात् । देयात् । देयात् । अदासीत् । अदास्यत् ॥

पा-रक्षणे । १४ । सक० पर० अनिट् ॥

पा (रक्षा करना) । पाति । पपौ । पाता । पास्यति । पातु । अपात् । पायात् २ । अपासीत् । अपास्यत् ॥

ख्या-प्रकथने । १५ । सक० पर० अनिट् ॥ अय सार्वधातुक एव प्रयोक्तव्यः ॥

ख्या (कहना) यह धातु केवल सार्वधातुकहीमें होता है। ख्याति। ख्यातु । अख्यात् । ख्यायात् । ख्येयात् ॥

विद्-ज्ञाने । १६ । सक० पर० सेट् ॥

विद् (जानना) । विद्+लट्=ति ॥

६१९ विदो लटो वा । ३ । ४ । ८३ ॥

वेत्तेर्लटः परस्मैपदानां णलादयो वा स्युः ॥

विद्-धातुसे परे लट्-के स्थानमें जो परस्मैपद आदेश तिनें णल् (मू०४३८) आदि प्रत्यय विकल्पसे हों । विद्+अ=वेद (मू० ५००) (वह जानता है) । विदतुः (वे दो जानते हे) । विदुः (वे जानते हें) । वेत्थ (तू जानता है) । विदथुः (तुम दो जानते हो) । विद (तुम जानते हो) । वेद (मैं जानता हूं) । विद्व (हम दो जानते हे) । विद्म (हम जानते हे) । पक्षान्तरमें । वेत्ति (मू० ५०० । ९१) । वित्तः (मू० ५५०।४८१) । विदन्ति । वेत्सि । वित्थः । वित्थ । वेद्मि । विद्वः । विद्मः ॥ विद्+लिट्=ति (अ)-॥

६२० उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम् । ३ । १ । ३८ ॥

एभ्यो लिटि आम् वा स्यात् । विदेरदन्तत्वप्रतिज्ञानादामि न गुणः ॥

उष (जलाना), विद (जानना), जागृ (जागना) इन धातुओंसे आम्-प्रत्यय विकल्प करके हो लिट् पर रहते । और विद-धातुकू अदन्त माननेकी प्रतिज्ञा है इसकारण गुण (मू०५००) नहीं होता। विदाञ्चकार (मू०५२२)। विदाम्बभूव । विदामास (उसने जाना)। वा । विवेद । विवेदिथ । विवेद । इत्यादि ॥ वेदिता (वोह जानेगा)।

वेदितासि (तू जानैगा)। वेदितास्मि (मैं जानूंगा) । वेदिष्याति (वह जानैगा)। वेदिष्यसि (तू जानैगा)। वेदिष्यामि (मैं जानूंगा) । विद+लोट् ॥

६२१ विदांकुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम्।३।१।४१॥

वेत्तेर्लोटि आम् गुणाभावो लोटो लुक् लोडन्तकरोत्यनुप्रयोगश्च वा निपात्यते। पुरुषवचने न विवक्षिते ॥

विद-धातुसे परे आम् हो, और गुणका निषेध रहे, तथा लोट्का लोप हो, लोट् जिसके अन्तमें ऐसे कृ-(करोतु) का प्रयोगभी विकल्पसे निपातन किया जाय। और इस सूत्रमें पुरुष और वचनकी विवक्षा नहीं है ॥

व्याख्यानः—यद्यपि 'विदांकरोतु' ऐसा रूप किसी सूत्रसे सिद्ध नहीं होता, और शास्त्रोंमें ऐसा प्रयोग आता है, इस कारण सूत्रकारने 'विदांकुर्वन्तु' यह सिद्ध शब्दही सूत्रमें पढ दिया। सूत्रमें 'विदांकुर्वन्तु' ऐसा रूप देखके यह न समझना कि-सर्वत्रही प्रथम पुरुष और बहुवचन होता है, क्योंकि—यहां पुरुष और वचनकी विवक्षा न कर उदाहरणमात्र दिखा दिया है, अर्थात तीनों पुरुष और तीनों वचनभी होते हैं। विद+आम्+करोतु=विदांकरोतु ॥

६२२ तनादिकृञ्भ्य उः।३।१।७९॥

तनादेः कृञश्च उ प्रत्ययः स्यात्। शपोऽपवादः ॥

तन-आदि धातु-(पृ० ७३३) ओंसे और कृ-धातुसे परे उ-प्रत्यय हो। यह शप (पृ० ४३३) का अपवाद है। विदांकृ+उ+तु (पृ० ४३४)—॥

६२३ अत उत्सार्वधातुके।६।४।११०॥

उप्रत्ययान्तस्य कृञोऽत उत्सार्वधातुके क्ङिति ॥

उ-प्रत्ययान्त कृ-धातुके अकारकू उ-कार होय सार्वधातुक कित् वा ङित् परे रहते। विदांकुरुतात् (पृ० ४५८) (वोह जाने)। विदांकुरुताम् (वे दो जाने)। विदांकुर्वन्तु (वे जाने)। विदांकुरु

(मू॰ ४६१। ५५३) (तू जाने)। विदांकुरुतम् (तुम दो जानो)। विदांकुरुत (तुम जानो)। विदांकरवाणि (मैं जानूं)। विदांकरवाव (हम दो जानें)। विदांकरवाम (हम जानें)। तथा–वेत्तु, वित्तात्। वित्ताम्। विदन्तु। विद्धि। वित्तम्। वित्त। विदानि। विदाव। विदाम। अविद्+त् (मू॰ ५०० । २००) अवेत् (उसने जाना)। अवित्ताम् (उन दोने जाना)। अविदुः (मू॰४९६) (उन्होंने जाना)। अवेद्+स्–॥

६२४ दश्च। ८। २। ७५॥

धातोर्दस्य पदान्तस्य सिपि परे रुर्वा ॥

सिप् परे रहते धातुके पदान्तरूप दकारकू रु विकल्पसे हो। अवेः (मू॰ ११३) अवेद् (त्) (तूने जाना)। विद्यात् (वोह जाने)। अवेदीत् (उसने जाना)। अवेदिष्यत् (जो वोह जाने)॥

अस्–भुवि। १७। अक॰ पर॰ सेट्॥

अस (होना)। अस्ति (वोह है)। अस्+तस्–॥

६२५ श्नसोरल्लोपः। ६। ४। १११॥

श्नस्यास्तेश्चातो लोपः सार्वधातुके किति ङिति ॥

श्नम्-प्रत्यय (मू॰ ७२६) के तथा अस्-धातुके अकारका लोप हो, कित् वा ङित् सार्वधातुक परे रहते। स्तः (मू॰ ५५०) (वे दो हैं)। सन्ति (वे हैं)। असि (मू॰ ४५२) (तू है)। स्थः (तुम दो हो)। स्थ (तुम हो)। अस्मि (मैं हूं)। स्वः (हम दो हैं)। अस्मः (हम हैं)। अस्+लिट्–॥

६२६ अस्तेर्भूः। २। ४। ५२॥

आर्धधातुकविषये अस्तेर्भूः ॥

आर्द्धधातुक-विषयमें अस्-धातुकू भू आदेश हो। बभूव। भविता। भविष्यति॥ आ॰ लि॰–भूयात्। अभूत्। अभविष्यत्। अस्तु (मू॰ ४५७), स्तात् (मू॰ ४५८। ६२५) (वोह होय)।

स्ताम् (वे दो होंय) । सन्तु (वे होंय) । असि (सू० ४६१) अस्+हि । इस अवस्थामें-॥

६२७ घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च । ६ । ४ । ११९ ॥

घोरस्तेश्च एत्वं स्याद्धौ परे, अभ्यासलोपश्च । आभीयत्वेन एत्वस्यासिद्धत्वाद्धेर्धिः । तातङ्पक्षे एत्वं न, परेण तातङा बाधात् ॥

हि परे रहते घु-संज्ञक धातु (सू० ६७६) और अस्-धातुको एकार हो, और अभ्यासका लोप हो । आभीयत्व (सू० ६१३) से एत्व असिद्ध होनेके कारण हिकू धि (सू० ६०७) होती है । और तातङ् (सू० ४५८) के पक्षमें एत्व नहीं होता, कारण कि-तातङ् (सू०४५८) सू० ६२७ से पर होनेके कारण बाधक है । एधि (सू० ६२५), स्तात (तू हो) । स्तम् (तुम दो हो) । स्त (तुम हो) । असानि (सू०४६३ । ४६४) (मैं होऊं) । असाव (हम दो हो) । असाम (हम हो) । आसीत (सू० ४९२ । ४९३) (वोह था) । आस्ताम (वे दो थे) । आसन (वे थे)। आसीः (तू था)। आसम (मैं था) । स्यात (सू० ४७४।६२५) (वोह हो) । स्याताम (वे दो हो) । स्युः (वे हो) । स्याः (तू हो) । स्याम् (मैं होऊं) ॥ प्र-नि+सन्ति ॥

६२८ उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः । ८ । ३ । ८७ ॥

उपसर्गेभ्यः प्रादुरश्च परस्यास्तेः सस्य षो यकारेऽचि च परे ॥

उपसर्गोंसे तथा प्रादुस-अव्ययसे परे अस्-धातुके सकारकू षकार हो यकार और अच परे रहते । जैसे-प्रनिषन्ति (वे बाहर जाते हैं) । प्रादुस्+सन्ति (सू० १११ । ११३) प्रादुःषन्ति (वे प्रकट होते हैं) । नि+स्यात=निष्यात् (वोह जाय) ॥

यच्परः किम् ? अभिस्तः ॥

यदि कोई यह शंका करे कि-य और अच् परे रहते सू० ६२८ सूत्र लगे ऐसा क्यों कहा ? तब यह उत्तर देना चाहिये कि-यदि

१ अर्थात्-उपसर्गमें स्थित इण-प्रत्याहारान्तर्गत वर्णसे परे यह अर्थ करना ।

ऐसा न कहेंगे तो–अभि+स्तः=अभिस्तः (वे दो सर्वथा हैं)। यहांभी मू० ६२८ सूत्रका प्रयोग हो जायगा ॥

इण्–गतौ। १७। सक० पर० अनिट् ॥

इ (जाना)। एति (मू० ४३४) (वह जाता है)। इतः (मू० ५५० । ४८१) (वे दो जाते हैं)। इ+झि (मू०४३५) इ+अन्ति ॥

६२९ इणो यण्। ६। ४। ८१ ॥

अजादौ प्रत्यये परे। इयङोऽपवादः ॥

अजादि-प्रत्यय परे रहते इ-धातुकू यण् हो। यह सूत्र इयङ् (मू० २२१) का अपवाद है। यन्ति (वे जाते हैं)। एसि (तू जाता है)। एमि (मैं जाता हूं)। इ+इ+अ (मू० ४३८)–॥

६३० अभ्यासस्यासवर्णे। ६। ४। ७८ ॥

इ-उ-वर्णयोरियङुवङौ स्तोऽसवर्णेऽचि परे ॥

अभ्यासके इकार उकारकू क्रमसे इयङ् उवङ् हो असवर्णी अच् परे रहते। इय्+इ+अ (मू० २०३। २७) इयाय (वोह गया)। इ य् इ+अतुस् ॥

६३१ दीर्घ इणः किति। ७। ४। ६९ ॥

इणोऽभ्यासस्य दीर्घः किति लिटि ॥

इ-धातुके अभ्यासकू दीर्घ हो, कित्-संज्ञक (मू०५०१) लिट् परे रहते। ईयतुः (मू० ६२९। ६३१) (वे दो गये)। ईयुः (वे गये)। इययिथ (मू०५३२), इयेथ (मू० ६३०।४३४।६३०) (तू गया)। एता (वोह जायगा)। एष्यति (वोह जायगा)। एतु, इतात् (वोह जाय)। ऐत् (मू० ४९२। २१९) (वोह गया)। ऐताम् (वे दो गये)। आयन् (मू० २७) (वे गये)। इयात् (वोह गया)। इयाताम् (वे दो गये)। ईयात् (मू० ५३३) (ई० वोह जाय)। इ+लुङ् ॥

६३२ इणो गा लुङि । २ । ४ । ४५ ॥

गातिस्थेति सिचो लुक् ॥

लुङ्-लकार परे रहते इण्-धातुकू गा-आदेश हो । अगा+सि+त् (सू० ४८५) अगात (वोह गया) । ऐष्यत् (सू०४९२।२१९) (जो वोह जाय) । निर्+ईयात ॥

६३३ एतेर्लिङि । ७ । ४ । २४ ॥

उपसर्गात्परस्य इणोऽणो ह्रस्व आर्धधातुके किति लिङि ॥

उपसर्गसे परे इण्-धातुका जो अण् तिसे ह्रस्व हो, जब लिङ्के स्थानमें कित्-संज्ञक आर्धधातुक परे हो । निरियात (ई० वह निकले) ॥

उभयत आश्रयेण नान्तादिवत् । अभीयात् ॥

अभि+ईयात्=अभीयात (ई० वोह जाय) । यहां ह्रस्व नहीं हुआ कारण कि–किसी कार्यके अर्थ जब प्रयोगमें पूर्व और पर-भागका आश्रय एकहीमें किया जाता है तब वोह (सू० ५२) सूत्र प्रवृत्त नहीं होता, अतएव अभीयात् के इकारकू एक साथ धातुका अवयव और उपसर्ग नहीं मान सक्ते ॥ अणः किम् ? समेयात ॥ अणको ह्रस्व हो यह कहनेसे–सम्+एयात (सम आ ईयात) समेयात (ई० वोह आवे) । यहां ह्रस्व नहीं हुआ ॥

शीङ् स्वप्ने । १८ । अक० आत्म० सेट् ॥

शी (सोना) । शी+त (सू० ४७४) ॥

६३४ शीङः सार्वधातुके गुणः । ७ । ४ । २१ ॥

क्ङिति चेत्यस्यापवादः ॥

सार्वधातुक-प्रत्यय परे रहते शीङ्-धातुकू गुण हो । यह सूत्र (सू० ४८१) का अपवाद है । शेते (सू० ५५८) (वह सोता है) । शयाते (सू०२७) (वे दो सोते हैं) । शी+झ (सू०६३४।५७४) शे+अत्+अ । इस अवस्थामें–॥

६३५ शीङो रुट् । ७ । १ । ६ ॥

शीङः परस्य झादेशस्यातो रुडागमः स्यात् ॥

शीङ्-धातुसे परे झ-के स्थानमें आदेश हुआ जो अत् तिसे रुट् (र्) का आगम हो। शेरते (सू०५५८) (वे सोते हैं)। शेषे (तू सोता है)। शयाथे (तुम दो सोते हो)। शेध्वे (तुम सोते हो)। शये (मैं सोता हूं)। शेवहे (हम दो सोते है)। शेमहे (हम सोते हैं)। शिश्ये (सू० ४४३ । ५६३ । १९) (वोह सोया)। शिश्याते (वे दो सोये)। शश्यिरे (सू० ५६३) (वे सोये)। शयिता (सू० ४४७) (वोह सोवेगा)। शयिष्यते(वोह सोवेगा)। शेताम् (सू०५६७) (वह सोवै)। शयाताम् (वे दो सोवैं)। शेरताम् (सू० ६३५) (वे सोवें)। शेष्व (तू सो)। शये (मैं सोऊं)। अशेत (वोह सोया)। अशेयाताम् (वे दो सोये)। अशेरत (सू० ५७४ । ६३५) (वे सोये)। शयीत (सू० ५७० । ७७) (वह सोवै)। शयीयाताम् (वे दो सोवैं)। शयीरन् (सू० ५७१) (वे सोवें)। शयीथाः (तू सोवै)। शयीय (सू० ५७२) (मै सोऊं)। शयिषीष्ट (सू० ५७३)(ई० वह सोवै)। अशयिष्ट (सू० ४३४ । ४८४ । ४४७) (वह सोया था)। अशयिष्ठाः (तू सोया था)। अशयिषि (मै सोया था)। अशयिष्यत (जो वह सोवै) ॥

इङ्-अध्ययने । १९ । इङिकावध्युपसर्गतो न व्यभिचरत । सक० आत्म० अनिट् ॥

इ (पढना), इङ् (पढना), इक् (स्मरण) यह दो धातु अधि- उपसर्गसे कभी पृथक् नहीं होते, अर्थात्—दोनो धातुके पहले अधि-उपसर्ग रहता है। अधीते (सू०५३ । ५५८) (वह पढता है)। अधि+इ+आते (सू० ५५८ । २२१ । ५३) अधीयाते (वे दो पढते हैं)। अधीयते (सू० ५७४) (वे पढते हैं)। अधि+इ+त (सू० ५६३) ॥

६३६ गाङ् लिटि । २ । ४ । ४९ ॥

इडो गाङ् स्याल्लिटि ॥

इङ्-धातुकू गाङ्-(गा) आदेश हो लिट् परे रहते। अधि+गा+ए (सू० ४४०।४४३।५०३।५३९) अधिजगे (उसने पढा)। अधिजगाते (उन दोने पढा)। अधिजगिरे (उनोंने पढा)। अधि+इ+ता (सू० ४३४। १९) अध्येता (वह पढेगा)। अध्येष्यते (वोह पढेगा)। अधीताम (सू० ५६७) (वोह पढे)। अधीयाताम् (वे दो पढे)। अधीयताम् (सू० ५७४ । २२१ । ५३) (वे पढे)। अधीष्व (सू० ५६८) (त पढ)। अधीयाथाम् (तुम दो पढो)। अधीध्वम (तुम पढो)। अधि+इ+इट् (सू० ५५८ । ५६० । ४६४ । २१९) अधि+इ+ए (सू० ४३४ । २७ । १९) अध्ययै (मे पढं)। अध्ययावहै (हम दो पढे)। अध्ययामहै (हम पढे)। अधि+इ+त (सू० ४९२ । २१९) अधि+ऐ+त (सू० १९) अध्यैत (उसने पढा)। अध्यैयाताम (उन दोने पढा)। अध्यैयत (सू० ५७४) (उनोंने पढा)। अध्यैथाः (तने पढा)। अध्यैयाथाम (तुम दोने पढा)। अध्यैध्वम (तुमने पढा)। अध्यैयि (मेने पढा)। अध्यैवहि (हम दोने पढा)। अध्यैमहि (हमने पढा)। अधीयीत (सू० ५७० । ४७७ । ४७७ । २२१ । ५३) (वोह पढे)। अधीयीयाताम (वे दो पढे)। अधीयीरन (सू० ५७१) (वे पढे)। अधीयीथाः (तू पढ)। अधीयि (मे पढं)। अध्येषीष्ट (सू० ५७३) (ई० वोह पढे)। अध्येषीष्ठाः (ई० तू पढ)। अध्येषीय (ई० मे पढं)। अधि+इ+लुङ्=त ॥

६३७ विभाषा लुङ्लृङोः । २ । ४ । ५० ॥

इङो गाङ् वा स्यात् ॥

इङ्-धातुकू गाङ्-(गा) आदेश विकल्पसे हो लुङ् वा लृङ् परे रहते। अधि+गा+त (सू० ४७१)॥

६३८ गाङ् कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित । १ । २ । १ ॥

गाङादेशात्कुटादिभ्यश्च परेऽञ्णितः प्रत्ययाः ङितः स्युः ॥

जो प्रत्यय ञित् और णित् न हों वे प्रत्यय गाङ्-(सू० ६३६) आदेशसे परे और कुट्-आदि धातुओंसे परे ङित् माने जॉय। अधि+अ+गा+त (सू० ४८१ । ४८४)॥

६३९ घुमास्थागापाजहातिसां हलि । ६ । ४ । ६६ ॥

एषामात ईत्स्याद्धलादौ क्ङित्यार्धधातुके ॥

घु-(सू०६७६) संज्ञक धातु, तथा मा (मापना), स्था (रुकना), गा (पढना), पा (पीना) और ओहाक् (त्यागना), षो (नाश करना) इन धातुओंके आ-कू ई हो हलादि कित् वा ङित् आर्धधातुक परे रहते। अधि+अगी+स्+त (सू० १७० । ७९ । ११) अध्यगीष्ट, अध्यैष्ट (सू० ४९२ । २१९) (उसने पढा था)। अध्यगीषाताम्, अध्यैषाताम् (उन दोने पढा)। अध्यगीष्यत, अध्यैष्यत (जो वोह पढे)। अध्यगीष्यथाः, अध्यैष्यथाः (जो तू पढे)। अध्यगीष्ये, अध्यैष्ये (जो मे पढूं)॥

दुह-प्रपूरणे। २०। उभयप० द्विकर्म० अनिट्॥

दुह-(दुहना)। दोग्धि (सू० २८० । ६०० । २३ । ४३४) (वोह दूहता है)। दुग्धः (वे दो दुहते हैं)। दुहन्ति (वे दूहते हैं)। धोक्षि (सू० ६०० । २८० । २८१ । २३ । ९१ । १७०) (तू दुहता है)। दुग्धे (सू० २८० । ९१ । ६०० । ५५८) (वह दूहता है)। दुहाते (वे दो दुहते हैं)। दुहते (सू० ५७४) (वे दुहते हैं)। धुक्षे (सू० २८० । २८१ । २३ । ९१ । १७० । ५५० । ४८१) (तू दुहता है)। धुग्ध्वे (सू० २८० । २८१ । २३) (तुम दुहते हो)। दुदोह (सू० ५००) (उसने दुहा)। दुदुहिथ (तूने दुहा)। दुदोह (मैने दुहा)। दुदुह (सू० ५६३) (उसने दुहा)। दोग्धा (सू० ६००) (वोह दुहैगा)। दोग्धासि, दोग्धासे (तू दुहैगा)। दोग्धास्मि, दोग्धाहे (में दुहूंगा)। धोक्ष्यति (सू०५००। २८० । २८१ । २३ । ९१), धोक्ष्यते (वोह दुहैगा)। दोग्धु, दुग्धात (सू० ४५८ । ४८१) (वोह दुहै)। दुग्धाम् (वे दो

दुहै)। दुहन्तु (वे दुहैं)। दुग्धि (मू० ६०७), दुग्धात् (मू० ४५८) (तू दुहै)। दुग्धम् (तुम दो दुहो)। दुग्ध (तुम दुहो)। दोहानि (मैं दुहूं)। दोहाव (हम दो दुहें)। दोहाम (हम दुहें)॥ आ० प०—दुग्धाम् (मू० ६००। ५६७)। दुहाताम्। दुहताम् (मू० ५७४)। धुक्ष्व (मू० २८१। ५६८)। दुहाथाम्। धुग्ध्वम् (मू० २८०। २८१। २३)। दोहै। दोहावहै। दोहामहै। अधोक् (मू०२००। २८०। २८१) (उसने दुहा)। अदुग्धाम् (मू० ६००) (उन दोने दुहा)। अदुहन् (उनोंने दुहा)। अधोक्-(ग्) (मू०१६६) (तूने दुहा)। अदुग्धम् (तुम दोने दुहा)। अदुग्ध (तुमने दुहा)। अदोहम् (मैंने दुहा)॥ आ० प०— अदुग्ध। अदुहाताम्। अदुहत। अदुग्धाः। अदुहाथाम्। अधुग्ध्वम्। अदुहि। अदुह्वहि। अदुह्महि। दुह्यात् (वोह दुहै)। दुह्याः (तू दुहै)। दुह्याम् (मैं दुहूं)। दुहीत (मू० ५७०)। दुहीयाताम्। दुहीरन्। दुह्यात्। दुह्यास्तामित्यादि॥ दुह्+सी+स+त-॥

६४० लिङ्सिचावात्मनेपदेषु। १। २। ११॥

इक्समीपाद्धलः परौ झलादी लिङ्सिचौ कितौ स्तस्तङि॥

इक्-के समीप जो हल् तिससे परे झलादि लिङ् तथा सिच (मू०४ .) कित् हो, आत्मनेपद परे रहते। उक्त प्रयोगमें दु- .गत 'उ' (इक्) के समीप 'ह' हल् है। धुक्षीष्ट (मू० २८०। २८१। २३। ९१। १७०। ७१। ४८१) (ई० वोह दुहै)। धुक्षीष्ठाः (ई० तू दुहै)। धुक्षीय (मू० ५७२) (ई० मैं दुहूं)। दुह+च्लि+त् (मू० ४७२)॥

६४१ शल इगुपधादनिटः क्सः। ३। १। ४५॥

इगुपधो यः शलन्तस्तस्मादनिटश्च्लेः क्सादेशः॥

जिसकी उपाधा इक् हो ऐसे शलन्तसे परे अनिट् च्लिको क्स-आदेश हो। अदुह्+क्स+त् (सू० ४८१। २८०। २८१। २३। ९१। १७०। १५६) अधुक्षत् (उसने दुहा)। अधुक्षः (तूने दुहा)। अधुक्षम् (मैंने दुहा)। अदुह्+क्स+त॥

६४२ लुग्वा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये।७।३।७३॥

एषां क्सस्य लुग्वा स्याद् दन्त्ये तङि॥

दुह (दुहना), दिह (इकट्ठा करना), लिह (चाटना), गुह (ढकना) इन धातुओंके क्स-का लोप विकल्पसे हो, दन्तस्थानीय आत्मनेपद प्रत्यय परे रहते। अदुह्+त (सू०२८०। ६००) अदुग्ध, अधुक्षत (उसने दुहा)। अदुह्+क्स+आताम् (सू० २८०।२८१। ९१।२३) अधुक्+क्स+आताम्॥

६४३ क्सस्याचि। ७। ३। ७२॥

अजादौ तङि क्सस्य लोपः॥

अजादि-आत्मनेपद परे रहते क्स-का लोप (सू० २५) हो। अधुक्षाताम् (सू० १७०) (उन दोने दुहा)। अधुक्षन्त (सू० ४३९) (उनोंने दुहा)। अदुग्धाः, अधुक्षथाः (तूने दुहा)। अधुक्षाथाम् (तुम दोने दुहा)। अधुग्ध्वम्, अधुक्षध्वम् (तुमने दुहा)। अधुक्षि (सू० ६४३) (मैंने दुहा)। अदुह्वहि (सू० ६४२), अधुक्षावहि (सू० ४३६) (हम दोने दुहा)। अधुक्षामहि (हमने दुहा)। अधोक्ष्यत (सू० ४७२। ४७१), अधोक्ष्यत (जो वोह दुहे)। अधोक्ष्यः, अधोक्ष्यथाः (जो तू दुहे)। अधोक्ष्यम्, अधोक्ष्ये (जो मे दुहूं)॥

एवं दिह-उपचये। ७१। उभय० सकर्म० अनिट्॥

इसी प्रकार दिह-(उन्नति करना) धातुके रूपभी होते हैं॥

१ कोई २ महाशय (वहाँ) के उक्त दो रूपोंके भ्रमसे यहाभी (अदुह्वहि) ऐसा वैकल्पिक रूप लिखते हैं सो भ्रान्तिमात्र है। उन्हें सू० ६४२ के 'दन्त्ये' पदपर ध्यान देना चाहिये।

लिह–अस्वादने। २२। उभय० सकर्म० अनिट्॥

लिह (चाटना)। लिह्+ति (सू० २७९। ६००। ७९) लिढ्+ढि (सू० ५००। ६०१) लेढि (वोह चाटता है)। लीढः (सू० १३२) (वे दो चाटते हैं)। लिहन्ति (वे चाटते हैं)। लेक्षि (सू० २७९। ५९९) (तू चाटता है)। लेह्मि (मैं चाटता हूं)। लीढे (सू० ५५८) (वह चाटता है)। लिहाते (वे दो चाटते हैं)। लिहते (सू० ५७४। ५५८) (वे चाटते हैं)। लिक्षे (तू चाटता है)। लिहाथे (तुम दो चाटते हो)। लीढ्वे (तुम चाटते हो)। लिहे (मैं चाटता हूं)। लिलेह (सू० ५००) उसने चाटा)। लिलेहिथ (तूने चाटा)। लिलेह (मैंने चाटा)। लिलिहे। लिलिहिषे। लिलिहे। लीढा (वोह चाटेगा)। लीढासि, लीढासे (तू चाटेगा)। लेढास्मि, लेढाहे (मै चाटूंगा)। लेक्ष्यति, लेक्ष्यते (वोह चटेगा)। लेक्ष्यसि, लेक्ष्यसे (तू चटेगा)। लेक्ष्यामि, लेक्ष्ये (मै चटूंगा)। लेढु (सू० ४५७), लीढात् (सू०४५८। ४८१) (वोह चाटे)। लीढाम् (सू० ४६०) (वे दो चाटें)। लिहन्तु (वे चाटें)। लीढि (सू० ४६१। २७९। ६०७। ७९। ६०१। १३२), लीढात् (सू० ४५८) (तू चाट)। लेहानि (मै चाटूं)। लीढाम (सू० ५६७)। लिहाताम्। लिहताम्। लिक्ष्व। लेहै। अलेट् (सू० २७९। २००। १६६), अलेड् (सू० ८३) (उसने चाटा)। अलेट्–ड् (सू० ८३) (तूने चाटा)। अलेहम् (मैं चाटूं)। अलीढ। अलीढाः। अलिहि। लिह्यात् (वोह चाटे)। लिहीत (वोह चाटे)। लिह्यात्, लिक्षीष्ट (इ० वोह चाटे)। लिह्यास्ताम, लेक्षायास्ताम (इ० वे दो चाटें)। इत्यादि॥ अलिक्षत् (सू० ६४१। २७९। ५९९); अलिक्षत, अलीढ (सू० ६४३) (उसने चाटा)। अलेक्ष्यत्, अलेक्ष्यत (जो वोह चाटे)॥

ब्रूञ्–व्यक्तायाम्वाचि। २३। उभय० द्विकर्म० सेट्॥

ब्रूञ् = ब्रू (स्पष्ट बोलना) । ब्रू+लट् = ति ॥

६४४ ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः । ३ । ४ । ८४ ॥

ब्रुवो लटस्तिबादीनां पञ्चानां णलादयः पञ्च वा स्युः, ब्रुवश्चाहादेशः ॥

ब्रू-धातुसे परे लट्-के स्थानमें तिप्-आदि (तिप् , तस्, झि, सिप् , थस्) पांच आदेशोंकू णल्-आदि पांच (णल् अतुस्, उस्, थल्, अथुस्) आदेश विकल्पकरके हों और ब्रू-धातुकू आह-आदेश हो । आह (वोह कहता है) । आहतुः (वे दो कहते है) । आहुः (वे कहते हैं) । आह्+थ ॥

६४५ आहस्थः । ८ । २ । ३५ ॥

झलि परे । चर्त्वम् ॥

झल् पर रहते आह-(मू० ६४४) कू थ (मू० २५) होय । और थकू चर्त्व अर्थात् त (मू०९१) होता है । आत्थ (तू कहता है) । आहथुः (तुम दो कहते हो) । जब मूल ६४४ कू नहीं लगाया तो— । ब्रू+ति । इस दशामें— ॥

६४६ ब्रुव ईट् । ७ । ३ । ९३ ॥

ब्रुवः परस्य हलादेः पित ईट् स्यात् ॥

ब्रू-धातुसे परे हलादि-पित् संज्ञक प्रत्ययकू ईट् (ई) का आगम हो । ब्रू+ई+ति (मू० ४३४ । २७) ब्रवीति (वोह कहता है) । ब्रूतः (वे दो कहते हैं) । ब्रुवन्ति (मू० २२१) (वे बोलते हैं) । ब्रवीषि (तू कहता है) । ब्रवीमि (मै कहता हूं) । आ० प०—ब्रूते (मू०५५८) । ब्रुवाते (मू० २२१)। ब्रुवते (मू० ५७४।२२१) । ब्रूषे । ब्रुवे (मू० २२१) । ब्रू+लिट् = ति (मू० ४३८) ॥

६४७ ब्रुवो वचिः । २ । ४ । ५३ ॥

आर्धधातुके ॥

आर्धधातुक प्रत्ययकी विवक्षामें ब्रू-कू वच्-आदेश हो । वच्+अ (मू० ४४६ । ४५० । ४४२ । ५९७ । ५०४) उवाच (उसने

कहा)। ऊचतुः (मू०५९८) (उन दोने कहा)। ऊचुः (उनोंने कहा)। उवचिथ (मू० ५३२), उवक्थ (मू० ३३९ । ६३१) (तूने कहा)। उवाच (मू० ५०४), उवच (मू० ५०५) (मैंने कहा)। ऊचे (मू०५९८ । ५६३)। ऊचाते। ऊचिरे। ऊचिषे। ऊचे। वक्ता (मू० ३३५) (वोह बोलेगा)। वक्तासि, वक्तासे (तू बोलेगा)। वक्तास्मि, वक्ताहे (मै बोलूंगा)। वक्ष्यति, वक्ष्यते (वोह बोलैगा)। ब्रवीतु (मू० ६४६), ब्रूतात् (मू० ४५८) (वोह बोलै)। ब्रूताम् (वे दो बोलै)। ब्रुवन्तु (मू० २२१) (वे बोलै)। ब्रूहि (तू बोल)। ब्रवाणि (मै बोलूं)। ब्रूताम। ब्रुवाताम्। ब्रुवताम। ब्रूष्व। ब्रवै (मू०५६९)। अब्रवीत् (मू०६४६), अब्रूत (वोह बोलै)। अब्रवीः, अब्रूथाः (तू बोला)। अब्रुवम्, अब्रुवि (मै बोला)। ब्रूयात् (वोह बोलै)। ब्रूयाः (तू बोल)। ब्रूयाम् (मै बोलूं)। ब्रुवीत (मू० ५७० । ४७७ । २२१)। ब्रुवाथाः। ब्रुवीय। उच्यात् (मू० ६४७ । ५५८), वक्षीष्ट (मू० ५७० । ५७३) (ई० वोह बोला)। उच्याः, वक्षीष्ठाः (ई० तू बोल)। उच्यासम्, वक्षीय (ई० मै बोलूं)। ब्रू+च्लि+त् (मू० ४७२ । ६४७ । ४७१) अवच्+च्लि+त् ॥

६४८ अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् । ३ । १ । ५२ ॥

एभ्यश्च्लेरङ् स्यात् ॥

अस् (फेंकना), वच् (बोलना), ख्या (कहना) इन धातुओंसे परे च्लिकू अङ् (अ) हो। अवच्+अ+त् ॥

६४९ वच उम् । ७ । ४ । २० ॥

---

१ कोई २ नवयुवक प्रमादसे डित् लकारोंमेंभी मू० ५५८ लगाकर अनेक स्थानोंमें विद्यारसिकोंको भ्रममे डाल देते है, यदि गुरुके सन्मुख कुछभी परिश्रम किया होता तौ मू० ५५८ का 'ङित.' पद निश्चय उपस्थित रहता, वा बाल्यावस्थामे रूपावलीही कठ करी होती तौभी कार्य चाहीकर सक्तेथे, परन्तु आगेको ऐसी पुस्तकमें हस्तक्षेपकर व्यर्थ श्रम न कीजिये!।

अङि परे ॥

अङ् (सू० ६४८) परे रहते वच्-धातुकू उम्का आगम (सू० २६७) हो । अवोचत् (सू० ३३), अवोचत (उसने कहा) । अवोचः, अवोचथाः (तूने कहा) । अवोचम् , अवोचे (मैंने कहा) । अवक्ष्यत् , अवक्ष्यत (जो वोह कहे) । अवक्ष्यः, अवक्ष्यथाः (जो तू कहे) । अवक्ष्यम् ,अवक्ष्ये (जो मैं कहूं) ॥

६५० (चर्करीतं च) ॥

चर्करीतमिति यङ्लुगन्त तददादौ बोध्यम् ॥

चर्करीतम् यह यङ्लुगन्तप्रक्रियामें क्री-धातुका रूप होता है, परन्तु धातुमात्रका उपलक्षण है, अर्थात्—जिससे परे यङ्-(सू० ७७१ । ७७८) का लुक् हुआ हो, तथा जिसको द्वित्व हुआ हो उस धातुकोभी अदादि गणमें जानो ॥

ऊर्णुञ्-आच्छादने । २४ । उभय० सकर्म० सेट् ॥

ऊर्णु (ढांकना) । ऊर्णु+ति ॥

६५१ ऊर्णोतेर्विभाषा । ७ । ३ । ९० ॥

वा वृद्धिः स्याद्धलादौ पिति सार्वधातुके परे ॥

ऊर्णु-धातुकू विकल्पसे वृद्धि हो, हलादि पित्-सार्वधातुक परे रहते । ऊर्णौति, ऊर्णोति (सू० ४३४) (वोह ढकता है) । ऊर्णुतः (सू० ५५० । ४८१) (वे दो ढकते है) । ऊर्णुवन्ति (सू० २२१) (वे ढकते है) । ऊर्णौषि, ऊर्णोषि (तू ढकता है) । ऊर्णौमि, ऊर्णोमि (मैं ढकता हूं) । ऊर्णुते । ऊर्णुवाते (सू०२२१)। ऊर्णुवते (सू० ५७४) । ऊर्णुषे । ऊर्णुवे । ऊर्णु+अ(सू०४३८) ॥

६५२ (ऊर्णोतेराम्नेति वाच्यम्) ॥

यह कहना चाहिये कि—ऊर्णु-धातुकू आम (सू०५६१) न हो। ऊर्णु+अ । यहां सू० ४४० से रकारकू द्वित्व पाया, परन्तु—॥

६५३ न न्द्राः संयोगादयः । ६ । १ । ३ ॥

अचः पराः संयोगादयो नदरा द्विर्न भवन्ति। नु-शब्दस्य द्वित्वम् ॥

अच्-से परे संयोगकी आदिके जो न-द-र तिने द्वित्व (सू० ४४०) न हो। अतः नु-मात्रकू द्वित्व होता है। ऊर्णुनाव (सू० २०३।२७) (उसने ढका)। ऊर्णुनुवतुः (सू० २२१) (उन दोने ढका)। ऊर्णुनुवुः (उनोंने ढका)। ऊर्णुनु+इ+थ ॥

६५४ विभाषोर्णोः। १। २। ३ ॥

इडादि-प्रत्ययो वा ङित्स्यात् ॥

ऊर्णु-धातुसे परे जिसकी आदिमें इट् ऐसा प्रत्यय विकल्पसे ङित् हो। ऊर्णुनुविथ (सू० २२१), ऊर्णुनविथ (सू० ४३४। २७) (तूने ढका)। ऊर्णुनाव (मैंने ढका)। ऊर्णुनुवे। ऊर्णुनुवाते। ऊर्णुनुविरे। ऊर्णुनुविषे, ऊर्णुनविषे। ऊर्णुनुवे। ऊर्णुविता, ऊर्णविता (तू ढकेगा)। ऊर्णुवितासि, ऊर्णवितासि; ऊर्णुवितासे, ऊर्णवितासे (तू ढकेगा)। ऊर्णुवितास्मि, ऊर्णवितास्मि; ऊर्णुविताहे, ऊर्णविताहे (मै ढकूंगा)। ऊर्णुविष्यति, ऊर्णविष्यति; ऊर्णुविष्यते, ऊर्णविष्यते (वोह ढकेगा)। ऊर्णुविष्यसि, ऊर्णविष्यसि; ऊर्णुविष्यसे, ऊर्णविष्यसे (तू ढकेगा)। ऊर्णुविष्यामि, ऊर्णविष्यामि; ऊर्णुविष्ये, ऊर्णविष्ये (मैं ढकूंगा)। ऊर्णौतु (सू० ६५१), ऊर्णोतु (सू० ४३४), ऊर्णुतात् (सू० ४५८) (वोह ढके)। ऊर्णुहि, ऊर्णुतात् (तू ढक)। ऊर्णवानि (मैं ढकूं)। ऊर्णुताम्। ऊर्णुष्व। ऊर्णवै (सू० ५६९)॥ ऊर्णु+त (सू० ४७२। ४९२) आ+ऊर्णु+त् ॥

६५५ गुणोऽपृक्ते। ७। ३। ९१ ॥

ऊर्णोतेर्गुणोऽपृक्ते हलादौ पिति सार्वधातुके। वृद्ध्यपवादः ॥

ऊर्णु-धातुकू गुण हो, अपृक्त-(सू० १९९) हलादि पित् सार्वधातुक परे रहते। यह सूत्र वृद्धि (सू० ६५१) का अपवाद है। और्णोत् (सू० २१९) (उसने ढका)। और्णोः (तूने ढका)।

औणवम् (मैंने ढका) । औणुत । औणुथाः । औणुवि । ऊर्णुयात् , ऊर्णुवीत (सू० ५७० । २२१) (वोह ढके) । ऊर्णुयाः, ऊर्णुवीथाः (तू ढक) । ऊर्णुयाम् , ऊर्णुवीय (मैं ढकूं) । ऊर्णूयात् (सू० ५३३); ऊर्णुविषीष्ट, ऊर्णविषीष्ट (सू० ६५४) (ईश्वर करै वोह ढके) । ऊर्णूयाः; ऊर्णुविषीष्ठाः, ऊर्णविषीष्ठाः (ई०तू ढक) । ऊर्णूयासम् ; ऊर्णुविषीय, ऊर्णविषीय (ई० मैं ढकूं) ॥ आ+ऊर्णु+इ+सिच्+त् (सू० ४९३) ॥

६५६ ऊर्णोतेर्विभाषा । ७ । २ । ६ ॥

इडादौ परस्मैपदे परे सिचि वा वृद्धिः । पक्षे गुणः ॥

इडादि-परस्मैपद सिच् परे रहते ऊर्णु-धातुकू विकल्पकरकै वृद्धि हो । पक्षान्तरमें गुण हो । और्णावीत् (सू०४९४), और्णुवीत् (सू० ६५४), और्णवीत् (उसने ढका) । और्णाविष्टाम् , और्णुविष्टाम् , और्णविष्टाम् (उन दोने ढका) । और्णाविषुः, और्णुविषुः, और्णविषुः (उनोंने ढका) । और्णावीः, और्णुवीः, और्णवीः (तूने ढका) । और्णाविष्टम् , और्णुविष्टम् , और्णविष्टम् (तुम दोने ढका) । और्णाविष्ट, और्णुविष्ट, और्णविष्ट (तुमने ढका) । और्णाविषम् , और्णुविषम् , और्णविषम् (मैंने ढका) । और्णाविष्व, और्णुविष्व, और्णविष्व (हम दोने ढका) । और्णाविष्म, और्णुविष्म, और्णविष्म (हमने ढका) । और्णुविष्ट (सू० ६५४ । २२१), और्णविष्ट (सू० ४३४ । २७) । और्णुविषाताम् , और्णविषाताम् । और्णुविषत, और्णविषत । और्णुविष्ठाः, और्णविष्ठाः । और्णुविषाथाम् , और्णविषाथाम् । और्णुविढ्वम् , और्णविढ्वम् । और्णुविषि, और्णविषि । और्णुविष्वहि, और्णविष्वहि । और्णुविष्महि, और्णविष्महि । और्णुविष्यत् , और्णविष्यत् ; और्णुविष्यत, और्णविष्यत (जो वह ढके) । और्णुविष्यः, और्णविष्यः; और्णुविष्यथाः, और्णविष्यथाः (जो तू ढके) । और्णुविष्यम् , और्णविष्यम् ; और्णुविष्ये, और्णविष्ये (जो मैं ढकूं) ॥

॥ इत्यदादयः ॥

अथ जुहोत्यादयः।

हु-दानादनयोः। १। परस्मै० सकर्म० अनिट्॥

हु (यज्ञ करना, खाना)। हु+शप्+ति॥

६५७ जुहोत्यादिभ्यः श्लुः। २। ४। ७५॥

शपः श्लुः स्यात्॥

जुहोत्यादि-गणकी धातुओंसे परे शप्-का श्लु (लोप, मू०२११) हो। हु+ति॥

६५८ श्लौ। ६। १। १०॥

धातोर्द्वे स्तः॥

श्लु-के विषयमें धातुकू द्वित्व हो। हु-हु+ति (मू० ५०३।४३४) जुहोति (वोह यज्ञ करता है)। जुहुतः (मू०६५०) (वे दो यज्ञ करते हैं)। जुहु+झि॥

६५९ अदभ्यस्तात्। ७। १। ४॥

झस्यात् स्यात्॥

अभ्यस्त-संज्ञक-(मू०३८७) धातुसे परे झ-कू अत् आदेश हो। जुह्वति (मू० ५५१) (वे यज्ञ करते हैं)॥ हु+लिट्=ति (मू० ४३८)॥

६६० भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च। ३। १। ३९॥

एभ्यो लिटि आम्वा स्यात्, आमि श्लाविव कार्यं च॥

भी (डरना), ह्री (लजाना), भृ (पालना), हु (यज्ञ करना) इन धातुओंसे लिट् परे रहते आम् विकल्प करके हो, और आम् परे रहतेभी श्लु-की सदृश कार्य (मू० ६५८) हो। जुहवाञ्चकार, जुहाव (मू० ४४० । २०३) (उसने यज्ञ किया)। होता (मू० ४४९) (वोह यज्ञ करैगा)। होष्यति (वोह यज्ञ करैगा)। जुहोतु (मू० ४५७), जुहुतात् (मू० ४५८) (वोह

यज्ञ करै)। जुहुताम् (वे दो यज्ञ करैं)। जुव्हतु (सू० ६५९) (वे यज्ञ करैं)। जुहुधि (सू० ६०७) (तू यज्ञ कर)। जुहवानि (सू० ४६४) (मैं यज्ञ करूं)। अजुहोत् (सू० ४७२) (उसने यज्ञ किया)। अजुहुताम् (उन दोने यज्ञ किया)। अजुहु+झि = जुस (सू० ४०६ । ४४९) ॥

६६१ जुसि च । ७ । ३ । ८३ ॥

इगन्तांगस्य गुणोऽजादौ जुसि ॥

जिसके अन्तमें इक् हो ऐसे अंगकू गुण हो, अजादि जुस् परे रहते । अजुहवुः (सू० २७) (उनोंने यज्ञ किया)। जुहुयात् (वोह यज्ञ करै)। हूयात् (सू० ४७९।४८० । ५३३) (ई० वोह यज्ञ करै)। हूयास्तामित्यादि ॥ अहु+स्+त् (सू० ४९३ । ५३४ । १७०) अहौषीत् (उसने यज्ञ किया था)। अहौष्टाम् (इन दोने यज्ञ किया था)। अहौषुः (उनोंने यज्ञ किया था) । अहौषीः (तूने यज्ञ किया था)। अहौषम् (मैने यज्ञ किया था)। अहोष्यत् (जो वह यज्ञ करै)। अहोष्यः (जो तू यज्ञ करै)। अहोष्यम् (जो मैं यज्ञ करूं)॥

ञिभी-भये । २ । पर० सक० अनिट् ॥

ञिभी = भी (सू० ५११) (डरना)। बिभेति (सू० ४४३। ४३४ । ६५८) (वोह डरता है)। बिभी+तस् (सू० ५५०)॥

६६२ भियोऽन्यतरस्याम् । ६ । ४ । ११५ ॥

इकारो वा स्याद्धलादौ क्ङिति सार्वधातुके ॥

भी-धातुकू इकार विकल्पकरके हो, हलादि-कित् वा ङित् सार्वधातुक परे रहते । बिभितः, बिभीतः (वे दो डरते हैं)। बिभ्यति (सू० ६५९ । १९) (वे डरते हैं)। बिभेषि (तू डरता है)। बिभेमि (मैं डरता हूं)। बिभयाञ्चकार (सू० ६६०), बिभाय (सू० २०३ । २७) (वोह डरा)। भेता (वोह डरैगा)। भेष्यति (वोह डरैगा)। बिभेतु, बिभितात् (सू० ४५८ । ६६२),

बिभीतात् (वोह डरै)। बिभेहि (तू डर)। बिभ्यानि (मैं डरूं)। अबिभेत् (वोह डरा)। अबिभेः (तू डरा)। अबिभयम् (मैं डरा)। बिभियात् (सू० ६६२), बिभीयात् (वोह डरै)। बिभियाः,बिभीयाः (तू डरै)। बिभियाम् , बिभीयाम् (मैं डरूं)। भीयात् (ई० वोह डरै)। अभैषीत् (सू० ४९३। ५३४) (वोह डरा)। अभैष्टाम (वे दो डरें)। अभैषीः (तू डरा)। अभैषम् (मैं डरा)। अभेष्यत् (जो वोह डरै)॥

ह्री–लज्जायाम् । ३। पर० अक० अनिट्॥

ह्री (लजाना)। जिह्रेति (सू० ६५८। ४४२। ४४३। ५०३। ४३४) (वोह लज्जित होता है)। जिह्रीतः (वे दो लज्जित होते हे)। जिह्रियति (सू० ६६९। २२१) (वे लज्जित होते हैं)। जिह्रयाञ्चकार (सू०६६०), जिह्राय (वोह लज्जित हुआ)। ह्रेता (वोह लज्जित होगा)। ह्रेष्यति (वोह लज्जित होगा)। जिह्रेतु, जिह्रीतात् (वोह लज्जित हो)। अजिह्रेत् (वह लज्जित हुआ)। जिह्रीयात् (वोह लज्जित हो)। ह्रीयात् (ई० वोह लज्जित हो)। अह्रैषीत् (सू० ४८४। ४९३। ५३४) (वोह लज्जित हुआ था)। अह्रेष्यत् (जो वोह लज्जित हो)॥

पॄ–पालनपूरणयोः। ४। पर० सक० सेट्॥

पॄ (पालना वा पूर्ण करना)। पॄ+ति (सू० ६५८) पॄ पॄ+ति॥

६६३ अर्तिपिपर्त्योश्च। ७। ४। ७७॥

अभ्यासस्य इकारोऽन्तादेशः स्यात् श्लौ॥

श्लु के विषयमें ऋ (जाना) और पॄ (पालना) इन दो धातुओंके अभ्यासकू इकार अन्तादेश हो। पिपॄ+ति (सू० ४३४) पिपर्त्ति (वोह पालता है)। पिपॄ+तस्॥

६६४ उदोष्ठ्यपूर्वस्य। ७। १। १०२॥

अङ्गावयवौष्ठ्यपूर्वो य ऋत् तदन्ताङ्गस्य उत्स्यात्॥

अंगका अवयव ओष्ठस्थानीय वर्ण जिसके प्रथम हो ऐसे ऋदन्त अंगकू उत् हो । पिपुर्+तस् (सू० ३५) ॥

६६५ हलि च । ८ । २ । ७७ ॥

रेफवान्तस्य धातोरुपधाया इको दीर्घो हलि ॥

रेफान्त तथा वान्त-धातुकी उपरूप इक्-कू दीर्घ हो, हल् परे रहते । पिपूर्त्तः (वे दो पालते हैं) । पिपुरति (सू० ६५९।६६४) (वे पालते हैं) । पिपर्षि (तू पालता है) । पिपर्मि (मैं पालता हूं) । पॄ पॄ+अ (सू० ५२३ । २०३ । ३५) पपार(उसने पाला)। पपॄ+अतुस् (सू० ५०१) ॥

६६६ शॄद्दॄप्रां ह्रस्वो वा । ७ । ४ । १२ ॥

एषां किति लिटि ह्रस्वो वा स्यात् ॥

शॄ (मारना), दॄ (फाडना), पॄ (पालना) इन धातुओंकू ह्रस्व विकल्प करके हो, कित्-संज्ञक लिट् परे रहते । यह सूत्र सू० ६६७ का अपवाद है । पपॄ+अतुस् (सू० १९) पप्रतुः (उन दोने पाला) । वा । पपॄ+अतुस् ॥

६६७ ऋच्छत्यॄताम् । ७ । ४ । ११ ॥

तौदादिकऋच्छेर्ऋधातोॄतां च गुणो लिटि ॥

तुदादि-गणकी ऋच्छ-धातुकू तथा ऋ-धातुकू और ॠदन्त-धातुओंकू गुण हो, लिट् परे रहते । पपरतुः (सू० ३५) (उन दोने पाला) । पपरुः (सू० ६६६), पप्रुः (उनोंने पाला) । पॄ+इ+ता (सू० ४४७) ॥

६६८ वॄतो वा । ७ । २ । ३८ ॥

वृङ्-वृञ्-भ्यामॄदन्ताच्चेटो दीर्घो वा, नतु लिटि ॥

वृङ् (सेवा करना), वृञ् (स्वीकार करना) और ॠदन्त-धातुओंसे परे इट्-कू दीर्घ विकल्पकरके हो, परन्तु-लिट्में विकल्पसे न हो । परीता, परिता (सू० ४३४) (वोह पालेगा) । परीष्यति,

परिष्यति (वोह पालैगा) । पिपर्तु, पिपूर्त्तात् (मू० ६६३।४५७) (वोह पाले) । पिपर्धि (तू पाले) । पिपराणि (मैं पालूं) । अपिपः (मू० ४७२ । ४३४ । २०० । ११३) (उसने पाला)। अपिपूर्त्ताम् (मू०६६४ । ६६५) (उन दोने पाला) । अपिपरुः (मू०४१६ । ६६१) (उनोंने पाला) । पिपूर्यात् (मू० ६६४ । ६६५) (वोह पालैं) । पिपूर्याताम् (वे दो पालें) । पूर्यात् (ई० वोह पाले) । अपारीत् (मू०४४७ । ४९३ । ४९४ । ५३४) (उसने पाला) । अपार्+इ+म्+ताम् । यहां इट्-कू दीर्घ (मू०६६८) प्राप्त हुआ-॥

६६९ सिचि च परस्मैपदेषु । ७ । २ । ४० ॥

अत्र इटो न दीर्घः ॥

वृङ् तथा वृञ् और ऋदन्त धातुओंसे सिच् परे रहते इट्-कू दीर्घ न हो, परस्मैपदमें । अपारिष्टाम् (मू० १७० । ७१) (उन दोने पाला) । अपरीष्यत् , अपरिष्यत् (मू० ६६८) (जो वोह पाले) ॥

ओ-हाक्-त्यागे । ९ । पर० सक० अनिट् ॥

ओहाक् = हा (त्यागना) । जहाति (मू० ४५८ । ५०३) (वोह त्यागता है) । जहा+तस् (मू०५५०) ॥

६७० जहातेश्च । ६ । ४ । ११६ ॥

इद्वा स्याद्धलादौ क्ङिति सार्वधातुके ॥

हा-धातुकू इकार विकल्पकरकै हो, हलादि-कित् वा ङित्-सार्वधातुक परे रहते । जहितः (वे दो त्यागते है) । वा । जहा+तः ॥

६७१ ई हल्यघोः । ६ । ४ । ११३ ॥

श्नाभ्यस्तयो रात ई स्यात्सार्वधातुके किति ङिति हलि, नतु घोः ॥

श्ना (मू० ७४४) और अभ्यस्त-(मू० ३८७) के आ-कू ई हो कित् वा ङित् सार्वधातुक परे रहते, परन्तु-अभ्यस्त-संज्ञक

घु-(सू० ६७६) कू न हो । जहीतः (वे दो त्यागते हैं) । जहा+अति (सू० ६५९) ॥

६७२ श्नाभ्यस्तयोरातः । ६ । ४ । ११२ ॥

अनयोरातो लोपः क्ङिति सार्वधातुके ॥

श्ना-(सू० ७४४) प्रत्यय और अभ्यस्त-(सू० ३८७) संज्ञकके आ-का लोप हो, कित् अथवा ङित् सार्वधातुक प्रत्यय परे रहते । जहति (वे त्यागते हैं) । जहौ (सू० ५३८) (उसने त्यागा) । जहतुः (सू० ५३९) (उन दोने त्यागा) । हाता (वोह त्यागेगा) । हास्यति (वोह त्यागेगा) । जहातु (सू० ४५७), जहितात् (सू० ६७०), जहीतात् (सू० ६७१) (वोह त्यागै) । जहा+हि (सू० ४६१) ॥

६७३ आ च हौ । ६ । ४ । ११७ ॥

जहातेर्हौ परे आ स्याच्चादिदीतौ ॥

हि परे रहते हा-धातुके आ कू आ हो, चकारसे इत् (इ) हो तथा ईत् (ई) हो । जहाहि, जहिहि, जहीहि (तू त्याग) । अजहात् (उसने त्यागा) । अजहुः (सू० ४९६ । ६७२) (उनोंने त्यागा) । जहा+या+त् (सू० ४७४) ॥

६७४ लोपो यि । ६ । ४ । ११८ ॥

जहातेरातो लोपो यादौ सार्वधातुके परे ॥

यकारादि-सार्वधातुक परे रहते हा-धातुके आका लोप हो । जह्यात् (वोह त्यागै) । हेयात् (सू० ४७९ । ५४०) (ई० वोह त्यागै) । हेयास्तामित्यादि ॥ अहासीत् (सू० ५४५ । ४९३ । ४९४) (उसने त्यागा था) । अहासिष्टामित्यादि ॥ अहास्यत् (जो वोह त्यागै) ॥

माङ्-माने शब्दे च । ६ । आत्मने० सकर्म० अनिट् ॥

१ शब्देऽकर्मकः ।

माङ्=मा (मान करना वा शब्द करना)। मामा+ते (सू० ६५८। ५५८)॥

६७५ भृञामित्। ७। ४। ७६॥

भृञ् माङ् ओहाङ् एषा त्रयाणामभ्यासस्य इत्स्यात् श्लौ॥

भृञ् (पालना), माङ् (मान करना), ओहाङ्=हा (जाना) इन तीन धातुओंके अभ्यासकू इ हो, श्लु-के विषयमें। मि मा+ते (सू० ६७१) मिमीते (वोह प्र-मान करता है)। मिमाते (सू० ६७२) (वे दो मान करते हैं)। मिमते (सू० ६५९। ६७२) (वे मान करते हैं)। मिमीषे (तू मान करता है)। मिमे (मैंने मान किया)। ममे (सू० ५६३। ४४०। ४४३। ५३९) (उसने मान किया)। ममिषे (तूने मान किया)। माता (वोह मान करेगा)। मास्यते (वोह मान करेगा)। मिमीताम् (सू०५६७। ६७१) (वोह मान करे)। मिमीष्व (त मान करे)। मिमै (मैं मान करूं)। अमिमीत (उसने मान किया)। अमिमीथाः (तूने मान किया)। अमिमे (मैंने मान किया)। मिमीत(सू० ५७०। ६७१) (वोह मान करे)। मिमीयाताम् (वे दो मान करें)। मासीष्ट (सू० ५७३) (ई० वोह मान करे)। मासीयास्तामित्यादि॥ अमास्त (सू० ४८३। ४८४) (उसने मान किया)। अमासाताम् (उन दोने मान किया)। अमास्यत् (जो वोह मान करे)॥

ओहाङ्-गतौ। ७। आत्मने० सकर्म० अनिट्॥

ओहाङ्=हा (जाना)। जिहीते (सू० ६७१) (वोह जाता है)। जिहाते (सू० ६७२) (वे दो जाते हैं)। जिहते (सू० ६५९। ६७२) (वे जाते है)। जिहीसे (तू जाता है)। जिहते (मैं जाता हूं)। जहे (सू० ५६३। ५३९) (वोह गया)। हाता (वोह जायगा)। हास्यते (वोह जायगा)। जिहीताम् (सू० ५६७) (वोह जाय)। अजिहीत (वोह गया)। जिहीत

(मू० ५७० । ६७२) (वोह जाय) । हासीष्ट (मू० ५७३) (ई० वोह जाय) । अहास्त (मू० ४८४) (वोह गया) । अहास्यत (जो वोह जाय) ॥

डुभृञ्-धारणपोषणयोः । ८ । उभय० सकर्म० अनिट् ॥

डुभृञ्=भृ (धारण करना वा पोसना) । बिभर्त्ति, बिभृते (वोह धारण करता है)। बिभृतः, बिभ्राते (वे दो धारण करते हैं)। बिभ्रति (मू० ६५९ । १९), बिभ्रते (वे धारण करते हैं) । बिभरांचकार (मू० ६६०), बभार (मू० ५२३ । २०३), बिभराञ्चक्रे, बभ्रे (मू० ५६३) (उसने धारण किया) । बभर्थ, बभृषे (तूने धारण किया) । बभृव (मू०५२९), बभृवहे (हम दोने धारण किया) । भर्त्ता (मू० ५२५) (वोह धारण करैगा) । भर्त्तासि, भर्त्तासे (तू धारण करैगा)।भरिष्यति, भरिष्यते (मू०५४७) (वोह धारण करैगा) । बिभर्त्तु, बिभृतात् ; बिभृताम् (वोह धारण करै) । बिभराणि, बिभरै (मै धारण करूं) । अबिभः (मू० ४३४ । २०० । ११३), अबिभृत (उसने धारण किया) । अबिभृताम् , अबिभ्राताम् (उन दोने धारण किया) । अबिभरुः (मू० ४१६ । ६६१), अबिभ्रत (उनोंने धारण किया) । बिभृयात् , बिभ्रीत (मू० ५७०) (वोह धारण करै) । भ्रियात् (मू० ४७९ । ५१४), भृषीष्ट (मू० ५७३ । ५९५ । ४८१) (ई० वोह धारण करै) । अभार्षीत् (मू० ४९३। ५१४), अभृत (मू० ५९५ । ४८१ । ५९६) (उसने धारण किया था) । अभरिष्यत् (मू० ५४७), अभरिष्यत (जो वोह धारण करै) ॥

डुदाञ्-दाने । ९ । उभय० सकर्म० सेट् ॥

डुदाञ्=(मू०५११) दा (देना) । ददाति, दत्ते (मू०६७२। ९१) (वोह देता है) । दत्तः (मू०६७२ । ९१), ददाते (वे दो देते हैं) । ददति (मू० ६५९ । ६७२), ददते (मू० ६५९। ५५८) (वे देते हैं) । ददौ (मू० ५३८), ददे (मू० ५६३ ।

५३९) (उसने दिया)। दाता (वोह देगा)। दातासि, दातासे (तू देगा)। दास्यति, दास्यते (वोह देगा)। ददातु, दत्तात्; दत्ताम् (सू० ६७२।५६७) (वोह दे)। ददा+हि (सू०४६१)॥

६७६ दाधाघ्वदाप्। १। १। २०॥

दारूपा धारूपाश्च धातवो घुसंज्ञाः स्युर्दापदैपौ विना॥

दाप् (काटना), दैप् (निर्मल करना) इन दो धातुओंकू छोडकर दारूप[1] और धारूप[2] धातु घुसंज्ञक हो। देहि (सू०६२७), दत्स्व (तू दे)। अददात्, अदत्त (सू०६७२) (उसने दिया)। दद्यात् (सू० ४७४। ६७२), ददीत (सू० ५७०। ६७२) (वोह दे)। देयात् (सू० ९४०), दासीष्ट (सू० ५७३। ५७०) (ई० वोह दे)। अदात् (सू० ४८५) वा। अदा+स्+त॥

६७७ स्थाघ्वोरिच्च। १। २। १७॥

अनयोरिदन्तादेशः सिच्च कित्स्यादात्मने पदे॥

स्था और घु-संज्ञक (सू० ६७६) धातुके अंत्यके अक्षरकू इत् हो, और सिच् कित् हो। अदि+स् त (सू०५९६) अदित (उसने दिया था)। अदाताम्, अदिताम् (उन दोने दिया था)। अदुः (सू० ५३९), अदिषत (उनोंने दिया था)। अदास्यत्, अदास्यत (जो वोह दे)॥

डुधाञ्-धारणपोषणयोः। १०। उभ० सक० अनिट्॥

डुधाञ् = धा (धारण करना वा पोषण करना)। दधाति (वोह धारण करता है)। दधा+तस्॥

६७८ दधस्तथोश्च। ८। २। ३८॥

द्विरुक्तस्य झषन्तस्य धाञो बशो भष्, तथोः स्ध्वोश्च परतः॥

द्वित्व किये हुए झषन्त धा-धातुके बश्-कू भष् हो त और थ तथा स और ध्वके परे रहते। धधा+तः (सू०६७२। ९१) धत्तः

---

१ दा (देना), दो (खंडन करना), दे (रक्षा करना वा प्रत्यर्पण करना)।

२ धा (धारण करना), धे (पान करना)।

(वे दो धारण करते हैं) । दधति (मू० ६५९) (वे धारण करते हैं) । दधासि (तू धारण करता है) । धत्थः (मू० ६७८) (तुम दो धारण करते हो) । धत्थ (तुम धारण करते हो) । धत्ते (मू०५५८।६७८)। दधाते । दधते (मू०६५९) । धत्से । दधाथे । धध्वे । दधातु (वोह धारण करै) । दधा+हि (मू० ६७६ । ६२७) धेहि (तू धारण करै) । दधानि (मै धारण करूं) । धत्ताम् । धत्स्व । दधै । अदधात , अधत्त (मू० ६७२ । ६७८) (उसने धारण करा) । दध्यात् (मू० ४७४ । ६७२), दधीत (मू० ५७०।६७२) (वोह धारण करै) । धेयात् (मू० ५४०), धासीष्ट (मू० ५७० । ५७३) (ई० वोह धारण करै) । अधात (मू० ४८५), अधित (मू० ६७७ । ५२६) (उसने धारण किया) । अधास्यत् , अधास्यत (जो वोह धारण करै) ॥

णिजिर्-शौचपोषणयोः । ११ ।

णिजिर्=निजिर् (मू० ५०७) (शुद्ध करना वा पोषण करना) ॥

६७९ (इर इत्संज्ञा वाच्या) ॥

धातुके इर्-की इत्संज्ञा कहनी चाहिये । निनिज्+ति (मू०६५८) ॥

६८० निजां त्रयाणां गुणः श्लौ । ७ । ४ । ७५ ॥

निज्विज्विषामभ्यासस्य गुणः स्यात् श्लौ ॥

निज् (शुद्ध करना), विज् (पृथक् करना), विष् (विप्लृ) (व्याप्त होना) इन तीन धातुओंके अभ्यास-(मू० ४४१) कू गुण हो श्लु-के विषयमें । नेनेज्+ति (मू० ५०० । ३३५) नेनेक्ति (वोह शुद्ध करता है) । नेनिक्तः (मू० ५५० । ४८१) (वे दो शुद्ध करते हैं) । नेनिजति (मू० ६५९) (वे शुद्ध करते हैं) । नेनेक्षि (मू० १७०) (तू शुद्ध करता है) । नेनेज्मि (मैं शुद्ध करता हूं) । नेनिक्ते (मू०५५०)। नेनिजाते। नेनिजते । नेनिक्षे ।

नेनिजे। निनेज (मू० ५००), निनिजे (मू० ५६३।५०१।४८१) (उसने शुद्ध करा) । नेक्ता (वोह शुद्ध करैगा)। नेक्तासि, नेक्तासे (वोह शुद्ध करैगा)। नेक्ष्यति (मू० ३३५ । १७०), नेक्ष्यते (वोह शुद्ध करैगा)। नेनेक्तु, नेनिक्तात्; नेनिक्ताम् (वोह शुद्ध करै)। नेनिग्धि (मू० ६०७ । ३३५), नेनिक्ष्व (तू शुद्ध कर)। नेनिज्+आ+नि (मू० ४६३ । ४६४) ॥

६८१ नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके। ७। ३।८७॥

लघूपधगुणो न स्यात ॥

अभ्यस्तसंज्ञक धातुकी लघु-(मू० ४९७) उपधा-(मू० १९७) कू गुण न हो, पित्-सार्वधातुक परे रहते । यह सूत्र मू० ५०० का बाधक है। नेनिजानि, नेनिजै (मैं शुद्ध करूं)। अनेनेक् (ग्) (मू० २०० । ३३५।१६६), अनेनिक्त (उसने शुद्ध किया)। अनेनिक्ताम्, अनेनिजाताम् (उन दोने शुद्ध किया) । अनेनिजुः (मू०४९६), अनेनिजत (उनोंने शुद्ध किया)। अनेनिजम्, अनेनिजि (मैंने शुद्ध किया)। नेनिज्यात्, नेनिजीत (मू०५७०) (वोह शुद्ध करै)। निज्यात्, निक्षीष्ट (मू० ५७३ । ६४० । ४८१) (ई० वोह शुद्ध करै)। अनिज्+च्लि+त् ॥

६८२ इरितो वा। ३। १। ५७॥

इरितो धातोश्च्लेरङ् वा परस्मैपदेषु ॥

जिस धातुके इर्की इत्संज्ञा (मू०६७९) हो, उससे परे च्लि-कू अङ् (अ) विकल्पसे हो, परस्मैपदमें । अनिजत्, अनैक्षीत् (मू० ४८४ । ५१४ । ५२५); अनिक्त (मू० ५२८) (उसने शुद्ध किया)। अनेक्ष्यत्, अनेक्ष्यत (जो वोह शुद्ध करै)॥

॥ इति जुहोत्यादयः ॥

अथ दिवादयः ।

दिवु–क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु । १ । परस्मै० सकर्म० (अकर्म० च) सेट् ॥

दिवु = दिव् क्रीडा करना । विजयकी इच्छा करना । व्यवहार करना । चमकना । स्तुति करना । आनन्द करना । उन्मत्त होना । शयन करना । इच्छा करना । जाना) ॥

६८१ दिवादिभ्यः श्यन् । ३ । १ । ६९ ॥

शपोऽपवादः ॥

दिवादिगणपठित धातुओंसे परे श्यन्-प्रत्यय हो । यह सूत्र शप्-(सू० ४३३) का अपवाद है । दिव्+श्यन्+ति (सू० १५६ । ३) दिव्+य+ति (सू० ६६५) दीव्यति (वोह क्रीडा करता है)। दीव्यसि (तू क्रीडा करता है) । दीव्यामि (मै क्रीडा करता हूं)। दिदेव (सू० ५००) (उसने क्रीडा करी) । देविता (वोह क्रीडा करैगा) । देविष्यति (वोह क्रीडा करैगा) । दीव्यतु (सू०४५७ । ६६५) (वोह क्रीडा करै) । अदीव्यत् (उसने क्रीडा करी) । दीव्येत् (सू० ४७६ । ४७७) (वोह क्रीडा करै) । दीव्यात् (सू० ४७९) (ई० वोह क्रीडा करै) । अदेवीत् (सू० ४९४) (उसने क्रीडा की थी) । अदेविष्यत् (जो वोह क्रीडा करै)। एवम्–॥

षिवु–तन्तुसन्ताने । २ । पर० सक० सेट् ॥

इसी उक्त-प्रकारसे षिवु = सिव्-(सू० २८३) (तन्तु विस्तार (सीवना) करना) धातुके रूप जानो ॥

नृती–गात्रविक्षेपे । ३ । पर० अकर्म० सेट ॥[1]

नृती = नृत् (नाचना) । नृत्यति (वोह नाचता है) । ननर्त्त (सू० ५२३ । ५००) (वोह नाचा) । नर्त्तिता (वोह नाचेगा)। नृत्+स्य+ति । इस दशामें–॥

१ क्त्वा वेट् ।

६८२ सेऽसिचि कृतचृतच्छृदतृदनृतः। ७। २। ५७॥

एभ्यः परस्य सिज्भिन्नस्य सादेरार्धधातुकस्येड्वा स्यात्॥

कृत (काटना), चृत (मारना) छृद (उच्छिदिर्) (क्रीडा करना वा चमकना), तृद् (उतृदिर्) (मारना वा अनादर करना), नृत् (नाचना) इन धातुओंसे परे सिच्-(सू० ४८४) भिन्न सकारादि आर्धधातुकको विकल्पकरके इट्-का आगम हो। नर्तिष्यति, नर्त्स्यति (वोह नाचेगा)। नृत्यतु, नृत्यतात् (वोह नाचे)। अनृत्यत् (वोह नाचा)। नृत्येत् (वोह नाचै)। नृत्यात् (ई० वोह नाचे)। अनर्तीत् (सू० ४९३। ४९४) (वोह नाचा)। अनर्तिष्यत (सू० ६८२), अनर्त्स्यत् (जो वोह नाचै)॥

त्रसी-उद्वेगे। ४। पर० अक० सेट् फणादि॥

त्रसी = त्रस् (घबराना)। त्रस्यति (सू० ५३५), त्रसति (वोह घबराता है)। तत्रास (सू० ४४२। ५०४) (वोह घबराया)। तत्रस+अतुस्॥

६८३ वा जृभ्रमुत्रसाम्। ६। ४। १२४॥

एषा किति लिटि सेटि थलि च एत्वाभ्यासलोपौ वा॥

जृ (प्राचीन होना), भ्रम् (घूमना), त्रस् (घबराना) इन धातुओंके अकारको एकार अभ्यासका लोप विकल्पकरके हो, कित् (सू० ५०१) लिट् और सेट् थल परे रहते। त्रेसतुः, तत्रसतुः (वे दो घबराये)। तत्रसुः (वे घबराये)। त्रेसिथ, तत्रसिथ (तू घबराया)। त्रसिता (वोह घबरावेगा)। त्रसिष्यति (वोह घबरावेगा)। त्रस्यतु, त्रसतु (वोह घबरावे)। अत्रस्यत्, अत्रसत् (वोह घबराया)। त्रस्येत्, त्रसेत् (वोह घबरावे)। त्रस्यात् (ई० वोह घबरावे)। अत्रासीत्, अत्रसीत् (वोह घबराया)। अत्रसिष्यत् (जो वोह घबरावे)॥

शो-तनूकरणे। ५। पर० सक० अनिट्॥

शो (पतला करना)। शो+य+ति (सू० ६८१)॥

६८४ ओतः श्यनि । ७ । ३ । ७१ ॥

लोपः स्यात् श्यनि ॥

श्यन्-प्रत्यय परे रहते ओकारका लोप हो। श्यति (वोह पतला करता है)। श्यतः (वे दो पतला करते हैं)। श्यन्ति (वे पतला करते हैं)। शो–शो+अ (मू० ५४३ । ४४३) शश+अ (मू० ५३८ । ५३९ । ३९) शशौ (उसने पतला किया)। शशतुः (मू० ५४३ । ४३८) (उन दोने पतला किया)। शशुः (मू० ५४३ । ५३९) (उनोंने पतला किया) । शाता (मू० ५४३) (वोह पतला करेगा)। शास्यति (वोह पतला करेगा)। श्यतु (वोह पतला करे)। अश्यत् (उसने पतला किया) । अ+शा+स्+त् (मू० ५४३ । ४८४) ॥

६८५ विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः । २ । ४ । ७८ ॥

एभ्यः सिचो लुग्वा परस्मैपदे परे ॥

घ्रा (सूंघना), धेट् (पीना), शा (शो) (पतला करना), छो (काटना), षो (नाश करना) इन धातुओंसे परे सिच्-का विकल्पसे लुक् (लोप) हो, परस्मैपद प्रत्यय परे रहते । अशात्, अशाशीत् (मू० ५४५) (उसने पतला किया)। अशाताम्, अशासिष्टाम (उन दोने पतला किया)। अशुः (मू०५४३।५४१।५४२),अशासिषुः (उनोंने पतला किया)। अशास्यत् (जो वोह पतला करे) ॥

छो–छेदने । ६ । पर० सक० अनिट ॥

छो (काटना)। छ्यति (मू० ६८१।६८४) (वह काटता है)। अच्छात्, अच्छासीत् (उसने काटा था) ॥

षो–अन्तकर्मणि । ७ । पर० अक० अनिट ॥

षो (मू० २८३) सो (नाश करना) । स्यति (वोह नाश करता है)। ससौ (मू० ५४३ । ४४० । ४४३ । ५३८ । ३९) (उसने नाश किया)। असात्, असासीत् (उसने नाश किया था)॥

दो-अवखण्डने। ८। पर० सकर्म० अनिट्॥

दो (तोडना। काटना)। द्यति (वोह तोडता है)। ददौ(उसने काटा)। देयात् (मू० ५४०) (ईश्वर करै वोह तोडै)। अदात् (मू० ४८५) (उसने तोडा था)॥

व्यध-ताडने। ९। पर० सक० अनिट्॥

व्यध् (मारना)। व्यध्+य+ति॥

६८६ ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च। ६। १। १६॥

एषां सम्प्रसारणं स्यात् किति ङिति च॥

ग्रह (लेना), ज्या (वृद्ध होना), वय् (बुनना), व्यध् (मारना),वश् (इच्छा करना),व्यच् (ठगना), व्रश्च (काटना), प्रच्छ (पूछना,) भ्रस्ज् (भूनना) इन धातुओंकू सम्प्रसारण (मू० २८४) हो कित् वा ङित् प्रत्यय परे रहते। मू० ५५० से श्यन् (मू० ६८१) ङित् है और उक्त (मू० ६८६) सूत्रसे व्यध-के य-कारकू ई सम्प्रसारण हो गया। विध्यति (वोह मारता है)। विव्याध (मू०५९७। २८६। ५०४) (उसने मारा) विविधतुः (उन दोने मारा)। विविधुः (उनोंने मारा)। विव्यधिथ (मू० ५३२), विव्यद्ध (मू० ९३१। ६००) (तूने मारा)। व्यद्धा (मू० ६००) (वोह मारेगा)। व्यत्स्यति (वोह मारैगा)। विध्यतु (वोह मारे)। अविध्यत् (उसने मारा)। विध्येत् (मू० ४७४। ४७६। ३३।४७७) (वोह मारे)। विध्यात् (मू०४८०) (ई० वोह मारे)। अव्यात्सीत् (मू० ४६३।५१४।९१) (उसने मारा)। अव्यत्स्यत् (जो वोह मारै)॥

पुष-पुष्टौ। १०। पर० अक० अनिट॥

पुष्[1] (पुष्ट करना)। पुष्यति (वोह पुष्ट करता है)। पुपोष (मू० ५००) (उसने पुष्ट किया)। पुपुषतुः (मू०५०१) (उन

१ पोषणे सकर्मकः।

दोने पुष्ट किया)। पुपोषिथ (सू० ५२९) (तूने पुष्ट किया)। पोष्टा (सू ० ७९) (वोह पुष्ट करेगा)। पोक्ष्यति (सू० ५९९। १७०) (वोह पुष्ट करेगा)। पुष्यतु (वोह पुष्ट करै)। अपुष्यत् (उसने पुष्ट किया) । पुष्येत् (वोह पुष्ट करै)। पुष्यात् (ई० वोह पुष्ट करै)। अपुषत् (सू० ५५७) (उसने पुष्ट किया)। अपोक्ष्यत् (जो वोह पुष्ट करै) ॥

शुष-शोषणे। ११। पर०सक० अनिट ॥

शुष् (सूखना)। शुष्यति (वोह सूखता है)। शुशोष (वोह सूखा)। अशुषत (सू० ५५७) (वोह सूख गया) ॥

णश-अदर्शने। १२। परस्मै० अकर्म० वेट ॥

णश (सू० ५०७) नश् (नष्ट होना) । नश्यति (वोह नष्ट होता है)। ननाश (वह नष्ट हुआ) । नेशतुः (सू० ५०९) (वे दो नष्ट हुए)। ननश्+थ ॥

६८७ रधादिभ्यश्च। ७। २। ४५ ॥

रधूनशूतृपदृपद्रुहमुहृष्णुहष्णिह् एभ्यो वलाद्यार्धधातुकस्य वेट स्यात् ॥

रधू (हिंसा करना। उत्पन्न करना), नश् (नष्ट होना), तृप् (तृप्त होना। तृप्त करना), दृप् (हर्ष करना। गर्व करना), द्रुह् (मारनेकी इच्छा करना), मुह् (मोहित होना), ष्णुह् (कै करना), ष्णिह् (दुलारना) इन धातुओंसे परे वलादि-आर्धधातुकको इट्-का आगम विकल्पकरके हो। नेशिथ (सू० ५१०) वा-॥

६८८ मस्जिनशोर्झलि। ७। १। ६० ॥

नुम् स्यात् ॥

मस्ज् (निमग्न होना) और नश् (नष्ट होना) इन धातुओंको नुम्-का आगम हो, झल् परे रहते । ननंष्ट (सू० ३३६। ७९) (तू नष्ट हुआ)। नेशिव (सू० ५०९। ६८७), नेश्व (हम दो नष्ट हुए)। नेशिम, नेश्म (हम नष्ट हुए)। नशिता (सू०६८७), नंष्टा (वोह नष्ट होगा)। नशिष्यति, नंक्ष्यति (सू० ३३६।५९९।

१७०) (वोह नष्ट होगा)। नश्यतु (वोह नष्ट होय)। अनश्यत् (वह नष्ट हुआ)। नश्येत् (वह नष्ट हो)। नश्यात् (ई॰वोह नष्ट हो)। अनशत् (मू॰ ६५७) (वोह नष्ट हुआ)। अनशिष्यत, अनंक्ष्यत् (जो वोह नष्ट हो)॥

षूङ्-प्राणिप्रसवे। १३। आत्मने॰ सकर्म॰ सेट्॥

षूङ्=(मू॰ २८३) सू (प्राणिको उत्पन्न करना)। सूयते (मू॰ ५५८) (वह उत्पन्न करता है)। सुषुवे (मू॰ ५६३। २२१) (उसने उत्पन्न किया)। सुषुविषे (मू॰ ६२९) (तूने उत्पन्न किया)। सुषुविवहे (हम दोने उत्पन्न किया)। सुषुविमहे (हमने उत्पन्न किया)। सविता (मू॰ ५२६), सोता (वोह उत्पन्न करैगा)। सविष्यते, सोष्यते (वोह उत्पन्न करैगा)। सूयताम् (मू॰ ५६७) (वोह उत्पन्न करै)। असूयत (उसने उत्पन्न किया)। सूयेत (वह उत्पन्न करै)। सविषीष्ट (मू॰५७३), सोषीष्ट (ई॰ वोह उत्पन्न करै)। असविष्ट, असोष्ट (उसने उत्पन्न किया था)॥

दूङ्-परितापे। १४। आत्मने॰ अक॰ सेट॥

दूङ्=दू (दुःखी होना)। दूयते (वोह दुःखी होता है)। अदविष्ट (वोह दुःखी हुआ)॥

दीङ्-क्षये। १५। आत्मने॰ अक॰ अनिट्॥

दीङ्-दी (क्षय होना)। दीयते (वोह क्षीण होता है)।दि+दी+ए (मू॰ ४४३। ६६३। ५०१)॥

६८९ दीङो युडचि क्ङिति। ६। ४। ६३॥

दीङः परस्याजादेः क्ङित आर्धधातुकस्य युट् स्यात्॥

दीङ्-धातुसे परे अजादि-कित् वा ङित् आर्धधातुकको युट्-(य्) का आगम हो। दिदी+य्+ए॥

६९० (वुग्युटावुवङ्यणोः सिद्धौ वक्तव्यौ)॥

उवङ् (मू॰ २२१) वा यण् (मू॰ २२२) करनेकी इच्छामें

वुक् (मू० ४३९) और युट् (मू० ६८९) सिद्ध हों, अर्थात्- मूल ६१३ से असिद्ध न हों ऐसा कहना चाहिये। दिदीये (वोह क्षीण हुआ)। दी+ता। यहां मूल ४३४ की प्राप्ति है, क्योंकि- 'ता' गुणका निमित्त परे है॥

६९१ मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च। ६। १। ५०॥

एषामात्वं स्यात् ल्यपि, चात्-अशित्येज्निमित्ते॥

मी (मीञ्) (मारना), मि (डुमिञ्) (फेंकना) और दीङ् (क्षीण होना) इन धातुओंकू आकार हो ल्यप्-प्रत्यय(मू०९५५) परे रहते, और शित्-भिन्न गुण तथा वृद्धिका निमित्त परे रहते। दाता (वोह क्षीण होगा)। दास्यते (वोह क्षीण होगा)। दीयताम् (वोह क्षीण हो)। अदीयत (वोह क्षीण हुआ)। दीयेत (वोह क्षीण हो)। दासीष्ट (ई० वोह क्षीण हो)। अदा+स+त (मू० ४८४) यहां मूल ६७७ से इत्-की प्राप्ति होनेपर-॥

६९२ (स्थाघ्वोरित्वे दीङः प्रतिषेधः)॥

(मू० ६७७) स्थाघ्वोरिच्च। १। २। १७॥ इस सूत्रसे स्था और घु-संज्ञक (मू० ६७६) धातुओंकू इत्व विधान करनेमें दीङ्- धातुका प्रतिषेध है, अर्थात्-दीङ-धातुकू इत्व न हो। अदास्त (वोह क्षीण हो गया)। अदास्यत (जो वोह क्षीण हो)॥

डीङ्-विहायसा गतौ। १६। आत्म० अक० सेट्॥

डीङ्=डी (उडना)। डीयते (वोह उडता है)। डिड्ये (मू० ४४३। २२२) (वोह उडा)। डयिता (मू० २७) (वोह उडेगा)। डयिष्यते (वोह उडेगा)। डीयताम् (मू० ५६७) (वोह उडै)। अडीयत (वोह उडा)। डयीत (वोह उडै)। डयिषीष्ट (ई० वोह उडै)। अडयिष्ट (वोह उडा था)। अडयिष्यत (जो वोह उडै)॥

पीङ्-पाने। १७। आत्म० सक० अनिट्॥

पीङ्=पी (पीना) । पीयते (वोह पीता है) । पेता (सू० ५२५) (वोह पियेगा) ॥

माङ् -माने । १८ । आत्म० सक० अनिट् ॥

माङ्=मा (मापना । जाचना) । मायते (वोह मापता है) । ममे (उसने मापा) ॥

जनी-प्रादुर्भावे । १९ । आत्म० अकर्म० सेट्, घटादिः ॥

जनी=जन् (प्रकट होना) । जन्+य+ते (सू० ५५८) ॥

६९३ ज्ञाजनोर्जा । ७ । ३ । ७९ ॥

ज्ञा (जानना), जन (प्रकट होना) इन दो धातुओंकू जा-आदेश हो, शित् परे रहते । जायते (वोह प्रकट होता है) । जन्-जन्+त (सू० ४४२ । ५५५ । ५६३) जज्न्+ए (सू० ७७) जज्ञे (वोह प्रकट हुआ) । जनिता (वोह प्रकट होगा) । जनिष्यते (वोह प्रकट होगा) । जायताम् (सू० ६९३ । ५६७) (वोह प्रकट हो) । अजायत (वोह प्रकट हुआ) । जायेत (सू० ५७०) (वोह प्रकट हो) । जनिषीष्ट (ई० वोह प्रकट हो) । अजन्+च्लि+त (सू० ४८३) ॥

६९४ दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम् । ३ । १ । ६१ ॥

एभ्यश्च्लेश्चिण् वा स्यात् एकवचने तशब्दे परे ॥

दीप (चमकना), जन (प्रकट होना), बुध (बोध करना), पूर (भरना), तायृ (फैलाना । पालन करना), प्यायृ (फूलना) इन धातुओंसे परे च्लि-कू चिण् (इ) आदेश विकल्प करके हो, एकवचन त-प्रत्यय परे रहते । अजन्+इ+त ॥

६९५ चिणो लुक् । ६ । ४ । १०४ ॥

चिणः परस्य तशब्दस्य लुक् स्यात् ॥

चिण्-(सू० ६९४) से परे त-प्रत्ययका लुक् (लोप) हो । अजन्+इ । यहां सू० ५०४ की प्राप्ति हुई-॥

६९६ जनिवध्योश्च । ७ । ३ । ३५ ॥

अनयोरुपधाया वृद्धिर्न चिणि ञ्णिति कृति च ॥

जन् (प्रकट होना), वध् (मारना) इन धातुओंकी उपधाकू वृद्धि न हो, जब चिण् वा ञित् अथवा णित् कृत्- (सू० ३३२) प्रत्यय परे हो । अजनि, अजनिष्ट (सू० ४८४) (वोह प्रकट हुआ था) । अजनिष्यत (जो वोह प्रकट हो) ॥

दीपी-दीप्तौ । २० । आत्मने० अक० सेट् ॥

दीपी = दीप् (चमकना) । दीप्यते (वोह चमकता है) । दिदीपे (वोह चमका) । अदीपि, अदीपिष्ट (वोह चमका था) ॥

पद- गतौ । २१ । आत्मने० सकर्म० अनिट् ॥

पद् (जाना) । पद्यते (वोह जाता है) । पेदे (सू० ५०९) (वोह गया) । पत्ता (सू० ९१) (वोह जायगा) । पत्स्यते (वोह जायगा) । पद्यताम् (वोह जाय)। अपद्यत (वोह गया)। पद्येत (वोह जाय) । पत्सीष्ट (ई० वोह जाय) । अपद्+च्लि+त॥

६९७ चिण् ते पदः । ३ । १ । ६० ॥

पदः च्लेश्चिण् स्यात् तशब्दे परे ॥

पद-धातुसे परे च्लि- (सू० ४८३) कू चिण् (इ) हो, एकवचन तशब्द परे रहते । अपद्+इ+त (सू० ६९७ । ५०४) अपादि (वोह गया) । अपत्साताम (वे दो गये)। अपत्सत (वे गये)। अपत्स्यत (जो वोह जाय) ॥

विद-सत्तायाम् । २२ । आत्मने० अकर्म० अनिट् ॥

विद् (होना) । विद्यते (वोह है) । विविदे (वोह था) । वेत्ता (वोह होगा) । वेत्स्यते (वोह होगा) । विद्यताम् (वोह हो) । अविद्यत (वोह था) । विद्येत (वोह हो)। वित्सीष्ट (ई० वोह हो) । अवित्त (सू० ६४० । ४८१ । ५२८) (वोह था) । अवित्स्यत (जो वोह हो ॥

बुध- अवगमने । २३ । आत्मने० सकर्म० अनिट् ॥

बुध् (समझना । जानना)। बुध्यते (वोह समझता है) । बुबुधे (उसने समझा) । बोद्धा (सू० ६००) (वोह समझेगा) । भोत्स्यते (सू० २८१) (वोह समझेगा) । बुध्यताम् (वोह समझे) । अबुध्यत (उसने समझा) । बुध्येत (वोह समझै) । भुत्सीष्ट (सू० ६४० । ४८१ । २८१ । ९१) (ई० वोह समझे)। अबोधि (सू० ६१४ । ६१५ । ४३४), अबुद्ध (सू०६४०।४८१। ६००) (उसने समझा) । अभुत्साताम् (सू०२८१) (उन दोने समझा) । अभोत्स्यत (जो वोह समझे) ॥

युध-सम्प्रहारे । २४ । आत्मने० सकर्म० अनिट् ॥

युध् (लडना) । युध्यते (वोह लडता है) । युयुधे (वोह लडा) । योद्धा (सू० ६००) (वोह लडैगा) । योत्स्यते (वोह लडैगा) । युध्यताम् (वोह लडै) । अयुध्यत (वोह लडा) । युध्येत (वोह लडै) । युत्सीष्ट (ई० वोह लडै) । अयुद्ध (सू० ६४० । ४८१ । ६००) (वोह लडा) । अयोत्स्यत (जो वोह लडै) ॥

सृज-विसर्गे । २५ । आत्मने० सक० अनिट् ॥

सृज् (छोडना) । सृज्यते (वोह छोडता है) । ससृजे (सू० ५२३ । ५६३) (उसने छोडा) । ससृजिषे (तूने छोडा)। सृज्+ता-॥

६९८ सृजिदृशोर्झल्यमकिति । ६ । १ । ५८ ॥

अनयोरमागमः स्याज्झलादावकिति ॥

सृज् (छोडना), दृश् (देखना) इन दो धातुओंकू अम् (अ) आगम हो, झलादि-कित्-भिन्न प्रत्यय पर रहते । सृ+अ+ज्+ता = स्रज्+ता (सू० ३३६ । ७९) स्रष्टा (वोह छोडेगा) । स्रक्ष्यते (सू० ३३६ ।५९९।१७०) (वोह छोडेगा) । सृज्यताम् (वोह छोडै) । असृज्यत (उसने छोडा) । सृज्येत (वोह छोडै) । सृक्षीष्ट (ई० वोह छोडै) । असृष्ट (सू० ५२८ । ६४० । ३३६ । ७९) (उसने

छोडा)। असृक्षाताम् (मू० ६४० । ३३६ । ५९९ । १७०) (उन दोने छोडा)। असृज्यत (जो वोह छोडै)॥

मृष-तितिक्षायाम् । २६ । सकर्म० उभ० सेट्॥

मृष् (सहना)। मृष्यति, मृष्यते (वोह सहता है)। ममर्ष, ममृषे (उसने सहा)। ममर्षिथ, ममृषिषे (तूने सहा)। मर्षिता (वोह सहैगा)। मर्षितासि, मर्षितासे (तू सहैगा)। मर्षिष्यति, मर्षिष्यते (वोह सहैगा)। मृष्यतु, मृष्यताम् (वोह सहै)। अमृष्यत्, अमृष्यत (उसने सहा)। मृष्येत्, मृष्येत (वोह सहै)। मृष्यात्, मृषिषीष्ट (ई० वोह सहै)॥

णह-बन्धने । २७ ।

णह = नह् (बांधना)। नह्यति, नह्यते (वोह बांधता है)। ननाह, नेहे (उसने बांधा)। ननद्ध (मू० ५३१ । ४०३ । ६००। २३), नेहिथ (मू० ५३२) (तूने बांधा) नद्धा (वोह बांधैगा)। नत्स्यति, नत्स्यते (वोह बांधैगा)। नह्यतु, नह्यताम् (वोह बांधै)। अनह्यत्, अनह्यत (उसने बांधा)। नह्येत्, नह्येत (वोह बांधै)। नह्यात्, नत्सीष्ट (ई० वोह बांधै)। अनात्सीत् (मू० ५१४), अनद्ध (उसने बांधा)। अनत्स्यत्, अनत्स्यत (जो वोह बांधै)॥

॥ इति दिवादयः ॥

अथ स्वादयः।

षुञ्-अभिषवे[1] । १ । सक० उभ० अनिट्॥

षुञ् = सु (स्नान कराना। सोमको कूटना। स्नान करना। मद्य बनाना)॥

६९९ स्वादिभ्यः श्नुः । ३ । १ । ७३ ॥

शपोऽपवादः॥

१ अभिषव - स्नपन पीडन स्नान सुरासधान च। तत्र स्नानेऽकर्मक ।

स्वादिगणी-धातुओंसे श्नु-प्रत्यय हो। यह शप्-(मू० ४३३) का अपवाद है। सु+नु+ति (मू० १५६। ४३४) सुनोति, सुनुते (मू० ५५०। ४८१। ५५८) (वोह स्नान करता है)। सुनुतः (मू० ४३२।५५०।४८१), सुन्वाते (वे दो स्नान करते हैं)। सुन्वन्ति (मू० ५५१), सुन्वते (वे स्नान करते है)। सुन्वः (मू० ५५२), सुनुवः; सुन्वहे, सुनुवहे (हम दो स्नान करते हैं)। सुषाव, सुषुवे (उसने स्नान किया)। सोता (वोह स्नान करेगा)। सोष्यति, सोष्यते (वोह स्नान करेगा)। सुनोतु, सुनुताम् (वोह स्नान करै)। सुनु (मू० ५५३), सुनुष्व[1] (तू स्नान करै)। सुनवानि, सुनवै (मैं स्नान करूं)। असुनोत्, असुनुत (उसने स्नान किया)। सुनुयात्, सुन्वीत (वोह स्नान करै)। सूयात् (मू० ५३३), सोषीष्ट (ई० वोह स्नान करै)। असु+स्+त् (मू० ४८४)॥

७०० स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु। ७। २। ७२॥

एभ्यः सिच इट् परस्मैपदेषु॥

स्तु (स्तुति करना), सु (स्नान करना आदि), धू (कांपना) इन धातुओंसे परे सिच्-को इट् (इ) आगम हो, परस्मैपदमें। अ-सु+इ+स्+त् (मू० ५१४। ५२८। २७) असावीत्, असोष्ट (मू० ४३४। १७०। ७९) (उसने स्नान किया)। असोष्यत्, असोष्यत (जो वोह स्नान करै)॥

चिञ्-चयने। २। उभय० द्विकर्म० अनिट्॥

चिञ्=चि (इकट्ठा करना)। चिनोति, चिनुते (वोह संग्रह करता है)। चिचि+अ॥

७०१ विभाषा चेः। ७। ३। ५८॥

अभ्यासात्परस्य चिञः कुत्वं वा स्यात् सनि लिटि च॥

१ किसी २ टीकाकारोंने 'सुनुष्व' के स्थानमें 'सुन्वाताम्' ऐसा भ्रष्टरूप लिखकर कोमलमति छात्रोंको भ्रमाया है, न जाने महापण्डितोने विना समझे बूझे कैसे लिख घसीटा क्या मू० ५६८ पर ध्यान नहीं दिया।

अभ्याससे परे चिञ्-धातुके च-(मू० ८९) के स्थानमें कवर्ग विकल्प करके हो, सन (मू०७६५) और लिट् परे रहते। चिकि+अ (मू० २०३ । २७) चिकाय, चिचाय; चिक्ये, चिच्ये (उसने इकट्ठा किया)। अचैषीत्, अचेष्ट (उसने संग्रह किया)॥

स्तृञ-आच्छादने। ३। उभय० सकर्म० अनिट्॥

स्तृञ्=स्तृ (ढकना। घेरना)। स्तृणोति (मू० २३७), स्तृणुते (वोह ढकता है)। स्तृस्तृ+अ। यहां त्-का लोप (मू० ४४२) प्राप्त हुआ, परन्तु-॥

७०२ शर्पूर्वाः खयः। ७। ४। ६१॥

अभ्यासस्य शर्पूर्वा खयः शिष्यन्तेऽन्ये हलो लुप्यन्ते॥

अभ्यासके ऐसे खय् शेष रहते हैं कि जिनके प्रथम शर् हो, और हलोंका लोप हो। तस्तार (मू० २०३), तस्तरे (मू० ५४६) (उसने ढका)। तस्तरतुः (मू० ५४६), तस्तराते (उन दोने ढका)। स्तर्यात (मू० ५४८) वा। स्तृ+सी+स्+त (मू०५७३)॥

७०३ ऋतश्च संयोगादेः। ७। २। ४३॥

ऋदन्तात् संयोगादेः परयोर्लिङ्सिचोरिड्वा तङि॥

जिस धातुके अंतमें ऋ और आदिमें संयोग हो उससे परे लिङ् और सिच्-कू विकल्पसे इट् (इ) का आगम हो, आत्मनेपदमें। स्तरिषीष्ट, स्तृषीष्ट (मू०५९५। ४८१) (ई० वोह ढके)। अस्तारीत्; अस्तरिष्ट, अस्तृत (मू० ५९५।४८१।५०६) (उसने ढका)॥

धूञ्-कम्पने। ४। उभ० सक० वेट्, स्वादिः॥

धूञ्=धू (कांपना)। धूनोति, धूनुते (वोह कांपता है)। दुधाव, दुधुवे (वोह कांपा)। दुधविथ (मू० ५२६), दुधोथ; दुधविषे, दुधोषे (तू कांपा)। दुधू+व (मू० ५०१) इस दशामें-॥

७०४ श्र्युकः किति। ७। २। ११॥

श्रिञ एकाच उगन्ताच्च परयोः गित्कितोरिण् न। परमपि स्वरत्या-

दिविकल्पं बाधित्वा पुरस्तात्प्रतिषेधकाण्डारम्भसामर्थ्यादनेन निषेधे प्राप्ते क्र्यादिनियमान्नित्यमिट् ॥

श्रि-धातु अथवा उक्-प्रत्याहार जिसके अन्तमें हो ऐसे एकाच्-धातुसे परे गित् वा कित्-संज्ञक प्रत्यय परे रहते इट् न हो। परभी स्वरत्यादि-(मू० ५२६) विकल्पकू बाधकर अगाडीके निषेधकाण्डके आरम्भकी सामर्थ्यकरके इस सूत्रसे निषेधकी प्राप्ति होनेपर क्र्यादि-नियम-(मू० ५२९) से नित्यही इट् होता है। दुधुविव (मू० १२१), दुधुविवहे (हम दो कांपे)। अधावीत् (मू० ७०० । ५३४); अधविष्ट (मू० ५२६), अधोष्ट (वोह कांपा)। अधविष्यत्, अधोष्यत (मू० ५२६); अधविष्यत, अधोष्यत (जो वोह कांपै)। अधविष्यताम्, अधोष्यताम ; अधविष्येताम , अधोष्येताम (जो वे दो कांपैं) ॥

॥ इति स्वादयः ॥

अथ तुदादयः ।

तुद्–व्यथने । १ । उभय० सकर्म० अनिट् ॥

तुद् (पीडा देना) ॥

७०५ तुदादिभ्यः शः । ३ । १ । ७७ ॥

शपोऽपवादः ॥

तुदादिगणीय धातुओंसे परे श-(मू० १५६–अ) प्रत्यय हो। यह श शप्-(मू० ४३३) का अपवाद है। तुदति, तुदते (मू० ४३२ । ५५० । ४८१ । ५५८) (वोह पीडा देता है)। तुतोद (मू० ५००), तुतुदे (मू० ५६३) (उसने पीडा दी)। तुतोदिथ (मू० ५२९), तुतुदिषे (तूने पीडा दी)। तोत्ता (वोह पीडा देगा)। तोत्स्यति, तोत्स्यते (वोह पीडा देगा)। तुदतु, तुदताम् (वोह पीडा दे)। अतुदत् , अतुदत (उसने पीडा दी)। तुदेत्, तुदेत (वोह पीडा दे)। अतौत्सीत् (मू० ५१४), अतु-

त्त (सू० २५८।४८१) (उसने पीडा दी)। अतुत्स्यत् , अतुत्स्यत (जो वोह पीडा दे) ॥

णु (नु) द-प्रेरणे । ६ । उभय० सकर्म० अनिट् ॥

नुद् (प्रेरणा करना) । नुदति, नुदते (वोह प्रेरणा करता है)। नुनोद, नुनुदे (उसने प्रेरणा की) । नेत्ता (वोह प्रेरणा करेगा)। नोत्स्यति, नोत्स्यते (वोह प्रेरणा करेगा) । नुदतु, नुदताम् (वोह प्रेरणा करे) । अनुदत , अनुदत (उसने प्रेरणा की) । नुदेत् , नुदीत (वोह प्रेरणा करे) । नुद्यात् , नुत्सीष्ट । अनौत्सीत् , अनुत्त (उसने प्रेरणा की) । अनोत्स्यत् , अनोत्स्यत (जो वोह प्रेरणा करे) ॥

भ्रस्ज पाके । ६ । उभय० सक० अनिट् ॥

भ्रस्ज् [पकाना (भूंजना)] । भ्रस्-ज्+अ+ति (सू० ६८६। ७७ । २३ । २१) भृज्जति, भृज्जते (वोह पकाता है) । भ्रस्ज्-भ्रस्ज्+अ ॥

७०६ भ्रस्जो रोपधयोरमन्यतरस्याम् । ६ । ४ । ४७ ॥

भ्रस्जे रेफस्योपधायाश्च स्थाने रमागमो वार्धधातुके मित्त्वादन्त्यादचः परः । स्थानषष्ठीनिर्देशाद्रोपधयोर्निवृत्तिः ॥

भ्रस्ज-धातुके रेफ और उपधाके स्थानमें रम् (र्) का आगम विकल्प करके हो, आर्धधातुक प्रत्यय परे रहते । यह रमागम मित् होनेके कारण अन्त्य अच्-से परे (सू० २६७) होता है । 'रोपधयोः' इससे रकार और उपधाका बोध होता है, इससे ज्ञात होता है कि-'रम' आदेश होता है आगम नहीं; यदि 'रम' आगमही करनेका अभिप्राय होता तो सूत्रमें केवल धातुही लिखते, अर्थात्-उस धातुके विशेषवर्णोंका उच्चारण नहीं होता । यथा-'रोपधयोः' इस षष्ठीसमन्वित रेफ और उपधाके कहनेसे स्पष्ट बोध होता है कि-'रम्' आदेश है न कि आगम, अतएव रेफ और उपधा-(स्) का लोप हुआ, कारण कि-स्थानषष्ठीका अर्थही यह है-

एकको नष्ट कर उसके स्थानमें और कुछ हो । बभर्ज, बभ्रज्ज (सू० ७७ । २३); बभर्जे, बभ्रज्जे (उसने पकाया)। बभर्जतुः, बभ्रज्जतुः; बभर्जाते, बभ्रज्जाते (उन दोने पकाया) । बभर्जिथ,बभ्रज्जिथ, बभर्ष्ठ (सू० ३३९ । ३३६ । ७९), बभ्रष्ठ; बभर्जिषे, बभ्रज्जिषे, बभ्रक्षे (तूने पकाया) । भर्ष्टा, भ्रष्टा (वोह पकावेगा) । भर्क्ष्यति, भ्रक्ष्यति (सू० ३३९ । ३३६ । ५२९) (वोह पकावेगा) । भृज्जतु, भृज्जताम (वोह पकावे) । अभृज्जत , अभृज्जत (उसने पकाया) । भृज्ज्यात , (वोह पकावे) । भ्रज्+याज्+त् (सू०४७९। ४८०) यहां रमागम (सू०७०६) की प्राप्ति होनेपर—॥

" क्ङिति रमागम बाधित्वा सम्प्रसारणं पूर्वविप्रतिषेधेन " ॥

कित् वा डित् पर रहने रमागमको बाधकर पूर्वविप्रतिषेधसे सम्प्रसारण (सू०६८६) ही होता है, अर्थात यहां अष्टाध्यायीके क्रमानुसार सू० ७०६ (६–४–४७) की अपेक्षा सू०६८६ (६–१–१६) बलिष्ठ (सू०१३३) है । भृज्ज्यात (सू० ७७ । २३ । ३३९); भर्क्षीष्ट, भ्रक्षीष्ट (सू० ३३९।३३६।५२०।१७०) (ई०वोह पकावे)। भृज्ज्यास्ताम्; भर्क्षीयास्ताम , भ्रक्षीयास्ताम (ई० वे दो पकावें) । भृज्ज्यासुः; भर्क्षीरन . भ्रक्षीरन (ई० वे पकावें) । अभार्क्षीत , अभ्राक्षीत ; अभर्ष्ट. अभ्रष्ट (उसने पकाया)। अभ्रक्ष्यत , अभर्क्ष्यत् ; अभर्क्ष्यत, अभ्रक्ष्यत (जो वोह पकावे) ॥

कृष-विलेखने । ४ । उभ० सक० अनिट् ॥

कृष् (जोतना) । कृषति, कृषते (वोह जोतता है) । चकर्ष, चकृषे (उसने जोता) । कृष्+ता ॥

७०७ अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम् । ६।१।५९ ॥

उपदेशेऽनुदात्तो य ऋदुपधस्तस्याम्वा झलादावकिति ॥

जिस धातुके उपदेशमें अनुदात्त हो और उपधामें ऋ हो ऐसे धातुको अम आगम विकल्पसे हो, कितभिन्न झलादि आर्धधातुक पर रहते । क्रष्टा (सू० २६७ । १२ । ७९), कर्ष्टा (सू०५०० ।

७९) (वोह जोतेगा) । कर्क्ष्यति, क्रक्ष्यति; कर्क्ष्यते, क्रक्ष्यते (वोह जोतेगा) । कृषतु, कृषताम् (वोह जोतै) । अकृषत्, अकृषत (उसने जोता) । कृष्यात्, कृषेत (वोह जोतै) । कृष्यात्, कृक्षीष्ट (सू० ६४० । ४८१ । ५९९ । १७०) (ई० वोह जोतै)। अकृष्+च्लि+त् ॥

७०८ (स्पृशमृशकृषतृपदृपां च्लेः सिज्वा वाच्यः) ॥

स्पृश् (छूना), मृश् (छूना । अडना), कृष् (जोतना), तृप् (तृप्त होना), दृप् (अभिमान करना) इन धातुओंसे परे च्लि-कू सिच् आदेश विकल्प करके हो यह कहना उचित है । अक्राक्षीत् (सू० ७०७), अकार्क्षीत (सू० ५१४); अकृक्षत (सू० ६४१), अकृष्ट (उसने जोता) ॥

मिल- सङ्गमे । ९ । उभ० सक० सेट् ॥

मिल् (मिलना) । मिलति, मिलते (वोह मिलता है) । मिमेल, मिमिले (वोह मिला) । मेलिता (वोह मिलेगा) । मेलिष्यति, मेलिष्यते (वोह मिलेगा) । मिलतु, मिलताम् (वोह मिलै) । अमिलत, अमिलत (वोह मिला) । मिलेत, मिलेत (वोह मिलै)। अमेलीत् (सू० ५००), अमेलिष्ट (वोह मिला) । अमेलिष्यत, अमेलिष्यत (जो वोह मिलै) ॥

मुच्लृ-मोचने । ६ । उभ० सक० अनि० मुचादिः ॥

मुच्लृ = मुच् (छोडना) । मुच्+अ+ति ॥

७०९ शे मुचादीनाम् । ७ । १ । ५८ ॥

मुच्-लिप्-विद्-लुप्-सिच्-कृत्-खिद्-पिशां नुम् ॥

मुच् (छोडना), लिप् (लीपना (वृद्धि)), विद् (पाना), लुप् (लोप करना । काटना), सिच् (छिडकना), कृत् (काटना), खिद् (मारना), पिश् (पीसना । दलना) इन धातुओंकू नुम् (न्) आगम हो, श परे रहते । मुन्-च्+अ+ति (सू०७७) मुञ्चति, मुञ्चते (सू० ९६ । ९७) (वोह छोडता है) । मुमोच,

मुमुचे (उसने छोडा)। मोक्ता (सू० ३३५) (वोह छोडैगा)। मुच्यात्, मुक्षीष्ट (सू० ६४० । ४८१) (ई० वोह छोडै)। अमुचत् (सू० ५५७), अमुक्त (उसने छोडा) । अमुचताम्, अमुक्षाताम् (उन दोने छोडा) ॥

लुप्लृ-छेदने । ७ । उभ० सक० अनिट् मुचा० ॥

लुप्लृ = लुप् (काटना)। लुम्पति, लुम्पते (वोह काटता है)। लुलोप, लुलुपे (उसने काटा)। लोप्ता (वोह काटेगा)। लुप्यात्, लुप्येत (वोह काटे)। लुप्यात्, लुप्सीष्ट (ई० वोह काटै)। अलुपत, अलुप्त (सू० ६४० । ४८१ । ५२८) (उसने काटा)। अलोप्स्यत, अलोप्स्यत (जो वोह काटै) ॥

विद्लृ-लाभे । ८ । अक० उभ० अनिट् ॥

विद् (पाना)। विन्दति, विन्दते (वोह पाता है)। विवेद, विविदे (उसने पाया) ॥ व्याघ्रभूतिमते सेट् । वेदिता-वेत्ता ॥ भाष्यमतेऽनिट । परिवेत्ता ॥ यह ' विद् ' धातु श्रीव्याघ्रभूति व्याकरणाचार्यके मतमे सेट् है । वेदिता-वेत्ता (वोह पावेगा) ॥ और महाभाष्यकारके मतमें अनिट् है। परिवेत्ता (वोह अपने ज्येष्ठ भ्राताते प्रथम गृहस्थ होगा) ॥

षिच-क्षरणे । ९ । उभ० सक० अनि० मुचा० ॥

षिच = सिच् (छिडकना)। सिञ्चति, सिञ्चते (वोह छिडकता है)। सिसेच, सिसिचे (उसने छिडका)। असिच्+च्लि+त ॥

७१० लिपि सिचि ह्वश्च । ३ । १ । ५३ ॥

एभ्यश्च्लेरङ् स्यात् ॥

लिप् (लीपना), सिच् (सींचना । छिड़कना), ह्वेञ्(बुलाना) इन धातुओंसे परे च्लि-कू अङ् (अ) हो । असिचत, वा-असिच्+च्लि+त ॥

७११ आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् । ३ । १ । ५४ ॥

१ यहा दूसरे आचार्यका मत होनेके कारण वैकल्पिक इट् होता है ।

लिपि सिचि ह्वः परस्य च्लेरङ् वा तङि ॥

लिप् (लीपना), सिच् (सींचना), ह्वेञ् (बुलाना) इन धातुओंसे परे च्लि-कू अङ् (अ) विकल्प करके हो,आत्मनेपद परे रहते । असिचत , असिक्त (मू० ६४० । ४८१ । ५२८ । ३३५) (उसने छिडका) ॥

लिप-उपदेहे (उपदेहो वृद्धिः) ।१०। उभय० सकर्म० अनिट् मुचादिः॥

लिप् (लीपना-उपदेह वृद्धिको कहते हैं । सो लीपनारूपही है) । लिम्पति, लिम्पते (वोह लीपता है) । लिलेप, लिलिपे (उसने लीपा) । लेप्ता (वोह लीपैगा) । लिप्यात्, लिप्सीष्ट (ई० वोह लीपे) । अलिपत ; अलिपत, अलिप्त (उसने लीपा)। अलेप्स्यत , अलेप्स्यत (जो वोह लीपे) ॥ इति उभयपदिनः ॥

अथ परस्मैपदिनः ।

कृती-छेदने । ११ । पर० सक० अनिट् ॥

कृती = कृत (काटना) । कृन्तति (वोह काटता है) । चकर्त्त (उसने काटा) । कर्तिता (वोह काटेगा) । कर्तिष्यति, कर्त्स्यति (मू० ६८२) (वोह काटेगा) । कृन्ततु (वोह काटे) । अकृन्तत् (उसने काटा) । कृन्तेत (वोह काटे) । कृत्यात (ई० वोह काटे) । अकर्तीत (उसने काटा) । अकर्तिष्यत , अकर्त्स्यत् (जो वोह काटे)॥

खिद परिघाते । १२ । पर० अक० अनि० मुचा० ॥

खिद् (पीडा देना) । खिन्दति (वह पीडा देता है) । चिखेद (उसने पीडा दी) । खेत्ता (वोह पीडा देगा) । खेत्स्यति (वोह पीडा देगा) । अखेदीत (उसने पीडा दी) ॥

पिश-अवयवे । १३ । पर० सक० सेट् मुचा० ॥

पिश् (पीसना) । पिशति (मू० ७०९ । ९६) (वोह पीसता है) । पेशिता (वोह पीसेगा) । पिश्यात (ई० वोह पीसे)। अपेशिष्यत् (जो वोह पीसे) ॥

ओव्रश्चू-छेदने। १४। पर० सक० वेट्॥

ओ-व्रश्चू=व्रश्च् (काटना)। वृश्चति (मू०६८६।२८६) (वोह काटता है)। वव्रश्च (मू० ४४०। ५९७। ५२३। ४४२) (उसने काटा)। वव्रश्चिथ, वव्रष्ठ (मू० ५२६) (तूने काटा)। व्रश्चिता, व्रष्टा (वोह काटेगा)। व्रश्चिष्यति, व्रक्ष्यति (मू० ३३९। ३३६। ५९९। १७०) (वाह काटेगा)। वृश्चतु (वोह काटे)। अवृश्चत् (उसने काटा)। वृश्च्यात् (मू० ६८६। २८६) (ई० वोह काटे)। अव्रश्चीत् (उसने काटा)। अव्राश्चिष्यत्, अव्रक्ष्यत् (जो वोह काटे)॥

व्यच-व्याजीकरणे। १५। पर० अक०[1] सेट् कुटादिः॥

व्यच (ठगना)। विचति (मू० ६८६। २८६) (वोह ठगता है)। विव्याच (मू० ५९७। २८६। ४४२) (उसने ठगा)। विविचतुः (मू० ६८६) (उन दोने ठगा)। व्यचिता (वोह ठगेगा)। व्यचिष्यति (वोह ठगेगा)। विच्यात् (ई० वोह ठगे)। अव्यच्+स्+त् (मू० ४९३। ४९४)॥

७१२ (व्यचेः कुटादित्वमनसि)॥

इति तु नेह प्रवर्त्तते, अनसीति पर्युदासेन कृन्मात्रविषयत्वात्॥

अस्-रूप कृत्-प्रत्यय-(मू० ३३२) कू छोडकर और कोई प्रत्यय परे हो तो व्यच्-धातु कुटादि माना जाय। यह वार्तिकरूप निषेध यहां प्रवृत्त नहीं होता, कारण कि—अनसि अर्थात्—अस्रूप कृत्-प्रत्ययकू त्यागकर ऐसा निषेध है, अतएव अस्-रूप कृत्-प्रत्ययके सदृश और जो प्रत्यय हैं उन्हींका उक्त वार्तिकमें ग्रहण है तिङ्-प्रत्ययोंका नहीं; और उक्त उदाहरणमें कृत्-प्रत्यय परे नहीं है, किन्तु—तिङ्-प्रत्यय परे है, क्योंकि अनस् यहां नञ् पर्युदासरूप है—प्रसज्जरूप नहीं, और पर्युदासरूप नञ्-का फलितार्थ यही है कि जहां वोह होता है वहां निषिध्यमानसे भिन्न तत्सदृश विवक्षित होते

[1] सम्बन्धे सकर्मक।

हैं। आशय यह है कि–उक्त उदाहरणमें तिङ्-प्रत्यय परे होनेसे व्यच्-धातुका कुटादिमें ग्रहण नहीं है, इसीसे तत्सम्बंधी प्रत्यय ङित् (मू० ६३८) नहीं माने जाते। अव्याचीत् (मू० ५०६), अव्यचीत् (उसने ठगा) ॥

उछि-उञ्छे। १६। पर० सक० सेट् ॥

उछि = उछ्–(बीनना)। उञ्छति (मू०५१२) (वोह बीनता है)। औञ्छीत् (उसने बीना था) ॥

ऋच्छ-गतीन्द्रियप्रलयमूर्त्तिभावेषु। १७। पर०सक०(अक०) सेट ॥

ऋच्छ् (जाना। इन्द्रियोंसे शिथिल होना। मूर्तिरूप (कड़ा) होना)। ऋच्छति (वोह जाता है)। ऋच्छ्+अ (मू० ४३८। ६६७) अर्च्छ+अ। यहां मूल ५१३ से नुट् होता है, क्योंकि " द्विहल्ग्रहणस्यानेकहलुपलक्षणत्वान्नुट् " ॥ मू० ५१३ में दो हल्-ग्रहणसे अनेक हलोंका ग्रहण होता है। आनर्च्छ (वोह गया)। आनर्च्छतुः (वे दो गये)। ऋच्छिता (वोह जायगा)। आर्च्छत् (वोह गया) ॥

उज्झ उत्सर्गे। १८। पर० सक० सेट् ॥

उज्झ् (त्यागना)। उज्झति (वोह त्यागता है)। उज्झाञ्चकार (उसने त्यागा)। औज्झीत (उसने त्यागा था) ॥

लुभ विमोहने। १९। पर० सक० सेट ॥

लुभ् (लुभाना)। लुभति (वोह लुभाता है)। लुलोभ (उसने लुभाया)। लुभ्+तास्+आ ॥

७१३ तीषसहलुभरुषरिषः। ७। २। ४८ ॥

इच्छत्यादेः परस्य तादेरार्धधातुकस्येड्वा ॥

इष् (इच्छा करना), सह् (सहना), लुभ् (लुभाना), रुष् (मारना), रिष् (मारना) इन धातुओंसे परे तकारादि प्रत्ययोंकू इट् आगम विकल्पसे हो। लोभिता, लोब्धा (मू० ६००) (वोह

१ ' उञ्छ कणश आदान कणिशाद्यर्जन शिलम् " इति यादवकोष।

लुभावेगा) । लोभिष्यति, लोप्स्यति (वोह लुभावेगा) ॥

तृप-तृप्तौ । २० । पर० सक० सेट् मुचा० ॥

तृप् (तृप्त होना) । तृपति (वोह तृप्त होता है) । ततर्प (वोह तृप्त हुआ) । तर्पिता (वोह तृप्त होगा) । अतर्पीत् (वोह तृप्त हुआ) । अतर्पिष्यत् (जो वोह तृप्त हो) ॥

तृम्फ-तृप्तौ । २१ ।

तृम्फ् (तृप्त होना) । तृन्-फ+अ+ति (मू० ३७७) तृफ्+अ+ति॥

७१४ (शे तृम्फादीनां नुम्वाच्यः) ॥

आदिशब्दः प्रकारे, तेन येऽत्र नकारानुषक्तास्ते तृम्फादयः ॥

श (मू० ७०५) परे रहते तृम्फादि-धातुओंकू नुम् (न्) आगम हो, यह कहना चाहिये । यहां (मू० ७१४) आदिशब्द प्रकारवाची है, इसकारण जिनकी उपधामें नकार हो वे तृम्फादिक समझे जाते हैं । अर्थात्–तृम्फ-धातु और जिनकी उपधामें नकार हो उनको नुम्-का आगम हो । तृन्–फ+अ+ति । तृम्फति (वोह तृप्त होता है) ।ततृम्फ (वोह तृप्त हुआ)। तृफ्यात् (मू० ३७७) (ई०वोह तृप्त हो) ॥

मृड-सुखने । २२ । पर० सक० सेट ॥

मृड् (सुखी करना) । मृडति (वोह सुखी करता है) । अमर्डीत् (उसने सुखी किया था) ॥

एवं पृड-सुखने । २३ । पर० सक० सेट ॥

पृड् (सुखी करना) । इसकेभी मृड्-धातुकी समान रूप होते हैं॥

शुन-गतौ । २४ । पर० सक० सेट ॥

शुन् (जाना) । शुनति (वोह जाता है) । अशोनीत् (वोह गया था) ॥

इषे-इच्छायाम् । २५ । पर० सक० सेट् ॥

१ नश्चापदान्तस्येत्यनुस्वारे–अनुस्वारस्य ययीति परसवर्णे च कृते 'तृम्फ' इति रूपम् । विग्रहे तु न एव दृश्यते, तस्य–अनदितामिति लोप । २ अत्रोदित्पाठ प्रमाद एव ।

इषु (इच्छा करना) । इच्छति (सू० ५५४) (वोह इच्छा करता है) । एषिता (सू० ७१३), एष्टा (सू० ७९) (वोह इच्छा करैगा) । एषिष्यति (वोह इच्छा करैगा) । इष्यात् (ई० वोह इच्छा करैगा) । ऐषीत् (सू० ४९३ । ४९२ । २११) (उसने इच्छा की) ॥

कुट–कौटिल्ये । २६ । पर० सक० सेट् कुटादिः ॥

कुट् (कुटिलता करना) । कुटति (वोह कुटिलता करता है)। चुकोट (उसने कुटिलता की) । चुकुटिथ (सू० ६३८।४८१) (तूने कुटिलता की) । चुकोट, चुकुट (सू० ५०५।६३८।४८१) (मैने कुटिलता की) । कुटिता (वोह कुटिलता करैगा) ॥

पुट–सश्लेषणे । २७ । पर० सक० सेट् कुटा०॥

पुट् (आलिंगन करना) । पुटति (वोह आलिंगन करता है) । पुपोट (उसने आलिंगन किया) । पुटिता (सू० ६३८) (वोह आलिंगन करैगा) ॥

स्फुट–विकसने । २८ । पर० अक० से० कुटा० ॥

स्फुट् (खिलना) । स्फुटति (वोह खिलता है) । पुस्फोट (सू० ४४५) (वोह खिला) । स्फुटिता (सू० ६३८) (वोह खिलेगा) ॥

[१]स्फुर–स्फुल–सचलने । २९।३० । पर० अक० सेट् कु० ॥

स्फुर् और स्फुल् (फरकना) । स्फुरति, स्फुलति (वोह फरकता है) । निर्+स्फुरति । निर्+स्फुलति ॥

७१७ स्फुरतिस्फुलत्योर्निर्निविभ्यः । ८ । ३ । ७६ ॥

षत्वं वा स्यात् ॥

निर्–नि–वि इन उपसर्गोंसे परे स्फुर और स्फुल-धातुओंके सकारकू ष-कार विकल्पसे हो। निःष्फुरति, निःस्फुरति, निःष्फुलति, निःस्फुलति (वोह निरन्तर फरकता है) ॥

१ केचित्तु–' स्फर ' इत्यकारोपध पठन्ति–पस्फार ।

णू-स्तवने। ३१। पर० सक० सेट् कुटा०॥

णू = नू (स्तुति करना)। 'परिणूतगुणोदयः' यह धातु दीर्घ ऊकारान्त है जैसे-'परिणूतगुणोदयः' अर्थात्-जिसका गुणोदय प्रशंसित हो, इस वाक्यमें णू-का उकार यदि ह्रस्व होता तौ छन्दोभङ्ग हो जाता। नुवति (मू० २२१) (वोह स्तुति करता है)। नुनाव (उसने स्तुति की)। नुविता (वह स्तुति करैगा)॥

टुमस्जो-शुद्धौ। ३२। (मू० ५११)॥

मस्ज् (शुद्ध करना। डूबना)। मज्जति (मू० ७७।२३) (वोह शुद्ध करता है)। ममज्ज (उसने शुद्ध किया)। ममस्ज्+थ। यहां मू०६८८ से नुम् होता है, परन्तु-मू० २६७ के अनुसार अन्त अच्-से परे प्राप्ति थी, उसका बाधक-॥

७१६ (मस्जेरन्त्यात्पूर्वो नुम्वाच्यः)॥

सूत्रकारको यह कहना चाहिये कि-मस्ज्-धातुके पिछले अक्षर-से पहले नुम् होय। ममस्+न्+ज्+थ (मू०३३९।७७) ममञ्+ज्+थ (मू० २३।३३५) ममङ्क्थ, ममज्जिथ (मू० ५३२) (तूने शुद्ध किया)। मङ्क्ता (मू० ६८८।७१६।३३९।३३५।९६।९७) (वोह शुद्ध करैगा)। अमाङ्क्षीत् (उसने शुद्ध किया)। अमाङ्क्ताम् (मू०५२८) (उन दोने शुद्ध किया)। अमाङ्क्षुः (उनोंने शुद्ध किया)। अमङ्क्ष्यत् (जो वोह शुद्ध करै)॥

रुजो-भङ्गे। ३३।

रुजो = रुज् (तोडना)। रुजति (वोह तोडता है)। रुरोज (उसने तोडा)। रोक्ता (वोह तोडैगा)। रोक्ष्यति (वह तोडेगा)। अरौक्षीत् (उसने तोडा)। एवम्-॥

भुजो-कौटिल्ये। ३४।

इसी प्रकार भुजो = भुज्-(कुटिलता करना) धातुके रूप जानो॥

विश-प्रवेशने। ३५।

विश् (प्रवेश करना)। विशति (वोह प्रवेश करता है)। वि-

वेश (उसने प्रवेश किया) । अवेशीत् (उसने प्रवेश किया) ॥

मृश-आमर्शने । ३६ । (आमर्शन स्पर्शः) ॥

मृश् (छूना) । मृशति (वोह छूता है) । अम्राक्षीत् (मू० ७०७ । ३३६ । ५११), अमार्क्षीत् (मू० ७०८), अमृक्षत (मू० ६४१) (उसने छुआ) ॥

षद्लृ-विशरणगत्यवसादनेषु । ३७ । पर० सक० अनिट् ज्वलादिः ॥

षद्लृ = सद् (विशीर्ण होना । जाना । दुःखी होना) । सीदति (मू० ५३७) (वोह जाता है) । असदत् (वोह गया) ॥

शद्लृ-शातने । ३८ ।

शद्लृ = शद् (छीलना) ॥

७१७ शदेः शितः । १ । ३ । ६० ॥

शिद्भाविनोऽस्मात्तङानौ स्तः ॥

जब शद्-धातुसे पर शित्-प्रत्यय होनेवाला हो तब उससे आत्मनेपदसंज्ञक (मू० ४२३) प्रत्यय हों । शीयते (मू० ५३७) (वोह छीलता है)। शीयताम (वोह छीले)। अशीयत । शीयेत । शशाद । शत्ता (मू० ५२५) । शत्स्यति । अशदत् (मू० ५५७) । अशत्स्यत ॥

कॄ-विक्षेपे । ३९ ।

कॄ (वखेरना । फेंकना) ॥

७१८ ॠत इद्धातोः । ७ । १ । १०० ॥

ॠदन्तस्य धातोरङ्गस्य इत्स्यात् ॥

ॠकारान्त-धातुके अंगकू इत् हो । किरति (वोह वखेरता है)। चकार (मू० ५०४) (उसने वखेरा) । चकरतुः (मू० ६६७) (उन दोने वखेरा) । करीता (मू० ६६८), करिता (वोह वखे-

१ और लिङ्के पीछे इस रूपका लिखना तो टीकाकारोंकी विशेष पण्डिताई दिखाता है । न जाने आप कौनसी श्रेणीके विद्यार्थिओका उपकार करेंगे । २ (इत्वोत्वाभ्या गुणवृद्धी विप्रतिषेधेन) ।

रेगा) । कीर्यात् (सू० ६६५) (ई० वोह बखेरै) ॥ विशेषता-उप+किरति ॥

७१९ किरतौ लवने । ६ । १ । १४० ॥

उपात् किरतेः सुट् छेदनेऽर्थे ॥

उप-से परे किरति-(कॄ-धातु) कू सुट् (स्) आगम हो, छेदन-(काटना) अर्थमें । उपस्किरति (वोह काटता है) । उप+कॄ-कॄ ॥

७२० अड्भ्यामव्यवायेऽपि । ६ । १ । १३६ ॥

यदि अट् (सू० ४७१) अथवा अभ्यासका व्यवधान होय तौभी उप-से परे कॄ-धातुकू सुट्-का आगम हो ॥

७२१ (सुट् कात्पूर्व इति वक्तव्यम्) ॥

ऐसा कहना चाहिये कि-ककारसे पहले सुट्-का आगम (सू० ७१९ । ७२०) हो । उपचस्कार । उपास्किरत् (उसने काटा) । उप+किरति ॥

७२२ हिंसायाम्प्रतेश्च । ६ । १ । १४१ ॥

उपात्प्रतेश्च किरतेः सुट् हिंसायाम् ॥

हिंसा-अर्थमें उप और प्रतिसे परे कॄ-धातुकू सुट्-का आगम हो। उपस्किरति । प्रतिस्किरति (वोह हिंसा करता है) ॥

गॄ-निगरणे । ४० ।

गॄ (निगलना) । गॄ+अ+ति-गिर्+अ+ति (सू० ७१८) ॥

७२३ अचि विभाषा । ८ । २ । २१ ॥

गिरते रेफस्य वा लोऽजादौ प्रत्यये ॥

गॄ-धातुके रेफ-कू लकार विकल्पसे हो, अजादि प्रत्यय परे रहते। गिलति-गिरति (वोह निगलता है) । जगाल-जगार (उसने निगला) । जगलिथ-जगरिथ (तूने निगला) । गलीता (सू० ६६८)-गलिता, गरीता-गरिता (वोह निगलेगा) ॥

प्रच्छ-ज्ञीप्सायाम् । ४१ ।

प्रच्छ् (पूछना) । पृच्छति (सू० ६८६) (वोह पूछता है) ।

पप्रच्छ (उसने पूछा) । पप्रच्छतुः (उन दोने पूछा) । प्रष्टा (सू० ३३६ । ७९) (वोह पूछेगा) । प्रक्ष्यति (सू० १७०) (वोह पूछेगा) । अप्राक्षीत् (उसने पूछा)। अप्रक्ष्यत् (जो वोह पूछै)॥

मृङ्-प्राणत्यागे । ४२ ।

मृङ्=मृ (मरना) ॥

७२४ म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च । १ । ३ । ६१ ॥

लुङ्लिङोः शितश्च प्रकृतिभूतान्मृङस्तङ्, नान्यत्र ॥

लुङ् तथा लिङ् और शित्-प्रत्ययके विषयमें मृ-धातुसे आत्मने-पद-संज्ञक प्रत्यय हों, अन्यत्र नहीं । मृ+अ+त् (सू० ५९४ । २२१) म्रियते (वोह मरता है) । म्रियताम् (वोह मरे) । अ-म्रियत (वोह मरा) । म्रियेत (वोह मरै) । ममार (वोह मरा)। मर्त्ता (वोह मरैगा) । मरिष्यति (सू० ५४७) (वोह मरैगा) । मृषीष्ट (सू० ५९५ । ४८१) (ई० वोह मरै) । अमृत (सू० ५९५ । ४८१।५९६) (वोह मरा) । अमरिष्यत् (जो वह मरै)॥

पृङ्-व्यायामे । प्रायेणाय व्याङ्पूर्वः । ४३ ।

पृङ्=पृ (उद्योग करना) । प्रायः इस धातुके प्रथम वि और आङ् यह दो उपसर्ग रहते हैं। व्याप्रियते (वोह उद्योग करता है)। व्यापप्रे (सू० ५६३) (उसने उद्योग किया) । व्यापप्राते (उन दोने उद्योग किया) । व्यापरिष्यते (सू० ५४७) (वोह उद्योग करेगा) । व्यापृत (सू० ५९५ । ५९६ । ४८१) (उसने उद्यो-ग किया) । व्यापृषाताम् (सू० ५९५ । ४८१ । १७०) (उन दोने उद्योग किया) ॥

जुषी-प्रीतिसेवनयोः । ४४ । अक०[1]आत्मने० सेट् ॥

जुषी=जुष् (प्रीति करना । सेवा करना) । जुषते (वोह प्रीति करता है) । जुजुषे (उसने प्रीति करी) । अजोषिष्ट (उसने प्रीति की) ॥

---

१ सेवने तु सकर्मक. ।

ओविजी-भयचलनयोः। प्रायणाय उत्पूर्वः। ४५।

ओविजी = विज् (भय करना। कांपना) बहुधा इस धातुके प्रथम उत्-उपसर्ग देखा जाता है। उद्विजते (वोह भय करता है)। उद्विविजे (उसने भय किया)। उद्विज्+इ+ता॥

७२५ विज इट्। १। २। २॥

विजे पर इडादिप्रत्ययो ङिद्वत्॥

विज्-धातुसे परे इडादि प्रत्यय ङित्-की समान माना जाय। उद्विजिता (सू० ४८१) (वोह भय करेगा)। उद्विजिष्यते (वोह भय करेगा)॥

॥ इति तुदादयः॥

अथ रुधादयः।

रुधिर्-आवरणे। १। द्विक० उभय० अनिट्॥

रुधिर् = रुध् (घेरना)॥

७२६ रुधादिभ्यः श्नम्। ३। १। ७८॥

शपोऽपवादः॥

रुध्-आदि धातुओंसे परे श्नम (न) हो। यह सूत्र शप् (सू० ४३३) का अपवाद है। रु+न+ध्+ति (सू० २६७।१५८।६००।२३) रुणद्धि, रुन्धे (सू० ६२५। ६००) (वोह घेरता है)। रुन्धः (सू० ६४५।६००।२३। ९६। ९७), रुन्धाते (वे दो घेरते हैं)। रुन्धन्ति, रुन्धते (सू० ५७४) (वे घेरते हैं)। रुणत्सि (सू०९१), रुन्त्से (सू० ९६।९१।८७) (तू घेरता है)। रुन्धः (सू० ६००। २३। ९६। ९७), रुन्धाथे (तुम दो घेरते हो)। रुन्ध,रुन्ध्वे (सू०९०) (तुम घेरते हो)। रुणध्मि, रुन्ध्वे (मैं घेरता हूं)। रुन्ध्वः, रुन्ध्वहे (हम दो घेरते हैं)। रुन्ध्मः,[1] रुन्ध्महे

१ सू० ६७९।

(हम घेरते हैं)। रुरोध, रुरुधे (उसने घेरा)। रोद्धा (मू०५००। ६००।२३) (वोह घेरेगा)। रोत्स्यति, रोत्स्यते (वोह घेरेगा)। रुणद्धु (मू० ४५७), रुन्धात् (मू० ४५८); रुन्द्धाम (मू०५६७) (वोह घेरै)। रुन्द्धाम, रुन्धाताम (वे दो घेरैं)। रुन्धन्तु, रुन्धताम् (वे घेरैं)। रुन्धि (मू० ९०), रुन्त्स्व (तू घेरै)। रुणधानि, रुणधै (मैं घेरूं)। रुणधाव, रुणधावहै (हम दो घेरैं)। अरुणत् (मू०१६६)-अरुणद् , अरुद्ध (उसने घेरा)। अरुन्धाम, अरुन्धाताम (उन दोने घेरा)। अरुन्धन् , अरुन्धत (उमोंने घेरा)। अरुणत् , अरुणः; अरुन्धाः (तूने घेरा)। रुन्ध्यात् , रुन्धीत (वोह घेरै)। रुध्यात , रुत्सीष्ट (मू० ६४० । ४८१)(ई० वोह घेरै)। अरुधत (मू० ६८२), अरौत्सीत् (मू० ५१४); अरुद्ध (उसने घेरा)। अरोत्स्यत् , अरोत्स्यत (जो वोह घेरै)। एवम्-ऐसेही-॥

भिदिर्-विदारणे। २।

भिद् (तोडना)॥

छिदिर् द्वैधीकरणे। ३। उभय० सक० अनिट्॥

छिद् (दो खण्ड करना)॥

युजिर्-योगे। ४। उभय० सक० अनिट्॥

युज् (मिलाना) यह तीन धातुभी रुध्-धातुकी समान साधे जाते है। परन्तु-युजिर्-धातुमे परसवर्ण (मू० ९७) विशेष होता है॥

रिचिर्-विरेचने। ५। उभय० अक० अनिट्॥

रिचिर्=रिच् (पेट चलाना)। रिणक्ति, रिङ्क्ते (मू० ६२५। ९६। ९७) (वोह पेट चलाता है)। रिरेच, रिरिचे (उसने पेट चलाया)। रेक्ता (वोह पेट चलावेगा)। रेक्ष्यति, रेक्ष्यते (वोह पेट चलावेगा)। अरिणक्-ग् (मू० २०० । १६६), अरिंक्त (उसने पेट चलाया)। अरिचत् (मू० ६८२), अरैक्षीत् (मू०

५१४); आरिक्त (उसने पेट चलाया)। अरेक्ष्यत्, अरेक्ष्यत (जो वोह पेट चलावै) ॥

विचिर्-पृथक्भागे। ६। उभय० सक० अनिट् ॥

विच् (पृथक् होना)। विनक्ति, विङ्क्ते (वोह पृथक् होता है)। विवेच, विविचे (वोह पृथक् हुआ)। वेक्ता (वोह पृथक् होगा)। विनक्तु, विङ्क्ताम् (वोह पृथक् हो)। अविचत्, अवैक्षीत्; अविक्त (वोह पृथक् हुआ) ॥

क्षुदिर्-सम्प्रेषणे। ७। उभय० अनिट् ॥

क्षुद् (पीसना)। क्षुणत्ति, क्षुन्ते (वोह पीसता है)। चुक्षोद, चुक्षुदे (उसने पीसा)। क्षोत्ता (वोह पीसेगा)। अक्षुदत्, अक्षौत्सीत्; अक्षुत्त (उसने पीसा) ॥

उच्छृदिर्-दीप्तिदेवनयोः। ८। उभय० अक० सेट् ॥

छृद् (चमकना। खेलना)। छृणत्ति, छृन्ते (वोह चमकता है)। चच्छर्द, चच्छृदे (वोह चमका)। चच्छर्दिथ; चच्छृदिषे, चच्छृत्से (म० ६८२) (तू चमका)। छर्दिता (वोह चमकेगा)। छर्दिष्यति, छर्त्स्यति; छर्दिष्यते, छर्त्स्यते (वोह चमकेगा)। अच्छृदत्, अच्छर्दीत्; अच्छर्दिष्ट (वोह चमका) ॥

उतृदिर्-हिंसानादरयोः। ९। उभय० सक० सेट् ॥

तृद् (हिंसा करना। अनादर करना)। तृणत्ति, तृन्ते (वोह हिंसा करता है)। अतृदत्, अतर्दीत्; अतर्दिष्ट (उसने हिंसा करी) ॥

कृती-वेष्टने। १०।

कृत् (घेरना)। कृणत्ति (वोह घेरता है) ॥

तृह-हिंसायाम्। ११। पर० सक० सेट् ॥

तृह् (हिंसा करना)। तृ+न+ह्+ति ॥

७२७ तृणह इम्। ७। ३। ९२ ॥

तृहः श्नमि कृते इमागमो हलादौ पिति ॥

तृह-धातुसे परे श्नम् करनेकी पश्चात् इम (इ) आगम हो, ह-

१ सकारादौ वेट्। २ तुदादिस्तु वेट्।

लादि-पित् प्रत्यय परे रहते । तृणेढि (सू० ३३ । २७९ । ६०० । ७९ । ६०१) (वोह हिंसा करता है) । तृण्ढः (सू० १५८ । ६२५ । २७९ । ६०० । ७२ । ६०१ । ९६ । ९७) (वे दो हिंसा करते हैं) । तृंहन्ति (वे हिंसा करते हैं) । ततर्ह (उसने हिंसा की) । तर्हिता (वोह हिंसा करेगा) । अतृणेट्-ड् (सू० २३ । २०० । २७९ । ८३ । १६६) (उसने हिंसा की) । अतर्हीत् (उसने हिंसा की) । अतर्हिष्यत् (जो वोह हिंसा करै) ॥

हिसि-हिंसायाम् । १२ । पर० सक० सेट् ॥

हिंस् (हिंसा करना) । हिन+न्+स्+ति (सू० ५१३) ॥

७२८ श्नान्नलोपः । ६ । ४ । २३ ॥

श्नमः परस्य नस्य लोपः स्यात् ॥

श्नम्-से परे जो नकार उसका लोप हो । हिनस्ति (वोह हिंसा करता है) । हिंस्तः (वे दो हिंसा करते हैं) । हिंसन्ति (वे हिंसा करते हैं) । जिहिंस (उसने हिंसा करी) । हिंसिता (वोह हिंसा करेगा) । अहिन-न्+स्+ति (सू० ७२८ । ४७२) ॥

७२९ तिप्यनस्तेः । ८ । २ । ७३ ॥

पदान्तस्य सस्य दः स्यात्तिपि, नत्वस्तेः ॥

तिप् परे रहते पदान्तके सकारकू दकार हो, अस्-धातुकू छोड-कर । यह सूत्र स-(सू० १२५) का बाधक है । अहिनत् (सू० १६६ । २००)-अहिनद् (उसने हिंसा की) । अहिंस्ताम् (उन दोने हिंसा की) । अहिंसन् (उनोंने हिंसा की) । अहिन+न्+स्+सि (सू० ४७२ । ७२८ । २००) ॥

७३० सिपि धातो रुर्वा । ८ । २ । ७४ ॥

पदान्तस्य धातोः सस्य रुर्वा स्यात् ॥

धातुके पदान्तके सकारकू रु विकल्पकरके हो । अहिनः, अहि-नत् (सू० ८३)-द् (सू० १६६) (तूने हिंसा की) । अहिंसीत् (उसने हिंसा की) ॥

उन्दी-क्लेदने । १३ । पर० ॥

उन्द् (भिगोना) । उनत्ति (सू० ७२८) (वोह भिगोता है) । उन्तः (सू० ७२८।६२५।९०।९६।९७) (वे दो भिगोते हैं) । उन्दन्ति (सू० ७२८ । ६२५) (वे भिगोते हैं) । उन्दाञ्चकार (सू० ५६१) (उसने भिगोया) । औनत (सू० ७२८ ।२०० । ४९२ । २११) (उसने भिगोया) । औन्ताम् (सू० ७२८।६२५। ९०) (उन दोने भिगोया) । औन्दन् (सू० ७२८ । ६२५) (उनोंने भिगोया) । औनः, औनत- द् (तूने भिगोया) । औनदम् (मैंने भिगोया) ॥

अञ्ज व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु । १४ । पर० सक० वेट् ॥

अञ्ज् (अनज्) (प्रकाश करना । तैलादि लगाना । सुन्दर होना । जाना) । अनक्ति (सू०७२८। ३३५) (वोह प्रकाश करता है) अङ्क्तः (सू० ७२८।६२५।३३५) (वे दो प्रकाश करते हैं) । अञ्जन्ति (वे प्रकाश करते हैं) । आनञ्ज (सू० ४५० । ४४२ । ४९१ । ५१३) (उसने प्रकाश किया) । अनञ्जिथ, अनङ्क्थ (सू० ५२६) (तूने प्रकाश किया) । अञ्जिता, अङ्क्ता (सू०५२६) (वोह प्रकाश करेगा) । अञ्जिष्यति, अङ्क्ष्यति (वोह प्रकाश करेगा) । अनक्तु, अङ्क्तात् (वोह प्रकाश करे) । अङ्ग्धि (सू०६०७) (तू प्रकाश कर) । अनजानि (सू०७२८) (मैं प्रकाश करूं) । आनक् (सू०७२८ । २००) (उसने प्रकाश किया) । अञ्ज्+स्+त (सू० ४८४ । ४९२) ॥

७३१ अञ्जेः सिचि । ७ । २ । ७१ ॥

अञ्जेः सिचो नित्यमिट् स्यात् ॥

अञ्ज्-धातुसे परे सिच्-को नित्य इट्-का आगम हो । आञ्ज्+इ+स्+त (सू० ४९३।४९४) आञ्जीत (उसने प्रकाश किया) ॥

तञ्चू-सङ्कोचने । १५ । पर० सक० वेट् ॥

तञ्च् (तनच्) (सुकडना) । तनक्ति (वोह सुकडता है) ।

तञ्जिता, तङ्क्ता (मू० ५२६) (वोह सुकडेगा) । अतञ्जीत्, अताङ्क्षीत् (उसने सकोडा) ॥

ओ-विजी-भयचलनयोः । १६ । पर० अक० सेट ॥

विज् (भय करना । काँपना)। विनक्ति (मू० ३३५) (वोह भय करता है) । विङ्क्तः (वे दो भय करते हैं) । विञ्जन्ति (वे भय करते हैं) । विवेज (उसने भय किया) । विविजिथ (मू० ७२५ । ४८१) (तूने भय किया) । विजिता (वोह भय करेगा)। अविनक् (मू० २००।३३५) (उसने भय किया) । अविजीत् (मू० ४९४) (उसने भय किया) ॥

शिष्लृ-विशेषणे । १७ । पर० सक० अनिट ॥

शिष् (विशेष करना)। शिनष्टि (मू० ७९) (वोह विशेष करता है) । शिंष्टः (मू० ६२५ । ९६) (वे दो विशेष करते हैं) । शिंषन्ति (मू० ६२५।९६) (वे विशेष करते हैं) । शिनक्षि (मू० ५९९ । १७०) (तू विशेष करता है) । शिशेष (उसने विशेष किया) । शिशेषिथ (मू० ५२९) (तूने विशेष किया) । शेष्टा (वोह विशेष करेगा) । शेक्ष्यति (मू०५९९।१७०) (वोह विशेष करेगा) । शिनष्टु, शिंष्टात् (वोह विशेष करे) । शिण्ढि (मू० ६०७ । ७९ । ८४ । ६२५ । ९० । ९६ । ९७) (तू विशेष कर) । शिनषाणि (मू० १५८) (मै विशेष करूं) । अशिनट् (मू० ८३ । १६६) (उसने विशेष किया) । शिंष्यात् (मू० ७२८ । ९६) (वोह विशेष करे) । शिष्यात् (इ० वोह विशेष करे) । अशिषत् (मू० ५५७) (उसने विशेष किया) । अशेक्ष्यत् (जो वोह विशेष करे) । एवम्-ऐसेही-॥

पिष्लृ-सञ्चूर्णने । १८ । पर० सक० अनिट ॥

पिष्-(पीसना) धातुके रूप शिष्-की समान होते हैं ॥

भञ्जो-आमर्दने । १९ । पर० सक० अनिट् ॥

भञ्ज् (भनज्) (तोडना) । भनक्ति (मू० ७२८ । ३३५)

(वोह तोडता है) । बभञ्जिथ (मू०५३२), बभङ्क्थ (मू०५११) (तूने तोडा) । भङ्क्ता (मू० ३३५।९६ । ९७) (वोह तोडेगा)। भङ्क्ष्यति (वोह तोडेगा) । भङ्ग्धि (मू० ६०७।२३।९६।९७) (तू तोड) । अभनक्- ग् (उसने तोडा) । अभाङ्क्षीत् (मू० ५१४ । ३३५ । ९६ । ९७ । ४९१ । १७०) (उसने तोडा) ॥

भुज-पालनाभ्यवहारयोः । २० । पर० सक० अनिट् ॥

भुज् (पालना । खाना) । भुनक्ति (वोह पालता है) । बुभोज (उसने पाला) । भोक्ता (वोह पालेगा) । भोक्ष्यति (वोह पालैगा) । भुनक्तु (वोह पाले) । अभुनक् (उसने पाला) । भुञ्ज्यात (वोह पाले) । भुज्यात (इ० वोह पाले) । अभौक्षीत् (उसने पाला) । अभोक्ष्यत (जो वोह पाले) ॥ उक्त 'भुज' धातु पालन-अर्थमें परस्मैपदी होती है । भोजन-अर्थमें नीचे लिखे सूत्रपर ध्यान दो ॥

७३२ भुजोऽनवने । १ । ३ । ६६ ॥

तङानौ स्तः ।

पालन-अर्थको छोडकर अर्थात्-भोजन करने अर्थमें भुज्-धातुसे आत्मनेपद संज्ञक प्रत्यय हो । जैसे- ओदनं भुङ्क्ते (वोह भात खाता है) यहां आत्मनेपद हुआ ॥ अनवने किम् ॥ पालन-अर्थमें आत्मनेपदका निषेध करनेसे-महीं भुनक्ति (वोह पृथ्वीको पालता है) ॥ यहां आत्मनेपद न होकर परस्मैपद हुआ । भुङ्क्ते (वोह खाता है)। बुभुजे (उसने खाया) । भोक्ष्यते (वोह खायगा) । भुङ्क्ताम् (वोह खाय) । अभुङ्क्त (उसने खाया) । भुञ्जीत (वोह खाय) । भुक्षीष्ट (इ० वोह खाय) । अभुक्त (उसने खाया) । अभोक्ष्यत (जो वोह खाय) ॥

ञि-इन्धी-दीप्तौ । २१ । आत्मने० अक० सेट् ॥

ञिइन्धी = इन्ध् (चमकना) । इन्धे (मू० ७२८ । ६२५ । ६५८) (वोह चमकता है) । इन्धाते (वे दो चमकते हैं) । इ-

न्धते (मू० ५७४) (वे चमकते हैं)। इन्त्से (तू चमकता है)। इन्ध्वे (मू० ७२८। ६२५। ९०। ९६। ९७) (तुम चमकते हो)। इन्धाञ्चक्रे (मू० ५६१) (वोह चमका)। इन्धिता (वोह चमकेगा)। इन्धाम् (मू० ५६७) (वोह चमके)। इन्धाताम् (वे दो चमकें)। इनधै (मू० ७२८। ५६९। ४६४। २१९) (मैं चमकूं)। ऐन्ध (वोह चमका)। ऐन्धीत (वोह चमका)॥

विद्-विचारणे। २२। आत्मने० सक० अनिट्॥

विद् (विचारना)। विन्ते (वोह विचारता है)। वेत्ता (वोह विचारेगा)। अवित्त (उसने विचारा)॥

॥ इति रुधादयः॥

अथ तनादयः।

तनु-विस्तारे। १। उभय० सक० सेट्॥

तन (विस्तार करना)॥

७३३ तनादिकृञ्भ्य उः। ३। १। ७९॥

शपोऽपवादः॥

तन-आदि धातु तथा कृ-धातुसे परे उ-प्रत्यय हो। यह सूत्र शप-(मू० ४३३) का अपवाद है। तनोति (मू० ४३४), तनुते (मू० ५७० । ४८१। ५७८) (वोह विस्तार करता है)। ततान, तेने (मू० ६०९) (उसने विस्तार किया)। तनिता (वोह विस्तार करेगा)। तनितासि, तनितासे (तू विस्तार करेगा)। तनिष्यति, तनिष्यते (वोह विस्तार करेगा)। तनोतु, तनुतात्; तनुताम् (मू० ५६७) (वोह विस्तार करे)। अतनोत्, अतनुत (उसने विस्तार किया)। तनुयात् (मू० ४७४), तन्वीत (मू० ५७०। १९) (वोह विस्तार करे)। तन्यात्, तनिषीष्ट (मू० ५७३) (ई० वोह विस्तार करे)। अतानीत् (मू० ५०६), अतनीत्; अतन्+स्+त (मू० ४८४)॥

७३४ तनादिभ्यस्तथासोः । २ । ४ । ७९ ॥

तनादेः सिचो वा लुक् स्यात् तथासोः परयोः ॥

तनादि-धातुओंसे परे सिच्-का लुक् (लोप) विकल्प करके हो, त तथा थास् परे रहते । अतत (सू० ६१०), अतनिष्ट (सू० १७० । ७९) (उसने विस्तार किया) । अतनीः, अतानीः; अतथाः, अतनिष्ठाः (तूने विस्तार किया) । अतनिष्यत् , अतनिष्यत (जो वोह विस्तार करै) ॥

षणु-दाने । २ । उभय० सकर्म० सेट् ॥

षणु = सन् (सू० २८३) (देना) । सनोति, सनुते (वोह देता है) । सनिता (वोह देगा) । सनुयात् (वोह दे) । सन्+या+त् (सू० ४८०) ॥

७३५ ये विभाषा । ६ । ४ । ४३ ॥

जनसनखनामात्वं वा यादौ क्ङिति ॥

जन् (जन्म लेना), सन् (देना), खन् (खोदना) इन धातुओंकू विकल्प करके आकार हो, यकारादि कित् वा ङित् परे रहते । सायात् , सन्यात् ; सनिषीष्ट (ई० वोह दे) । असानीत्, असनीत् (सू० ५०६); असन्+स्+त (सू० ७३४) ॥

७३६ जनसनखनां सञ्झलोः । ६ । ४ । ४२ ॥

एषामाकारोन्तादेशः स्यात्सनि झलादौ क्ङिति ॥

जन् (पैदा होना), सन (देना), खन् (खोदना) इन धातुओंकू आकार अन्तादेश हो, सन तथा झलादि कित् वा ङित् परे रहते । असात, असनिष्ट (उसने दिया) । असानीः, असनीः; असाथाः (सू० ७३४), असनिष्ठाः (तूने दिया) । असनिष्यत् , असनिष्यत (जो वोह दे) ॥

क्षणु-हिंसायाम् । ३ । उभय० सकर्म० सेट् ॥

क्षण् (हिंसा करना) । क्षणोति, क्षणुते (वोह हिंसा करता है) । अक्षणीत् (सू० ५१५); अक्षत (सू० ६१० । ७३४), अक्षणिष्ट

(उसने हिंसा की) । अक्षणीः; अक्षथाः, अक्षणिष्ठाः (तूने हिंसा की) ॥

क्षिणु-हिंसायाम् । ८ । उभय० सकर्म० सेट ॥

क्षिण् (मारना) ॥

"उ-प्रत्यये लघूपधस्य गुणो वा"[1] ॥

उ-प्रत्यय परे रहते लघूपध-धातुकू गुण विकल्प करके हो । क्षेणोति, क्षिणोति; क्षिणुते (वोह मारता है) । क्षेणिता (वोह मारैगा) । अक्षेणीत ; अक्षित (मू० ७३४ । ६१० । ५५० । ४८१), अक्षेणिष्ट (उसने मारा) ॥

तृणु-अदने । ८ । उभय० सकर्म० सेट ॥

तृण् (खाना) । तर्णोति, तृणोति; तृणुते, तर्णुते (वोह खाता है) । अतर्णीत् , अतर्णिष्ट (उसने खाया) ॥

डु-कृञ-करणे । ८ । (मू० ५११) उभय० सकर्म० अनिट ॥

कृञ्=कृ (करना) । करोति, कर्+उ+ते (मू० ५५८ । ४३४ । ५५०) ॥

७३७ अत उत्सार्वधातुके । ६ । ४ । ११० ॥

उप्रत्ययान्तकृञोऽकारस्य उत्स्यात्सार्वधातुके क्ङिति ॥

जिसके अन्तमें उ-प्रत्यय हो ऐसे कृ-धातुके अकारकू उ हो, कित् वा ङित् सार्वधातुक परे रहते । कुरुते (वोह करता है) । कुरुतः (मू० ७३७), कु+उ+आते (मू० ४३४ । ७३७ । २२१) इस अवस्थामें मू० ६६५ की प्राप्ति होनेपर—॥

७३८ न भकुर्छुराम् । ८ । २ । ७९ ॥

१ यह वाक्य सूत्र वार्त्तिक अथवा भाष्य नहीं है, किन्तु कल्पित वाक्य है । इसके बनानेका अभिप्राय यह है कि—किसीके मतमें संज्ञासूत्रकी अपेक्षा गुणविधायक सूत्र (मू०५००) अनित्य है, अतः 'क्षिणोति' में गुण प्राप्त नहीं, कारण कि—मू०५०० विधिसूत्र मू० ३१ संज्ञासूत्रकी अपेक्षा रखता है । कोई २ इस विवादको अप्रमाण मान उक्त रूपमें नित्य गुण (मू० ५००) करते हैं । अतएव इन दोनों आशयोंको लेकर विद्वानोंने एक वाक्य कल्पना किया है ।

भस्य कुर्छुरोरुपधाया न दीर्घः ॥

भ-संज्ञक-(सू० १८६) की तथा कृ (करना) और छुर् (काटना) इन धातुओंकी उपधाकू दीर्घ न हो । कुर्वाते (वे दो करते हैं) । कुर्वन्ति, कुर्वते (वे करते है) । करोषि, कुरुषे (तू करता है) । कृ+उ+वस् ॥

७३९ नित्यं करोतेः । ६ । ४ । १०८ ॥

करोतेः प्रत्ययोकारस्य नित्य लोपो म्वोः परयोः ॥

कृ-धातुसे परे प्रत्ययरूप उकारका नित्य लोप हो, म तथा व परे रहते । कुर्वः (सू० ७३७), कुर्वहे (दो करते हैं)। कुर्मः, कुर्महे (हम करते है) । चकार, चक्रे (उसने किया) । कर्त्ता (वोह करेगा) । करिष्यति (सू०५४७), करिष्यते (वोह करेगा)। करोतु, कुरुताम् (सू० ७३७) (वोह करे) । अकरोत , अकुरुत (उसने किया) । कृ+उ+या+त् ॥

७४० ये च । ६ । ४ । १०९ ॥

कृञ उलोपो यादौ प्रत्यये परे ॥

कृ-(करना) धातुसे परे उकारका लोप हो, यकारादि प्रत्यय परे रहते । कुर्यात् , कुर्वीत (वोह करे) । क्रियात् (सू० ५९४), कृषीष्ट (सू० ५९५ । ४८१) (ई० वोह करै) । अकार्षीत्,अकृत (सू० ५९४) (उसने किया) । अकरिष्यत् , अकरिष्यत (जो वोह करै) ॥ सम्+करोति ॥

७४१ सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे । ६ । १ । १३७ ॥

सम्परिपूर्वस्य करोतेः सुट् भूषणेऽर्थे ॥

सम् और परि-पूर्वक कृ-धातुकू सुट् (स) आगम हो, भूषण-अर्थमें । संस्करोति (वोह अलंकृत करता है) ॥ सम्पूर्वस्य क्वचिदभूषणेऽपि सुट् , संस्कृतं भक्षा इति ज्ञापकात् ॥ 'संस्कृतं भक्षाः' सू०११३७ इस सूत्रके 'संस्कृतं' पदके देखनेसे विदित होता है कि–कहीं अभूषण अर्थमेंभी सं-पूर्वक कृ-धातुसे सुट् हो जाता है,

क्योंकि उक्त-'संस्कृतं' शब्दका संस्कार करना अर्थ है न कि भूषित करना ॥

७४२ समवाये च । ६ । १ । १३८ ॥

संघाते चार्थे सुट् ॥

सम और परि-पूर्वक कृ-धातुसे संघात-(समूह) अर्थमेंभी सुट् हो । संस्कुर्वन्ति (वे इकट्ठे होते हैं) ॥

७४३ उपात्प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु च ।६।१।१३९॥

उपात् कृञः सुट् स्यादेष्वर्थेषु, चात्प्रागुक्तयोरर्थयोः। प्रतियत्नो ? गुणाधानम् । विकृतमेव वैकृतं विकारः । वाक्याध्याहारः ? आकांक्षितैकदेशपूरणम् ॥

उप-उपसर्गसे परे कृञ्-धातुकू सुट् आगम हो, प्रतियत्न, वैकृत और वाक्याध्याहार अर्थमें । चकारसे पूर्वोक्त (मू० ७४१ । ७४२) अर्थोंमेंभी सुट् हो । किसी वस्तुमें नवीन गुण देनेको प्रतियत्न कहते हैं । विकारको वैकृत कहते हैं । संभाषणमें जो बातें छूट जांय उनको ईहासे पूरा करना वाक्याध्याहार कहाता है । उक्त पांचों अर्थोंमें कृ-कू सुट् आगम होता है ॥ १ भूषण-उपस्कृता कन्या(कन्या अलंकृत हुई) । २ संघात-उपस्कृता ब्राह्मणाः (ब्राह्मण इकट्ठे हुए) । ३ प्रतियत्न-एधो दकस्योपस्कुरुते (लकडी जलकू नवीन गुण देती है) । ४ वैकृत-उपस्कृतं भुङ्क्ते (वोह विकृत अन्न खाता है)। ५ वाक्याध्याहार-उपस्कृतं ब्रूते (वोह पदोंका अध्याहार कर बोलता है) ॥

वनु-याचने । ७ । आत्म० द्विक० सेट् ॥

वन् (मांगना) । वनुते (वोह मांगता है) । ववने (मू०५९२) (उसने मांगा) । अवनिष्ट (उसने मांगा) ॥

मनु-अवबोधने । ८ । आत्मने० सक० सेट् ॥

मन् (मानना) । मनुते (वोह मानता है) । मेने (मू० ५०९)

१ स्का-वेदति बोध्यम् ।

(उसने माना)। मनिता (वोह मानेगा)। मनिष्यते (वोह मानेगा)। मनुताम् (वोह माने)। अमनुत (उसने माना)। मन्वीत (मू० १९) (वोह माने)। मनिषीष्ट (ई० वोह माने)। अमनिष्ट (उसने माना)। अमनिष्यत (जो वोह माने)॥

॥ इति तनादयः ॥

अथ क्र्यादयः।

डुक्रीञ्-द्रव्यविनिमये। १। उभय० सकर्म० अनिट्॥

क्री (द्रव्यका अदलाबदला- मोल लेना)॥

७४४ क्र्यादिभ्यः श्ना। ३। १। ८१॥

शपोऽपवादः॥

क्री-आदि धातुओंसे परे श्ना-(ना) प्रत्यय हो। यह श्ना शप्-(मू० ४३३) का अपवाद है। क्रीणाति (मू० १५८), क्रीणीते (मू० ६७१) (वोह मोल लेता है)। क्रीणीतः (मू० ६७१), क्रीणाते (मू० ६७२) (वे दो मोल लेते हैं)। क्रीणन्ति (मू० ६७२), क्रीणते (वे मोल लेते हैं)। क्रीणासि, क्रीणीषे (तू मोल लेता है)। क्रीणीथः, क्रीणाथे (तुम दो मोल लेते हो)। क्रीणीथ, क्रीणीध्वे (तुम मोल लेते हो)। क्रीणामि, क्रीणे (मैं मोल लेता हूं)। क्रीणीवः, क्रीणीवहे (हम दो मोल लेते हैं)। क्रीणीमः, क्रीणीमहे (हम मोल लेते हैं)। चिक्राय (मू० २०३। २७), चिक्रिये (मू० २२१) (उसने मोल लिया)। चिक्रियतुः, चिक्रियाते (उन दोने मोल लिया)। चिक्रियुः, चिक्रियिरे (उनोंने मोल लिया)। चिक्रयिथ (मू० ५३२), चिक्रेथ (मू० ५३०); चिक्रियिषे (तूने मोल लिया)। क्रेता(वोह मोल लेगा)। क्रेष्यति, क्रेष्यते(वोह मोल लेगा)। क्रीणातु, क्रीणीतात्; क्रीणीताम् (वोह मोल ले)। अक्रीणात्, अक्रीणीत (उसने मोल लिया)। क्रीणीयात् (मू० ६७१), क्रीणीत

(सू० ६७२) (वोह मोल ले) । क्रीयात्, क्रेषीष्ट (इ० वोह मोल ले) । अक्रैषीत् (सू० ५३४), अक्रेष्ट (उसने मोल लिया) । अक्रेष्यत्, अक्रेष्यत (जो वोह मोल ले) ॥

प्रीञ्-तर्पणे, कान्तौ च । २ । उभ० सक० अनिट् ॥

प्रीञ्=प्री (तृप्त करना । इच्छा करना) । प्रीणाति (सू० १५८), प्रीणीते (वोह तृप्त करता है) । पिप्राय, पिप्रिये (उसने तृप्त किया) । अप्रैषीत्, अप्रेष्ट (उसने तृप्त किया) ॥

श्रीञ्-पाके । ३ । उभ० सक० अनिट् ॥

श्री (पकाना) । श्रीणाति, श्रीणीते (वोह पकाता है) । अश्रैषीत्, अश्रेष्ट (उसने पकाया) ॥

मीञ् हिंसायाम् । ४ । उभय० सकर्म० अनिट् ॥

मी (मारना) । मीनाति, मीनीते (वोह मारता है) । ममौ (सू० ६९१।५३८।३९), मिम्ये (उसने मारा) । मिम्यतुः (सू० २२२), मिम्याते (उन दोने मारा) । ममिथ (सू० ६९१।५३२। ५३९), ममाथ (सू० ६९१।५३०); मिमीषे (तूने मारा) । माता (सू० ६९१) (वोह मारैगा) । मास्यति, मास्यते (वोह मारैगा) । मीयात्, मासीष्ट (वोह मारै) । अमासीत् (सू० ६९१।५४५), अमास्त (सू० ६९१) (उसने मारा) । अमासिष्टाम्, अमासाताम् (उन दोने मारा) । अमास्यत्, अमास्यत (जो वोह मारै) । प्र+मीनाति ॥

७४५ हिनुमीना । ८ । ४ । १५ ॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्यैतयोर्नस्य णः ॥

उपसर्गस्थ निमित्त-(र-ष) से परे हिनु और मीनाके नकारकू णकार हो । प्रमीणाति, प्रमीणीते (वोह अत्यंत हिंसा करता है) ॥

षिञ्-बन्धने । ५ । उभय० सकर्म० अनिट् ॥

सि (बांधना) । सिनाति, सिनीते (सू० ६७१) (वोह बांधता है) । सिषाय, सिष्ये (सू० २२२ । १७०) (उसने बांधा) ।

सेता (वोह बांधेगा) । असैषीत्, असेष्ट (उसने बांधा) ॥

स्कुञ्-आप्लवने । ६ । उभय० सकर्म० अनिट् ॥

स्कु (पैरना । उद्धार करना) । स्कु+ति ॥

७४६ स्तम्भु-स्तुम्भु-स्कम्भु-स्कुम्भु-स्कुञ्भ्यः श्नुश्च। ३।१।८२॥

एभ्यो धातुभ्यः श्नुः स्याच्चात् श्ना ॥

स्तम्भ्-स्तुम्भ्-स्कम्भ्-स्कुम्भ्-(रोकना), स्कुञ् (पैरना । तैरना) इन धातुओंसे परे श्नु (मू० ६९९) प्रत्यय हो, एकवार श्नाभी हो । स्कुनोति, स्कुनाति (मू० ७४४); स्कुनुते, स्कुनीते (वोह उद्धार करता है) । चुस्काव, चुस्कुवे (उसने उद्धार किया) । स्कोता (वोह उद्धार करेगा) । अस्कौषीत्, अस्कोष्ट (उसने उद्धार किया) ॥

स्तम्भ् (१) स्तुम्भ् (२) स्कम्भ् (३) स्कुम्भ् (४) } सौत्राः । रोधने । पर० सक० सेटः ॥

उक्त 'स्तम्भ्' आदि चार धातु सूत्रलिखित है, अर्थात्–पाणिनीमुनिकृत-धातुपाठमें नहीं है । इनका रोकना अर्थ है ॥ इनकी साधनकामें जो विशेष है सो साधे देते हैं। स्तन्भ्+ना+हि(मू०४६१)॥

७४७ हलः श्नः शानज्झौ । ३ । १ । ८३ ॥

हल' परस्य श्नः शानजादेशः हौ परे ॥

हल्-से परेश्ना-कू शानच् (आन) आदेश हो, हि परे रहते । स्तन्भ्+आन+हि (मू०३७७।४६२) स्तभान (तू रोक) । अस्तभ्+च्लि+त् ॥

७४८ जॄ-स्तम्भु-म्रुचु-म्लुचु-ग्रुचु-ग्लुचु-ग्लुञ्चु-श्विभ्यश्च । ३ । १ । ५८ ॥

च्लेरङ् वा स्यात् ॥

जॄ (वृद्ध होना), स्तम्भ् (रोकना), म्रुच् (जाना), म्लुच् (जाना), ग्रुच् (चुराना), ग्लुच् (चुराना), ग्लुञ्च् (जाना),

श्वि (जाना) इन धातुओंसे परे च्लि-कू अङ् विकल्प करके हो । अस्तभत् । वि-अस्तभ्+अ+त् ॥

७४९ स्तन्भेः । ८ । ३ । ६७ ॥

स्तन्भेः सौत्रस्य सस्य षः स्यात् ॥

र तथा ष-से परे सूत्रोक्त स्तन्भ्-(सू० ७४६) धातुके स-कारकू ष-कार हो । व्यष्टभत् (सू० ७९) वा अस्तम्भीत् (सू० ४९४) (उसने रोका) ॥

युञ्-बन्धने । ७ । उभय० सकर्म० अनिट् ॥

यु (बांधना) । युनाति, युनीते (सू० ६७१) (वोह बांधता है) । युयाव, युयुवे (उसने बांधा) । योता (वोह बांधेगा)। अयौषीत्, अयोष्ट (उसने बांधा) ॥

क्नूञ्-शब्दे । ८ । उभय० सक० सेट् ॥

क्नू (शब्द करना) । क्नूनाति, क्नूनीते (वोह शब्द करता है)। क्नविता (वोह शब्द करेगा) । अक्नावीत् , अक्नविष्ट (उसने शब्द किया) ॥

दॄञ्-हिंसायाम् । ९ । उभय० सकर्म० सेट् ॥

दॄ (मारना) । दृणाति, दृणीते (वोह मारता है) ॥

द्रूञ्-हिंसायाम् । १० । उभय० सकर्म० सेट् ॥

द्रू (मारना) । द्रूणाति, द्रूणीते (वोह मारता है) । अद्रावीत्, अद्रविष्ट (उसने मारा) ॥

पूञ्-पवने । ११ । उभय० सकर्म० सेट् ॥

पू (पवित्र करना) । पु+ना+ति (सू० ७४४)॥

७५० प्वादीनां ह्रस्वः । ७ । ३ । ८० ॥

पूञ्-लूञ्-स्तॄञ्-कॄञ्-वॄञ्-धूञ्-शॄ-पॄ-वॄ-भॄ-मॄ-दॄ-जॄ-झॄ-धॄ-नॄ-कॄ-ॠ-गॄ-ज्या-री-ली-व्ली-प्लीनां चतुर्विंशतेः शिति ह्रस्वः ॥

पू (पवित्र करना), लू (काटना), स्तॄ (आच्छादन करना), कॄञ् (हिंसा करना), वॄञ् (स्वीकार करना), धूञ् (कांपना),

शॄ (मारना), पॄ (पालना । पूर्ण करना), वॄ (स्वीकार करना), भॄ (भय देना), मॄ (हिंसा करना), जॄ (वृद्ध होना), झॄ (वृद्ध होना), धॄ (वृद्ध होना), नॄ (प्राप्त करना), कॄ (हिंसा करना), ध्वॄ (टेढा होना), ऋ (जाना), गॄ (शब्द करना), ज्या (वृद्ध होना), री (हिंसा करना), ली (मिलाना), व्ली (स्वीकार करना), प्ली (जाना) इन चौवीस धातुओंकू ह्रस्व हो, शित्-प्रत्यय परे रहते । पुनाति, पुनीते (वोह पवित्र करता है) । पविता (वोह पवित्र करैगा) । अपावीत्, अपविष्ट (उसने पवित्र किया) ॥

लूञ्-छेदने । १२ । उभय० सक० सेट् प्वादिः ॥

लू (काटना) । लुनाति, लुनीते (वोह काटता है) । लुलाव, लुलुवे (उसने काटा) । लूयात् , लविषीष्ट (ई० वोह काटै) ॥

स्तॄञ्-आच्छादने । १३ । उभय० सक० सेट् प्वादिः ॥

स्तॄ (आच्छादन करना) । स्तृणाति (सू० २३७), स्तृणीते (वोह आच्छादन करता है) तस्तार (सू० ७०२), तस्तरे (सू० ६६७) (उसने आच्छादन किया)। तस्तरतुः,तस्तराते (उन दोने आच्छादन किया) । स्तरीता (सू० ६६८), स्तरिता (वोह आच्छादन करैगा) । स्तृणीयात् , स्तृणीत (सू० ६७२) (वोह आच्छादन करै) । स्तीर्यात् (सू०७१८।६६५), स्तॄ+सी+स्+त ॥

७५१ लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु । ७ । २ । ४२ ॥

वृङ् वृञ्भ्यामॄदन्ताच्च परयोर्लिङ्सिचोरिड्वा तङि ॥

वृङ् (सेवा करना) और वृञ् (स्वीकार करना) तथा ऋदन्त धातुओंसे परे लिङ् और सिच्-कू इट् आगम विकल्प करकै हो, आत्मनेपदमें । स्तॄ+इ+सी+स्+त । यहां दीर्घ (सू० ६६८) की प्राप्ति होनेपर-॥

७५२ न लिङि । ७ । २ । ३९ ॥

वॄत इटो लिङि न दीर्घः ॥

वृङ् तथा वृञ् और ऋदन्त-धातुओंसे परे इट्-को दीर्घ न हो, लिङ् परे रहते । स्तरिषीष्ट, स्तीर्षीष्ट (सू० ५९५।७१८ । ६६५) (ई० वोह आच्छादन करे) । अस्तारीत् (सू० ६६९); अस्तरिष्ट (सू० ७५१), अस्तीर्ष्ट (सू० ५९५ । ७१८ । ६६५) (उसने आच्छादन किया) । अस्तारिष्टाम् (सू० ५३४); अस्तरिषाताम्, अस्तीर्षाताम् (उन दोने आच्छादन किया) ॥

कॄञ्-हिंसायाम् । १४ । उभ० सक० सेट् घ्वादिः ॥

कॄ (मारना) । कृणाति, कृणीते (वोह मारता है) । चकार, चकरे (सू०६६७) (उसने मारा) । चकरिथ, चकरिषे (तूने मारा)॥

वॄञ्-वरणे । १५ । उभय० सकर्म० सेट् घ्वादिः ॥

वॄ (स्वीकार करना) । वृणाति, वृणीते (वोह स्वीकार करता है) । ववार, ववरे (सू० ६६७) (उसने स्वीकार किया) । वरीता (सू० ६६८), वरिता (वोह स्वीकार करेगा) । वूर्यात् (सू० ५९५ । ६६४ । ६६५); वरिषीष्ट (सू० ७५१), वूर्षीष्ट(सू०५९५ ६६४ । ६६५) (ई० वोह स्वीकार करे) । अवारीत; अवरीष्ट (सू० ७५१ । ६६८), अवरिष्ट (सू० ७५१), अवूर्ष्ट (सू०५९५। ६६४ । ६६५) (उसने स्वीकार किया) । अवरीष्टाम, अवरिष्टाम् (सू० ६६८); अवरीषाताम्, अवरिषाताम् (उन दोने स्वीकार किया) ॥

धूञ्-कम्पने । १६ । उभय० सकर्म० वेट् घ्वादिः ॥

धू (कँपाना) । धुनाति, धुनीते (वोह कँपाता है) । दुधाव, दुधुवे (उसने कँपाया) । धविता (सू० ५२६), धोता (वोह कँपावेगा) । अधावीत् (सू० ७००); अधविष्ट, अधोष्ट (उसने कँपाया) । अधविष्यत्, अधोष्यत्; अधविष्यत, अधोष्यत (जो वोह कँपावे) ॥

---

१ "धूनोति चम्पकवनानि" अत्र 'धूञ्' धातु स्वादि । "धूनाति" इत्युदाहरण प्रमाद एव, "चूत धुनाति" इति दर्शनात् ।

ग्रह-उपादाने । १७ । उभय० सकर्म० सेट् ॥

ग्रह् (लेना) । गृह्णाति (सू० ६८६), गृह्णीते (वोह लेता है)। जग्राह, जगृहे (उसने लिया) । ग्रह्+इ+ता ॥

७५३ ग्रहोऽलिटि दीर्घः । ७ । २ । ३७ ॥

एकाचो ग्रहेर्विहितस्येटो दीर्घो, न तु लिटि ॥

एकाच ग्रह-धातुमे विहित इट्-कू दीर्घ हो, परन्तु लिट् परे रहते दीर्घ न हो । ग्रहीता (वोह लेगा) । ग्रहीष्यति, ग्रहीष्यते (वोह लेगा) । गृह्णातु, गृह्णीताम् (वोह ले) । गृहाण, गृह्णीष्व (सू०७४७ । ४६२) (तू ले) । गृह्यात् . ग्रहीषीष्ट (सू०७५३) (ई० वोह ले)। अग्रहीत (सू० ५१५), अग्रहीष्ट (उसने लिया) । अग्रहीष्टाम् , अग्रहीषाताम् (उन दोने किया) ॥

कुष निष्कर्षे । १८ । पर० सक० सेट् ॥

कुष् (निश्चय करना । बाहर निकालना)। कुष्णाति (सू०२९५) (वोह बाहर निकालता है) । चुकोष (उसने बाहर निकाला) । कोषिता (वोह बाहर निकालेगा) । अकोषीत् (उसने बाहर निकाला) ॥

अश-भोजने । १९ । परस्मै० सकर्म० सेट् ॥

अश् (भोजन करना) । अश्नाति (वोह भोजन करता है) । आश (उसने भोजन किया) । अशिता (वोह भोजन करैगा) । अश्नातु (वोह भोजन करै) । अशान (सू० ७४७ । ४६२) (तू भोजन कर) । आशीत् (उसने भोजन किया) ॥

मुष-स्तेये । २० । पर० द्विकर्म० सेट् ॥

मुष् (चुराना) । मुष्णाति (वोह चुराता है) । मुमोष (उसने चुराया) । मोषिता (वोह चुरावेगा) । मुषाण (सू० ७४७ । ४६२ । १५८) (तू चुरा) । अमोषीत (उसने चुराया) ॥

ज्ञा-अवबोधने । २१ । परस्मै० सकर्म० अनिट् ॥

ज्ञा (जानना) । जानाति (सू० ६९३) (वोह जानता है)।

जज्ञौ (सू० ५३८) (उसने जाना) । अज्ञासीत् (उसने जाना)॥

वृङ्-सम्भक्तौ । २२ । आत्मने० सकर्म० सेट् ॥

वृ (सेवा करना) । वृणीते (वोह सेवा करता है)। ववृषे (सू० ५२९) (तूने सेवा की) । ववृढ्वे (तुमने सेवा की) । वरीता (सू० ६६८), वरिता (वोह सेवा करेगा) । अवरीष्ट (सू० ६६८), अवरिष्ट (सू० ७५१), अवृत (सू० ५९५ । ५९६) (उसने सेवा की) ॥

॥ इति क्र्यादयः ॥

अथ चुरादयः ।

चुर स्तेये । १ । उभयप० सकर्म० सेट् ॥

चुर् (चुराना) ॥

७५४ सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्म्मवर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच् । ३ । १ । २५ ॥

एभ्यो णिच् स्यात्स्वार्थे । चूर्णान्तेभ्यः 'प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे' इत्येव सिद्धे तेषामिह ग्रहणं प्रपञ्चार्थम् ॥

सत्याप (आपुक्-सहित-सत्य शब्द), पाश (फांसी), रूप (आकार), वीणा (बीन), तूल (रूई), श्लोक (पद्यात्मक श्लोक वा यश), सेना (फौज), लोम (रुएं), त्वच् (खाल), वर्मन् (कवच), वर्ण (रंग), चूर्ण (चूरन) इन शब्दोंसे और चुर-आदि धातुओंसे परे स्वार्थमें णिच्-प्रत्यय हो । चूर्णान्त अर्थात्-सत्यापादि-शब्दोंसे तो ' प्रातिपदिकसे धात्वर्थमें हो ' यही सिद्ध था यहां सू० ७५४ इन शब्दोंका ग्रहण पृथक् करनेके लिये है । चुर्+णि (सू० ५१७ । ५०० । १४९) चोरि+ति (सू० ४३० । ४३४ । २७) चोरयति (वोह चुराता है) ॥

७५५ णिचश्च । १ । ३ । ७४ ॥

णिजन्तादात्मनेपदं स्यात्कर्तृगामिनि क्रियाफले ॥

यदि क्रियाका फल कर्त्ताको पहुँचता हो तौ णिच्-(मू० ७५४) प्रत्ययान्तसे परे आत्मनेपद प्रत्यय (मू० ५१९) हों । चोरयते (वोह अपने अर्थ चुराता है) । चोरयामास, चोरयाञ्चक्रे (उसने चुराया) । चोरयिता (वोह चुरावेगा) । चोर्यात् (मू० ५८०), चोरयिषीष्ट (ई० वोह चुरावे) । अचूचुरत् (मू० ५७८ । ५७९ । ५८१ । ४४२ । ५८४), अचूचुरत (उसने चुराया) । अचोरयिष्यत, अचोरयिष्यत (जो वोह चुरावे) ॥

कथ–वाक्यप्रबन्धे । २ । उभय० सक० सेट् ॥

कथ (मू० ५२०) (कहना) । कथ्+इ+अ+ति । यहां वृद्धि (मू० ५०४) की प्राप्ति होनेपर–॥

७५६ अचः परस्मिन्पूर्वविधौ । १ । १ । ५७ ॥

परनिमित्तोऽजादेशः स्थानिवत्स्थानिभूतादचः पूर्वत्वेन दृष्टस्य विधौ कर्तव्ये । इति स्थानिवत्त्वान्नोपधावृद्धिः ॥

जो अच्-के स्थानमें आदेश परवर्णका निमित्त मानके हुआ हो तौ वोह आदेश जिस अच्-के स्थानमें हुआ हो उसीके समान माना जाय, यदि कोई सूत्र उस अच्-से पहले वर्णमें लगनेवाला हो तौ इस प्रकार लोपको स्थानिवत् माननेसे उपधाको वृद्धि नहीं हुई । क्योंकि–अलोप असिद्ध माननेसे थ्-की उपधा-संज्ञा होती है न कि–ककारकी । कथयति, कथयते (वोह कहता है) । कथयाञ्चकार, कथयाञ्चक्रे (उसने कहा) । कथयेत् , कथयेत (वोह कहे)। कथ्यात् , कथयिषीष्ट (ई० वोह कहे) ॥ अग्लोपित्वाद्दीर्घसन्वद्भावौ न ॥ मू० ५२० से अकारका लोप होनेके कारण दीर्घ (मू०५८४) और सनवद्भाव मानकर कार्य (मू०५८२) भी नहीं होते, कारण–कथ-धातु अग्लोपी है । अचकथत् , अचकथत (उसने कहा) ॥

गण–सङ्ख्याने । ३ । उभय० सकर्म० सेट् ॥

गण् (गिनना) । गणयति, गणयते (वोह गिनता है) । गण-

यामास, गणयाञ्चक्रे (उसने गिना) । गणयिता (वोह गिनेगा) । गण्यात्, गणयिषीष्ट (ई० वोह गिने) । अजगण्+इ+अ+त् (सू० ५७८) ॥

७५७ ई च गणः । ७ । ४ । ९७ ॥

गणयतेरभ्यासस्य ईत् स्याच्चादट्परे णौ ॥

गण-धातुके अभ्यासकू ई हो चकारसे अ-भी, जिसके परे चङ् हो ऐसी णि परे रहते । अजीगणत् , अजगणत्; अजीगणत अजगणत (उसने गिना) । अगणयिष्यत् , अगणयिष्यत (जो वोह गिने)॥

॥ इति चुरादयः ॥

इति श्रीवरदराजप्रेक्षावत्प्रणीतलघुसिद्धान्तकौमुद्याः श्रीमन्निखिलविद्यापारंगमज्योतिर्विच्छ्रीचन्द्रमणिसूरिसूनुश्रीमन्नारायणामलचरणकमलरसानुभवशालिश्रीज्वालानाथभट्टकोविदतनयेन मुरादाबादनिवासिना उदीच्य-व्रजरत्नभट्टाचार्येण प्रणीतभाषानुवादे तिङन्ते दशगणविभागः समाप्तः ।

अथ ण्यन्तप्रक्रिया ।

७५८ स्वतन्त्रः कर्ता । १ । ४ । ५४ ॥

क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात् ॥

किसी क्रियामें जिस अर्थकी स्वतन्त्रतासे विवक्षा हो (कि-जैसे-यहां क्रिया करनेवाला है) उसकी कर्त्ता संज्ञा हो ॥

७५९ तत्प्रयोजको हेतुश्च । १ । ४ । ५५ ॥

कर्तुः प्रयोजको हेतुसञ्ज्ञः कर्तृसञ्ज्ञश्च स्यात् ॥

कर्त्ताके प्रेरणा करनेवालेकी हेतु-संज्ञा और कर्तृ-संज्ञा हो ॥

७६० हेतुमति च । ३ । १ । २६ ॥

१ रसोइया पकाता है । आग पकाती है । ईंधन पकाता है । यहां वक्ताकी इच्छानुसार तीनों कर्ता हो सक्ते है ।

प्रयोजकव्यापारे प्रेषणादौ च वाच्ये धातोर्णिच् स्यात्। भवन्त प्रेरयति-भावयति॥

जब प्रेरणा करनेवालेका व्यापार प्रेषणादि-(प्रेरणा, अध्येषणा, विज्ञापना)[1] मेंसे किसी प्रकारकी प्रेरणा प्रकट करनी हो तो धातुसे परे णिच् (इ) प्रत्यय हो। भू+इ (सू० २०३। ५१७) भौ+इ+अ+ति (सू० ४३३। ४३४। २७) भावयति (सू० २७) (वोह होनेवालेको प्रेरणा करता है)। भावयाम्बभूव (सू० ५१९) (उसने होनेवालेको प्रेरणा की)। भावयिता (वोह होनेवालेको प्रेरणा करेगा)। भावयिष्यति (वोह होनेवालेको प्रेरणा करेगा)। भावयतु (वोह होनेवालेको प्रेरणा करे)। अभावयत् (उसने होनेवालेको प्रेरणा की)। भावयेत (वोह होनेवालेको प्रेरणा करे)। भावयात (ई० वोह होनेवालेको प्रेरणा करे)। अ-भू+इ+अ+त् (सू० ७६०। ५७८। ४७२। ५८१। ५७१। ४२५) अ-बु भू+इ+अ+त (सू० ५८२)॥

७६१ ओः पुयण्ज्यपरे। ७। ४। ८०॥

सनि परे यदङ्गं तदवयवाभ्यासोकारस्य इत्स्यात्पवर्गयणजकारेष्ववर्णपरेषु परतः॥

जिस अंगसे परे सन् हो उस (अंग) के अवयव अभ्यासके उकारकू इकार हो, जिससे परे अवर्ण हो ऐसे पवर्ग तथा यण् वा जकार परे रहते। अबि-भू+इ+अ+त् (सू० ५८४। ४३४। २७। २०३। २७) अबीभवत् (सू० ६७२) (उसने होनेवालेको प्रेरणा की)। अभावयिष्यत् (जो वोह प्रेरणा करे)॥

ष्ठा-गतिनिवृत्तौ॥

ष्ठा=स्था[2] (सू० २८३) (स्थित होना)। स्था+इ+अ+ति॥

1 नीचको प्रेरणा करना प्रेरणा कहाती है। गुरुआदि शिष्ट पुरुषको सत्कारपूर्वक प्रेरण करना अध्येषणा कहाती है। स्वामीको प्रार्थनासे प्रेरण करनेको विज्ञापना कहते है। 2 सू० ७५५ मे आत्मनेपदभी हो जाता है। 3 "निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः" अर्थात्-जब निमित्तका नाश हो जाता है तब नैमित्तिककाभी नाश हो जाता है। जैसे-षकारका नाश होनेसे तन्निमित्त ठकारकाभी नाश हो गया।

७६२ अर्त्तिह्रीव्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुङ् णौ।७।३।३६॥

ऋ (जाना), ह्री (लज्जित होना), व्ली (स्वीकार करना), री (मारना), क्नूयी (शब्द करना), क्ष्मायी (कांपना) और आकारान्त-धातुओंसे परे पुक् (प्) आगम हो, णि परे रहते। स्था+प्+इ+अ+ति (सू० ४३४ । २७) स्थापयति (वोह स्थित करवाता है)। अस्था+प्+इ+अ+त् (सू० ५७८) ॥

७६३ तिष्ठतेरित् । ७ । ४ । ५ ॥

उपधाया इदादेशः स्याच्चङ्परे णौ ॥

स्था-धातुकी उपधाके स्थानमें इ हो, चङ्-परक णि परे रहते। अस्थिप+इ+अ+त् (सू० ५८१ । ७०२ । ४४५ । ५८०) अति-स्थिप्+अ+त (सू० १७० । ७१) अतिष्ठिपत् (उसने स्थित करवाया) ॥

घट-चेष्टायाम् ॥

घट् (चेष्टा करना)। घट+इ+अ+ति (सू० ५०४) ॥

७६४ मितां ह्रस्वः । ६ । ४ । ९२ ॥

घटादीनां ज्ञपादीनां च ह्रस्वः स्यात् ॥

घट-आदि तथा ज्ञप्-आदि मित्-धातुओंको ह्रस्व हो। घटयति (सू० ४३४ । २७) (वोह चेष्टा कराता है)। अजीघटत (उसने चेष्टा कराई) ॥

ज्ञप ज्ञाने ज्ञापने च ॥

ज्ञप् (जानना वा जनाना)। ज्ञपयति (वोह जानता है)। अजिज्ञपत (सू० ५८२ । ५८३) (उसने जाना) ॥

॥ इति ण्यन्तप्रक्रिया ॥

अथ सन्नन्तप्रक्रिया ।

पठ-व्यक्तायां वाचि ॥

पठ् (पढना) ॥

७६५ धातोः कर्म्मणः समानकर्तृकादिच्छायाम्वा। ३। १। ७॥

इषिकर्मण इषिणैककर्तृकाद्धातोः सन्प्रत्ययो वा स्यादिच्छायाम् ॥

जिस क्रियाका कर्त्ता और इच्छा करनेवाला दोनों एकही हों और यदि वोह धातु इच्छारूप क्रियाका कर्म हो तो उस धातुसे परे इच्छा-अर्थमें सन-प्रत्यय विकल्प करके हो। पठ्+स+अ+ति ॥

७६६ मन्यङोः। ६। १। ९॥

सन्नन्तस्य यङन्तस्य च प्रथमस्यैकाचो द्वे स्तोऽजादेस्तु द्वितीयस्य ॥

सन्-(सू० ७६५) प्रत्ययान्त और यङ्-(सू० ७७१) प्रत्ययान्त धातुके प्रथम एकाच्-भागकू द्वित्व हो, और यदि प्रथम एकाच्-भागके आदिमें अच् हो तो दूसरे एकाच्-भागकू द्वित्व हो। पठ् पठ+स+अ+ति (सू० ४४२। ५८३। ४४७। १७०) पिपठिषति (पठितुमिच्छति) (वोह पढनेकी इच्छा करता है) ॥

कर्मणः किम्? गमनेनेच्छति ॥

सू० ७६५ में 'यदि वोह धातु इच्छारूप क्रियाका कर्म हो' ऐसा कहनेसे—गमनेनेच्छति (गमनसे कुछ करनेकी इच्छा करता है)। यहां सन् नहीं हुआ, क्योंकि—उक्त वाक्यमें गमनरूप क्रिया इच्छारूप क्रियाका कर्म नहीं है—किन्तु करण है ॥

समानकर्तृकात्किम्? शिष्याः पठन्तु—इतीच्छति गुरुः ॥

और सू० ७६५ में 'जिस क्रियाका कर्त्ता और इच्छा करनेवाला एकही हो' यह कहनेसे—शिष्याः पठन्तु—इतीच्छति गुरुः (शिष्य पढें—गुरु यह इच्छा करता है)। यहां सन्-प्रत्यय नहीं हुआ, कारण—उक्तोदाहरणमें पठनरूप क्रियाके कर्त्ता शिष्य और इच्छारूप क्रियाके कर्त्ता गुरु यह दोनों पृथक् २ कर्त्ता हैं ॥

वाग्रहणाद्वाक्यमपि ॥

सन्-प्रत्यय विकल्प करके हो, यह कहनेसे ज्ञात होता है कि—सन्-के अभाव-पक्षमें वाक्यकाभी ग्रहण होता है। जैसे—'पिपठिषति' के

स्थानमें—'पठितुमिच्छति' इत्यादि वाक्यान्तरोंका प्रयोगभी होता है ॥ अद्+स+ति (सू० ६०९ । ७६६।४४२।५०३।५८३) जिघस्+स +अ+ति (सू० ४५०) ॥

७६७ सः स्यार्धधातुके । ७ । ४ । ४९ ॥

सस्य तः स्यात्सादावार्धधातुके ॥

सकारकू तकार हो, सकारादि-आर्धधातुक परे रहते । जिघत्सति (सू० ३०२ । ५२५) (अत्तुमिच्छति—वा) (वोह खानेकी इच्छा करता है) ॥ कृ+स+अ+ति (सू० ७६६ । ५२३ । ५८३) चिकृ+स+अ+ति ॥

७६८ अज्झनगमां सनि । ६ । ४ । १६ ॥

अजन्तानां हन्तेरजादेशगमेश्च दीर्घो झलादौ सनि ॥

अजन्त-धातुओंकू तथा हन् (मारना) और अच्-रूप (इ-इक् आदिके स्थानमें हुए) गम्-आदेशकूभी दीर्घ हो, झलादि सन्-प्रत्यय परे रहते । चिकॄ+स+अ+ति ॥

७६९ इको झल् । १ । २ । ९ ॥

इगन्ताज्झलादिः सन् कित् स्यात् ॥

जिसके अन्तमें इक् हो उस धातुसे परे झलादि सन्-प्रत्यय कित् माना जाय । चिकीर्षति (सू० ७१८।६६९) (कर्तुमिच्छति) (वोह करनेकी इच्छा करता है)॥ भू+स+अ+ति = बुभू+स+अ+ति । यहां इट्-(सू० ४४७) की प्राप्ति हुई, परन्तु—॥

७७० सनि ग्रहगुहोश्च । ७ । २ । १२ ॥

ग्रहेर्गुहेरुगन्ताच्च सन इण् न स्यात् ॥

ग्रह (लेना), गुह (ढांपना) इन धातुओंसे और उक्-प्रत्याहारान्त धातुओंसे परे सन्-कू इट् न हो । बुभूषति (भवितुमिच्छति) (वोह होनेकी इच्छा करता है) ॥

॥ इति सन्नन्ताः ॥

अथ यङन्तप्रक्रिया।

७७१ धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्।३।१।२२॥

पौनःपुन्ये भृशार्थे च द्योत्ये धातोरेकाचो हलादेर्यङ् स्यात्॥

जब क्रियाका वारंवार करना हो अथवा उस क्रियाकी अत्यन्तता प्रकट करनी हो तो हलादि एकाच्-धातुसे परे यङ् (य) हो। भू+य (सू० ७६६।४४५) बुभू+य (सू० ५१७।४२४) बुभू+य +अ+ते (सू० ५५८)-॥

७७२ गुणो यङ्लुकोः। ७। ४। ८२॥

अभ्यासस्य गुणो यङि यङ्लुकि च परतः॥

अभ्यास-(सू० ४४१) कू गुण हो, यङ परे रहे तो अथवा यङ्का लुक् (सू० ७७८) परे हो तो। बोभूयते (सू० ३०२) (पुनः पुनः अतिशयेन वा भवति) (वोह वारंवार अथवा अत्यंत करके होता है)। बोभूयाञ्चक्रे (वोह वारंवार हुआ)। अबोभूयिष्ट (वोह वार २ हुआ)॥ 'व्रज्'धातुसे क्रियासमभिहारमें यङ् (सू० ७७१) प्राप्त था, परन्तु-॥

७७३ नित्यं कौटिल्ये गतौ। ३। १। २३॥

गत्यर्थात् कौटिल्य एव यङ् स्यात्, नतु क्रियासमभिहारे॥

गति-अर्थवाले धातुओंसे परे कुटिलता-अर्थमेंही यङ् प्रत्यय हो, न कि-क्रियासमभिहार अर्थात्-क्रियाके वारंवार करने वा अतिशयार्थमें। व्रज्+य+अ+ते (सू० ७६६) वव्रज्य+अ+ते (सू० ३०२)॥

७७४ दीर्घोऽकितः। ७। ४। ८३॥

अकितोऽभ्यासस्य दीर्घो यङ्यङ्लुकोः॥

जिसकी कित्-संज्ञा न हो तिस अभ्यासकू दीर्घ हो, यङ् वा यङ्-लुक् परे रहते। वाव्रज्यते (कुटिलं व्रजति) (वोह कुटिल जाता है)। वाव्रज्य+आम्+चकृ+ए (सू० ५१९। ५२२। ५६३)॥

७७५ यस्य[1] हलः । ६ । ४ । ४९ ॥

हलः परस्य य-शब्दस्य लोप आर्धधातुके ॥

हल्-से परे य-कारका लोप हो, आर्धधातुक प्रत्यय परे रहते । मू० ८९ के अनुसार य-का लोप होता है । और मू० ५२० से य-कारके 'अ' का लोप होता है । वाव्रजाञ्चक्रे (वोह कुटिल गया)। वाव्रजिता (वोह कुटिल जायगा) ॥ वृवृत्+य+ते । इस अवस्थामें–॥

७७६ रीगृदुपधस्य च । ७ । ४ । ९० ॥

ऋदुपधस्य धातोरभ्यासस्य रीगागमो यङ्यङ्लुको. ॥

जिस धातुकी उपधामें ऋकार हो तिसके अभ्यासकू रीक् (री) आगम हो, यङ् वा यङ्-लुक् परे रहते । वर्+री+वृत्य+ते (मू० ४३४ । १३१) वरीवृत्यते (वोह वारंवार होता है)। वरीवृता-ञ्चक्रे (वोह वार २ हुआ)। वरीवृतिता (वोह वार २ होगा) ॥ नृनृत्+य+अ+ते । यहां नकारकू ण (मू० १५८) प्राप्त हुआ था, परन्तु–॥

७७७ क्षुभ्नादिषु च । ८ । ४ । ३९ ॥

णत्वं न ॥

क्षुभ्नादि-पठितधातुओंकू णकार न हो । नरीनृत्यते (मू०७७६) (वोह वार २ नाचता है) ॥ गृगृह्+य+अ+ते(मू० ७७६) जरी-गृह्यते (वोह वारंवार लेता है) ॥

॥ इति यङन्तप्रक्रिया ॥

अथ यङ्लुगन्तप्रक्रिया ।

७७८ यङोऽचि च । २ । ४ । ७४ ॥

यङोऽचि प्रत्यये लुक् स्याच्चकारान्त विनापि क्वचित् । अनैमित्तिकोऽयम् अन्तरङ्गत्वादादौ भवति । ततः प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वाद्द्वित्वमभ्यास-

१ 'यस्येति सघातग्रहणम्'।

कार्य्यंश्च। धातुत्वाल्लडादयः। शेषात्कर्तरीति परस्मैपदम्। चर्करीत चेत्यदादौ पाठाच्छपो लुक्॥

अच्-(मू० ८५१) प्रत्यय परे रहते यङ्-(मू० ७७१) का लुक् हो, सूत्र-लिखित चकारसे ज्ञात होता है कि-कभी अच्-प्रत्ययके परे न रहतेभी यङ्-का लुक् हो जाता है। यह अच्-प्रत्ययके विना यङ्-का लुक् होना अनैमित्तिक (निमित्तरहित) है, कारण कि-उसके लिये किसी निमित्तकी अपेक्षा नहीं है, और इसको किसी आश्रयणका आश्रय न होनेके कारण यह अन्तरङ्ग है, इसीसे पहले हो जाता है। तदनन्तर यङ्-का लुक् हो जानेपरभी मू० २१० के अनुसार यङन्त मानकर मू० ७६६ के अनुसार द्वित्व और यथासम्भव अभ्यासके कार्य होते हैं। फिर मू० ५१७ के अनुसार धातुत्व होनेसे लट्-आदि धातुकार्य किये जाते हैं। और मूल ४२६ के अनुसार परस्मैपद प्रत्यय होते हैं। मू० ६५० के अनुसार यङ-लुगन्तकू अदादि मान मू० ६०३ के अनुसार शप्-का लुक् होता है॥ बुभू+ति। इस अवस्थामें-॥

७७९ यङो वा। ७। ३। ९४॥

यङ्लुगन्तात्परस्य हलादेः पितः सार्वधातुकस्येड्वा स्यात्। भूसुवोरिति गुणनिषेधो यङ्लुकि भाषाया न, "बोभूतु तेतिक्ते" इति छन्दसि निपातनात्॥

जिस धातुसे परे यङ्-का लुक् हुआ हो तिससे परे हलादि-पित् सार्वधातुकको इट् (इ) आगम विकल्प करके हो। भाषा अर्थात्-वेदभिन्न अन्य शास्त्रोंमें यङ्-लुक् होनेपर गुणका निषेध करनेवाला (मू० ४८६) सूत्र नहीं लगता, क्योंकि-'बोभतु' इस वैदिक प्रयोगमें गुण न हो, इसलिये "बोभतु तेतिक्ते" इस सूत्रद्वारा वेदमें 'बोभतु' यह निपातन किया है। यदि यहांभी गुणनिषेध (मू० ४८६) लगता तो उसीसे गुणका निषेध सिद्ध थी निपात करनेकी क्या आवश्यकता थी, इससे विदित होता है कि-वेदमें यङ्-

लुगन्त प्रयोगमें गुण नहीं होता; अर्थात्–शास्त्रमें गुण हो जाता है। बुभू+ई+ति = बोभो+ई+ति (सू० २७) बोभवीति, बोभोति (वोह वार २ होता है)। बोभूतः (वे दो वार २ होते हैं)। बोभुवति (सू० ६५९ । २२१) (वे वार २ होते हैं)। बोभवीषि, बोभोषि (तू वार २ होता है)। बोभवीमि, बोभोमि (मे वार २ होता हूं)। बोभवाञ्चकार, बोभवामास (वोह वार २ हुआ)। बोभविता (वोह वार २ होगा)। बोभविष्यति (वोह वार २ होगा)। बोभवीतु, बोभोतु, बोभूतात् (सू० ४५८) (वोह वार २ हो)। बोभूताम् (वे दो वार २ हों)। बोभुवतुः (वे वार २ हों)। बोभूहि (सू० ४६१) (तू वार २ हो)। बोभवानि (सू० ४६४) (मे वार २ होऊं)। अबोभवीत्, अबोभोत् (वोह वार २ हुआ)। अबोभूताम (वे दो वार २ हुए)। अबोभवुः (वे वार २ हुए)। बोभूयात् (वोह वार २ हो)। बोभूयाताम् (वे दो वार २ हों)। बोभूयुः (वे वार २ हों)। बोभूयात् (ई० वोह वार २ हो)। बोभूयास्ताम् (ई० वे दो वार २ हों)। बोभूयासुः (ई० वे वार २ हों)। अबोभू+स्+त (सू० ४८४) ॥

गातिस्थेति सिचो लुक् । यङो वेतीटपक्षे गुणं बाधित्वा नित्यत्वाद्वुक् ॥

उक्त अवस्थामें सिच्-का लुक् (सू० ४८५) हो गया। और जिस पक्षमें सू० ७७९ से इट्-का आगम होता है, उस पक्षमें गुण-(सू० ४३४) को बाधकर नित्य होनेके कारण वुक् (सू० ४३९) आगम होता है, क्योंकि-वुक् नित्य[1] और गुणसे विशेष बलवान् है। अबोभू+व्+ई+त् = अबोभवीत, अबोभोत् (वोह वारंवार हुआ)। अबोभूताम (वे दो वारंवार हुए)। अबोभवुः (वे वारंवार हुए)। अबोभविष्यत (जो वोह वारंवार हो) ॥

॥ इति यङ्लुगन्तप्रक्रिया ॥

१ उस विधिको नित्य कहते हैं जो अपने विरोधी सूत्रके लग जानेपरभी उसी उदाहरणमें लग सक्ती हो।

अथ नामधातवः।

७८० सुप आत्मनः क्यच्। ३। १। ८॥

इषिकर्मण एषितुः सम्बन्धिनः सुबन्तादिच्छायामर्थे क्यच् प्रत्ययो वा स्यात्॥

जिस सुबन्तका इच्छा करनेवालेके साथ आत्मसम्बन्ध हो और वोह सम्बन्धी इष-धातुका कर्म हो तिस सुबन्तसे परे इच्छा-अर्थमें विकल्प करके क्यच् (सू० १५६। ३) (य) प्रत्यय हो॥ जब कोई मनुष्य पुत्रकी इच्छा करता है तब पुत्रवाची शब्द इष्-(इच्छा करना) धातुका कर्म होता है, क्योंकि—पुत्रवाचक शब्द तिसका विषय हो रहा है, और इच्छा करनेवालेका आत्मसंबंधभी है, कारण उस पुरुषको अपने लिये पुत्रकी इच्छा है, दूसरेके लिये नहीं॥ पुत्र+अम्[1]+य+अ+ति। इस अवस्थामें—॥

७८१ सुपो धातुप्रातिपदिकयोः। २। ४। ७१॥

एतयोरवयवस्य सुपो लुक्॥

धातु अथवा प्रातिपदिक-(सू० १३६। १३७) का अवयव जो सुप् (सू० १३८) तिसका लुक् हो। पुत्र+य+अ+ति(सू०३०२)॥

७८२ क्यचि च। ७। ४। ३३॥

अवर्णस्य ई.॥

क्यच्-(सू० ७८०) प्रत्यय परे रहते अवर्णकू ई हो। पुत्रीयति (आत्मनः पुत्रमिच्छति) (वोह अपने लिये पुत्रकी इच्छा करता है)। राजन्+अम+य+अ+ति (सू० ७८१। ३०२। ७८२) राजीन्+यति॥

७८३ नः क्ये। १। ४। १५॥

क्यचि क्यङि च नान्तमेव पदं, नान्यत्॥

क्यच् (सू० ७८०) अथवा क्यङ् (सू० ७८९) परे रहते

---

१ यह अम् द्वितीयाका चिन्ह है।

नकारान्तकीही पद-संज्ञा हो, नकारान्तसे भिन्नकी नहीं । पदसंज्ञा होकर नकारका लोप (सू० २०१) हो गया । राजीयति (आत्मनः राजानमिच्छति) (वोह अपने लिये राजाकी इच्छा करता है)॥

नान्तमेवेति किम् ? वाच्यति ॥

नान्तकीही पद-संज्ञा हो यह कहनेसे—वाच्यति (वोह वाणीकी इच्छा करता है) । यह पद-संज्ञा न हुई । क्योंकि—वाच्-शब्द नकारांत नहीं किन्तु चकारान्त है, पद-संज्ञा न होनेसे ' च ' कू ' क ' (सू० ३३५) न हुआ ॥ गिर्+अम्+याति (सू० ७८१ । ६६५) गीर्यति (आत्मनः गिरमिच्छाति) (वोह अपने लिये वाणीकी इच्छा करता है) । पूर्यति (आत्मनः पुरमिच्छति) (वोह अपने लिये नगरीकी इच्छा करता है) । दिव्यति (आत्मनः दिवमिच्छति) (वोह अपने अर्थ स्वर्गकी इच्छा करता है) । यहां दीर्घ नहीं होता, क्योंकि— सू० ६६५ धातुहीमें लगता है, और यहां दिव्-शब्द स्वर्गवाची है ॥ समिध्यति (आत्मनः समिधमिच्छति) (वोह अपने लिये ईंधनकी इच्छा करता है) । समिध्+य+इ+ता (सू० ४४७) ॥

७८४ क्यस्य विभाषा । ६ । ४ । ५० ॥

हलः परयोः क्यच्क्यङोर्लोपो वार्धधातुके । आदेः परस्य । अतो लोपः। तस्य स्थानिवत्त्वाल्लघूपधगुणो न ॥

हल्-से परे जो क्यच् और क्यङ् तिनका विकल्प करके लोप हो, आर्धधातुक प्रत्यय परे रहते । सू० ८९ के अनुसार केवल ' य् ' का लोप होता है । सू० ५२० से ' अ ' का लोप होता है । उस अकारके लोपकू स्थानिवत् माननेसे गुण (सू० ५००) नहीं होता । समिधिता, समिध्यिता (वो ईंधनकी इच्छा करैगा) ॥

७८५ काम्यच्च । ३ । १ । ९ ॥

उक्तविषये काम्यच् स्यात् ॥

उक्त विषय-(सू० ७८०) हीमें काम्यच् (काम्य) प्रत्ययभी हो। पुत्रकाम्यति (वोह पुत्रकी इच्छा करता है) । पुत्रकाम्यिता (वोह पुत्रकी इच्छा करैगा) ॥

७८६ उपमानादाचारे। ३। १। १०॥

उपमानात्कर्मणः सुबन्तादाचारेऽर्थे क्यच् ॥

उपमानवाचक कर्म-संज्ञक सुबंतसे परे आचरणअर्थमें क्यच् (य) प्रत्यय हो । पुत्रीयति–छात्रम (सू० ७८२) (पुत्रमिवाचरति) (वोह छात्रको पुत्रकी समान आचरण करता है) । विष्णूयति–द्विजम (विष्णुमिवाचरति) (वोह ब्राह्मणकू विष्णुकी समान मानता है) ॥

७८७ (सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः) ॥

सम्पूर्ण प्रातिपदिकोंसे परे सू० ७८६ के विषयमें क्विप्-प्रत्यय विकल्प करके हो ऐसा कहना चाहिये । क्विप्-का लोप (सू० १९६ । ३३१) हो जाता है । कृष्ण+क्विप्+अ+ति (सू० ३०२) कृष्णाति (कृष्ण इवाचरति) (वोह कृष्णकी सदृश आचरण करता है) । स्वति (स्व इवाचरति) (वोह अपनी सदृश आचरण करता है) । सस्वौ (सू० ५३८) (उसने अपनी समान आचरण किया) ॥ इदम्+क्विप्+अ+ति ॥

७८८ अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति। ६। ४। १५॥

अनुनासिकान्तस्योपधाया दीर्घः क्वौ झलादौ च क्ङिति ॥

अनुनासिकान्तकी उपधाको दीर्घ हो, क्विप् अथवा झलादि कित् वा ङित प्रत्यय परे रहते । इदामति (इदमिवाचरति) (वोह इसकी सदृश आचरण करता है) । राजानति (राजेवाचरति) (वोह राजाकी सदृश आचरण करता है) । पथीनति (पन्था इवाचरति) (वोह मार्गसरीखा आचरण करता है) ॥

७८९ कष्टाय क्रमणे। ३। १। १४॥

चतुर्थ्यन्तात्कष्टशब्दादुत्साहेऽर्थे क्यङ् स्यात् ॥

चतुर्थ्यन्त कष्ट-(कष्टाय) शब्दसे परे उत्साह अर्थमें क्यङ् (य) प्रत्यय हो । कष्टाय+य+ते (मू० ७८१) कष्टायते (पापं कर्तुमुत्सहत इत्यर्थः) (वोह पाप करनेके अर्थ उत्साह करता है) ॥

७९० शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे । ३।१।१७ ॥

एभ्यः कर्मभ्यः करोत्यर्थे क्यङ् स्यात् ॥

शब्द (शब्द), वैर (विरोध), कलह (लडाई, टंटा), अभ्र (बादल), कण्व (पाप), मेघ (बादल) जब यह शब्द कर्म हों तब इनसे करने-अर्थमें क्यङ् प्रत्यय हो । शब्द+अम+य+अ+ते (मू० ७८१ । ५३३ । ३०२) शब्दायते (शब्दं करोति) (वोह शब्द करता है)।

७९१ (प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्टवच्च) ॥

प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे णिच् स्यात्, इष्ठे यथा-प्रातिपदिकस्य पुंवद्भाव-रभाव-टिलोप-विन्मतुब्लोप-यणादिलोप-प्रस्थ स्फाद्यादेश-भसंज्ञास्तद्वण्णावपि स्यु ॥

प्रातिपदिक-से परे धातुके अर्थमें णिच् प्रत्यय हो, और जैसे इष्ठन्-(मू० १३२९) प्रत्यय परे रहते स्त्रीलिंगका पुंल्लिग होता है, ऋकारकू र-आदेश होता है, टि-(मू० ४९) का लोप होता है, तथा विन्-(मू० १३०३) प्रत्यय और मतुप्-(मू० १२९०) प्रत्ययका लोप होता है, यण्-आदिका लोप होता है, तथा प्रियशब्दकू प्र-आदेश स्थिर-शब्दकू स्थ आदेश और स्फिर-शब्दकू स्फ आदेश होते हैं, भ-(मू० १८६) संज्ञा होती है, वैसेही यह कार्य णि परे रहतेभी हो ॥ यह (मू० ७९१) णिच्-विधान करनेमें सामान्य विधि है, विशेषविधि नीचे (मू० ७९२) लिखते हैं-॥

७९२ (तत्करोति तदाचष्टे) इति णिच् ॥

वोह अमुक कार्य करता है, अथवा वोह अमुक वार्त्ताको कहता है, इन अर्थोंमें णिच् प्रत्यय हो; अर्थात् मू० ७९१ से जो णिच्-प्रत्यय धात्वर्थमें प्रातिपदिकोंसे प्राप्त है वोह केवल करना और क-

हना इन्ही दो अर्थोंमें हो, अन्य धात्वर्थमें न हो। घट+इ+अ+ति। यहां भ-संज्ञक अकारका लोप (सू० ७९१) हो गया। घटि+अ+ति (सू० ४३४। २७) घटयति (घटं करोति-आचष्टे वा) (वोह घटकू बनाता है, वा घटकू कहता है)॥

॥ इति नामधातवः ॥

अथ कण्ड्वादयः।

कण्डूञ्-गात्रविघर्षणे। १। उभय० सकर्म० सेट्॥

कण्डू (खुजाना)॥

७९३ कण्ड्वादिभ्यो यक्। ३। १। २७॥

एभ्यो धातुभ्यो नित्यं यक् स्यात्स्वार्थे॥

कण्डू-आदि धातुओंसे परे स्वार्थमें नित्य यक् (य) प्रत्यय हो। कण्डूय+अ+ति (सू०३०२) कण्डूयति, कण्डूयते (वो खुजाता है) इत्यादि॥

॥ इति कण्ड्वादिगणः समाप्तः ॥

अथ आत्मनेपदप्रक्रिया।

७९४ कर्त्तरि कर्म्मव्यतिहारे। १। ३। १४॥

क्रियाविनिमये द्योत्ये कर्त्तर्यात्मनेपदं स्यात्॥

जब क्रियाका विनिमय (अदला-बदला) प्रकाश करना हो तब कर्त्ता-अर्थमें आत्मनेपद हो। वि-अति+लुना+ते (सू०७४४।६७१) व्यतिलुनीते (अन्यस्य योग्यं लवनं करोतीत्यर्थः) (वोह दूसरेके योग्य काटना कर्म करता है)॥

७९५ न गतिहिंसार्थेभ्यः। १। ३। १५॥

गति (जाना) और हिंसाअर्थवाची धातुओंसे आत्मनेपद प्रत्यय

(सू०७९४) न हो। व्यतिगच्छति (वे परस्पर विरुद्ध जाते हैं)। व्यतिघ्नन्ति (वे परस्पर मारते हैं)॥

७९६ नेर्विशः। १। ३। १७॥

नि-पूर्वक विश-धातुसे परे आत्मनेपद-संज्ञक प्रत्यय हों। निविशते (वोह अन्तरमें प्रवेश करता है)॥

७९७ परिव्यवेभ्यः क्रियः। १। ३। १८॥

परि, वि और अव उपसर्गोंसे परे जो क्री-धातु तिससे आत्मनेपद-संज्ञक प्रत्यय हों। परिक्रीणीते (वोह मोल लेता है)। विक्रीणीते (वोह बेचता है)। अवक्रीणीते (वोह मोल लेता है)॥

७९८ विपराभ्यां जेः। १। ३। १९॥

वि और परा उपसर्गोंसे परे जो जि-धातु तिससे आत्मनेपद प्रत्यय हों। विजयते (वोह जीतता है)। पराजयते(वोह हारता है)॥

७९९ समवप्रविभ्यः स्थः। १। ३। २२॥

सम्, अव, प्र और वि यह उपसर्ग जिसके पहले हों ऐसे ष्ठा- (स्था) धातुसे आत्मनेपद प्रत्यय हो। संतिष्ठते (वोह भली प्रकार स्थित होता है)। अवतिष्ठते (वोह स्थित होता है)। प्रतिष्ठते (वोह अच्छी रीतिसे स्थित होता है)। वितिष्ठते (वोह विशेषकरके स्थित होता है)॥

८०० अपह्नवे ज्ञः। १। ३। ४४॥

ज्ञा-धातुसे परे छिपाने-अर्थमें आत्मनेपद-संज्ञक प्रत्यय हों। शतमपजानीते (अपलपतीत्यर्थः) (वोह सौ रुपये छिपाता है– अर्थात्–१०० रुपयेकू नाटता है)॥

१ इन दोनों उदाहरणोंमेंभी कर्मव्यतिहार है, क्योंकि–जब वे उनके घर जाते हैं तब वे उनके घर जाते हैं। और जब वे उनको मारते हैं तब वे उनको मारते हैं। ऐसे अदल बदलकोंभी महाभाष्यकारने कर्मव्यतिहार माना है। और के गोचर कामको और कर इसकोंही क्रियाविनिमय (कर्मव्यतिहार) नहीं कहते हैं। चाहे जैसा क्रियासंबंधी अदल-बदल हो वोह सब कर्मव्यतिहार कहाता है।

८०१ अकर्म्मकाच्च । १ । ३ । ४५ ॥

यदि ज्ञा-धातु अकर्मक हो तो उससे परे आत्मनेपद-संज्ञक प्रत्यय हो। सर्पिषो जानीते (सर्पिषोपायेन प्रवर्त्तत इत्यर्थः) (वोह घृतउपायसे प्रवृत्त होता है)॥

८०२ उदश्चरः सकर्म्मकात् । १ । ३ । ५३ ॥

जिसके प्रथम उत् उपसर्ग हो ऐसे सकर्मक चर्-धातुसे आत्मनेपद-संज्ञक प्रत्यय हों। धर्ममुच्चरते (उल्लङ्घ्य गच्छतीत्यर्थः) (वोह धर्मका उल्लंघन कर जाता है) ॥

८०३ समस्तृतीयायुक्तात् । १ । ३ । ५४ ॥

तृतीयान्त-पदसे युक्त और सम्-पूर्वक जो चर् धातु तिससे आत्मनेपद हो। रथेन संचरते (वोह रथद्वारा सुखसे जाता है) ॥

८०४ दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे । १ । ३ । ५५॥

सम्पूर्वाद्दाणस्तृतीयान्तेन युक्तादुक्तं स्यात् तृतीया चेच्चतुर्थ्यर्थे ॥

तृतीयान्त-पदसे युक्त तथा सम्-पूर्वक दाण्-धातुसे परे आत्मनेपद प्रत्यय हों, यदि वोह तृतीया चतुर्थीके अर्थमें हो तो। दास्या संयच्छते कामी (कामी रतिकी कामनासे दासीको देता है) ॥

८०५ पूर्ववत्सनः । १ । ३ । ६२ ॥

सनः पूर्वो यो धातुस्तेन तुल्यं सन्नन्तादप्यात्मनेपदं स्यात् ॥

सन्-प्रत्ययसे पहले जो धातु आत्मनेपदी हो उसके सदृश सन्-प्रत्ययान्त धातुसेभी आत्मनेपद हो। एदिधिषते (सू० ४४७। ७६६) (वोह बढनेकी इच्छा करता है) ॥

८०६ हलन्ताच्च । १ । २ । १० ॥

इक्समीपाद्धलः परो झलादिः सन् कित् स्यात् ॥

इक्-के समीप जो हल् तिससे परे झलादि अर्थात्-अनिट् सन् कित्-संज्ञक हो। निविविक्षते (वोह प्रवेश करनेकी इच्छा करता है)॥

८०७ गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः । १ । ३ ।३२ ॥

गन्धन (चुगली करना), अवक्षेपण (डराना), सेवन (सेवा करना), साहसिक्य (बलात्कार करना), प्रतियत्न (गुणका ग्रहण करना), प्रकथन (कहना), उपयोग (धर्मार्थ देना) इन अर्थोंमें कृ-धातुसे परे आत्मनेपद प्रत्यय हो । जैसे उत्कुरुते (सूचयतीत्यर्थः) (वोह चुगली करता है) । श्येनो वर्त्तिकामुत्कुरुते (भर्त्सयतीत्यर्थः) (बाज बटेरकू डराता है) । हरिमुपकुरुते (सेवते इत्यर्थः) (वोह विष्णुकी सेवा करता है) । परदारान्[1] प्रकुरुते (तेपु सहसा प्रवर्त्तते) (वोह परस्त्रीके साथ बलात्कार करता है) । एधो दकस्योपस्कुरुते (गुणमाधत्ते) (जलकू ईंधन अपना गुण देता है) । कथाः प्रकुरुते (कथयतीत्यर्थः) (वोह कथा कहता है) । शतं प्रकुरुते (धर्मार्थं विनियुङ्क्ते) (वोह धर्मार्थ सौ (१००) रुपये लगाता है)॥

एषु किम् ? कटं करोति ॥

उक्त गन्धन-आदि अर्थोंहीमें कहनेसे—कटं करोति (वोह चटाई बनाता है) इस उदाहरणमें आत्मनेपद न हुआ, क्योंकि—यहां पूर्वोक्त अर्थोंमेसे कोईभी अर्थ नहीं है ॥

भुजोऽनवने—ओदनं भुङ्क्ते ॥

भुज-धातुसे भोजन अर्थमें आत्मनेपद (सू० ७३२) होता है । जैसे—ओदनं भुङ्क्ते (वोह भात खाता है) । और पालन-अर्थमें नहीं ॥

अनवने किम् ? महीं भुनक्ति[2] ॥

पालन-अर्थमें आत्मनेपदका निषेध करनेसे—महीं भुनक्ति (वोह भूमिको पालता है) । यहां पालनार्थमें आत्मनेपद न हुआ ॥

॥ इति आत्मनेपदप्रक्रिया समाप्ता ॥

---

१ दार शब्द नित्य स्त्रीवाचक होनेपरभी नित्य पुल्लिंग और बहुवचनान्त होता है, उसीका विवर्ण होनेसे यहा 'तेषु' पद लिखा । २ " दिव मरुत्वानिव भोक्ष्यते भुवम् "

अथ परस्मैपदप्रक्रिया ।

८०८ अनुपराभ्यां कृञः । १ । ३ । ७९ ॥

कर्तृगे च फले गन्धनादौ च परस्मैपदं स्यात् ॥

क्रियाका फल कर्त्ताको पहुंचता हो तथा गन्धन आदि (सू० ८०७) अर्थोंमेसे कोई अर्थ हो तो अनु और परा-उपसर्गसे परे कृ-धातुसे परस्मैपद-संज्ञक प्रत्यय हो । अनुकरोति (वोह अनुकरण करता है) । पराकरोति (वोह निराकरण करता है) ॥

क्षिप प्रेरणे । स्वरितेत् ॥

क्षिप (फेंकना) यह धातु स्वरितेत है, इसीसे उभयपदी (सू० ४२५) है ॥

८०९ अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः । १ । ३ । ८० ॥

अभि, प्रति और अति उपसर्गोंसे परे जो क्षिप्-धातु तिससे परस्मैपद प्रत्यय हो । अभिक्षिपति (वोह सब प्रकारसे फेंकता है) । इत्यादि ॥

८१० प्राद्वहः । १ । ३ । ८१ ॥

प्र-पूर्वक वह-धातुसे परस्मैपद-संज्ञक प्रत्यय हो । प्रवहति (वोह वहता है ॥

८११ परेर्मृषः । १ । ३ । ८२ ॥

परि-पूर्वक मृष-धातुसे परे परस्मैपद हो । परिमृषति (वोह सहता है) ॥

रमु- क्रीडायाम ॥

रमु = रम (क्रीडा करना) ॥

यद्यपि यहां 'भोक्ष्यते' का भोजन अर्थ नहीं है, परन्तु-पालन अर्थभी नहीं है किन्तु-भोगना अर्थ है, इसीसे यहां आत्मनेपद प्रयोग कालिदासने दिया है । भोगनेमें और पालनेमें अन्तर है । १ यह रमु धातु श्रीनागेशभट्टके मतमें उदन्त नहीं है ।

८१२ व्याङ्परिभ्यो रमः । १ । ३ । ८३ ॥

वि, आङ् और परि उपसर्गसे परे जो रम्-धातु तिससे परस्मैपद हो। विरमति (वोह निवृत्त होता है) ॥

८१३ उपाच्च । १ । ३ । ८४ ॥

उप-उपसर्गसे परे जो रम्-धातु तिससेभी परस्मैपद प्रत्यय हों । यज्ञदत्तमुपरमति (उपरमयतीत्यर्थः) (वोह यज्ञदत्तकू निवृत्त करता है) । अन्तर्भावितण्यर्थोऽयम । अर्थात्-इस उक्त उदाहरणमें णि- (सू० ७६०) का अर्थ अन्तर्भूत है। भाव यह है कि उप-पूर्वक रम-धातुका अर्थ निवृत्त होना नहीं, किन्तु निवृत्त करना है ॥

॥ इति परस्मैपदप्रक्रिया समाप्ता ॥

इति पदव्यवस्था सम्पूर्णा ।

अथ भावकर्मप्रक्रिया ।

८१४ भावकर्मणोः । १ । ३ । १३ ॥

लस्यात्मनेपदम् ॥

यदि भाव अथवा कर्म-अर्थमें लकार लाना इष्ट हो तौ लकारके स्थानमें आत्मनेपद प्रत्यय हों ॥

८१५ सार्वधातुके यक् । ३ । १ । ६७ ॥

धातोर्यक् भावकर्मवाचिनि सार्वधातुके । भावः क्रिया । सा च-भावार्थ-कलकारेणानूद्यते । युष्मदस्मद्भ्यां सामानाधिकरण्याभावात्प्रथमपुरुषः । तिङ्वाच्यक्रियाया अद्रव्यरूपत्वेन द्वित्वाद्यप्रतीतेर्न द्विवचनादि किन्त्वेकवचनमेवोत्सर्गतः ॥

धातुसे परे यक्-(य) प्रत्यय हो, भावकर्मवाचक सार्वधातुक परे रहते। भाव नाम क्रियाका है। और वह क्रिया भाव-अर्थवाले लकार (सू० ४१८) से अनुवाद की जाती है, क्योंकि-भाव (क्रिया) धातुका वाचक है। इस अवस्थामें लकारके स्थानमें प्रथमपुरुषही

होता है, कारण जब लकार भाव-अर्थमें होता है तब लकारका अर्थ भावही होता है और युष्मद् तथा अस्मद्-शब्द कर्त्ताका बोध करते हैं इस कारण उनका समानाधिकरण (सू० ४२९। ४३०) नहीं है। अतएव सू० ४२९। ४३० भाव-प्रत्ययान्तमें नहीं लगते। तिङ्वाच्य क्रियाके अद्रव्यरूप होनेसे द्विवचन और बहुवचनकी प्रतीति नहीं होती अर्थात्-द्रव्यवाचकसेही द्विवचन और बहुवचन हो सक्ते हैं इसीकारण द्विवचनादिके प्रत्यय भावकर्ममें नहीं किये जाते, किन्तु स्वाभाविक एकवचनही होता है, अर्थात्-जहां द्वित्वादि संज्ञाका ज्ञान नहीं होता वहां एकवचन स्वभावसेही हो जाता है। भू+य+त (सू० ८१४। ८१५) त्वया मया अन्यैश्च भूयते (तुझसे मुझसे अन्योंसे हुआ जाता है)। बभूवे (सू० ४४६) (उससे हुआ गया अर्थात्-वोह हुआ)। भू+ता+आ॥

८१६ स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च। ६। ४। ६२॥

उपदेशे योऽच् तदन्तानां हनादीनाञ्च चिणीवाङ्गकार्यं वा स्यात्स्यादिषु भावकर्मणोर्गम्यमानयोः, स्यादीनामिडागमश्च। चिण्वद्भावपक्षेऽयमिट्। चिण्वद्भावाद्वृद्धिः॥

जो धातु उपदेशमें अजन्त हों उनको, और हन्, ग्रह्, दृश् इन धातुओंको अंगसंज्ञा-निमित्तक कार्य इस प्रकार विकल्प करके हों, जैसे कि-चिण्-प्रत्यय (सू० ८१७) परे रहते होते हैं, जब स्य (सू० ४४९), सिच् (सू० ४८४), सीयुट् (सू० ५७०) वा तासि (सू० ४४९) प्रत्यय परे हों तो, और जब लकार भाव वा कर्म-अर्थमें हुआ हो तो 'स्य' आदि प्रत्ययोंको इट् आगमभी हो। जिस पक्षमें चिण्वद्भाव होता है यह इट्भी उसी पक्षमें होता है। चिण्वद्भाव होनेके कारण वृद्धि (सू० २०३) होनी है। भौ+

१ द्रव्य वोह कहाता है कि जिसमें-लिङ्ग संख्या और कारकत्व रहते हैं। २ अर्थात् तू होता है, मैं होता हूं, और होते हैं ऐसेही सर्वत्र जानना।

इ+ता (सू० २७) भाविता, भविता (सू० ४४७) (होगा)। भाविष्यते, भविष्यते (होगा)। भूयताम् (होय) । अभूयत (हुआ) । भाविषीष्ट, भविषीष्ट (ईश्वर करे कि–होय) । अ+भू+च्लि+त (सू० ४८३) ॥

८१७ चिण् भावकर्मणोः । ३ । १ । ६६ ॥

च्लेश्चिण् स्याद्भावकर्मवाचिनि तशब्दे परे ॥

च्लि-कू चिण् (इ) आदेश हो, भावकर्मवाचक त-प्रत्यय परे रहते । अभू+इ+त (सू० २०३ । २७), अभावि+त (सू० ६९५) अभावि (हुआ) । अभाविष्यत (सू० ८१६), अभविष्यत (जो वोह हो) ॥

अकर्मकोऽप्युपसर्गवशात्सकर्मकः । चैत्रेण त्वया मया च आनन्दः अनुभूयते ॥

अकर्मक-धातुभी उपसर्गके संयोगसे सकर्मक हो जाता है । चैत्रनामक पुरुषसे तुझसे और मुझसे आनन्द अनुभव किया जाता है। अनुभूयेते (चैत्रसे तुझसे मुझसे दो आनन्द अनुभव किये जाते हैं)। अनुभूयन्ते (चैत्रसे० आनन्द अनुभव किये जाते हैं) । चैत्रेण त्वमनुभूयसे (चैत्रसे तू अनुभव किया जाता है) । चैत्रेणाहमनुभूये (चैत्रसे मै अनुभव किया जाता हूं) । चैत्रेणान्वभावि (चैत्रसे वोह अनुभव किया गया) । अन्वभाविषाताम् . अन्वभविषाताम् (चैत्रसे वे दो अनुभव किये जाते हैं) । भू-धातुसे परे णिच् (सू० ७६०) होता है, सू० ५८० से णिका लोप होता है, तब–भाव्यते (उससे वोह हुवाया जाता है) । भावयाञ्चक्रे, भावयाम्बभूवे, भावयामासे (उससे वोह हुवाया गया) ॥

आभीयत्वेनासिद्धत्वाण्णिलोपः ॥

भू-धातुसे चिण्वद्भाव (सू० ८१६) होकर इट् आगम होता है तब–भाविता (उससे वोह हुवाया जायगा) इस उदाहरणमें णिका लोप (सू० ५८०) हुआ है, क्योंकि–सू० ६१३ के अनुसार

सू० ५८० की दृष्टिमें सू० ८१६ असिद्ध है। सू० ८१६ के दूसरे पक्षमें– भावयिता (सू० ४४७। २०३। २७) (उससे वोह हुवाया जायगा)। भावयिषीष्ट (ई० उससे वोह हुवाया जाय)। अभावि (सू० ५८०) (उससे वोह हुवाया गया)। अभाविषाताम् (सू० ५८०), अभावयिषाताम् (उससे वे दो हुवाए गये)॥ भू-धातुसे सन्-प्रत्यय (सू० ७६५) कर यक् करनेसे–बुभूष्यते (वोह होनेकी इच्छा करता है)। बुभूषाञ्चक्रे (उसने होनेकी इच्छा की)। बुभूषिता (वोह होनेकी इच्छा करेगा)। बुभूशिष्यते (वोह होनेकी इच्छा करेगा)॥ भू-धातुसे यङ् प्रत्यय (सू० ७७१) किया फिर यङन्तसे यक् किया तो–बोभूय्यते (वोह वार २ होता है)। बोभूयिष्यते (वोह वार २ होगा)॥ यङ्लुगन्तमें–बोभूयते (वोह वार २ होता है)॥

ष्टुञ्-स्तुतौ॥

स्तु (स्तुति करना)। स्तु+य+ते (सू० ८१५। ५३३) स्तूयते विष्णुः (उससे विष्णु स्तुति किया जाता है)। स्ताविता (सू० ८१६), स्तोता (उससे विष्णु स्तुति किया जायगा)। स्ताविष्यते, स्तोष्यते (वोह किसीसे स्तुति किया जायगा)। अस्तावि (वोह किसीसे स्तुति किया गया)। अस्ताविषाताम्, अस्तोषाताम् (उससे वे दो स्तुति किये गये)॥

ऋ-गतौ॥

ऋ (जाना)। अर्यते (सू० ५४८) (किसीसे वोह गमन किया जाता है)॥

उपदेशग्रहणाच्चिण्वदिट्। आरिता-अर्त्ता॥

ऋ और निम्नलिखित स्मृ-धातु उपदेशमें अजन्त हैं, इसलिये चिण्वद्भाव मान विकल्पकरके इट् (सू० ८१६) आगम होता है। आरिता (सू० २०३), अर्त्ता (किसीसे वोह गमन किया जायगा)॥

स्मृ-स्मरणे॥

स्मृ (स्मरण करना) । स्मर्यते (मू० ५४८) (किसीसे वोह स्मरण किया जाता है) । सस्मरे (किसीसे वोह स्मरण किया गया) । स्मारिता, स्मर्त्ता (किसीसे वोह स्मरण किया जायगा) ॥

स्रस्यते । अनिदितामिति नलोपः । इदितस्तु नन्द्यते ॥

स्रन्स्-धातुके नकारका लोप (मू० ३७७) होकर-स्रस्यते (वोह गिरता है) यह रूप होता है । परन्तु-आनन्दित होना वा बढने अर्थवाले नदि-(नन्द) धातुके सदृश इदित्-धातुके 'न्' का लोप नहीं होता । नन्द्यते (वह आनन्दित होता है) ॥ इज्यते (मू० ५९८) (वोह पूजा जाता है) ॥ तन्+य+ते (मू० ८१५) इस अवस्थामें-॥

८१८ तनोतेर्यकि । ६ । ४ । ४४ ॥

आकारान्तादेशो वा स्यात् ॥

तन्-(तनु) (विस्तार करना) धातुकू आकारान्तादेश विकल्प करके हो, यक् प्रत्यय परे रहते । तायते, तन्यते (वोह विस्तार किया जाता है) ॥ तप्यते (वोह तापित होता है) । अतप्+च्लि+त । यहां च्लि-के स्थानमें चिण्- (मू० ८१७) की प्राप्ति थी, परन्तु-॥

८१९ तपोऽनुतापे च । ३ । १ । ६५ ॥

तपश्च्लेश्चिण् न स्यात्कर्मकर्त्तर्यनुतापे च । अन्वतप्त पापेन ।

सन्तापवाचक तप्-धातुकी च्लि-कू चिण् न हो यदि कर्मही कर्त्ता हो तो, अथवा तप्-का अर्थ पश्चात्ताप हो तो । पापेन अन्वतप्त (पापीने पश्चात्ताप किया) । यहां भाव-अर्थमें लकार हुआ, यदि-कर्म-अर्थमें लकार हो तो यह अर्थ होगा कि-पापरूप कर्त्तासे वोह सन्तापित हुआ ॥ दीयते (मू० ६३९) (किसीसे वोह दिया जाता है) । ददे (किसीसे वोह दिया गया) । दा+ता+आ । यहां विकल्पसे चिण्वद्भाव (मू० ८१६) हुआ-॥

८२० आतो युक् चिण्कृतोः । ७ । ३ । ३३ ॥

आदन्तानां युगागमः स्याच्चिणि ञ्णिति कृति च ॥

आकारान्त-धातुओंको युक्-(य्) का आगम हो जब चिण् परे रहे अथवा ञित्-कृत् (सू० ३३२) परे रहते वा णित्-कृत् प्रत्यय परे रहते । दायिता वा दाता (किसीसे वोह दिया जायगा) । दायिषीष्ट (सू० ८१६), दासीष्ट (ई० करे किसीसे वोह दिया जाय) । अदायि (सू० ८१७ । ६९५) (किसीसे वोह दिया गया) । अदायिषाताम् (सू० ८१६) (किसीसे वे दो दिये गये) ॥ धा+य+ते (सू० ६३९) धीयते (किसीसे वोह धारण किया जाता है) । दधे (किसीसे वोह धारण किया गया) । धायिषीष्ट, धासीष्ट (ई० वोह किसीसे धारण किया जाय) । अधायि (वोह किसीसे धारण किया गया) ॥ भञ्ज्+य+ते (सू० ३७७) भज्यते (वोह किसीसे तोडा जाता है) । अभञ्ज्+इ+त ॥

८२१ भञ्जेश्च चिणि । ६ । ४ । ३३ ॥

नलोपो वा स्यात् ॥

चिण् परे रहते भञ्ज्-(भनज्) धातुके न-कारका लोप विकल्प करके हो । अभाजि (सू० ५०४), अभञ्जि (वोह किसीसे तोडा गया) ॥ लभ्+य+ते = लभ्यते (वोह किसीसे लिया जाता है) । अलभ्+इ+त ॥

८२२ विभाषा चिण्णमुलोः । ७ । १ । ६९ ॥

लभेर्नुमागमो वा स्यात् ॥

लभ्-धातुके नुम्-(न) आगम विकल्प करके हो, चिण् वा णमुल्-(सू० ८४९) प्रत्यय परे रहते । अल+न+भ्+इ+त (सू० ९६ । ९७ । ६९५) अलम्भि, अलाभि (सू० ५०४) (किसीसे वोह पाया गया) ॥

॥ इति भावकर्मप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ कर्मकर्तृप्रक्रिया।

जिस प्रक्रियामें कर्ताहीको कर्म माना जाता है, उसे कर्मकर्तृप्रक्रिया कहते हैं॥

८२३ यदा कर्म्मैव कर्तृत्वेन विवक्षितं, तदा सकर्म्मकाणामप्यकर्मकत्वात्कर्तरि भावे च लकारः॥

जब कर्महीको कर्त्ता माननेकी विवक्षा हो तब सकर्मक-धातुभी अकर्मक हो जाते है, इस कारण उन अकर्मक-धातुओंसे परे कर्त्ता अथवा भाव-अर्थमें लकार होते हैं॥

८२४ कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः। ३। १। ८७॥

कर्मस्थयया क्रियया तुल्यक्रियः कर्त्ता कर्मवत् स्यात्। कार्यातिदेशोऽयम्। तेन-यगात्मनेपदचिण्चिण्वदिटः स्युः॥

कर्मस्थ क्रियाके सदृश क्रियावाला कर्त्ता कर्मवत् हो, अर्थात्—उस कर्त्ताकू कर्मके कार्य हों। यह कार्यातिदेश है। इस कारण यक् (मू० ८१५), आत्मनेपद प्रत्यय (मू० ८१४), चिण् (मू० ८१७), चिण्वद्भाव और इट् (मू० ८१६) हों॥ पच्यते फलम् (फल स्वयं पकता है)। अपाचि (मू० ८१७। ६९५। ५०४) (वोह स्वयं पका)। भिद्यते काष्ठम (काष्ठ स्वयं फटता है)। अभेदि (मू० ५००) (वोह स्वयं फटा)। इन उक्त उदाहरणोंमें पकना और फटना यह क्रियाके फल जैसे कर्मकर्त्तामें हैं वैसेही कर्तृ-प्रत्ययान्त प्रयोग कर्ममें रहते है॥

भावे तु—भिद्यते काष्ठेन। पच्यते फलेन॥

जब भाव-अर्थमें लकार होता है तब कर्त्ता तृतीयान्त हो जाता है। जैसे—भिद्यते काष्ठेन (काष्ठ स्वयं फटता है)। पच्यते फलेन (फल स्वयं पकता है)॥

॥ इति कर्मकर्तृप्रक्रिया॥

अथ लकारार्थप्रक्रिया।

८२५ अभिज्ञावचने लृट्। ३। २। ११२॥

स्मृतिबोधिन्युपपदे भूतानद्यतने धातोर्लृट् स्यात्। लङोऽपवादः। वस-निवासे॥

स्मरण-वाचक शब्द उपपद होय तो अनद्यतनभूत-अर्थमें धातुसे परे लृट् लकार हो। यह सूत्र लङ्-(सू० ४७०) का अपवाद है। वस् (निवास करना)। वस्+स्य+मस् (सू० ४३६)-स्मरसि कृष्ण! गोकुले वत्स्यामः (कृष्ण! स्मरण करते हो कि-हम गोकुलमें रहते थे)॥ एवं-बुध्यसे, चेतयसे, इत्यादि प्रयोगेऽपि॥ ऐसेही बुध्यसे (क्या तू स्मरण करता है), चेतयसे (क्या तू याद करता है) इत्यादिके प्रयोगमेंभी लृट्-लकारही होता है, क्योंकि-उक्त दो धातुओंकाभी स्मरणही अर्थ है॥

८२६ न यदि। ३। २। ११३॥

यद्योगे उक्तं न॥

जो यद्-के योगमें स्मरणवाचक शब्द हो तो धातुसे लृट् (सू० ८२५) न हो। अभिजानासि कृष्ण! यद्वने अभुञ्ज्महि (हे कृष्ण! स्मरण करते हो जो कि हमने वनमें भोजन किया था)। यहां लङ् लकारही हुआ॥

८२७ लट् स्मे। ३। २। ११८॥

लिटोऽपवादः॥

स्म उपपद रहते धातुसे लट्-लकार हो। यह सूत्र लिट्-(सू० ४३७) लकारका अपवाद है। इससे ज्ञात होता है कि-यह लकार भूत अनद्यतन परोक्षकालकीभी अपेक्षा रखता है। जैसे-यजति स्म युधिष्ठिरः[1] (युधिष्ठिरने यज्ञ किया था)। वसति स्म मदोत्कटः (मदोत्कट रहता था)॥

१ स्म-के योगमें 'यजति' इस वर्त्तमानप्रयोगका भूतार्थ हुआ है।

८२८. वर्त्तमानसामीप्ये वर्त्तमानवद्वा । ३ । ३ । १३१ ॥

वर्त्तमाने ये प्रत्यया उक्तास्ते वर्त्तमानसामीप्ये भूते भविष्यति च वा स्युः ॥

जो प्रत्यय वर्त्तमान अर्थमें स्थापित किये जाते हैं, वे प्रत्यय वर्त्तमान कालके समीपवर्त्ती भूत-अर्थ और भविष्यत्-अर्थमेंभी विकल्प करके हों ॥ प्रश्न—कदागतोऽसि ? (तू कब आया है ?)। उत्तर (भूत)—अयमागच्छामि अयमागमम् वा (मैं अभी आया हूं) । प्रश्न—कदा गमिष्यसि ? (तू कब जायगा ?) । उत्तर (भविष्यत्)—एष गच्छामि गमिष्यामि वा (मैं अभी जाता हूं) । इन उक्त उदाहरणोंमें क्रमसे वर्त्तमानके आगे एकमें भूत दूसरेमें भविष्यत् प्रत्यय किये गये हैं, परन्तु-उनकाभी अर्थ वर्त्तमानही होता है ॥

८२९ हेतुहेतुमतोर्लिङ् । ३ । ३ । १५६ ॥

वा स्यात् ॥

जहां कार्यकारणभाव प्रकाश करना हो, तहां धातुसे परे लिङ् (मू० ४७३) लकार विकल्प करके हो । कृष्णं नमेच्चेत् सुखं यायात्, कृष्णं नंस्यति चेत्सुखं यास्यति (यदि कृष्णको नमस्कार करै तो सुख पावै) ॥

भविष्यत्येव । नेह—हन्तीति पलायते ॥

यह उक्त-विधि (मू० ८२९) केवल भविष्य-अर्थमेंही होती है ॥ इस कारण यहां वर्त्तमानमें नहीं होती । हन्ति इति पलायते (एक मारता है इस कारण दूसरा भागता है) ॥

विधिनिमन्त्रणेति लिङ् ॥

विधि और निमन्त्रण आदि अर्थोंमें लिङ् (मू०४७३) होता है ॥

विधिः? प्रेरणम्—भृत्यादेर्निकृष्टस्य प्रवर्त्तनम् ॥

विधि प्रेरणा-कू कहते हैं, अर्थात् भृत्यआदि क्षुद्र मनुष्यको किसी काममें प्रवृत्त करना । जैसे—यजेत (वोह पूजन करै) ॥

निमन्त्रणम् ? नियोगकरण । आवश्यके श्राद्धभोजनादौ दौहित्रादेः प्रवर्त्तनम् ॥

निमन्त्रण भोजनादिककी प्रेरणाकू कहते हैं, अर्थात्-आवश्यक श्राद्ध-भोजनादिकमें दौहित्र (धेवता) आदिकू प्रवृत्त करना। जैसे-इह भुञ्जीत (वोह यहां भोजन करे)॥

आमन्त्रणम् ? कामचारानुज्ञा॥

आमंत्रण किसीकी इच्छानुसार सम्मति देनेकू कहते हैं। जैसे-इहासीत (आपकी इच्छा हो तौ यहां बैठें)॥

अधीष्ट ? सत्कारपूर्वको व्यापारः॥

अधीष्ट सत्कार-पूर्वक व्यापारकू कहते हैं। जैसे-पुत्रमध्यापयेद्भवान् (आप हमारे पुत्रको पढाइये)॥

सम्प्रश्न. ? सम्प्रधारणम्॥

संप्रश्न उचित वा अनुचित वार्ताकू पूछकर निश्चय कर लेनेको कहते हैं। जैसे-किं भो वेदमधीयीय उत तर्कम् (क्या मैं वेद पढूं वा न्यायशास्त्र)॥

प्रार्थनम् ? याच्ञा॥

प्रार्थना मांगनेकू कहते हैं। जैसे-भो भोजनं लभेय (अजी! हमें भोजन मिलेगा)॥

एव लोट्॥

इसी प्रकार इन अर्थोंमें लोट्-(सू० ४५५) लकारका प्रयोग होता है॥

॥ इति लकारार्थप्रक्रिया॥

अथ कृदन्तकृत्यप्रक्रिया।

८३० धातोः। ३। १। ९१॥

आतृतीयाध्यायसमाप्त्यन्त ये प्रत्ययास्ते धातोः परे स्युः। कृदतिङ् इति कृत्सज्ञा॥

अष्टाध्यायीके तीसरे अध्यायकी समाप्ति पर्यन्त जितने प्रत्यय हैं, वे सब प्रत्यय धातुसे परे हों। यह अधिकारसूत्र है। इस सूत्र

(मू० ८३०) के अधिकारमें जो प्रत्यय होते हैं, उनकी कृत्-संज्ञा (मू० ३३२) होती है ॥

८३१ वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् । ३ । १ । ९४ ॥

अस्मिन्धात्वधिकारेऽसरूपोऽपवादप्रत्यय उत्सर्गस्य बाधको वा स्यात् स्त्र्यधिकारोक्तं विना ॥

'धातोः' इस सूत्र-(मू० ८३०) के अधिकारमें किसी प्रत्ययका असदृश कोई प्रत्यय अपवाद हो तो वह स्त्रीके अधिकारवाले प्रत्ययों-(मू० ९३२) को छोडकर उत्सर्ग-(बाध्य) को विकल्प करके बाधे ॥

८३२ कृत्याः । ३ । १ । ९५ ॥

ण्वुल्तृचावित्यतः प्राक् कृत्यसंज्ञाः स्युः ॥

इस सूत्रसे लेकर 'ण्वुल्तृचौ' (मू० ८४९) इस सूत्रके पहले जो प्रत्यय हैं उनकी कृत्य-संज्ञा हो ॥

८३३ कर्त्तरि कृत् । ३ । ४ । ६७ ॥

कृत्प्रत्ययः कर्त्तरि स्यात् । इति प्राप्ते ॥

कृत्-संज्ञक (मू०३३२) प्रत्यय कर्त्ता-अर्थमें हो। ऐसी प्राप्ति हुई॥

८३४ तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः । ३ । ४ । ७० ॥

एते भावकर्मणोरेव स्युः ॥

कृत्य-(मू० ८३२) प्रत्यय, क्त (मू० ८८१) और खल-अर्थमें होनेवाले प्रत्यय (मू० ९४७) भाव और कर्म अर्थमें हों ॥

८३५ तव्यत्तव्यानीयरः । ३ । १ । ९६ ॥

धातोरेते प्रत्ययाः स्युः ॥

तव्यत् (तव्य) तथा तव्य और अनीयर् (अनीय) यह प्रत्यय धातुसे परे हों । एध्+तव्यत् (मू० ४५०।४४७) एधितव्य (मू० १३७।१३८) एधितव्यम् । एध्+अनीय = एधनीयम् ॥

भावे औत्सर्गिकमेकवचनं क्लीबत्वम् ॥

भाव-अर्थमें एकवचन और क्लीबत्व (नपुंसकलिंगका व्यवहार) स्वभावहीसे होता है। एधितव्यम्, एधनीयं त्वया (तुझे बढना उचित है)। चि+तव्यः (सू० ४३४) चेतव्यः। चि+अनीयः (सू० ४३४।२७) चयनीयः। चेतव्यः चयनीयो वा धर्मस्त्वया (तुझे धर्मसंचय करना चाहिये) ॥

८३६ (केलिमर उपसंख्यानम्) ॥

वार्तिककारका यह मत है कि-भाव और कर्म अर्थमें जिन प्रत्ययोंका विधान किया है, उनमें केलिमर् (एलिम) प्रत्ययकाभी विधान करना चाहिये। पच्+एलिम+जस् (सू० १४७) पचेलिमाः माषाः (उडद पकाने योग्य है)। भिदेलिमाः सरलाः (देवदारु काटनेके योग्य है)। यहां कर्ममें प्रत्यय है ॥

८३७ कृत्यल्युटो बहुलम्। ३। ३। ११३ ॥

कृत्य-(सू० ८३२) संज्ञक प्रत्यय और ल्युट इन दो प्रत्ययोंका व्यवहार बहुल (अनेक प्रकार) करके हो ॥

क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव ॥
विधेर्विधानम्बहुधा समीक्ष्य। चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति ॥ १ ॥

कहीं तो प्रवृत्ति हो अर्थात्-जहां उनका विधान करनेके लिये कोई सूत्र न हो तहांभी उनका प्रयोग हो, कहीं अप्रवृत्ति हो, अर्थात्-जहां उनका विधान करनेवाला सूत्र विद्यमानभी हो और उनकी प्रवृत्ति न हो, कहीं २ उनका विधान विकल्प करके होता है, और कहीं इन तीनों प्रकारोंसे भिन्न उनका व्यवहार होता है, अर्थात्-औरका औरही होता है, इस प्रकार विधिविधानको देखकर आचार्य बहुधा (अक्सर) उक्त रीतिसे चार प्रकारका बाहुलक कहते हैं ॥ १ ॥ उदाहरण-स्ना+अनीयर्=स्नानीयम् चूर्णम् (जिससे स्नान किया जाय वोह उबटन)। दा+अनीयर्=दानीयो विप्रः (जिसके अर्थ दिया जाय सो ब्राह्मण)। अनीयर्-(सू० ८३५) प्रत्यय कृत्य-(सू० ८३२) संज्ञक होनेके कारण सू० ८३४ के अनुसार

भाव और कर्म अर्थहीमें होता है, परन्तु—उक्त दो उदाहरणोंमें आचार्योंने उसका विपरीत व्यवहार किया है, जैसे कि पहले उदाहरणमें चूर्णरूप कार्य-कारकमें प्रत्यय हुआ है। और दूसरे उदाहरणमें विप्ररूप सम्प्रदान-कारकमें प्रत्यय हुआ है ॥

८३८ अचो यत् । ३ । १ । ९७ ॥

अजन्ताद्धातोर्यत् स्यात् ॥

अजन्त-धातुसे परे यत् (य) प्रत्यय हो । चि+य+अम् (सू० ४३४) चेयम् (संचय करने योग्य) ॥ दा+य+अम् (सू० ८३८) इस अवस्थामें—॥

८३९ ईद्यति । ६ । ४ । ६५ ॥

यति परे आत ईत्स्यात् ॥

यत् प्रत्यय परे रहते आकार-को ईकार हो । दी+य+अम् (सू० ४३४) देयम् (देनेके योग्य) । ग्लेयम् (ग्लानि करनेके योग्य)॥

८४० पोरदुपधात् । ३ । १ । ९८ ॥

पवर्गान्तादद्ुपधाद्यत् स्यात् । ण्यतोऽपवादः ॥

जिस पवर्गान्त-धातुकी उपधा अत् हो उस धातुसे परे यत्-प्रत्यय हो । यह ण्यत्-(सू० ८४५) का अपवाद है । शप्+यत् = शप्यम् (शपथ करने योग्य) । लभ्+यत् = लभ्यम् (प्राप्त करने योग्य) ॥

८४१ एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप् । ३ । १ । १०९ ॥

एभ्यः क्यप् स्यात् ॥

इण् (जाना), ष्टु (स्तुति करना), शास् (शिक्षा करना), वृ (स्वीकार करना), दृ (आदर करना), जुष् (प्रीति करना । सेवन करना) इन धातुओंसे परे क्यप्-(सू० १५६) (य) प्रत्यय हो । इ+क्यप् (सू० १५६ । ३३२) इ+यप् (सू० ५) ॥

८४२ ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् । ६ । १ । ७१ ॥

ह्रस्व-कू तुक्-(त्) का आगम हो जिसके पकारकी इत्संज्ञा हो ऐसा कृत् परे रहते। इ+त्+य (सू० ४८१) इत्यः (जानेके योग्य)। स्तुत्यः (स्तुति करनेके योग्य)॥ शासु-अनुशिष्टौ॥ शास् (शासन (शिक्षा) करना)। शास्+य (सू० ८४१)॥

८४३ शास इदङ्हलोः। ६। ४। ३४॥

शास उपधाया इत्स्यादङि हलादौ क्ङिति॥

शास-धातुकी उपधा-कू इकार हो, अङ् (सू० ६९८) प्रत्यय परे हो तौ वा हलादि कित वा ङित प्रत्यय परे रहते॥ शिस्+य (सू० ६०५) शिष्यः (शिक्षा देने योग्य)। वृ+यः (सू०४८२) वृत्यः (स्वीकार करने योग्य)। आ–दृ+त+यः=आदृत्यः(आदर करने योग्य)। जुष्यः (प्रीति करने योग्य)॥

८४४ मृजेर्विभाषा। ३। १। ११३॥

मृजेः क्यब्वा स्यात्॥

मृज-(शुद्ध करना) धातुसे परे क्यप प्रत्यय विकल्प करके हो। मृज्यः (शुद्ध करने योग्य)॥

८४५ ऋहलोर्ण्यत्। ३। १। १२४॥

ऋवर्णान्ताद्धलन्ताच्च धातोर्ण्यत्॥

ऋकारान्त और हलन्त-धातुसे परे ण्यत-(य) प्रत्यय हो। कृ+ण्यत (सू० १४९। २०३) कार्यम् (करनेके योग्य)। हृ+य+अम=हार्यम (हरनेके योग्य)। धृ+य+अम=धार्यम (धारण करनेके योग्य)॥ मृज्+य (सू० ८४५) इस अवस्थामें–॥

८४६ चजोः कु घिण्ण्यतोः। ७। ३। ५२॥

चजोः कुत्वं स्यात् घिति ण्यति च परे॥

चकार और जकारके स्थानमें कवर्ग हो, जिसका घकार इत्-संज्ञक हो ऐसा प्रत्यय वा ण्यत-प्रत्यय परे रहते। मृग्+य (सू० ४५०)॥

८४७ मृजेर्वृद्धिः । ७ । २ । ११४ ॥

मृजेरिको वृद्धिः सार्वधातुकार्धधातुकयोः ॥

मृज्-धातुके इक्-को वृद्धि हो, सार्वधातुक वा आर्धधातुक प्रत्यय परे रहते । मार्ग्यः (शुद्ध करनेके योग्य) ॥

८४८ भोज्यं भक्ष्ये । ७ । ३ । ६९ ॥

भोग्यमन्यत् ॥

भुज् धातुका 'भक्षण करनेके योग्य' इस अर्थमें 'भोज्यम' रूप बनता है । अन्यत्र 'भोग्यम' रूप होता है ॥ जानना चाहिये कि-कृत्यसंज्ञक प्रत्यय शक्य १, योग्य २, प्रेरणा ३, आमन्त्रण ४, और प्राप्तकाल ५ इन अर्थोंमें होते हैं, सो इनका नियामक सूत्र और विस्तार सिद्धान्तकौमुदीमें किया है ॥

॥ इति कृदन्तकृत्यप्रक्रिया ॥

अथ कृदन्तप्रकरणम् ।

८४९ ण्वुल्तृचौ । ३ । १ । १३३ ॥

धातोरेतौ स्तः ॥

धातुसे परे ण्वुल् और तृच् प्रत्यय हो । यह प्रत्यय कर्त्ता-अर्थमें (सू० ८३३) होते हैं । कृ+ण्वुल् (सू० १५६ । ५) ॥

८५० युवोरनाकौ । ७ । १ । १ ॥

युवु एनयोरनाकौ स्तः ॥

यु और वु-के स्थानमें क्रमसे अन और अक आदेश हों । कृ+अक+सु (सू० २०३) कारकः (करनेवाला) । कृ+तृच् (सू० ४३४) कर्+तृ+सु (सू० २०८ । २२१ । २०० । २०१) कर्त्ता (करनेवाला) ॥

८५१ नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः । ३ । १ । १३४ ॥

नन्द्यादेर्ल्युः, ग्रह्यादेर्णिनिः, पचादेरच् स्यात् ॥

नन्दि (टुनदि) आदि धातुओंसे परे ल्यु-(सू० १५६) (यु) प्रत्यय हो, ग्रह-आदि धातुओंसे परे णिनि (इन) प्रत्यय हो। और पच आदि धातुओंसे परे अच् प्रत्यय हो। उदाहरण—नन्द्+ल्यु (सू० ८५० । ५१२) नन्दनः (आनन्द करनेवाला) । जन—अर्द्+यु (सू० ८५० । ५३) जनार्दनः (दुष्ट मनुष्योंको पीडा करनेवाला = विष्णु) । लू+यु (सू० ८५० । ४३४ । २७) लवण (नोन) ॥ ग्रह्+इन (सू० ५०४) ग्राहिन (सू० १३७ । १३९। २०० । १०८ । २०७) ग्राही (लेनेवाला) ॥ स्था+इन (सू० ८७०) स्थायी (टिकनेवाला) ॥ मन्त्री (मन्त्री) । पच आदिगण आकृति गण है ॥

८७२ इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः । ३ । १ । १३५ ॥

एभ्यः कः स्यात् ॥

जिनकी उपधा इक् हो तिन धातुओंसे परे और ज्ञा (जानना), प्री (प्रीति करना), कृ (फेंकना) इन धातुओंसे परे क-(अ) प्रत्यय हो । बुध्+अ (सू० ४८७) बुधः (जाननेवाला) । कृश्+अ = कृशः (दुर्बल) । ज्ञा+अ (सू० ५३९) ज्ञः (जाननेवाला)। प्री+अ (सू० २२१) प्रियः (प्रीति करनेवाला = प्यारा) । कृ+अ (सू० ७१८) किरः (फेंकनेवाला) ॥

८७३ आतश्चोपसर्गे । ३ । १ । १३६ ॥

उपसर्ग उपपद रहते आकारान्त-धातुसे परे क-प्रत्यय हो । प्र—ज्ञा+अ (क) (सू० ५३९) प्रज्ञः (पण्डित) । सु+ग्ला+अ (सू० ५४३) सुग्लः (सू० ५३९) (बडी ग्लानि करनेवाला)॥

८७४ गेहे कः । ३ । १ । १४४ ॥

१ मनुष्यवाचक 'जन' शब्द उपपद (सू० १०३२) रहते पीडाअर्थवाचक 'अर्द' धातुसे ल्यु प्रत्यय हुआ है, 'जनम् अर्दयति' यहां उपपदसमास (सू० १०३०) होकर 'जनम्' की विभक्तिका लोप (सू० ७८१) हो गया तो-उक्तरीतिसे स्थिति हुई। २ यह शब्द निपातसे होता है ।

गेहे कर्त्तरि ग्रहः कः स्यात् ॥

यदि गेह (घर) ही कर्त्ता हो तो ग्रह्-धातुसे परे क प्रत्यय हो। ग्रह्+अ (सू० ६८६) ग्रह+अम् (सू० १५५। ४८१) गृहम् (धान्यादि ग्रहण करनेवाला = घर) ॥

८५५ कर्मण्यण्। ३। २। १ ॥

कर्मण्युपपदे धातोरण्प्रत्ययः स्यात्। कुम्भं करोति कुम्भकारः ॥

कर्म उपपद (सू० १०३६) रहते धातुसे परे अण् (अ) प्रत्यय हो। कुम्भ+कृ+अ (सू० ७८१। २०३) कुम्भकारः (घड़ेका बनानेवाला = कुम्हार) ॥

८५६ आतोऽनुपसर्गे कः। ३। २। ३ ॥

आदन्ताद्धातोरनुपसर्गात्कर्मण्युपपदे कः स्यात्। अणोऽपवादः ॥

यदि उपसर्ग उपपद न हो और कर्म उपपद हो तो आकारान्त धातुसे परे क-प्रत्यय हो। यह सूत्र अण्-(सू० ८५५) का अपवाद है। गां ददाति = गो+दा+अ (सू० ५३९) गोदः (गौ देनेवाला)। धन+दा+अ = धनदः (धन देनेवाला = कुबेर)। कम्बलदः (कम्बल देनेवाला) ॥

अनुपसर्गे किम्? गोसम्प्रदायः ॥

उपसर्ग उपपद न हो यह कहनेसे—गो+सं+प्र+दा+अ (सू० ८५५। ८७०) गोसंप्रदायः (देशाचारपूर्वक गौ देनेवाला)—यहां क-प्रत्यय न हुआ क्यों कि—यहां उपसर्ग उपपद है ॥

८५७ (मूलविभुजादिभ्यः कः) ॥

मूलानि विभुजति मूलविभुजो रथः। आकृतिगणोऽयम् ॥

मूल विभुज आदि गणपठित शब्दोंसे परे क-प्रत्यय हो। मूलविभुज्+अ = मूलविभुजः (वृक्षोंकी जडको टेढा करनेवाला = रथ)। मूलविभुजादिगण आकृतिगण है। जैसे—मही+धृ+अ (सू० १९) महीध्रः (पहाड)। कु+धृ+अ (सू० १९) कुध्रः (पर्वत) ॥

८५८ चरेष्टः। ३। २। १६ ॥

अधिकरणे उपपदे ॥

अधिकरण अर्थात्–सप्तम्यन्त उपपद रहते चर्-धातुसे परे ट(अ) प्रत्यय हो । कुरुषु चरति = कुरु+चर्+अ (सू० ७८१) कुरुचरः (कुरुदेशोंमें चलनेवाला) ॥

८५९ भिक्षासेनादायेषु च । ३ । २ । १७ ॥

आदायेति ल्यबन्तम् ॥

यदि भिक्षा वा सेना अथवा आदाय यह चर्-धातुके उपपद हों तो चर्-धातुसे ट (अ) प्रत्यय हो । आदाय इसमें ल्यप्-(सू० ०५५) प्रत्ययान्तका ग्रहण है । भिक्षाम् चरति = भिक्षाम्+चर्+अ (सू० ७८१) भिक्षाचरः (भिक्षाकू जानेवाला = भिखारी) । सेनाचरः (सेनाकू जानेवाला) । आदायचरः (लेकर जानेवाला) ॥

८६० कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु । ३ । २ । २० ॥

एषु द्योत्येषु करोतेष्टः स्यात् ॥

हेतु वा ताच्छील्य (स्वभाव) अथवा अनुकूलता इन अर्थोंके प्रकट करनेमें कृ-धातुसे परे ट-प्रत्यय हो । यशः+कृ+अ ॥

८६१ अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य । ८ । ३ । ४६ ॥

आदुत्तरस्यानव्ययस्य विसर्गस्य समासे नित्यं सादेशः करोत्यादिषु परेषु॥

अकारसे परे जो विसर्ग तिनको समासमें नित्य स-आदेश हो, यदि वोह विसर्ग अव्यय (सू० ४१३) की न हों तो, कृ (करना), कमि (इच्छा करना), कंस (कटोरा), कुम्भ (घडा), पात्र (वासन), कुशा (दाभ । गूलरकी खूंटी), कर्णी (कान) इन शब्दोंमेंसे कोई शब्द परे हो तो । हेतु–यशस्करी (सू० १३३७ । ७८१) विद्या (यश देनेवाली विद्या) । ताच्छील्य–श्राद्धकरः (सू० ७८१) (श्राद्ध करनेके स्वभाववाला) । अनुकूलता–वचनकरः(सू० ७८१) (आज्ञाकारी) ॥

८६२ एजेः खश् । ३ । २ । २८ ॥

ण्यन्ता[illegible]श् स्यात् ॥

णि-[illegible] (सू० ७६०) एज्-(कांपना) धातुसे परे खश् (सू० १ . . . ३ । ५) (अ) प्रत्यय हो । जन+एज्+इ+अ ॥

८६३ अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् । ६ । ३ । ६७ ॥

अरुषो द्विषतोऽजन्तस्य च मुमागमः स्यात् खिदन्ते परे, नत्वव्ययस्य । शित्त्वाच्छबादिः ॥

अरुष् (मर्मस्थान), द्विषत् (शत्रु) इनको और अजन्त-शब्दोंको मुम् (म) आगम (सू० २६७) हो, खित्प्रत्ययान्त परे रहते; परन्तु अव्यय उपपद रहते न हो । खश्-(सू० ८६२) प्रत्यय शित् होनेके कारण सार्वधातुक (सू० ४३२) माना जाता है, इससे शप्-(सू० ४३३) आदि होते हैं । जन+म्+एज्+इ+अ+अ (सू० ४३४ । २७ । ३०२) जनमेजयः (मनुष्योंको कँपानेवाला)[1] ॥

८६४ प्रियवशे वदः खच् । ३ । २ । ३८ ॥

प्रिय वा वश उपपद रहते वद्-(बोलना) धातुसे परे खच् (अ) प्रत्यय हो । प्रिय+वद्+अ (सू० ८६३) प्रियंवदः (प्रिय बोलनेवाला) । वशंवदः (सू० ८६३) वशंवदः ('मैं तुम्हारे वश हूं' यह कहनेवाला) ॥ शॄ–हिंसायाम् ॥ शॄ (हिंसा करना) ॥

८६५ अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते । ३ । २ । ७५ ॥

मनिन् क्वनिप् वनिप् विच् एते प्रत्यया धातोः स्युः ॥

मनिन् (मन्), क्वनिप् (वन्), वनिप् (वन्), विच् (व्) यह प्रत्यय अकारान्त-धातुके अतिरिक्त और धातुओंसे परे हों । सु–शॄ+मन् (सू० ४३४) सुशर्+मन् । यहां इट्-(सू० ४४७) की प्राप्ति होनेपर–॥

८६६ नेड्वशि कृति । ७ । २ । ८ ॥

१ यह महाराज परीक्षितके पुत्रका नाम है ।

वशादेः कृत इण् न स्यात् ॥

जिसके आदिमें वश्-प्रत्याहारका वर्ण हो ऐसे कृत्-प्रत्ययकू इट् आगम न हो । सुशर्मन+सु (मू० १९८।२००।२०१) सुशर्मा[1] (भलीभांति मारनेवाला) । प्रातर्–इ+क्वनिप् = वन् = प्रातरि+वन् (मू० ८४२) प्रातरि त+वन+सु (मू० १९८।२००।२०१) प्रातरित्वा (प्रातःकालका जानेवाला) ॥ वि–जन+वन (मू० ८६५) इस दशामें–॥

८६७ विड्वनोरनुनासिकस्यात् । ६ । ४ । ४१ ॥

अनुनासिकस्यात् स्यात् ॥

विट् अथवा वन (मू० ८६५) प्रत्यय परे रहते अनुनासिकके स्थानमें आकार हो । वि–जा+वन (मू० १९८।२००।२०१) विजावा (उत्पन्न होनेवाला) ॥ ओणृ–अपनयने ॥ ओण (दूर करना) । ओण्+वन+सु (मू० ८६७।२७।१९८।२००।२०१) अवावा (ब्राह्मणी) (पाप दूर करनेवाली ब्राह्मणी) ॥ रुष्–हिंसायाम ॥ रुष (मारना) । रुष्+व (मू० ८६५।२००।३३१) रोष्+सु (मू० २००।८३।१६६) रोट्–रोड़ (हिंसा करनेवाला) । ऐसेही–॥ रिष्–हिंसायाम ॥ रिष (मारना) । रेट्–रेड् (मारनेवाला) ॥

सु–गण+व्+सु (मू० २००।३३१[2]) सुगण् (भलीप्रकार गिननेवाला) ॥

८६८ क्विप् च । ३ । २ । ७६ ॥

अयमपि दृश्यते ॥

धातुसे परे कर्त्ता-अर्थमें क्विप्-प्रत्ययभी होता है । उखाम स्रन्सति = उखा+स्रन्स्+क्विप् (मू० ७८१।३७७) उखास्रस्+सु (मू०

---

१ सु+श-मनिन । सु सुष्ठु शर्म सुख यस्य । अर्थात-पाप वा अज्ञानादिको विधिपूर्वक नष्ट करनेवाला । २ क्विप् प्रत्ययका मू० १७६ । ३३१ । ३४ । १ । ५ के अनुसार सर्वापहारि लोप हो जाता है, यह सदा ध्यान रखना ।

२९०।२००) उखास्रत् (हँडियासे गिरनेवाला) ॥ पर्णं ध्वंसति = पर्ण+ध्वन्स्+सु (मू० ३७७।२९०।२००) पर्णध्वत् (पत्तोंसे गिरनेवाला) ॥ वाहात् भ्रन्सति = वाह+भ्रन्स्+सु (मू० ३७७।३३६।८३ । १६६) वाहभ्रट्-ड् (घोडेसे गिरनेवाला) ॥

८६९ सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये । ३ । २ । ७८ ॥

अजात्यर्थे सुपि धातोर्णिनिस्ताच्छील्ये द्योत्ये ॥

सुबन्त उपपद रहते स्वभाव प्रकाश करने अर्थमें धातुसे परे णिनि प्रत्यय हो, यदि उसके उपपद जाति न हो तौ । उष्णं भोजनं तच्छीलमस्य = उष्णं+भुज्+णिनि (मू० १४९।३४।७८१।५००) उष्णभोजिन्+सु (मू० १९८।२००।२०१) उष्णभोजी (उष्ण भोजन करनेके स्वभाववाला) ॥

८७० मनः । ३ । २ । ८२ ॥

सुपि मन्यतेर्णिनिः स्यात् ॥

सुबन्त उपपद रहते मन्-(मानना) धातुसे णिनि (इन्) प्रत्यय हो । दर्शनीयं+मन्+इन् (मू० ७८१।१९८) दर्शनीयमानिन्+सु (मू० २००।२०१) दर्शनीयमानी (अपनेको सुन्दर माननेवाला) ॥

८७१ आत्ममाने खश्च । ३ । २ । ८३ ॥

स्वकर्मके मनने वर्त्तमानान्मन्यतेः सुपि खश् स्यात् । चाण्णिनिः ॥

सुप् उपपद रहते मन्-(मानना) धातुसे परे खश् (अ) प्रत्यय हो, यदि उसका स्वकर्म-(मानना) अर्थ होता हो तौ । सूत्रमें 'च' का पाठ करनेसे विदित होता है कि-उसी अर्थमें णिनि-(मू० ८६९) प्रत्ययभी होता है । पण्डितमात्मानं मन्यते = पण्डितं+मन्+अ+सु (मू० ७८१ । ८६३ । ६८१) पण्डितम्मन्यः, पण्डितमानी (मू० ८६९) (अपनेको पण्डित माननेवाला) ॥ काली+मन्+अ (मू० ८७१) ॥

८७२ खित्यनव्ययस्य । ६ । ३ । ६६ ॥

खिदन्ते परे पूर्वपदस्य ह्रस्वः ॥

खित्-प्रत्यय परे रहते धातुके पूर्व-पदकू ह्रस्व हो, यदि वोह अव्यय न हो तौ । कालि+मन्+अ (मू० ८६३ । ६८१) कालिंमन्या (मू० १३६६) (अपनेको काली देवी माननेवाली स्त्री) ॥

८७३ करणे यजः । ३ । २ । ८५ ॥

करणे उपपदे भूतार्थयजेर्णिनिः कर्त्तरि ॥

करण अर्थात्–तृतीयान्त उपपद रहते भूत-अर्थवाले यज्-(पूजा करना) धातुसे परे णिनि (इन्) प्रत्यय हो । सोमेन–इष्टवान् = सोम+यज्+इन्+सु (मू० ५०४ । १०८ । २०० । २०१) सोमयाजी (जिसने सोमयज्ञ द्वारा निज इष्टकी भावना की थी)। अग्निष्टोमयाजी (जिसने अग्निष्टोम यज्ञ करके अपने इष्टकी भावना की) ॥

८७४ दृशेः क्वनिप् । ३ । २ । ९४ ॥

कर्म्मणि भूते ॥

कर्म उपपद हो तौ भूत-अर्थमे दृश्-धातुसे परे क्वनिप् (वन्) प्रत्यय हो । पारं दृष्टवान = पार+दृश्+वन्+सु (मू० १९८ । २०० । २०१) पारदृश्वा (जिसने आरपार देखा हो) ॥

८७५ राजनि युधि कृञः । ३ । २ । ९५ ॥

क्वनिप्स्यात् । युधिरन्तर्भावितण्यर्थः ॥

राजन्-शब्द उपपद रहते युध् और कृ-धातुसे परे क्वनिप् प्रत्यय हो । युध-धातुमें ण्यर्थ अन्तर्भूत है । जैसे–राजयुध्वा (मू० १९८ । २०० । २०१) (जिसने राजाकू लडवाया हो) । राजकृत्वा (मू० ८४२) (जिसने राजा किया) ॥

८७६ सहे च । ३ । २ । ९६ ॥

कर्मणीति निवृत्तम् ॥

यदि सह उपपद हो तौभी युध् और कृ-धातुसे परे क्वनिप्-प्रत्यय हो । यहांसे 'कर्मउपपद' की निवृत्ति हो गई । सहयोधितवान् = सह+युध्+वन्+सु (मू० १९८ । २०० । २०१) सहयुध्वा (जिस-

ने साथ लडवाया)। सहकृत्वा (सू० ८४२)(जिसने सहायता की)॥

८७७ सप्तम्यां जनेर्डः । ३ । २ । ९७ ॥

सप्तम्यन्त उपपद हो तो जन्-धातुसे परे ड-(सू० १५६) (अ) प्रत्यय हो। सरसि+जन्+अ (सू० २६९) सरसि+ज्+अ। यहां ङिका लुक् (सू० ७८१) प्राप्त हुआ, परन्तु-॥

८७८ तत्पुरुषे कृति बहुलम् । ६ । ३ । १४ ॥

तत्पुरुष समास-(सू० ९१६) में कृत्-प्रत्ययान्त परे रहते ङि-का लुक् बहुल (सू० ८३७) करके हो अर्थात्-विकल्पसे हो। सरसिजम्, सरोजम् (सू० ७८१ । १२५ । १२७ । ३३) (सरोवरमें उत्पन्न होनेवाला = कमल) ॥

८७९ उपसर्गे च संज्ञायाम् । ३ । २ । ९९ ॥

उपसर्ग उपपद हो तो जन-धातुसे परे ड (अ) प्रत्यय हो यदि ड-प्रत्ययान्त संज्ञावाचक हो तो। प्र+जन्+अ (सू० २६९) प्रजा (सू० १३६६) (सन्तान वा प्रजा)॥

८८० क्तक्तवतू निष्ठा । १ । १ । २६ ॥

एतौ निष्ठासंज्ञौ स्तः ॥

क्त और क्तवतु इन दो प्रत्ययोंकी निष्ठा संज्ञा हो। इसका फल-॥

८८१ निष्ठा । ३ । २ । १०२ ॥

भूतार्थवृत्तेर्धातोर्निष्ठा स्यात् । तत्र तयोरेवेति भावकर्मणोः क्तः । कर्त्तरि कृदिति कर्त्तरि क्तवतु ॥

भूत-अर्थमें धातुसे परे निष्ठा-(सू० ८८०) संज्ञक अर्थात्-क्त और क्तवतु प्रत्यय हो। उनमें क्त-प्रत्यय सू० ८३४ से भाव और कर्ममें होता है। और सू० ८३३ से क्तवतु कर्त्ता-अर्थमें होता है॥ उदाहरण-स्ना+क्त (सू० १५६) स्नातं मया (मैंने स्नान किया)। स्तु+क्त (सू० १५६) स्तुतः त्वया विष्णुः (तुझसे विष्णु स्तुति किया गया)। कृ+क्तवतु (सू० १५६।३४) कृतवत्+सु (सू०

३१८ । १९८ । २०० । २४) कृतवान् विश्वं विष्णुः (विष्णुने विश्व बनाया) ॥ शॄ–हिंसायाम् ॥ शॄ (हिंसा करना) । शॄ+क्त (मू० ८८१ । १५६ । ७१८ । ३५) शिर्+त (मू० ६६५) ॥

८८२ रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः । ८ ।२।४२ ॥

रदाभ्यां परस्य निष्ठातस्य नः स्यात्, निष्ठापेक्षया पूर्वस्य धातोर्दस्य च॥

र वा द-से परे जो निष्ठा-(मू० ८८०) का तकार तिसे नकार हो, और निष्ठासे पूर्व जो धातु तिसके द-कारकूभी नकार हो । शीर्णः (मू० १५८) (जो मारा गया) ॥ भिद्+त=भिन्नः (जो विदीर्ण किया गया) । छिद्+त=छिन्नः (जो काटा गया) ॥ द्रै–कुत्सायां गतौ ॥ द्रै (कुत्सितगति) । द्रै+त (मू०८८१ । ५४३) द्रा+नः ॥

८८३ संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः । ८ । २ । ४३ ॥

निष्ठातस्य नः स्यात् ॥

जिसमें यण प्रत्याहारगत वर्ण हो ऐसे संयोगादि आकारान्त धातुसे परे निष्ठा-(मू० ८८०) के तकारकू न-कार हो । द्राणः (जिसने कुत्सित गति की) । ग्लै+नः (मू० ८८१ । ५४३ । ८८३)ग्लानः (जिसने ग्लानि की) ॥ लू+नः (मू० ८८१) ॥

८८४ ल्वादिभ्यः । ८ । २ । ४४ ॥

एकविंशतेर्लूञादिभ्य प्राग्वत् ॥

लूञ-आदि (मू० ७५०) इक्कीस धातुओंसे परे पूर्वोक्त विधि (मू० ८८२) अर्थात्–निष्ठाके त-कू न हो । लूनः (जो काटा गया)॥ ज्या–वयोहानौ ॥ ज्या+नः (मू० ६८६ । ८८४) ज्+इ+न॥

८८५ हलः । ६ । ४ । २ ॥

अङ्गावयवाद्धलः परं यत्सम्प्रसारणं तदन्तस्य दीर्घः ॥

अङ्गका अवयव जो हल् तिससे परे जो सम्प्रसारण (मू०२८४) तदन्तका दीर्घ हो । जीनः (जो जीर्ण हो गया) ॥ भुज्+तः (मू० ३३५) भुग्+तः ॥

८८६ ओदितश्च । ८ । २ । ४५ ॥

जिस धातुके ओकारकी इत्संज्ञा हो तिससे परे निष्ठा-के तकारकू नकार हो । भुग्नः (जो टेढा किया गया)। **टुओ-श्वि-गति-वृद्ध्योः** ॥ श्वि = श्वू (जाना वा बांधना)। उत्-श्वू+तः (मू० ७७ । ८८६ । ९.३) उच्छूनः (मू० ८८५) (ऊंचा हुआ) ॥ शुष्+तः (मू०८८१) इस अवस्थामें-॥

८८७ शुषः कः । ८ । २ । ५१ ॥

निष्ठातस्य कः ॥

शुष्-धातुसे परे निष्ठा- (मू० ८८१) के त-कारकू क-कार हो । शुष्कः (सूखा) ॥ पच्+तः (मू० ८८१ । ३३५) पक्+तः ॥

८८८ पचो वः । ८ । २ । ५२ ॥

निष्ठातस्य वः ॥

पच्-धातुसे परे निष्ठा-के त-कू व हो । पक्वः (पका) ॥ **क्षै-हर्षक्षये** ॥ क्षै (हर्षका नाश)। क्षै+त (मू० ५४३) क्षा+तः ॥

८८९ क्षायो मः । ८ । २ । ५३ ॥

निष्ठातस्य मः ॥

क्षै-धातुसे परे निष्ठा-के त-कू म हो । क्षामः (कृश) ॥ भू+तः (मू० ७६० । २०३ । २७) भावि+तः (मू० ४४७) भाव्+इ+इ+तः ॥

८९० निष्ठायां सेटि । ६ । ४ । ५२ ॥

णेर्लोपः ॥

इट्-सहित निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय परे रहते णि-(मू० ७६०) का लोप हो । भावितः (होनेको प्रेरणा किया गया) । भू+इ+तवत् (मू० ४४७ । २०३ । २७ । ८९०) भावि+तवत् (मू० ३१८ । ३८६ । २४) भावितवान् (जिसने हुवाया) ॥ **दह-हिंसायाम्** ॥ दह् (हिंसा करना)। दह्+त ॥

८९१ दृढः स्थूलबलयोः । ७ । २ । २० ॥

स्थूले बलवति च निपात्यते ॥

निष्ठा-प्रत्ययान्त दृह्-धातुका स्थूल और बलवान अर्थमें 'दृढः' ऐसा रूप निपातन किया जाता है । दृह्+त (मू० २७९ । ६०० । ७१) दृढ्+ढः (मू० ६०१) दृढः (स्थूल । बलवान्) ॥ धा+क्त (मू० ८८१ । १५६) धा+त ॥

८९२ दधातेर्हिः । ७ । ४ । ४२ ॥

तादौ किति ॥

त-कारादि कित्-प्रत्यय परे रहते धा-धातुकू हि आदेश हो । हि+त+सु (मू० २६०) हितम् (धारण किया गया) ॥ दा+तः (मू० ८८१ । ६७६) ॥

८९३ दो दद्घोः । ७ । ४ । ४६ ॥

घुसंज्ञकस्य दाइत्यस्य दद् स्यात्तादौ किति ॥

घु-संज्ञक दा-धातुकू दद् आदेश हो, तकारादि कित-प्रत्यय परे रहते । दद्+तः (मू० ९१) दत्तः (दिया गया) ॥

८९४ लिटः कानज्वा । ३ । २ । १०६ ॥

८९५ क्वसुश्च । ३ । २ । १०७ ॥

लिटः कानच् क्वसुश्च वा स्तः ॥

लिट्-के स्थानमें कानच् (आन) और क्वसु (वस्) प्रत्यय विकल्प करके हो। चकृ+त = चकृ+आन (मू० ११९।१५८) चक्राणः (जिसने किया) ॥ गम+त = जगम+वस् (मू० ८९५) ॥

८९६ म्वोश्च । ८ । २ । ६५ ॥

मान्तस्य धातोर्नत्वं म्वोः परतः ॥

मान्त-धातुकू 'न' हो म अथवा व परे रहते । जगन्+वस् (मू०

---

१ यह मू० ४८३ के अनुसार आत्मनेपदी धातुओंमेंही होता है । क्योंकि—इस कानच्की आत्मनेपद संज्ञा है ।

२५) जगन्वस् (सू० ३८५ । ३१८ । २४) जगन्वान् (जो जा चुका) ॥

८९७ लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे । ३ । २ । १२४ ॥

अप्रथमान्तेन समानाधिकरणे लट एतौ वा स्तः ॥

जब अप्रथमान्तके साथ लट्-का समानाधिकरण (एकअर्थ) हो तो लट्-के स्थानमें शतृ (अत्) और शानच् (आन) प्रत्यय विकल्पसे हो । यह दोनों प्रत्यय शित (सू० ५५६) है, इसकारण यह जहां होते है तहां शप्- (सू० ४३३) आदि प्रत्ययभी होते है ॥ पच्+अ+अत् (सू० ३०२।३१८) पचन्त्+अम = पचन्तं चैत्रं पश्य (पकाते हुए चैत्रकू देख) । पच+अ+आम ॥

८९८ आने मुक् । ७ । २ । ८२ ॥

अदन्ताङ्गस्य मुगागमः स्यादाने परे ॥

अदन्त-अङ्गकू मुक् (म) आगम हो, आन परे रहते । पच+म+आन+अम = पचमानं चैत्रं पश्य (पकानेवाले चैत्रको देख) ॥

लडित्यनुवर्त्तमाने पुनर्लड्ग्रहणात्प्रथमासामानाधिकरण्येऽपि क्वचित् । सन् द्विजः ॥

सू० ८९७ मे सू० ४२० से लट्का अनुवर्त्तन करनेसेही कार्य हो जाता पुनः यहां सू० ८९७ मे लट्-ग्रहण करनेमे ज्ञात होता है कि—कहीं २ लट्-का प्रथमान्तके साथभी समानाधिकरण हो तोभी शतृ शानच हो जाय । जैसे—अस+अ+अत (सू० ६०३।६२५।३१८। २४) सन् द्विजः (विद्यमान ब्राह्मण) ॥ विद्+अ+अत् (सू०६०३)॥

८९९ विदः शतुर्वसुः । ७ । १ । ३६ ॥

वेत्तेः परस्य शतुर्वसुरादेशो वा ॥

विद्-धातुसे परे जो शतृ (अत) तिसे विकल्प करके वसु (वस्) आदेश हो । विद्+वस (सू ३८५।३१८।२४) विद्वान्,

१ यहां अप्रथमान्तके साथ एक अर्थ करना है इसलिये प्रथमा विभक्ति छोड द्वितीयान्त चैत्रके साथ समानाधिकरणकी इच्छासे अम स्थापित किया है ।

विद्+अ+अत् (सू० ३१८ । २४) विदन् (जाननेवाला) ॥

१०० तौ सत् ।३।२।१२७ ॥

तौ शतृशानचौ सत्संज्ञौ स्तः ॥

उक्त शतृ और शानच्-की सत्-संज्ञा हो । इसका फल-॥

१०१ लृटः सद्वा ।३।३।१४ ॥

व्यवस्थितविभाषेयम् । तेनाप्रथमासामानाधिकरण्ये प्रत्ययोत्तरपदयोः सम्बोधने लक्षणहेत्वोश्च नित्यम् ॥

लृट् लकारके स्थानमें सत् संज्ञक प्रत्यय विकल्प करके हों । यह वैकल्पिक सूत्र है । इस कारण अप्रथमाके समानाधिकरणमें, सम्बोधनमें और प्रत्यय परेवाले लक्षण हेतुमें नित्य हो । करिष्यन्तं करिष्यमाणं पश्य (जो करनेको है उसे देख) ॥

१०२ आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ।३।२।१३४ ॥

क्विपमभिव्याप्य वक्ष्यमाणाः प्रत्ययास्तच्छीलादिषु कर्तृषु बोध्याः ॥

इस सूत्रसे लेकर क्विप्-(सू० १०७) प्रत्यय पर्यन्त जितने प्रत्यय हैं वे सब ऐसे कर्त्ताओंमें हों, जैसे-किसी प्रकारका स्वभाव प्रकाश करना हो वा किसी प्रकारका धर्म प्रकाश करना हो वा किसी प्रकारकी सुन्दरता प्रकाश करनी हो ॥

१०३ तृन् । ३ । २ । १३५ ॥

धातुसे परे तच्छील-(सू० १०२) आदि अर्थोंमें तृन् (तृ) प्रत्यय हो । कृ+तृ (सू० ४३४) करतृ+सु (सू० २२८ । १९८ । २०० । २०१) कर्त्ता कटान् (चटाई बनानेका स्वभाववाला) ॥

१०४ जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन् । ३ । २ । १५५ ॥

जल्प (बकवाद करना), भिक्ष (भीख मांगना), कुट्ट(कूटना), लुण्ट (लूटना = लोटना), वृङ (सेवा करना) इन धातुओंसे परे तच्छीलादि- (सू० १०२) अर्थोंमें षाकन् प्रत्यय हो । जल्प+षाकन् (सू० ३) ॥

९०५ षः प्रत्ययस्य । १ । ३ । ६ ॥

प्रत्ययस्यादिः षः इत्संज्ञः स्यात् ॥

प्रत्ययकी आदिका जो ष-कार उसकी इत्संज्ञा हो । जल्प+आक+सु (सू० ५३) जल्पाकः (बकवादी) । भिक्ष+(ष) आकः = भिक्षाकः (भिखारी) । कुट्ट+आकः = कुट्टाकः (कूटनेके स्वभा-वाला) । लुण्ट+आकः = लुण्टाकः (लुटेरा) । वृ+आकः (सू० ४३४) वराकः (नीच । कंगाल) ॥

९०६ सनाशंसभिक्ष उः । ३ । २ । १६८ ॥

सन्नंत-(सू० ७६१) से परे तथा आङ्-पूर्वक शंस-धातुसे परे और भिक्ष-धातुसे परे तच्छीलादि- (सू० ९०२) अर्थोंमें उ-प्रत्यय हो । चिकीर्ष्+उः = चिकीर्षुः (करनेकी इच्छाके स्वभाववाला) । आशंसुः (जिसका स्तुति करनेका स्वभाव हो) । भिक्षुः (जिसका भिक्षा मांगनेका स्वभाव हो) ॥

९०७ भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपॄजुग्रावस्तुवः क्विप् । ३ । २ । १७७ ॥

भ्राज् (चमकना), भास् (चमकना), धुर्व् (हिंसा करना), द्युत (चमकना), ऊर्ज (बलवान होना), पॄ (पूर्ण करना), जु (जाना), ग्राव (पाषाण) शब्दपूर्वक स्तु (स्तुति करना) इन धातुओंसे परे तच्छील आदि (सू० ९०२) अर्थोंमें क्विप्-प्रत्यय हो । विभ्राज्+क्विप् = विभ्राज्+सु (सू० ३३६ । २०० । ८३ । १६६) विभ्राट्, विभ्राड् (चमकनेके स्वभाववाला) । भास+क्विप् = भाः (जो चमके = दीप्ति) । धुर्व्+क्विप् ॥

९०८ राल्लोपः । ६ । ४ । २१ ॥

रेफाच्छ्वोर्लोपः क्वौ झलादौ क्ङिति च ॥

रेफ-से परे जो छ अथवा व तिसका लोप हो, यदि क्विप्-प्रत्यय परे हो तो अथवा झलादि कित् वा ङित प्रत्यय परे रहते । धुर्+

१ यहां सू० ८६८ की टिप्पणीपर ध्यान देना चाहिये ।

सु (सू० ३९४। २००। ११३) धूः (भार)। वि-द्युत्+क्विप्= विद्युत् (बिजली)। ऊर्क् (सू० ३३५) (बलवान्)। पूः(पुरी)। जु+क्विप्+सु-॥

दृशिग्रहणस्यापकर्षाज्जवतेर्दीर्घः ॥

अर्थात्-सू० ८६५ में 'दृश्यन्ते' (देखे जाते है) इस पदके अनुकर्षणसे महाभाष्यके अनुकूल जु-धातुकोभी दीर्घ होता है। जूः (शीघ्रगामी)। ग्रावस्तु+क्विप् (सू० ८४२) ग्रावस्तुत् (पाषाणकी स्तुति करनेवाला)॥

९०९. क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्च ॥

वच् (बोलना), प्रच्छ (पूछना), आयत (शब्दपूर्वक) स्तु (स्तुति करना), कटप्रु (चटाईसे जाना), जु (जाना), श्रि (सेवा करना) इन धातुओंसे परे क्विप प्रत्यय हो, तथा इनको दीर्घ हो, और सम्प्रसारण (सू० ७०८। ६८६) न हो। वच्+क्विप (सू० ३३५) वाक् (वाणी)॥ पृच्छति-इति-पृच्छ+क्विप ॥

९१०. च्छ्वोः शूडनुनासिके च। ६। ४। १९॥

सतुक्कस्य छस्य वस्य च क्रमात् श ऊठ् एतावादेशौ स्तोऽनुनासिके क्वौ झलादौ च क्ङिति ॥

तुक्सहित छ-कारको और व-को क्रमसे श और ऊठ आदेश हों, अनुनासिक वा क्वि-प्रत्यय अथवा झलादि कित ङित परे रहते। पृच्छति इति=प्राट् (सू० ९१०। ३३६। ८३। १६६), प्राड् (पूछनेवाला)। आयतं स्तौति=आयतस्तु+क्विप्=आयतस्तूः (बडी स्तुति करनेवाला)। कटं प्रवते=कटप्रु+क्विप्+सु=कटप्रूः (चटाईमे होनेवाला कीडा)। जूः (शीघ्रगामी)। श्रयति हरिं=

१ अर्थात्-शब्दपूर्वक स्तुति करना। आयत स्तु॥

२ इस प्र० की सिद्धि सू० ९०८ में देखो।

श्रि+क्विप् (सू० ९०९) श्रीः (जो विष्णुकी सेवा करती है = लक्ष्मी) ॥

९११ दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे । ३ । २ । १८२ ॥

दावादेः ष्ट्रन् स्यात्करणेऽर्थे ॥

दाप् (काटना), नी (ले जाना), शस् (हिंसा करना), यु- (मिलाना), युज् (जोडना), स्तु (स्तुति करना), तुद् (प्रेरणा करना), षि (बांधना), षिच् (छिडकना), मिह (मूतना), पत (गिरना), दश (काटना), नह (बांधना) इन धातुओंसे परे करण-(तृतीया) अर्थमें ष्ट्रन्-(त्र) प्रत्यय होता है । दाति अनेन = दा+त्र+अम् = दात्रम (जिसद्वारा काटा जाता है = दरांति)॥ शस्+त्र+अम । यहां इट्-(सू० ४४७) की प्राप्ति हुई-॥

९१२ तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च । ७ । २ । ९ ॥

एषां दशाना कृत्प्रत्ययानामिण् न ॥

ति (क्तिन वा क्तिच्) तुन, ष्ट्रन, क्थन, क्सि,सुच् , सरन्, कन् और स इन दश प्रत्ययोंको इट् आगम न हो । शस्त्रम (जिस करके हिंसा की जाती है = शस्त्र) । यु+त्र (सू०४३४) योत्रम (जोत) । युज्+त्र (सू०५००।३३५) योक्त्रम् (जुआ) । ष्टु+त्र (सू० २८३) स्तोत्रम (स्तोत्र) । तुद्+त्र (सू० ९१ । ५००) तोत्रम् (कोडा) । षि+त्र (सू० ४३४ । २८३) सेत्रम् (बंधन)। सिच्+त्र (सू० ३३५ । ५००) सेक्त्रम (छिडकनेका पात्र) । मिह्+त्र (सू०५०० । २७९ । ६०० । ७९ । ६०१) मेढ्रम (लिङ्ग) । पत्+त्र = पत्त्रम् (वाहन) । दश् (ड्)+त्र (सू० ५१२ । ३३६ । ९६ । ७९) दंष्ट्रा (दांत) । नह्+त्र (सू० ४०३ । ६०० । १३७३) नध्री (चर्मकी रज्जु) ॥

९१३ अर्त्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः । ३ । २ । १८४ ॥

ऋ (जाना), लू (काटना), धू (कांपना), सू (प्रसव करना), खन् (खोदना), सह् (सहना), चर् (जाना) इन धातुओंसे परे करण-अर्थमें इत्र प्रत्यय हो। ऋ+इत्र (सू० ४३४)अरित्रम (पतवार) । लू+इत्र (सू०४३४ । २७) लवित्रम् (दरांती)। धू+इत्र (सू० ४३४ । २७) धवित्रम (बीजना–पंखा) । सू+इत्र = सवित्रम (उत्पत्तिकारण) । खन्+इत्र = खनित्रम (कस्सी। खुरपा-आदिक) । सह्+इत्र = सहित्रम (धैर्य) । चर्+इत्र = चरित्रम (चरित्र) । यहां ' इत्र ' प्रत्यय इस कारण किया है कि इकारकाभी श्रवण रहे. यदि ' त्र ' प्रत्यय करते तो इट्-का निषेध (सू० ९१२) हो जाता ॥

९१४ पुवः संज्ञायाम । ३ । २ । १८५ ॥

पू-(पवित्र करना) धातुसे परे संज्ञा-अर्थमें इत्र प्रत्यय हो। पू+इत्र (सू० ४३४ । २७) पवित्रम (पवित्री. पैती) ॥

अथ उणादयः।

९१५ कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण् ॥

कृ (करना), वा (जाना), पा (पीना), जि (जीतना), डुमिञ् (फेंकना), स्वद् (स्वाद लेना), साध् (साधना). अश् (व्याप्त होना) इन धातुओंसे परे उण् (उ) प्रत्यय हो । कृ+उ (सू० २०३) कारुः (शिल्पी = कारीगर) । वा+उ (सू०८२०) वायुः (पवन) । पा+उ (सू० ८२०) पायुः (गुदा) । जि+उ (सू० २०३ । २७) जायुः (औषधि) । मि+उ (सू० २०३। २७) मायु (पित्त) । स्वद्+उ (सू० ५०४) स्वादुः(स्वाद)। साध्+उ = साधुः (परकार्यको सिद्ध करनेवाला) । अश्+उ (सू० ५०४) आशुः (शीघ्र) ॥

श्रि+क्विप् (सू० ९०९) श्रीः (जो विष्णुकी सेवा करती है= लक्ष्मी) ॥

९११ दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे । ३। २। १८२ ॥

दावादेः ष्ट्रन् स्यात्करणेऽर्थे ॥

दाप् (काटना), नी (ले जाना), शस् (हिंसा करना), यु- (मिलाना), युज् (जोडना), स्तु (स्तुति करना), तुद् (प्रेरणा करना), षि (बांधना), षिच् (छिडकना), मिह (मूतना), पत (गिरना), दश (काटना), नह (बांधना) इन धातुओंसे परे करण-(तृतीया) अर्थमें ष्ट्रन्-(त्र) प्रत्यय होता है । दाति अनेन = दा+त्र+अम् = दात्रम (जिसद्वारा काटा जाता है = दरांति)॥ शस्+त्र+अम । यहां इट्-(सू० ४४७) की प्राप्ति हुई-॥

९१२ तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च । ७। २। ९ ॥

एषां दशानां कृत्प्रत्ययानामिण् न ॥

ति (क्तिन वा क्तिच्) तुन, ष्ट्रन, क्थन, क्सि,सुच् , सरन, कन् और स इन दश प्रत्ययोंको इट् आगम न हो । शस्त्रम (जिस करके हिंसा की जाती है = शस्त्र) । यु+त्र (सू०४३४) योत्रम (जोत) । युज्+त्र (सू०५००।३३५) योक्त्रम् (जुआ) । ष्टु+त्र (सू० २८३) स्तोत्रम (स्तोत्र) । तुद्+त्र (सू० ९१ । ५००) तोत्रम (कोडा) । पि+त्र (सू० ४३४ । २८३) सेत्रम् (बंधन)। सिच्+त्र (सू० ३३५ । ५००) सेक्त्रम (छिडकनेका पात्र) । मिह्+त्र (सू०५०० । २७९ । ६०० । ७९ । ६०१) मेढ्रम (लिङ्ग) । पत्+त्र = पत्त्रम् (वाहन) । दश् (इ)+त्र (सू० ५१२ । ३३६ । ९६ । ७९) दंष्ट्रा (दांत) । नह्+त्र (सू० ४०३ । ६०० । १३७३) नध्री (चर्मकी रज्जु) ॥

९१३ अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः । ३। २। १८४ ॥

ऋ (जाना), लू (काटना), धू (कांपना), सू (प्रसव करना), खन् (खोदना), सह् (सहना), चर् (जाना) इन धातुओंसे परे करण-अर्थमें इत्र प्रत्यय हो। ऋ+इत्र (मृ० ४३४)अरित्रम (पतवार)। लू+इत्र (मू०४३४।२७) लवित्रम् (दरांती)। धू+इत्र (म० ४३४ । २७) धवित्रम (बीजना–पंखा) । सू+इत्र = सवित्रम (उत्पत्तिकारण)। खन्+इत्र = खनित्रम (कस्सी। खुरपा-आदिक)। सह्+इत्र = सहित्रम (धैर्य) । चर+इत्र = चरित्रम (चरित्र) । यहां ' इत्र ' प्रत्यय इस कारण किया है कि इकारकाभी श्रवण रहे. यदि ' त्र ' प्रत्यय करते तो इट्-का निषेध (मू० ९१२) हो जाता ॥

९१४ पुवः संज्ञायाम् । ३ । २ । १८५ ॥

पु-(पवित्र करना) धातुसे परे संज्ञा-अर्थमें इत्र प्रत्यय हो। पु+इत्र (मू० ४३४ । २७) पवित्रम (पवित्री. पैती) ॥

अथ उणादयः ।

९१५ कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण् ॥

कृ (करना), वा (जाना), पा (पीना), जि (जीतना), डुमिञ् (फेंकना), स्वद् (स्वाद लेना), साध् (साधना), अश् (व्याप्त होना) इन धातुओंसे परे उण् (उ) प्रत्यय हो। कृ+उ (मृ० २०३) कारुः (शिल्पी = कारीगर)। वा+उ (मू०८२०) वायुः (पवन)। पा+उ (म० ८२०) पायुः (गुदा) । जि+उ (मू० २०३ । २७) जायुः (औषधि)। मि+उ (मू० २०३। २७) मायु (पित्त)। स्वद्+उ (मू० ५०४) स्वादुः(स्वाद)। साध्+उ = साधुः (परकार्यको सिद्ध करनेवाला)। अश्+उ (मू० ५०४) आशुः (शीघ्र) ॥

९१६ उणादयो बहुलम् । ३ । ३ । १ ॥

एते वर्त्तमाने संज्ञायां च बहुलं स्युः । केचिदविहिता अप्यूह्याः ॥

यह उणादि-प्रत्यय वर्त्तमान-अर्थमें और संज्ञा-अर्थमें अनेक प्रकारसे हों । कोई २ प्रत्यय उणादि सूत्रसे नहीं विधान किये गये हों, उनकाभी तर्क करना उचित है । सो दिखलाते हैं–॥

संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे ।
कार्याद्विद्यादनूबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु ॥ १ ॥

उणादिकोंमें यह विधि है कि–संज्ञा-अर्थमें धातुओंके रूप, उनसे परे प्रत्यय, तथा गुण आदि कार्य समझकर तर्कना कर लेने, अर्थात्–जो संज्ञा (किसीके वाचक) शब्द हैं, और वे किसी प्रकार साधे नहीं जा सकते हों तो उनमें ऐसे धातु और उनसे परे ऐसे प्रत्यय कल्पना करो जो उनमें हो सकें ॥

९१७ तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् ।३।३।१०॥

क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे भविष्यत्यर्थे धातोरेतौ स्तः । मान्तत्वादव्ययत्वम् ।

क्रिया-अर्थवाली जब एक क्रिया उपपद हो तौ भविष्यत-अर्थमें धातुसे परे तुमुन् (तुम्) और ण्वुल् (वु) प्रत्यय हो । तुमुन् प्रत्ययान्त मान्त होनेके कारण अव्यय-(सू०४१४) संज्ञक होता है । उदाहरण–कृष्णं+दृश+तुम+याति (सू० ५२५ । ६९८।१९ । ३३६ ७९) कृष्णं द्रष्टुं याति । कृष्णं+दृश+वु+याति (सू० ८५० । ५००) कृष्णं दर्शको याति (वोह कृष्णको देखने जाता है) । यहां 'याति' क्रियाके उपपद ' दृश ' क्रिया है, ऐसेही सर्वत्र समझ लो ॥

१ जैसे 'आफड' यह मण्डूकवाचक शब्द है यह शब्द किसी प्रकार सिद्ध नहीं हो सकता इस कारण इसे उणादिप्रकारसे सिद्ध करते हैं, 'अफ' धातु, तिससे पर आणादिक [illegible] प्रत्यय कल्पना किया और उक्त मण्डूकवाचकशब्दमें गुण न देखकर किट प्रत्ययको [illegible] (सू०८८१) माना तो 'आफड' सिद्ध हुआ । और लोकमेंभी प्रसिद्ध है कि उणादिकोंमें प्रत्यय लगाते भोला [illegible] हुआ । माधातुसे सिद्ध कर दिये, मोला मला माना ॥

९१८ कालसमयवेलासु तुमुन् । ३ । ३ । १६७ ॥

कालादिषूपपदेषु तुमुन् ॥

काल, समय, वेला, इनमेंसे जब कोई उपपद हो तो धातुसे परे तुमुन्-प्रत्यय हो । कालः+भुज्+तुम (सू० ५००।३३५) कालः समयो वेला भोक्तुम् (भोजन करनेका समय) ॥

९१९ भावे । ३ । ३ । १८ ॥

सिद्धावस्थापन्ने धात्वर्थे वाच्ये धातोर्घञ् ॥

यदि धातुका अर्थ सिद्धावस्थाको प्राप्त हो तो उस धातुसे परे भाव-अर्थमें घञ् (अ) प्रत्यय हो । पच+अ (सू०५०४ । ८४६) पाकः (रसोई) ॥

९२० अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् । ३ । ३ । १९ ॥

कर्तृभिन्ने कारके घञ् स्यात् ॥

कर्त्ता-भिन्न कारकमें धातुसे परे संज्ञा-अर्थमें घञ(अ) प्रत्यय हो ॥ रञ्ज+अ = रनज्+अ ॥

९२१ घञि च भावकरणयोः । ६ । ४ । २७ ॥

रञ्जेर्नलोपः स्यात् ॥

भाव और करण-अर्थमें जो घञ्-प्रत्यय सो परे रहते रञ्ज-(रँगना) धातुके न-कारका लोप हो । रज+अ (सू० ५०४ । ८४६) रागः (रँगनेका यन्त्र) ॥

अनयोः किम् ? रज्यत्यस्मिन्निति रङ्गः ॥

भाव और करण अर्थहीमें न-का लोप हो, यह कहनेसे—रनज्+अ (सू० ८४६) रङ्गः (नाटकशाला) यहां न-का लोप न हुआ, क्योंकि—यहां अधिकरण-अर्थमें घञ् प्रत्यय है ॥

९२२ निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः ।३।३।४१॥

एषु चिनोतेर्घञ् आदेश्च ककारः ॥

१ जहां सिद्धपद दूसरी क्रियाकी आकांक्षा रखता है वहां सिद्धावस्थापन्न क्रिया होती है ।

निवास, चिति, शरीर और उपसमाधान इन चार अर्थोंमें चि-धातुसे परे घञ् प्रत्यय हो, और चि-धातुके आदिके च-कारकू ककार हो। निचि+अ=निकि+अ (मू० २०३ । २७) निकायः (निवास)। चि+अ=कि+अ (मू० २०३ । २७) कायः (शरीर)। गोमयनिकायः (गोबरका ढेर) ॥

९२३ एरच् । ३ । ३ । ५६ ॥

इवर्णान्तादच् स्यात् ॥

इवर्णान्त-धातुसे परे अच्-प्रत्यय हो। चि+अ (मू० ४३४ । २७) चयः (समूह) । जि+अ (मू० ४३४ । २७) जयः (जीतना) ॥

९२४ ऋदोरप् । ३ । ३ । ५७ ॥

ऋवर्णान्तादुवर्णान्ताच्चाप् ॥

ऋकारान्त और उकारान्त धातुओंसे परे अप् प्रत्यय हो। कॄ+अ (मू० ४३४ । ३५) करः (छिडकना) । गॄ+अ=गरः (विष)। यु+अ (मू० ४३४ । २७) यवः (जौ)। लू+अ= लवः (काटना) । स्तु+अ=स्तवः (स्तोत्र) । पू+अ=पवः (पवित्र करना) ॥

९२५ (घञर्थे कविधानम्) ॥

घञ्-प्रत्ययके अर्थमें क-(अ) प्रत्ययभी हो प्र+स्था+अ (मू० ५३१) प्रस्थः (तोल)। वि+हन+अ (मू० ५५५ । ३१६) विघ्नः (बाधा) ॥

९२६ ड्वितः क्त्रिः । ३ । ३ । ८८ ॥

जिस धातुके डु-की इत्संज्ञा हो उससे परे क्त्रि-प्रत्यय हो। डुपचष्=पच+क्त्रि (मू० ३३५) ॥

९२७ क्त्रेर्मम् नित्यम् । ४ । ४ । २० ॥

क्त्रिप्रत्ययान्तात् मम् स्यान्निर्वृत्तेऽर्थे ॥

क्त्रि-प्रत्ययान्तसे परे सिद्ध अर्थमें मम् प्रत्यय हो । पाकेन निवृत्तं पक्त्रिमम् (पाकक्रियासे जो सिद्ध हुआ) । डुवप् = वप्+क्त्रि+मम् (सू० ५९८) उप्त्रिमम (जो बोनेसे सिद्ध हुआ) ॥ टुवेपृ—कम्पने॥ वेप् (काँपना) ॥

१२८ ट्वितोऽथुच् । ३ । ३ । ८९ ॥

जिस धातुका टु इत जाय तिससे परे अथुच् (अथु) प्रत्यय हो । वेप्+अथु = वेपथुः (कंप) ॥

१२९ यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् ।३।३।९०॥

यज (पूजना), याच (मांगना), यत (प्रयत्न करना), विच्छ (जाना वा चमकना), प्रच्छ (पुछना), रक्ष (रक्षा करना) इन धातुओंसे परे नङ् (न) प्रत्यय हो । यज्+न (सू० ७७) यज्ञः (अश्वमेधादि यज्ञ) । याच्+न (सू० ७७ । १३६६) याच्ञा (मांगना) । यत+न = यत्नः (उपाय) । विच्छ्+न (सू० ९१० । ७८) विश्नः (प्रताप) । प्रच्छ्+न (सू० ९१० । ७८) प्रश्नः (पुछना) । रक्ष्+न (सू० ७९) रक्ष्णः (रक्षा)॥

१३० स्वपो नन् । ३ । ३ । ९१ ॥

स्वप्-(ञिष्वप्) धातुसे परे नन् (न) प्रत्यय हो । स्वप्+न = स्वप्नः (स्वप्न) ॥

१३१ उपसर्गे घोः किः । ३ । ३ । ९२ ॥

उपसर्ग-पूर्वक घु-संज्ञक (सू० ६७६) धातुसे परे कि (इ) प्रत्यय हो । प्र—धा+इ (सू० ५३९) प्रधिः (चक्रधारा) । उप—धा+इ (सू० ५३९) उपधिः (छल) ॥

१३२ स्त्रियां क्तिन् । ३ । ३ । ९४ ॥

स्त्रीलिङ्गे भावे क्तिन् स्यात् । घञोऽपवादः ॥

यदि स्त्रीलिंग-भाव प्रकाश करना हो तो धातुसे परे क्तिन्-(ति)

प्रत्यय हो । यह घञ्-(मू० ९१९) का अपवाद है । कृ+ति = कृतिः (करना) । ष्टु+ति (मू० २८३) स्तुतिः (प्रशंसा) ॥

९३३ (ऋल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद्वाच्यः) ॥

ऋकारान्त धातुओंसे और लू-आदि (मू० ७५०) धातुओंसे परे क्तिन्-प्रत्यय निष्ठा-(मू० ८८०) की समान हो यह कहना चाहिये । कॄ+ति (मू० ७१८ । ६६५ । ८८२ । २९५) कीर्णिः (छीटना) । लू+ति (मू० ८८२) लूनिः (खुरपी) । धू+ति (मू० ८८४ । ८८२) धूनिः (कांपना) । पॄ+ति (मू० ८८४ । ८८२) पूनिः (विनाश) ॥

९३४ (सम्पदादिभ्यः क्विप्) ॥

सम्पत्-आदिकोंसे परे क्विप्-प्रत्यय हो । सम्पत्+क्विप् = सम्पत् (धन) । विपत् (संकट) । आपत (दुःखावस्था) ॥ क्तिन्नपीष्यते ॥ उक्त धातुओंसे परे क्तिन्-प्रत्ययकीभी विवक्षा की जाती है । सम्पत्तिः (सम्पदा) । विपत्तिः (विपत्) । आपत्तिः (आपत, आफत) ॥

९३५ ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च । ३ । ३ । ९७ ॥

एते निपात्यन्ते ॥

ऊति (रक्षा करना), यूति (मिलाना), जूति (शीघ्रगति), साति (ध्वंस), हेति (अस्त्र), कीर्त्ति (यश) यह निपातन किये जाते हैं ॥

९३६ ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च । ६ । ४ । २० ॥

एषामुपधावकारयोरूठ् अनुनासिके क्वौ झलादौ क्ङिति ॥

ज्वर (ज्वर), त्वर (त्वरा करना), स्रिव (जाना), अव (रक्षा करना), मव (बांधना) इनकी उपधाको तथा– व-को ऊठ् हो । अनुनासिकप्रत्यय वा क्विप्-प्रत्यय झलादि कित् और ङित् परे रहते ॥ ज्वर्+क्विप् = ज्-ऊ-र्+सु (मू० २०० । ११३) जूः (ज्वरवाला

रोगी)। त्वर्+क्विप्=त्-ऊ-र्(सू० ११३) तूः(त्वरावान्)। स्रिव्+क्विप्=स्र्+ऊ=स्रूः (स्रवा)। अव्+क्विप्=ऊ=ऊः (रक्षक)। मव्+क्विप्=म+ऊ=मूः (बांधनेवाला)॥

९.३७ इच्छा।३।३।१०१॥

इषेर्निपातोऽयम्॥

इष-धातुसे इच्छा यह श-प्रत्ययान्त निपातन किया जाता है। इष्+अ (सू० ५५४।१२२।७७) इच्छा (अभिलाषा)॥

९.३८ अः प्रत्ययात्।३।३।१०२॥

प्रत्ययान्तेभ्यो धातुभ्यः स्त्रियामकारः प्रत्ययः॥

प्रत्ययान्त-धातुओंसे परे स्त्रीलिंगमें अकार प्रत्यय हो। चिकीर्ष+अ (सू० १३६६) चिकीर्षा (करनेकी इच्छा)। पुत्रकाम्या (पुत्रकी इच्छा)॥

९.३९ गुरोश्च हलः।३।३।१०३॥

गुरुमतो हलन्तात्स्त्रियामप्रत्ययः स्यात्॥

गुरुमान (सू० ४९८।४३९) हलन्त-धातुसे परे अ-प्रत्यय हो, यदि सिद्धपद स्त्रीलिंग हो तो। ईह्+अ=ईहा (चेष्टा करना)॥

९.४० ण्यासश्रन्थो युच्।३।३।१०७॥

अकारस्यापवादः॥

णि-(सू० ७६०) प्रत्ययान्त धातुओंसे परे और आस (बैठना), श्रन्थ (ढीला होना) इन धातुओंसे परे युच (यु) प्रत्यय हो। यह अकारका अपवाद है। कृ+इ+यु (सू० २०३।८५०।५८०।२०५) कारणा (सू० १३६६) (करवाना)। हृ+इ+यु= हारणा (हरवाना)॥

९.४१ नपुंसके भावे क्तः।३।३।११४॥

भाव प्रकाश करनेमें धातुसे परे क्त प्रत्यय हो, यदि॰ सिद्ध-शब्द

• एव्रा मनआदि काय हुए है। २ यहा काम्यच प्रत्यय है।

नपुंसक लिंग हो तो । हस्+त (सू० ४४७) हसितम् (हँसी) ॥

९४२ ल्युट् च । ३ । ३ । ११५ ॥

भावही प्रकाश करनेमें धातुसे परे ल्युट् (यु) प्रत्यय हो, जो सिद्धशब्द नपुंसकलिंग हो तो । हस्+यु (सू० ८५०) हसनम् (हँसी) ॥

९४३ पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण । ३ । ३ । ११८ ॥

संज्ञामें धातुसे परे प्रायः घ (अ) प्रत्यय होता है जो सिद्ध होनेवाला शब्द पुँल्लिग हो तो । दन्ताश्छाद्यन्तेऽनेन = दन्तछद्+इ+अ (सू० ५०४) दन्तछाद्+इ+अ ॥

९४४ छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य । ६ । ४ । ९६ ॥

द्विप्रभृत्युपसर्गहीनस्य छादेर्ह्रस्वो घे परे ॥

दो आदि उपसर्गसे रहित छद्- (छादना) धातुको ह्रस्व हो, घ-प्रत्यय परे रहते । दन्तछद्+इ+अ (सू० ५८० । १२२ । ७७) दन्तच्छदः (ओष्ठ) ॥ आकुर्वन्त्यस्मिन्निति = आ+कृ+अ (सू० ४३४) आकरः (खान) ॥

९४५ अवे तॄस्त्रोर्घञ् । ३ । ३ । १२० ॥

अव उपसर्ग उपपद रहते तॄ (तरना) और स्तॄ (ढकना) इन दो धातुओंसे परे घञ् प्रत्यय हो । अव+तॄ+अ (सू० २०३।३५) अवतारः (अवतार) । अव+स्तॄ+अ (सू० २०३ । ३५) अवस्तारः (कनात) ॥

९४६ हलश्च । ३ । ३ । १२१ ॥

हलन्तात् घञ् । घापवादः ॥

हलन्त-धातुओंसे परे घञ् (अ) प्रत्यय हो । यह सूत्र घ-प्रत्यय-(सू० ९४३) का अपवाद है ॥ रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति = रम्+अ (सू०५६४) रामः (जिसमें योगी रमण करते हैं, अर्थात्–राम)। अपमृज्यतेऽनेन व्याध्यादिरिति = अप–आ+मृज्+अ (सू० ८४६ ।

८४७) अपामार्गः (जिससे रोग दूर हों = औषधि) ॥

९४७ ईषद्दुस्सुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् । ३।३।१२६ ॥

एषु दुःखसुखार्थेषूपपदेषु खल् । तयोरेवेति भावे कर्मणि च । करणाधिकरणयोरिति निवृत्तम् ॥

दुःख-अर्थमें दुर् और सुख-अर्थमें ईषद् वा सु उपपद हो तो धातुसे पर खल् (अ) प्रत्यय हो । यह खल्-प्रत्यय सू० ८३४ से भाव तथा कर्म-अर्थमें होता है । यहां करण तथा अधिकरण अर्थकी निवृत्ति हो गई । दुर्+कृ+अ (सू० ४३४ । ११३ । १७।१७०) दुष्करः = दुष्करः कटो भवता (आपसे चटाईका बनना कठिण है)। ईषत्+कृ+अ = ईषत्करः (अनायाससे बन सक्ता है) । सु+कृ+अ = सुकरः (सुगमतासे बन सक्ता है) ॥

९४८ आतो युच् । ३ । ३ । १२८ ॥

खलोऽपवादः ॥

आकारान्त-धातुसे पर युच् (यु) प्रत्यय हो । यह प्रत्यय खल्-(सू० ९४७) का अपवाद है ॥

ईषत+पा+यु (सू० ८५०) ईषत्पानः-सोमो भवता (आपसे सोमरस अनायाससे पिया जा सक्ता है) । सु+पा+यु (सू०८५०) सुपानः (सुगमतासे पिया जा सक्ता है) । दुष्पानः (कठिनतासे पिया जा सक्ता है) ॥

९४९ अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा । ३।४।१८॥

प्रतिषेधार्थयोरलंखल्वोरुपपदयोः क्त्वा स्यात् ॥

निषेध-अर्थवाले अलं और खलु उपपद रहते धातुसे पर क्त्वा (त्वा) प्रत्यय हो । अलं+दा+त्वा (सू० ८९३।९१) अलं दत्त्वा (मत दो) । खलु+पा+त्वा (सू०६३९) खलु पीत्वा (मत पिओ) ॥

अलंखल्वोः किम् ? मा कार्षीत् । प्रतिषेधयोः किम् ? अलङ्कारः ॥

१ प्राचां ग्रहणं पूजार्थम् । २ अमैवाव्ययेनेति नियमान्नोपपदसमासः ।

अलं और खलु उपपद हो यह कहनेसे—मा कार्षीत् (सू० ४८७) (वोह मत करै)। यहां क्त्वा न हुआ। और निषेध-अर्थवाले ऐसा कहनेसे—अलंकारः (भूषण) यहां क्त्वा न हुआ क्योंकि—यहां अलं निषेधार्थक नहीं है॥

९५० समानकर्तृकयोः पूर्वकाले। ३। ४। २१॥

समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोः पूर्वकाले विद्यमानाद्धातोः क्त्वा स्यात्॥

जो अधिक धातुओंका कर्त्ता एकही हो तौ उनमें जो धातु पूर्वकाल अर्थमें विद्यमान हो तिससे परे क्त्वा (त्वा) प्रत्यय हो। स्नात्वा व्रजति (वोह स्नान करके जाता है) अर्थात् प्रथम स्नान करता है फिर जाता है॥ द्वित्वमतन्त्रम्॥ उक्त सूत्रमें 'समानकर्तृकयोः' इस द्विवचनके दिखलानेसे यह नियम दोही धातुओंमें नहीं लगता अर्थात्—दोसे अधिकमेंभी लगता है। भुज्+त्वा (सू० ३३५। ४८१) भुक्त्वा। पा+त्वा (सू० ६३९) पीत्वा=भुक्त्वा पीत्वा व्रजति (खा पीकर जाता है)॥ शी+इ+त्वा। इस दशामें—॥

९५१ न क्त्वा सेट्। १। २। १८॥

सेट् क्त्वा किन्न स्यात्॥

सेट् क्त्वा कित् न होय। शयित्वा (सू० ४३४। २७) (सोकर)॥

सेट् किम्? कृत्वा॥

सेट् कहनेसे—कृ+त्वा=कृत्वा (करके) यहां क्त्वा-कू कित मानके गुण न हुआ॥

९५२ रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च। १। २। २६॥

इवर्णोवर्णोपधाद्धलादेरलन्तात्परौ क्त्वासनौ सेटौ वा कितौ स्तः॥

जिसकी उपधामें तौ इवर्ण वा उवर्ण हो, और आदिमें हल्, और अन्तमें र वा ल हों ऐसे धातुसे परे सेट् क्त्वा और सन् प्रत्यय विकल्प करके कित् हों। द्युत्+इ+त्वा=द्युतित्वा, द्योतित्वा(चमककर)। लिखित्वा, लेखित्वा (लिखकर)॥

व्युपधात् किम्? वर्तित्वा । रलः किम्? सेवित्वा । हलादेः किम्? एषित्वा । सेट् किम्? भुक्त्वा ॥

जिसकी उपधा इवर्ण और उवर्ण हो यह कहनेसे–वृत्+त्वा = (सू० ४४७) वर्तित्वा (रहकर) । यहां लघूपधगुण नित्य होता है, न कि–कित मानके वैकल्पिक । और अन्तमे र वा ल हों यह कहनेसे–सेवित्वा (सेवा करके) । यहांभी क्त्वा कित न मानकर नित्य गुण हुआ । हलादि कहनेसे–इष+इ त्वा = एषित्वा (जाकर) । यहांभी वैकल्पिक गुण न हुआ । सेट् कहनेसे–भुज्+त्वा = भुक्त्वा (खाकर) । यहां सू० ९५२ नहीं लगता ॥ शम+त्वा = शम+त्वा ॥

९५३ उदितो वा । ७ । २ । ५६ ॥

उदितः परस्य क्त्वा इड्वा ॥

जिसके उ-कारकी इत्संज्ञा हो ऐसे धातुसे परे क्त्वा-को इट् आगम विकल्प करके हो । शम इ+त्वा = शमित्वा, शान्त्वा (सू० ७८८) (शान्त होकर) । दिव+इ+त्वा = देवित्वा (सू० ९५१), द्यूत्वा (सू० ९१० । १९) (खेलकर) । धा+इ+त्वा (सू० ८९२) हि+इ+त्वा हित्वा (धारण करके) ॥ हा त्वा ॥

९५४ जहातेश्च क्त्वि । ७ । ४ । ४३ ॥

ओहाक्-धातुकूभी हि आदेश हो क्त्वा-प्रत्यय परे रहते । हित्वा (त्यागकर) । हात्वा (जाकर)[1] ॥ प्र+कृ+त्वा । इस अवस्थामें–॥

९५५ समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् । ७ । १ । ३७ ॥

अव्ययपूर्वपदेऽनञ्समासे क्त्वो ल्यबादेशः ॥

नञ्-समास-भिन्न अव्यय पूर्वपद रहते क्त्वा-को ल्यप् (य) आदेश हो । प्रकृ+य (सू० ८४२) प्रकृत्य (आरम्भ करके) ॥

अनञ् किम्? अकृत्वा । अव्ययपूर्वपदे किम्? परमकृत्वा ॥

नञ्-भिन्न कहनेसे–अकृत्वा (न करके) । यहां नञ्पूर्वपदमें ल्यप्

१ यह 'ओहाङ्-गतौ' धातुका रूप है, इसकारण यहांही (सू० ९५४) आदेश न हुआ ।

आदेश न हुआ । अव्यए पूर्वपद हो यह कहनेसे–परमकृत्वा (श्रेष्ठ करके) । यहांभी क्त्वा-कू ल्यप् न हुआ ॥

९५६ आभीक्ष्ण्ये णमुल् च । ३ । ४ । २२ ॥

आभीक्ष्ण्ये द्योत्ये पूर्वविषये णमुल् स्यात् क्त्वा च ॥

जब वारंवार करना प्रकाश करना हो तो अव्यवहित नञ्-समासरहित अव्यय पूर्वपद रहते धातुसे परे णमुल् और क्त्वा प्रत्यय हों । स्मृ+णमुल् (अम) (सू० २०३) ॥

९५७ नित्यवीप्सयोः । ८ । १ । ४ ॥

आभीक्ष्ण्ये वीप्सायां च द्योत्ये पदस्य द्वित्वं स्यात् । आभीक्ष्ण्यं तिङन्तेष्वव्ययसञ्ज्ञकेषु कृदन्तेषु ॥

वारम्वार करना वा वीप्सा प्रकाश करनेमें पद-कू द्वित्व हो । तिङन्तोंमें और अव्ययसंज्ञक कृदन्तों-(सू० ४१४) में वारम्वार करना अर्थ रहता है । स्मारं स्मारं नमति शिवम् (वारम्वार स्मरण कर शिवको नमस्कार करता है) । स्मृत्वा स्मृत्वा (वार २ स्मरण करके) । पायं पायम (सू० ८२०) (वार २ पीकर) । भोजं भोजम (सू० ५००) (वार २ भोजन करके) । श्रावं श्रावम (सू० २०३ । २७) (वार २ सुनकर) ॥

९५८ अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत् । ३ । ४ । २७ ॥

एषु कृञो णमुल् स्यात् सिद्धोऽप्रयोगोऽस्य एवम्भूतश्चेत् कृञ् । व्यर्थत्वात्प्रयोगानर्ह इत्यर्थः ॥

अन्यथा (प्रकारान्तरसे), एवं (ऐसा), कथं (कैसा), इत्थं (इस प्रकार) यह शब्द उपपद रहते कृञ्-धातुसे परे णमुल् (अम) प्रत्यय हो, यदि उस कृञ्-धातुका अप्रयोग सिद्ध हो अर्थात–कृञ्-धातु निरर्थक हो । व्यर्थ होनेसे उसका प्रयोगभी अयोग्य हो । अन्यथा+कृ+अम् (सू० २०३) अन्यथाकारं भुङ्क्ते (वोह प्रकारान्तरसे खाता है) । एवंकारं । इत्थंकारं भुङ्क्ते (इस प्रकार खाता है) ।

कथंकारं भुंक्ते (कैसे खाता है) । इन उदाहरणोंमें कृ-का प्रयोग व्यर्थही है, इसीसे णमुल् हुआ है ॥

सिद्धेति किम् ? शिरोऽन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते ॥

कृञ्-धातुका अप्रयोग सिद्ध हो ऐसा कहनेसे—शिरोऽन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते (शिरको टेढा कर खाता है)। यहां णमुल् न हुआ, क्योंकि—यहां कृ-धातु अर्थवान है ॥

॥ इति कृदन्तप्रकरणं समाप्तम् ॥

अथ विभक्त्यर्थाः ।

९.५९. प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा । २ । ३ । ४६ ॥

नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः । मात्रशब्दस्य प्रत्येकं योगः- प्रातिपदिकार्थमात्रे लिङ्गमात्राद्याधिक्ये परिमाणमात्रे संख्यामात्रे च प्रथमा स्यात्॥

प्रातिपदिकके उच्चारणमात्रसे जो अर्थ नियमसे उपस्थित होता है उसे प्रातिपदिकार्थ कहते हैं । सूत्रमें जो मात्रशब्द है तिसका प्रत्येक शब्दके साथ योग करना । जिस शब्दमें केवल प्रातिपदिकार्थही हो वा केवल लिङ्ग अर्थ अधिक हो किंवा केवल परिमाण अर्थ अधिक हो अथवा जो शब्द केवल संख्यावाचक हो तिससे परे प्रथमा हो ॥ केवल प्रातिपदिकार्थका उदाहरण—उच्चैः (ऊंचा) । नीचैः (नीचा) । कृष्णः (कृष्ण) । श्रीः (लक्ष्मी) । ज्ञानम् (ज्ञान) । इन उदाहरणोंमें प्रत्येक शब्दसे जो २ अर्थ निकले हैं, सो नियमसे उपस्थित होते हैं ॥ केवल लिंग अर्थकी अधिकताका उदाहरण—तटः । तटी । तटम् (नदीका किनारा) । इन उदाहरणोंमें 'नदीका किनारा' यह अर्थ तो नियमसे उपस्थित होता है, परन्तु—लिंग नहीं, क्योंकि—'तटः' से पुल्लिंग, 'तटी' से स्त्रीलिंग, 'तटम्' से नपुंसकलिंग उपस्थित होते हैं ॥ केवल परिमाण-अर्थकी अधिकताका

उदाहरण—द्रोणो व्रीहिः (द्रोणभर चावल) । इस उदाहरणमें द्रोणका अर्थ तो है नाप, और सुप्रत्ययका अर्थ परिमाण है, इस कारण प्रातिपदिक (पात्र) के साथ परिमाण-(सु) के अर्थका अभेद है, अर्थात्-द्रोणरूप जो परिमाण तिससे परिछिन्न व्रीहि (चावल) ॥ वचनं संख्या । अर्थात्—वचनका अर्थ संख्या है । एकः (एक) । द्वौ (दो) । बहवः (बहुत) । सूत्रमें वचन-शब्द ग्रहण करनेका यही प्रयोजन है कि—यदि वचन ग्रहण न करते तो एक-शब्दसे परे सु, द्विसे परे औ, और बहुसे परे जस् प्रत्यय न धर सक्ते; क्योंकि—शब्दसे जो अर्थ ज्ञात होता है उसीके द्योतन क-रनेके अर्थ फिर किसी प्रत्ययका लगाना अयोग्य है, जैसे—एक-शब्द-से परे उसी अर्थमें सु-प्रत्यय लगाना इत्यादि ॥

१६० सम्बोधने च । २ । ३ । ४७ ॥

प्रथमा स्यात् ॥

सम्बोधन अर्थमेंभी प्रथमा विभक्ति हो । हे राम+सु (सू० १५४) हे राम (हे राम) ॥

१६१ कर्तुरीप्सिततमं कर्म । १ । ४ । ४९ ॥

कर्तुः क्रियया आप्तुमिष्टतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात् ॥

कर्त्ताकू क्रियाजनित फलके साथ जिसका संबंध कराना अत्यन्त इष्ट हो वोह कारक-संज्ञक होकर कर्म-संज्ञक हो । इसका फल—॥

१६२ कर्मणि द्वितीया । २ । ३ । २ ॥

अनुक्ते कर्मणि द्वितीया स्यात् ॥

किसी प्रत्ययसे जब कर्म उक्त न हो तो कर्मसे परे द्वितीया विभक्ति हो । स हरिं भजति (वोह हरिको भजता है) । इस उदा-हरणमें तिप्-प्रत्यय कर्त्ताको प्रकाश करता है, कर्मको नहीं, इसीसे कर्म अनुक्त होकर द्वितीया हो गई ॥

अभिहिते तु कर्मादौ प्रथमा ॥

और जब कर्म किसी प्रत्ययसे उक्त होता है तो उसमें प्रथमा हो।

जाती है । हरिः सेव्यते (हरि सेवन किया जाता है ।) लक्ष्म्या सेवितः (लक्ष्मीसे सेवा किया गया) ॥

१६३ अकथितं च । १ । ४ । ५१ ॥

अपादानादिविशेषैरविवक्षितं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात् ॥

अपादान आदि विशेष कारकोंसे अर्थात्–अपादान (पंचमी), सम्प्रदान (चतुर्थी), करण (तृतीया), अधिकरण (सप्तमी) इन विभक्तियोंसे जो विवक्षित न हो तिस कारककी कर्म संज्ञा हो ॥

१६४ दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमथ्मुषाम् ।
(ण्पाम्) कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम् ॥ १ ॥

दुह (दुहना), याच (मांगना), पच (पकाना), दण्ड् (दंड देना), रुध् (रोकना), प्रच्छ (पूछना), चि (इकट्ठा करना) ब्रू (स्पष्ट बोलना), शास (शिक्षा करना), जि (जीतना), मन्थ (मंथना), मुष (चोरी करना) इन धातुओंके तथा नी (ले जाना), हृ (प्राप्त करना), कृष (खींचना), वह (पहुंचाना) इन धातुओंके कर्मके साथ जिसका योग हो, और अपादानादिसे अविवक्षित हो वोह कारक कर्म संज्ञक हो । गां दोग्धि पयः (गौसे दूध दुहता है) । बलिं याचते वसुधाम (वोह राजा बलिसे भूमि मांगता है) । तण्डुलान् ओदनं पचति (वोह चावलोंका भात पकाता है) । गर्गान् शतं दण्डयति (वोह गर्गोंसे सौ रुपये दण्ड लेता है) । व्रजम् अवरुणद्धि गाम् (वोह गोष्ठमें गौको रोकता है) । माणवकं पन्थानं पृच्छति (वोह बालकसे मार्ग पूछता है) । वृक्षं अवचिनोति फलानि (वोह वृक्षसे फल इकट्ठे करता है) । माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा (वोह बालकको धर्म बतलाता है, वा सिखाता है) । शतं जयति देवदत्तम् (वोह देवदत्तसे सौ मुद्रा जीतता है) । सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति (वोह क्षीरसागरसे अमृत मथता है) । देवदत्तं शतं मुष्णाति (वोह देवदत्तसे सौ रुपया चुरा-

ता है) । ग्रामं अजां नयति, हरति, कर्षति, वहति वा (वोह बकरीको ग्राममें ले जाता है, प्राप्त करता है, खींचता है वा पहुं-चाता है) ॥

अर्थनिबन्धनेयं संज्ञा ॥

यह सूत्रमें जो सोलह धातुओंकी संज्ञा बांधी है सो अर्थ निबन्धना संज्ञा है, अर्थात्–इनके सदृश औरभी जिन धातुओंके अर्थ हों उनमेंभी उक्त सूत्र लगता है । जैसे–बलिं भिक्षते वसुधाम् (वोह बलिसे भूमि मांगता है) यहां 'भिक्ष' धातु 'याच' के अर्थकी समान है ॥ माणवकं धर्मं भाषते, अभिधत्ते, वक्तीत्यादि (वोह बालकसे धर्म कहता है इत्यादि) यहां 'भाष' आदि धातु 'ब्रू' के अर्थकी समान है ॥

१६५ साधकतमं करणम् । १ । ४ । ४२ ॥

क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं करणसंज्ञं स्यात् ॥

क्रियाकी सिद्धिमें अत्यन्त उपकारक (जिसके द्वारा कार्य सिद्ध हो) जो कारक सो करणसंज्ञक हो । करणसंज्ञाका फल–॥

१६६ कर्तृकरणयोस्तृतीया । २ । ३ । १८ ॥

अनभिहिते कर्तरि करणे च तृतीया स्यात् ॥

यदि कर्त्ता और करण तिङ्-आदि प्रत्ययसे उक्त न हो तो उनमें तृतीया विभक्ति हो । रामेण बाणेन हतो वाली (रामसे बाणकरके वाली मारा गया) ॥

१६७ कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् । १ । ४ । ३२ ॥

दानस्य कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानसंज्ञः स्यात् ॥

दानरूप क्रियाके कर्मके साथ जिसका संबंध करनेकी इच्छा हो वह कारक सम्प्रदान संज्ञावाला हो । इस संज्ञाका फल–॥

१६८ चतुर्थी सम्प्रदाने । २ । ३ । १३ ॥

सम्प्रदान-कारकमें चतुर्थी विभक्ति हो । विप्राय गां ददाति (ब्राह्मणको गौ देता है) ॥

९६९ नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च।२।३।१६॥

एभिर्योगे चतुर्थी स्यात्॥

नमस्, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम्, वषट् इनके योगमें चतुर्थी हो। हरये नमः (हरिको नमस्कार)। प्रजाभ्यः स्वस्ति (प्रजाका कल्याण)। अग्नये स्वाहा (अग्निमें आहुति देना)। पितृभ्यः स्वधा (पितरोंको देना)॥

अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम्॥

अलं-शब्दका यहां परिपूर्णशक्ति-प्रदर्शक अर्थ है, इस कारण 'अलम्' के पर्यायवाची शब्दोंके योगमेंभी चतुर्थी विभक्ति होती है। दैत्येभ्यो हरिः अलं प्रभुः समर्थः शक्त इत्यादि (दैत्योंके लिये हरि परिपूर्ण शक्तिमान है, समर्थ है, शक्तिमान है)॥

९७० ध्रुवमपायेऽपादानम्। १। ४। २४॥

अपायो विश्लेषस्तस्मिन्साध्ये यद् ध्रुवमवधिभूतं कारकं तदपादानं स्यात्॥

अपाय विभागको कहते है, ध्रुव निश्चल अवधिका नाम है। जिस निश्चल अवधिसे विभाग हो वह (अवधिभूत) कारक अपादान-संज्ञक हो। इसका फल—॥

९७१ अपादाने पञ्चमी। २। ३। २८॥

अपादान-कारकमें पञ्चमी विभक्ति हो। ग्रामात् आयाति (वोह ग्रामसे आता है)। यहां निश्चल अवधि जो ग्राम है, तिससे आनेवालेका विभाग है। धावतोऽश्वात्पतति (दौडते घोडे परसे गिरता है) यहांभी घोडेकी कमर ध्रुव-अवधि है॥

९७२ षष्ठी शेषे। २। ३। ५०॥

कारकप्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्तः स्वस्वामिभावादिः सम्बन्धः शेषस्तत्र षष्ठी॥

कारक और प्रातिपदिकार्थसे भिन्न स्वस्वामिभाव (स्वत्व स्वामित्व-रूप सम्बन्ध) आदि सम्बन्ध सो शेष कहाता है, उसमें हो। राज्ञः पुरुषः (राजाका मनुष्य)। इस उदाहरणमें राजा स्वामी और

पुरुष स्वकीय है, अतः राजामें स्वामित्व और पुरुषमें स्वकीयत्व रहता है ॥

कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव ॥

कर्मआदिकोंकोभी जब केवल संबंधमात्र करके विवक्षा हो तौ षष्ठी विभक्तिही हो । सतां गतम् (सज्जनोंका गमन) । सर्पिषो जानीते (वोह घृतके उपायसे प्रवृत्त होता है) । मातुः स्मरति (वोह माताका स्मरण करता है) । एधो दकस्योपस्कुरुते (ईंधन जलकू नया गुण देता है) । भजे शम्भोः चरणयोः (मैं महादेवजीके चरणोंकू भजता हूं) ॥

१७३ आधारोऽधिकरणम् । १ । ४ । ४५ ॥

कर्तृकर्मद्वारा तन्निष्ठक्रियाया आधारः कारकमधिकरणं स्यात् ॥

कर्त्ता और कर्मके द्वारा कर्ता और कर्मकी क्रियाका जो आधार सो कारक अधिकरण-संज्ञक हो ॥

१७४ सप्तम्यधिकरणे च । २ । ३ । ३६ ॥

अधिकरणे सप्तमी स्यात् चकाराद्दूरान्तिकार्थेभ्यः ॥

अधिकरणमें सप्तमी विभक्ति हो, चकारसे दूर और समीप अर्थ-वाचक शब्दोंसे परभी सप्तमी हो ॥

औपश्लेषिको वैषयिकोऽभिव्यापकश्चेत्याधारस्त्रिधा ॥

आधार तीन प्रकारका होता है, एक तौ–औपश्लेषिक, दूसरा–वैषयिक, तीसरा–अभिव्यापक । औपश्लेषिक उस आधारको कहते है कि–जिसके किसी अवयवसे सम्बन्ध हो । वैषयिक आधार वोह कहाता है कि–जिससे विषयका बोध हो । और अभिव्यापक उस आधारका नाम है कि–जिसमे आधेय पूर्णरूपसे हो ॥ औपश्लेषिक-का उदाहरण–कटे आस्ते (वोह चटाईपर बैठता है) अर्थात्–चटाईके किसी अवयवमें बैठता है । स्थाल्यां पचति (वोह बटलोईमें पकाता है) ॥ वैषयिकका उदाहरण–मोक्षे इच्छास्ति (मोक्षमें

1 यहां प्रथम 'साधु गतम्' था, इसीप्रकार सर्वत्र जानो ।

इच्छा है) अर्थात्-इच्छाका विषय मोक्ष है ॥ अभिव्यापकका उदाहरण-सर्वस्मिन्नात्मास्ति (आत्मा सबमें व्याप्त है) ॥ वनस्य दूरे अन्तिके वा (वनके दूर वा निकट) ॥

॥ इति विभक्त्यर्थाः समासाः ॥

अथ समासाः ।

९७७. समसनं समासः । समासः पञ्चधा । स च विशेषसंज्ञाविनिर्मुक्तः केवलसमासः प्रथमः । प्रायेण पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावो द्वितीयः । प्रायेणोत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषस्तृतीयः, तत्पुरुषभेदः कर्मधारयः, कर्मधारयभेदो द्विगुः । प्रायेणान्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिश्चतुर्थः प्रायेणोभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः पञ्चमः ॥

अनेक पदोंको एकमें मिलाना इनको समास कहते हैं । वोह समास पांच प्रकारका होता है । जिसका कोई विशेष नाम नहीं है वोह ' केवलसमास ' कहाता है, यह पहला है । बहुधा जिसमें पूर्वपदका अर्थ प्रधान होता है वोह ' अव्ययीभाव ' नामक दूसरा समास है । प्रायः जिसके उत्तरपदका अर्थ प्रधान हो वोह ' तत्पुरुष ' नामका तीसरा समास होता है, तत्पुरुषका एक भेद ' कर्मधारय ' है, इसमें दोनों विभक्ति समान होती है, और विशेषण विशेष्यभाव होता है; कर्मधारयका भेद ' द्विगु ' है, इसके प्रथम संख्यावाचक शब्द होता है । जिसमें समासके पदोंको छोड औरही पदका अर्थ प्रधान हो वोह ' बहुव्रीहि ' नामका चौथा समास होता है । जिसमें दोनों पदका अर्थ प्रधान हो वोह ' द्वन्द्व ' नामक पांचवां समास होता है ॥

९७८ समर्थः पदविधिः । २ । १ । १ ॥

पदसम्बन्धी यो विधिः स समर्थाश्रितो बोध्यः ॥

पदसे संबंध रखनेवाली जो विधि है वोह सामर्थ्य-(एकार्थीभाव) के आश्रय होती है ॥

१७७ प्राक्कडारात्समासः । २ । १ । ३ ॥

' कडाराः कर्मधारये ' इत्यतः प्राक् समास इत्यधिक्रियते ॥

यहांसे लेकर ' कडाराः कर्मधारये ' सूत्रसे पहले तक ' समास ' इस पदका अधिकार किया जाता है ॥

१७८ सह सुपा । २ । १ । ४ ॥

सुप् सुपा सह वा समस्यते । समासत्वात्प्रातिपदिकत्वेन सुपो लुक् । परार्थाभिधान वृत्तिः। कृत्तद्धितसमासैकशेषसनाद्यन्तधातुरूपाः पञ्च वृत्तयः । वृत्त्यर्थावबोधक वाक्य विग्रहः । सच लौकिकोऽलौकिकश्चेति द्विधा । तत्र-पूर्वं भूत इति लौकिकः । पूर्व अम् भूत सु इत्यलौकिकः । भूतपूर्वः । भूतपूर्वे चरडिति निर्देशात्पूर्वनिपातः ॥

एक सुबन्तके साथ दूसरे सुबन्तका समास विकल्प करके हो । जिन पदोंका समास होता है उनकी प्रातिपदिक (मू० १३७) संज्ञा होती है, अतएव सुप्-का लुक् (मू०७८१) होता है। एकरूपसे अर्थ प्रकाश करनेकी शक्तिको वृत्ति कहते हैं । उस वृत्तिके पांच भेद हैं. यथा-कृत् (मू० ३३२), तद्धित (मू० १०८३), समास (मू० ९७५), एकशेष (मू० १४६) और सनाद्यन्त धातु (मू० ५१७) । वृत्तिके अर्थकू बोधन करनेवाले वाक्यकू विग्रह कहते हैं । वह विग्रह लौकिक और अलौकिक इन दो भेदोंसे दो प्रकारका है । तहां पूर्व भूतः (पहले हुआ) यह लौकिक है । और पूर्व+ अम् , भूत+सु यह अलौकिक है । परन्तु यहां कालवाचक पूर्वशब्द भूत क्रियाका विशेषण है इसकारण पूर्वशब्द लौकिक उपसर्जन होनेसे पूर्वशब्दका पहिले (मू० ९८३) प्रयोग पाया, परन्तु ' भूतपूर्वे चरट् ' इस सूत्रके देखनेसे भूतशब्द पूर्वनिपात होता है । भूतपूर्वः (पहले हुआ) ॥

१७९ (इवेन सह समासो विभक्त्यलोपश्च) ॥

इव-शब्दके साथ सुबन्तका समास हो, परन्तु-विभक्तिका लोप न हो। वागर्थौ+इव = वागर्थाविव (शब्द और अर्थकी सदृश) ॥

॥ इति केवलसमासः प्रथमः ॥

अथ अव्ययीभावसमासः।

९८० अव्ययीभावः। २। १। ५॥

अधिकारोऽयम्, प्राक् तत्पुरुषात् ॥

अव्ययीभाव शब्दका सू० ९९६ से प्रथमतक अधिकार है ॥

९८१ अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासंप्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथानुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसम्पत्तिसाकल्यान्तवचनेषु। २। १। ६॥

विभक्त्यादिषु वर्त्तमानमव्ययं सुबन्तेन सह नित्यं समस्यते। सोऽव्ययीभावः। प्रायेणाविग्रहो नित्यसमासः प्रायेणाऽस्वपदविग्रहो वा। विभक्तौ—हरि ङि अधि इति स्थिते ॥

विभक्तिका अर्थ समीपवाची, समृद्धिवाचक, व्यृद्धि-(घटती) वाचक, अर्थका अभाव, नाशवाचक, असंप्रति-(नहीं लगती) वाचक, शब्दका प्रकाश पीछे, यथा-वाचक, क्रमवाचक, समकालवाचक, सदृशवाची, अपने योग्य प्राप्ति, सम्पूर्ण-(समग्र) ता, अन्तवाचक इन अर्थोंमें वर्त्तमान अव्ययका सुबन्तके साथ नित्य समास किया जाता है, वोही अव्ययीभाव कहाता है। बहुधा नित्यसमासके अर्थ विग्रह (सू० ९७८) नहीं होता, अथवा प्रायकरके समस्यमान पदोंसे भिन्न अर्थात्—औरही पदोंसे उसका विग्रह होता है। विभक्तिके अर्थमें अव्ययका उदाहरण जैसे—हरि+ङि+अधि। इस विग्रहमें 'अधि' अव्यय है, और उसका 'ङि' के अर्थमें व्यवहार है ॥

९८२ प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्। १। २। ४३॥

समासशास्त्रे प्रथमानिर्दिष्टमुपसर्जनसंज्ञं स्यात् ॥

समास-विधायक शास्त्रमें जो प्रथमाद्वारा निर्दिष्ट हो उसकी उपसर्जन संज्ञा होय। उक्त (मू० ९८१) सूत्रमें ' अव्ययं ' पद प्रथमानिर्दिष्ट है, इसकारण ' हरि+ङि+अधि ' इस अव्ययका इस उदाहरणमें ' अधि ' अव्ययकी ' उपसर्जन ' संज्ञा हुई। इसका फल—॥

९८३ उपसर्जनं पूर्वम् । २ । ३ । ३० ॥

समासे उपसर्जनं प्राक् प्रयोज्यम् । इत्यधेः प्राक् प्रयोगः । सुपो लुक् । एकदेशविकृतस्यानन्यत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञायां स्वाद्युत्पत्तिः । अव्ययीभावश्चे-त्यव्ययत्वात्सुपो लुक् ॥

समासमें उपसर्जन-(मू० ९८२) का प्रथम प्रयोग करना चाहिये। इसकारण ' अधि ' का पहिले प्रयोग हुआ। अधि+हरि+ङि। और सुप्-का लुक् (मू० ७८१) होता है। अधि+हरि। जिसका एकदेश विकृत हो जाता है वोह औरकी समान नहीं होता, यद्यपि यहां सुप्-का लुक् होकर कुछ रूपान्तर हो गया है तथापि वह प्रातिपदिकही कहाता है, इसकारण फिरभी सु-आदि (मू० १३८) प्रत्यय होते हैं। अधि+हरि+सु। फिरभी अव्यय-संज्ञा (मू० ४१६) होनेके कारण सु-आदिकोंका लुक् (मू० ४१७) हो जाता है। अधिहरि (हरिके विषय) ॥ गाः पातीति गोपास्तस्मिन् = अधि+गोपा+सु ॥

९८४ अव्ययीभावश्च । २ । ४ । १८ ॥

अयं नपुंसकं स्यात् ॥

अव्ययीभाव-समासभी नपुंसकलिंग हो। अधि+गोपा+अम् (मू० २६० । २७०) अधिगोपम् (ग्वालियेके विषे) ॥

१ लौकिक और शास्त्रीय भेदोंसे उपसर्जन दो प्रकारके होते हैं, लौकिक उपसर्जन विशेषण कहाते हैं शास्त्रीय उपसर्जन वोह होते हैं जिनकी सूत्रादिमें उपसर्जन संज्ञा की जाय।

१८५ नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः । २ । ४ । ८३ ॥

अदन्तादव्ययीभावात्सुपो न लुक् तस्य पञ्चमीं विना अमादेशः स्यात् ॥

ह्रस्व-अकारान्त अव्ययीभावसे परे सुप्-का लुक् न हो, परन्तु-पंचमीको छोडकर शेष विभक्तियोंकू अम आदेश हो ॥

१८६ तृतीयासप्तम्योर्बहुलम् । २ । ४ । ८४ ॥

अदन्तादव्ययीभावात्तृतीयासप्तम्योर्बहुलमम्भावः ॥ उपकृष्णम् उपकृष्णेन। मद्राणां समृद्धिः सुमद्रम् । यवनानां व्यृद्धिर्दुर्यवनम्। मक्षिकाणामभावो निर्मक्षिकम् । हिमस्यात्ययोऽतिहिमम् । निद्रा सम्प्रति न युज्यत इत्यतिनिद्रम् । हरिशब्दस्य प्रकाश इतिहरि । विष्णोः पश्चादनुविष्णु । योग्यतावीप्सापदार्थानतिवृत्तिसादृश्यानि यथार्थाः । रूपस्य योग्यमनुरूपम् । अर्थमर्थं प्रति प्रत्यर्थम् । शक्तिमनतिक्रम्य यथाशक्ति ॥

अदन्त-अव्ययीभावसमासमें परे तृतीया और सप्तमी विभक्तिको अम् (सू० १८५) आदेश बहुल (सू० ४३७) करके हो । जैसे उपकृष्ण टा = उपकृष्णम्, उपकृष्णेन (सू० १६०) (कृष्णके समीप) ॥ **समृद्धिका उदाहरण**–सु मद्र अम = सुमद्रम (मद्रदेशवालोंकी समृद्धि) ॥ **व्यृद्धिका उदाहरण**–दुर् + यवन + अम = दुर्यवनम (यवनोंकी घटती) ॥ **अभाववाचकका उदाहरण** निर् + मक्षिका + अम (सू० २७०) निर्मक्षिकम (मक्खियोंका अभाव) ॥ **नाशवाचकका उदाहरण**–अति + हिम अम = अतिहिमम (हिमका नाश) ॥ **असंप्रतिका उदाहरण**–अति निद्रा अम (सू० २७०) अतिनिद्रम (निद्रा नहीं लगती) ॥ **प्रादुर्भावका उदाहरण**–इति+हरि सु (सू० २७१) इतिहरि (हरिशब्दका प्रकाश) ॥ **पश्चाद्वार्ताका उदाहरण**–अनु + विष्णु सु (सू० २७१) अनुविष्णु (विष्णुके पीछे) ॥ यथा-अव्ययके चार अर्थ है. योग्यता १, वीप्सा (अनेकता) २, पदार्थानतिवृत्ति (किसी पदार्थका उल्लंघन न करना) ३, सादृश्य (तुल्यता) ४ ॥ **योग्यताका उदाहरण**–अनु+

१ किन्हीं २ पाण्डित्याभिमानियोंने यहां 'सु' के स्थानमें 'अम' आदेश करके लिखा है, सो उनकी सर्वथा भ्रान्ति है, क्योंकि यहां अम-की प्रवृत्ति नहीं ।

रूप+अम् = अनुरूपम् (रूपके योग्य) ॥ **वीप्साका** उदाहरण-प्रति+अर्थ+अम् = प्रत्यर्थम् (सब अर्थोंमें) ॥ **पदार्थानतिवृत्ति**-का उदाहरण-यथा+शक्ति+सु (सू० २७१) यथाशक्ति (शक्तिको उल्लंघन न करके, अर्थात्-शक्तिके अनुसार) ॥ **सादृश्यका** उदाहरण-सह+हरि+सु (सू० २७१) ॥

१८७ अव्ययीभावे चाकाले । ६ । ३ । ८१ ॥

सहस्य सः स्यादव्ययीभावे नतु काले । हरेः सादृश्यं सहरि । ज्येष्ठस्यानुपूर्व्येणेत्यनुज्येष्ठम् । चक्रेण युगपत्सचक्रम् । सदृशः सख्या ससखि । क्षत्राणां सम्पत्तिः सक्षत्रम् । तृणमप्यपरित्यज्य सतृणम् । अग्निग्रन्थपर्यन्तमधीते साग्नि ॥

यदि उत्तरपद कालवाचक न होय तो अव्ययीभावसमासमें सहकू स-आदेश हो । सहरि (हरिकी समान) ॥ **क्रमवाचकका** उदाहरण-अनु+ज्येष्ठ+अम = अनुज्येष्ठम (ज्येष्ठके क्रमसे) ॥ **समकालका** उदाहरण-सह+चक्र+अम् (सू० १८७) सचक्रम् (चक्रके समकाल) ॥ **सदृशवाचीका** उदाहरण-सह+सखि+सु (सू० १८७ । २७१) ससखि (मित्रके सदृश) ॥ **सम्पत्तिका** उदाहरण-सह+क्षत्र+अम = सक्षत्रम (क्षत्रियोंकी पूर्णता) ॥ **समग्रताका** उदाहरण-सह+तृण+अम = सतृणम (अत्ति) (तृणसहित खाता है) ॥ **अन्तवाचकका** उदाहरण-सह+अग्नि+सु(सू० १८७ । २७१ । ७३) साग्नि (अग्निप्रतिपादक ग्रन्थपर्यन्त वेद पढता है) ॥

१८८ नदीभिश्च । २ । १ । २० ॥

नदीभिः सह सख्या वा समस्यते । समाहारे चायमिष्यते । पञ्चानां गङ्गानां समाहारः पञ्चगङ्गम् । द्वियमुनम् ॥

नदी-वाचक शब्दोंके साथ संख्यावाचक शब्दोंका विकल्प करके समास किया जाता है । पतञ्जलिकी यह इच्छा है कि-यह सूत्र समाहार (सू० १०१९) हीमें लगे, अन्यत्र नहीं । पञ्च+गङ्गा+सु

(मू० २७०) पञ्चगङ्गम् (पांच गंगाका समुदाय)[1] । द्वि+यमुना+सु (मू०२७०) द्वियमुनम् (दो यमुनाका समुदाय) ॥

१८९ तद्धिताः । ४ । १ । ७६ ॥

आ पञ्चमसमाप्तेरधिकारोऽयम् ॥

इस सूत्रसे लेकर अष्टाध्यायीके पञ्चम अध्यायकी समाप्तिपर्यन्त " तद्धित " इस पदका अधिकार है ॥

१९० अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः । ५ । ४ । १०७ ॥

शरदादिभ्यष्टच् स्यात्समासान्तोऽव्ययीभावे । शरदः समीपमुपशरदम् । प्रतिविपाशम् ॥

अव्ययीभाव समासमें शरद्-आदिसे परे समासका अन्त अवयव टच् (अ) प्रत्यय हो । उप+शरद्+अ+अम (मू० १८५) उपशरदम (शरद ऋतुके समीप) । प्रति+विपाश्+अ+अम = प्रतिविपाशम (विपाशा नाम नदीके समीप) ॥ उप+जरा+अम ॥

१९१ जराया जरश्च । उपजरसम् । इत्यादि ॥

जरा-शब्दके स्थानमें जरस आदेश हो उप+जरस+अम = उपजरसम (वृद्धावस्थाके समीप) ॥

१९२ अनश्च । ५ । ४ । १०८ ॥

अन्नन्तादव्ययीभावाट्टच् स्यात् ॥

जिसके अन्तमें ' अन ' हो उस अव्ययीभाव समाससे परे टच् (अ) प्रत्यय हो । उप+राजन+अ ॥

१९३ नस्तद्धिते । ६ । ४ । १४४ ॥

नान्तस्य भस्य टेर्लोपस्तद्धिते ॥

नकारान्त भ-(मू० १८६) संज्ञक शब्दकी टि-(मू० ४९) का लोप हो, तद्धित प्रत्यय (मू० १८९) परे रहते । उप+राज्+अ+अम = उपराजम (राजाके समीप) । अधि+आत्मन्+अ = अधि+आत्म+अ+अम = अध्यात्मम (आत्मामें) ॥

1 यह स्थान 'पञ्चगंगा' नामसे प्रसिद्ध है, और काशीजीमें माधवरायके घाटके निकट है।

९९४ नपुंसकादन्यतरस्याम् । ५ । ४ । १०९ ॥

अन्नन्तं यत् क्लीबं तदन्तादव्ययीभावाट्टज्वा स्यात् ॥

जिसके अन्तमें 'अन्' हो ऐसा नपुंसकलिंग जिसके अन्तमें हो तिस अव्ययीभावसमाससे परे टच्-(अ) प्रत्यय विकल्पसे हो । उप+चर्मन्+अ+अम् (सू० ४९) उपचर्मम्, उपचर्म (सू० २७१) (चमडेके समीप) ॥

९९५ झयः । ५ । ४ । १११ ॥

झयन्तादव्ययीभावाट्टच् वा स्यात् ॥

जिसके अन्तमें झय्-प्रत्याहारका कोई अक्षर हो तिस अव्ययीभाव समाससे परे टच्-(अ) प्रत्यय विकल्पसे हो । उप+समिध्+अ+अम् = उपसमिधम्, उपसमित (सू० १६६) (समिधाके समीप) ॥

॥ अव्ययीभावसमासः सम्पूर्णः ॥

अथ तत्पुरुषसमासः ।

९९६ तत्पुरुषः । २ । १ । २२ ॥

अधिकारोऽयम् प्राग्बहुव्रीहेः ॥

बहुव्रीहि (सू० १०४९) समाससे पहले तक 'तत्पुरुष' पद-का अधिकार है ॥

९९७ द्विगुश्च । २ । १ । २३ ॥

द्विगुरपि तत्पुरुषसंज्ञकः स्यात् ॥

द्विगु-नामवाला (सू० १०१८) समासभी तत्पुरुष-(सू०९९६) संज्ञक हो ॥

९९८ द्वितीयाश्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः । २ । १ । २४ ॥

द्वितीयान्तं श्रितादिप्रकृतिकैः सुबन्तैः सह वा समस्यते । कृष्णं श्रितः-कृष्णश्रितः । इत्यादि ॥

श्रित (जिसने आश्रयण किया), अतीत (जो अतिक्रमण कर आगे गया), पतित (जो गिर पडा), गत (जो गया), अत्यस्त (जो उल्लंघन कर गया), प्राप्त (जो पहुँच गया) और आपन्न (जो प्राप्त हुआ) इन सुबन्त प्रकृतियोंके साथ द्वितीयान्तका समास विकल्प करके हो । कृष्णम्+श्रितः = कृष्णश्रितः (जिसने कृष्णका आश्रयण किया) इत्यादि जानना ॥

९९९ तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन । २ । १ । ३० ॥

तृतीयान्तं तृतीयान्तार्थकृतगुणवचनेनार्थेन च सह वा प्राग्वत् । शङ्कुलया खण्डः-शङ्कुलाखण्डः । धान्येनार्थो धान्यार्थः । तत्कृतेति किम् ? अक्ष्णा काणः ॥

तृतीयान्तके अर्थसे जिस गुणको सम्पादन किया जाय तिस गुणके वाचक शब्दके साथ और अर्थ-शब्दके साथ तृतीयान्तका विकल्प करके समास होय । शङ्कुलया+खण्डः = शङ्कुलाखण्डः (सरौतेसे किया गया खण्ड) । धान्येन+अर्थः = धान्यार्थः (धान्यसे प्राप्त हुआ अर्थ) । तृतीयान्तके अर्थमें जिस गुणका सम्पादन किया जाय यह कहनेमें—अक्ष्णा काणः (एक आंखसे काणा) ।इस उदाहरणमें समास न हुआ, क्योंकि—तृतीयान्त जो ' अक्ष्णा ' पद है सो काणत्वका सम्पादक नहीं है ॥

१००० कर्तृकरणे कृता बहुलम् । २ । १ । ३२ ॥

कर्तरि करणे च तृतीया कृदन्तेन बहुलं प्राग्वत् ॥

कर्त्ता और करण अर्थमें जो तृतीयान्त सो कृदन्तके साथ बहुल (सू० ८३७) करके समासको प्राप्त होय । जैसे—हरिणा त्रातः,वा—हरित्रातः (हरिसे रक्षा किया गया) । नखैर्भिन्नः, वा—नखभिन्नः (नखोंसे विदीर्ण किया गया) ॥

कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणम् ॥

उक्त सूत्रमें 'कृता' के ग्रहण करनेसे गति (सू० २४३) और कारक (सू० ९५९) जिस कृदन्तके पूर्व हो तिसकाभी ग्रहण कि-

या जाता है। जैसे—नखैः+निर्भिन्नः=नखनिर्भिन्नः (नखोंसे सम्पूर्ण फाडा गया)॥

१००१ चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः।२।१।३६॥

चतुर्थ्यन्तार्थाय यत्तद्वाचिना अर्थादिभिश्च चतुर्थ्यन्तं वा प्राग्वत्। यूपाय दारु यूपदारु। तदर्थेन प्रकृतिविकृतिभाव एवेष्टः। तेनेह न। रन्धनाय स्थाली॥

अर्थ (निमित्त), बलि (बलिदान), हित (उपकारक), सुख (सुख), रक्षित (रक्षा किया हुआ) इन शब्दोंके साथ और चतुर्थ्यन्तके लिये जो हो तिसके वाचक शब्दके साथ चतुर्थ्यन्तका विकल्प करके समास हो। यूपाय दारु=यूपदारु (यज्ञस्तम्भके लिये लकडी)। चतुर्थ्यन्तके लिये जो हो तिसके वाची शब्दके साथ ऐसा कहनेसे यह इष्ट है कि—जो चतुर्थ्यन्तके लिये (वस्तु) हो, उसका विकार होता हो, जैसे—यूप-(स्तंभ) के लिये दारु-(लकडी) का विकार होता है। इसीकारण—रन्धनाय स्थाली (पकानेके लिये बटलोयी), इस उदाहरणमें समास नहीं होता कारण कि—जैसे लकडी विकार (रूपान्तर) होकर स्तम्भ होता है, इस प्रकार बटलोयीका रूपान्तर पकानेसे नहीं होता॥

१००२ (अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम्)॥ द्विजार्थः सूपः। द्विजार्था यवागूः। द्विजार्थं पयः॥

अर्थ-शब्दके साथ चतुर्थ्यन्त सुबन्तका समास नित्य हो और विशेष्यका लिङ्ग हो यह कहना चाहिये। द्विजार्थः सूपः (ब्राह्मणके लिये दाल)। द्विजार्था यवागूः (ब्राह्मणके लिये लपसी)। द्विजार्थं पयः (ब्राह्मणके लिये दूध)॥ जो सू० १००१ में और

१ जो गुण प्रकाश करनेवाली वस्तु हो उसे विशेषण कहते हैं, और जिसका गुण प्रकाश किया जाय उसे विशेष्य कहते हैं। जैसे- 'सुन्दर बालक' यहां 'बालक' विशेष्य और 'सुन्दर' विशेषण है। और उक्त उदाहरणोंमें जो लिंग सूप आदिका है वोही लिंग अर्थ शब्दके साथ समस्यमान पदका है।

शब्द लिखे थे अब उनके समासके उदाहरण लिखते हैं । भूतबलिः (भूतोंके लिये बलिदान) । गोहितम (गौके लिये उपयोगी) । गोसुखम (गौके लिये सुखदायक) । गोरक्षितम (गौके लिये रक्षा किया हुआ)॥ यदि इनका समास न किया जाय तो ' भूतेभ्यो बलिः ' ऐसा विग्रह होगा ॥

१००३ पञ्चमी भयेन । २ । १ । ३७ ॥

भय-शब्दके साथ पञ्चम्यन्तका समास हो चोराद्भयम = चोरभयम (चोरसे भय) ॥

१००४ स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन ।२।१।३९॥

स्तोक (थोडा), अन्तिक (निकट), दूर (दूर) यह शब्द और इन शब्दोंके अर्थमें जो शब्द होवे तथा पञ्चम्यन्त कृच्छ्र-(दुःखवाचक) शब्द इनका क्त (म० ८८०) प्रत्ययान्तके साथ समास हो । स्तोकात् मुक्तः ॥

१००५ पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः । ६ । ३ । २ ॥

अलुगुत्तरपदे ॥

उत्तर पद परे रहते स्तोक आदि-(म० १००४) शब्दोंसे परे पंचमीका लुक (म० ७८०) न होय । स्तोकान्मुक्तः (म० १८४) (थोडेसे छूटा) । अन्तिकात् आगतः = अन्तिकादागतः (निकटसे आया) । अभ्यासादागतः (समीपसे आया) । दूरात् आगतः = दूरादागतः (दूरसे आया) । कृच्छ्रात् आगतः = कृच्छ्रादागतः (दुःखसे आया) ॥

१००६ षष्ठी । २ । २ । ८ ॥

सुबन्तेन प्राग्वत ॥

सुबन्तके साथ षष्ठ्यन्तका समास विकल्प करके हो । राज्ञः पुरुषः = राजन् पुरुषः (म० २०९) राजपुरुषः(राजाका पुरुष)॥

१००७ पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे । २ । २ । १ ॥

अवयविना सह पूर्वादयः समस्यन्ते एकत्वसङ्ख्याविशिष्टश्चेदवयवी। षष्ठीसमासापवादः॥

पूर्व (पहिला-अगला भाग), अपर (पिछला भाग), अधर (नीचेका भाग), उत्तर (पिछला भाग) इन शब्दोंका एकत्व संख्या-(गणना) विशिष्ट अवयवीके साथ विकल्प करके समास होता है। यह षष्ठीसमास (सू० १००६) का अपवाद है। पूर्वं कायस्य = पूर्वकायः (सू० ९८२। ९८३ (शरीरका पूर्वभाग = शिर)। अपरकायः (शरीरका पिछला भाग)॥

एकाधिकरणे किम्? पूर्वश्छात्राणाम्॥

एकत्व-संख्याविशिष्ट अवयवीके साथ ऐसा कहनेसे 'पूर्वश्छात्राणाम्' इस उदाहरणमें समास नहीं हुआ, कारण कि—अवयवी (छात्राणाम) एकवचनान्त नहीं, किन्तु—बहुवचनान्त है॥

१००८ अर्धं नपुंसकम्। २। २। २॥

समांशवाच्यर्धशब्दो नित्यं क्लीबे प्राग्वत्॥

आधा-(समांश) वाची अर्ध-शब्द नित्य नपुंसकलिङ्गमें हो, उसका सुबन्तके साथ विकल्प करके समास हो। अर्धं पिप्पल्याः—अर्धपिप्पली (आधी पीपल)॥

१००९ सप्तमी शौण्डैः। २। १। ४०॥

सप्तम्यन्तं शौण्डादिभिः प्राग्वत्॥

शौण्डादिगण-पठित सुबन्तोंके साथ सप्तम्यन्तका समास विकल्पसे हो। अक्षेषु शौण्डः = अक्षशौण्डः (पाशोंमें निपुण)॥

द्वितीया तृतीयेत्यादियोगविभागादन्यत्रापि तृतीयादिविभक्तीनां प्रयोगवशात्समासो ज्ञेयः॥

यह नियम है कि—उक्त (सू० ९९८। ९९९। १००१। १००३। १००९) इन सूत्रोंमें जो शब्द परिगणित हैं उनके साथ द्वितीयान्त तृतीयान्त आदिकोंका समास हो, परन्तु—गिने शब्दोंसे भिन्नभी पदोंके साथ समासकी आवश्यकता (जरूरत) होती है,

इस कारण-द्वितीया तृतीया आदि पदोंको अपने २ सूत्रोंमें योगविभाग करनेसे द्वितीयान्त तृतीयान्त आदिकोंका औरोंके साथभी समास हो ऐसा जानना चाहिये ॥

१०१० दिक्संख्ये संज्ञायाम् । २ । १ । ५० ॥

पूर्वेषुकामशमी । सप्तर्षयः । संज्ञायामेवेति नियमार्थं सूत्रम्, तेनेह न-उत्तरा वृक्षाः पञ्च ब्राह्मणाः ॥

दिशा-वाचक तथा संख्या-वाचक सुबन्तके समान अधिकरणवाले सुबन्तके साथ संज्ञा-अर्थमें समस्यमान हो । पूर्वेषुकामशमी (पूर्ववाला इषुकामशमी ग्राम) । सप्तर्षयः (सात ऋषि) । यह सूत्र नियमसे संज्ञा-अर्थहीमें लगता है, इसकारण यहां नहीं लगता-उत्तरा वृक्षाः (उत्तरवाले वृक्ष) । पञ्च ब्राह्मणाः (पांच ब्राह्मण) । 'उत्तरा वृक्षाः' और 'पञ्च ब्राह्मणाः' यह किसीकी संज्ञा (नाम) नहीं है ॥

१०११ तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च । २ । १ । ५१ ॥

तद्धितार्थविषये उत्तरपदे च परतः समाहारे च वाच्ये दिक्संख्ये च प्राग्वत् ॥

जब तद्धित (सू० ०८९) प्रत्ययके अर्थकी विषयता हो वा उत्तर पद परे हो अथवा समाहार वाच्य होय तो दिशावाचक और संख्यावाचक शब्दोंका विकल्प करके समास हो । पूर्वस्यां शालायां भवः जब इन पदोंका समास होता है तब 'भव' शब्दको तद्धितकी विषयता रहती है, क्योंकि-भव-रूप अर्थमें जो 'ञ' प्रत्यय (सू० १०१३) है सो समास होनेके अनन्तर आता है फिर समास होकर पूर्वा·शाला (सू० ७८?) ऐसा रूप होता है, फिर-॥

१०१२ (सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः) ॥

पांचो वृत्ति-(सू० ९७८) योंमेंसे किसीभी वृत्तिमें सर्वनाम हो तो उसका पुंल्लिंगकी समान रूप हो । महामुनि श्रीपतञ्जलि मुनिके

कहनेसे 'पूर्वा' में जो स्त्रीलिंगका चिन्ह 'आ' है, उसे निकाल दिया जाता है । पूर्व+शाला ॥

१०१३ दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः । ४ । २ । १०७ ॥

अस्माद्भवार्थे ञः स्यादसंज्ञायाम् ॥

दिशा-वाचक शब्द पूर्वपद हो तब समास किये हुए पदसे परे भव आदि अर्थोंमें ञ प्रत्यय हो, यदि समास किया हुआ पद किसीकी संज्ञा (नाम) न हो तो । पूर्व+शाला+ञ (मू० १४९) ॥

१०१४ तद्धितेष्वचामादेः । ७ । २ । ११७ ॥

ञिति णिति च तद्धितेष्वचामादेरचो वृद्धिः स्यात् ॥

ञित् वा णित् तद्धित-संज्ञक प्रत्यय हो तो अचोंमें पहिले अच्-की वृद्धि हो । पौर्व+शाला+अ (मू० २६२) पौर्व+शाल्+अ+सु = पौर्वशालः (जो पूर्व शालामें हुआ) ॥

पञ्च गावो धनं यस्येति त्रिपदे बहुव्रीहौ ॥

'पञ्च गावः धनं यस्य' इस उदाहरणमें तीनों पद बहुव्रीहि (मू०१०४९) समासके हैं, उसमें वक्ष्यमाण वार्त्तिक (मू०१०१५) लगता है ॥

१०१५ (द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम्) ॥

उत्तरपद परे रहते द्वन्द्व (मू० १०६९) और तत्पुरुष (मू० ९९६) नित्य हों । पञ्च+गो+धनः ॥

१०१६ गोरतद्धितलुकि । ५ । ४ । ९२ ॥

गोन्तात्तत्पुरुषाट्टच् स्यात्समासान्तो नतु तद्धितलुकि ॥

जिसके अन्तमें गो हो तिस तत्पुरुषसे परे तद्धित-संज्ञक टच् प्रत्यय समासका अन्त अवयव हो, यदि तद्धित-प्रत्ययका लुक् न हुआ हो तो । पञ्च+गो+अ+धनः (मू० २७) पञ्चगवधनः (जिसका पांच गौ धन हों) ॥

१०१७ तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः । १ । २ । ४२ ॥

जिस तत्पुरुष (सू०१०१६) समासके पद समान अधिकरणवाले अर्थात्-एकही पदार्थको कहते हों, तिस (तत्पुरुष) की कर्मधारय संज्ञा हो ॥

१०१८ संख्यापूर्वो द्विगुः । १ । २ । ५२ ॥

तद्धितार्थेत्यत्रोक्तस्त्रिविधः संख्यापूर्वो द्विगुसंज्ञः स्यात् ॥

जिस समासके पहले संख्यावाचक शब्द हो और वोह समास सू०१०११ के तीन प्रकारोंमेंसे कोई हो तो उसकी द्विगु संज्ञा होय॥

१०१९ द्विगुरेकवचनम् । २ । ४ । १ ॥

द्विगर्थः समाहार एकवत्स्यात् ॥

जिस समाहारका द्विगु (सू० १०१८) समासमें प्रकाश किया जाय उससे परे एकवचन हो ॥

१०२० स नपुंसकम् । २ । ४ । १७ ॥

समाहारे द्विगुर्द्वन्द्वश्च नपुंसकं स्यात् ॥

समाहार-अर्थमें द्विगु (सू० १०१८) और द्वन्द्व (सू० १०६०) समाससे परे नपुंसकलिङ्गप्रत्यय हो । पञ्चानां गवां समाहारः = पञ्च+गो+अ+अम् (सू० १०१६ । २७) पञ्चगवम् (पांच गायोंका समूह) ॥

१०२१ विशेषणं विशेष्येण बहुलम् । २ । १ । ५७ ॥

भेदकं भेद्येन समानाधिकरणेन बहुलं प्राग्वत् । नीलमुत्पलम् नीलोत्पलम् । बहुलग्रहणात् क्वचिन्नित्यम् कृष्णसर्पः । क्वचिन्न-रामो जामदग्न्यः ॥

विशेष्यके साथ विशेषणका बहुल (सू० ८३७) करके समास हो । नीलम् उत्पलम् (सू० ७८१) नीलोत्पलम् (नीलकमल) । बहुलग्रहणसे यह आशय है कि-कहीं तो समास नित्यही हो, जैसे-कृष्णसर्पः (काला सर्प) । और कहीं २ न हो, जैसे-रामो जामदग्न्यः (राम जो कि-जमदग्निके पुत्र) अर्थात्-परशुराम ॥

१०२२ उपमानानि सामान्यवचनैः । २ । १ । ५५ ॥

सामान्यवचनोंके साथ उपमानवाचक[1] शब्दोंका समास हो। घन इव श्यामः = घनश्यामः (मेघके समान श्याम)॥

१०२३ (शाकपार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम्)॥

'शाकपार्थिव' आदि समासरूप शब्दोंकी सिद्धिके लिये उत्तरपदका लोप हो ऐसा जानना चाहिये। शाकप्रियः पार्थिवः = शाकपार्थिवः (जिस राजाको खड्गमुष्टि प्रिय हो)। यहां 'प्रिय' उत्तरपदका लोप हुआ है। देवपूजको ब्राह्मणः = देवब्राह्मणः (देवतापूजक ब्राह्मण)॥

१०२४ नञ्। २। ३। ६॥

नञ् सुपा सह समस्यते॥

सुबन्तके साथ नञ्-अव्ययका समास हो। न+ब्राह्मणः॥

१०२५ नलोपो नञः। ६। ३। ७४॥

नञो नस्य लोप उत्तरपदे॥

नञ्-अव्ययके नकारका लोप हो, उत्तरपद परे रहते, अर्थात्- 'अ' शेष रहे। अब्राह्मणः (जो ब्राह्मण न हो = द्विजबन्धु)॥ न अश्वः-न+अश्वः (सू० १०२५) अ+अश्वः॥

१०२६ तस्मान्नुडचि। ६। ३। ७४॥

लुप्तनकारान्नञ उत्तरपदस्याजादेर्नुडागमः स्यात्॥

जिसके नकारका लोप हो गया हो ऐसे नञ्-से परे जो अजादि पद तिसे नुट् (न्) का आगम हो। अ+न्+अश्वः = अनश्वः (जो अश्व न हो)॥

१ जिसमें उपमा दी जाती है वोह उपमान कहाता है, और जिसकी उपमा दी जाती है वोह उपमेय कहाता है, जो धर्म उपमान और उपमेयमें सामान्य रहता है उसके वाचकको सामान्यवाचक कहते हैं जैसे-"बालाका मुख चन्द्रमाकी समान सुन्दर है" यहां मुख उपमेय और चन्द्रमा उपमान है, और सुन्दरता सामान्यधर्म तद्वाचक 'सुन्दर' शब्द सामान्यवाचक है।

नैकधेत्यादौ तु नशब्देन सह सुप्सुपेति समासः ॥

'न एकधा' इत्यादि उदाहरणोंमें तो ञित्-भिन्न 'न' के साथ सू० ९७८ से समास होता है। इसीकारण 'न' का लोप (सू०१०२५) नहीं होता। न+एकधा (सू०४१७। ३९) नैकधा (एक प्रकारसे नहीं)॥

१०२७ ऊर्यादिच्विडाचश्च । १ । ४ । ६१ ॥

ऊर्यादयश्च्व्यन्ता डाजन्ताश्च क्रियायोगे गतिसंज्ञाः स्युः ॥

ऊरी-आदि गणपठित शब्द और च्वि (सू०१३५५) प्रत्ययान्त शब्द तथा डाच (सू० १३६२) प्रत्ययान्त शब्द क्रियाके योगमें गतिसंज्ञक हो ॥

१०२८ कुगतिप्रादयः । २ । २ । १८ ॥

एते समर्थेन नित्यं समस्यन्ते ॥

कु-शब्द (सू० ४१३) और गति-संज्ञक (सू० २२३।१०२७) तथा प्र-आदि (सू०४५) शब्द इनका एकार्थीभावके योग्य शब्दोंके साथ नित्य समास हो। कुत्सितः पुरुषः = कु+पुरुषः = कुपुरुषः (कुत्सित मनुष्य)। ऊरी+कृत्य (सू०१०२७। ९५५) ऊरीकृत्य (अङ्गीकार करके)। शुक्ली+कृत्य (सू० १३५५) (श्वेत करके)। पटत्–पटत्+आ (डाच)+कृत्य (सू० २६९) पटपटाकृत्य (पटत् २ शब्द करके)। सु+पुरुष (सू० १०२८। ४५) सुपुरुषः (सुन्दर पुरुष)॥

१०२९ (प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया)॥

प्र-आदि (सू० ४५) उपसर्गोंका गत इस शब्दके अर्थमें अथवा गत-शब्दके समान शब्दोंके अर्थमें प्रथमान्तके साथ समास हो। प्रगत आचार्यः = प्र+आचार्यः (सू० ५३) प्राचार्यः (कुलपरम्परासे प्राप्त आचार्य)॥

१०३० (अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया)॥

अति-आदि उपसर्ग उल्लंघन आदि अर्थमें अथवा क्रान्त-शब्दोंके

तुल्य शब्दोंके अर्थमें द्वितीयान्तके साथ समासकू प्राप्त होय। 'अतिक्रान्तो मालाम्' इस विग्रहमें-॥

१०३१ एकविभक्ति चापूर्वनिपाते। १। २। ४४॥

विग्रहे यन्नियतविभक्तिक तदुपसर्जनसंज्ञ स्यान्नतु तस्य पूर्वनिपातः॥

विग्रहमें जो नियतविभक्ति (एकही विभक्तिवाला) हो तिसकी उपसर्जनसंज्ञा तौ हो, परन्तु उसका पूर्व प्रयोग (सू० ९८३) न हो। अति+माला+सु॥

१०३२ गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य। १। २। ४८॥

उपसर्जनं यो गोशब्दः स्त्रीप्रत्ययान्त च तदन्तस्य प्रातिपदिकस्य ह्रस्वः स्यात्॥

जिस प्रातिपदिकका अन्त अवयव उपसर्जन संज्ञक गो-शब्द हो अथवा-स्त्रीप्रत्ययान्त (सू० १३६५) हो, तिसे ह्रस्व होय। अति+माल+सु = अतिमालः (जिसने मालाको अतिक्रमण किया)॥

१०३३ (अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया)॥

अव-आदि उपसर्ग क्रुष्ट-(बुलाना) अर्थमें वा इसके समान शब्दोंके अर्थमें तृतीयान्तके साथ समासकू प्राप्त हो। अवक्रुष्टः कोकिलया = अव+कोलिला+सु (सू० १०३२) अवकोकिलः (कोकिलाद्वारा बुलाया गया)॥

१०३४ (पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या)॥

परि-आदि उपसर्ग ग्लान-(ग्लानियुक्त) अर्थमे अथवा इसके सदृश अर्थमें चतुर्थ्यन्तके साथ समासकू प्राप्त हो। परिग्लानोऽध्ययनाय = परि+अध्ययनः (सू० २१) पर्यध्ययनः (अध्ययनके अर्थ ग्लानियुक्त)॥

१०३५ (निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या)॥

निर्-आदि उपसर्ग क्रान्त-(गया) अर्थमें तथा इसके तुल्य-अर्थमें पंचम्यन्तके साथ समासकू प्राप्त हो। निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः =

निर्+कौशाम्बी (सू० १०३२ । ११३ । ११७ । १७०) निष्कौशाम्बिः (जो कौशाम्बी नगरीसे निकला हो) ॥

१०३६ तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् । ३ । १ । ९२ ॥

सप्तम्यन्ते पदे कर्मणीत्यादौ वाच्यत्वेन स्थितं यत् कुम्भादि तद्वाचकं पदमुपपदसंज्ञं स्यात् ॥

कर्मणि (सू० ८५५) इत्यादि सप्तम्यन्त पदोंमें वाच्यमान जो ' कुम्भ ' आदि अर्थ तिनके वाचक पद उपपद संज्ञक हो ॥

१०३७ उपपदमतिङ् । २ । २ । १९ ॥

उपपदं सुबन्तं समर्थेन नित्यं समस्यते अतिङन्तश्चायं समासः । कुम्भं करोतीति कुम्भकारः । अतिङ् किम् ? मा भवान् भूत् । माङि लुङिति सप्तमीनिर्देशान्माङुपपदम् । गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः । व्याघ्री । अश्वक्रीती । कच्छप्यादि ॥

उपपद-संज्ञक (सू० १०३६) सुबन्तका समर्थ-(एकार्थीभावके योग्य शब्द) के साथ नित्यसमास होय यह समास तिङन्तके साथ नहीं होय । कुम्भकारः (सू०८५५ । ७८१ । २०३) (कुम्हार)। तिङन्तके साथ न हो ऐसा कहनेसे ' मा भवान् भूत् ' (आप न होय) यहां समास न हुआ, क्योंकि-सू० ४८७ से सप्तमीनिर्देश होनेके कारण माङ-की उपपद-(सू० १०३६) संज्ञा होती है । कृदन्तसे परे सुप्‌की उत्पत्तिके प्रथमही गति (सू०२७३ । १०२७), कारक (सू० ९५०) और उपपद (सू० १०३६) इन तीनोंका कृदन्तके साथ समास हो जाता है । व्याजिघ्रतीति = वि+आङ+घ्रा (सू० ८५३ । ५३९ । १३०२) व्याघ्री (सिंही) । अश्वेन क्रीयते = अश्व+क्रीता (सू० १३०४) अश्वक्रीती (अश्वद्वारा मोल ली हुई) । कच्छे पिबति = कच्छ+पा (सू० ५३९ । १३०१) कच्छपी (कछुवी) ॥

१०३८ तत्पुरुषस्यांगुलेः संख्याव्ययादेः । ५ । ४ । ८६ ॥

संख्याव्ययादेरङ्गुल्यन्तस्य समासान्तोऽच् स्यात् ॥

जिस तत्पुरुष (सू० ९९६) समासके आदिमें संख्यावाचक शब्द हो अथवा अव्यय हो और अन्तमें अंगुली शब्द हो तिस (तत्पुरुष) का अन्त अवयव अच् होय । द्वे अंगुली प्रमाणमस्य = द्वि+अंगुली+अ (सू०२६२) द्व्यंगुलम (दो अंगुल प्रमाण) । निर्गत-मंगुलिभ्यो = निर्+अंगुली+अ+अम् (सू० २६२) निरंगुलम् (जो अंगुलीसे निकल गया) ॥

१०३९ अहः सर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः।५।४।८७॥

एभ्यो रात्रेरच् स्याच्चात्सङ्ख्याव्ययादेः । अहर्ग्रहणं द्वन्द्वार्थम् ॥

अहन् (दिन), सर्व (सब), एकदेश (अवयव), संख्यात (गिना हुआ), पुण्य (पवित्र) इन शब्दोंसे परे यदि रात्रि शब्द हो तौ तिससे परे अच् प्रत्यय हो, चकारसे संख्यावाचक शब्द और अव्यय जिस रात्रिके आदिमें हो तिससेभी परे अच् (अ) प्रत्यय हो । और इस सूत्रमें अहन्-शब्द द्वन्द्व (सू० १०६९) समासके अर्थ है, क्योंकि–' अहन्+रात्रिः ' इसमें तत्पुरुष समासका होना सम्भव नहीं ॥

१०४० रात्राह्नाहाः पुंसि । २ । ४ । २९ ॥

एतदन्तौ द्वन्द्वतत्पुरुषौ पुंस्येव ॥

जिसके अन्तमें रात्र (सू० १०३९) अथवा अह्न वा अह हों ऐसे द्वन्द्व (सू० १०६९) और तत्पुरुष (सू० ९९६) समास पुंल्लिङ्गमें हों । अहश्च रात्रिश्च = अहन्+रात्रि+अ (सू० ४०८।१२६। ३३ । २६२) अहोरात्रः (दिन और रात) । सर्वरात्रः (सम्पूर्ण रात) । संख्यातरात्रः (गिनी हुई रात) ॥

१०४१ संख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम् । द्विरात्रम् । त्रिरात्रम् ॥

जिसके प्रथम संख्यावाचक शब्द हो ऐसा रात्र-शब्द नपुंसकलिङ्गमें हो । द्वि+रात्रि (सू० १०३९ । २६२) द्विरात्रम् (दो रातका समाहार) । त्रिरात्रम (तीन रातका समाहार) ॥

१०४२ राजाहःसखिभ्यष्टच् । ५ । ४ । ९१ ॥

एतदन्तात्तत्पुरुषाट्टच् स्यात् ॥

राजन् (राजा), अहन् (दिन), सखि (मित्र) यह शब्द जिसके अन्तमें हों तिस तत्पुरुष (सू० ९९६) समाससे परे टच्-(अ) प्रत्यय होय । परम+राजन्+अ (सू० ९९३) परमराजः (प्रधान राजा) ॥ महत्+राजन्+अ (सू० १०४२) ॥

१०४३ आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः । ६ । ३ । ४६ ॥

महत आकारोऽन्तादेशः स्यात्समानाधिकरणे उत्तरपदे जातीये च परे । महाराजः । प्रकारवचने जातीयर् । महाप्रकारो महाजातीयः ॥

महत्-(बडा) शब्दको आकार अन्तादेश हो, समान अधिकरणवाला उत्तरपद परे रहते अथवा जातीयर् (जातीय) प्रत्यय परे रहते । महाराजः (सू० ९९३) (महाराज) । प्रकार-अर्थमें जातीयर् है, जैसे–महत्+जातीयः (सू०१०४३) महाजातीयः (बडे प्रकारवाला) ॥ द्वौ च दश च = द्वि+दश ॥

१०४४ द्व्यष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः । ६ । ३ । ४७ ॥

आत्स्यात् ॥

द्वि और अष्टन-शब्दको संख्यावाचक शब्द उत्तरपद परे रहते आ होय, यदि बहुव्रीहि (सू० १०४९) समास हो तो अथवा अशीति-शब्द परे हो तो । द्वादश (बारह) । अष्टन्+विंशति = अष्टाविंशति (अट्ठाईस) ॥

१०४५ परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः । २ । ४ । २६ ॥

एतयोः परपदस्येव लिङ्गं स्यात् ॥

द्वन्द्व (सू० १०६९) और तत्पुरुष (सू० ९९६) समासका लिङ्ग परपद (उत्तरपद) के लिङ्गके अनुकूल हो । जैसे–कुक्कुटमयूर्यौ इमे (ये कुक्कुट और मयूरी) । मयूरीकुक्कुटौ इमौ (यह मयूरी और कुक्कुट) । अर्धपिप्पली (पीपलका आधा) ॥

१०४६ (द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः)॥

द्विगु (सू० १०१८) समासमें और प्राप्त आपन्न और अलम् यह जिसके प्रथम हों तिसमें तथा गतिसमास (सू० १०२८) में उत्तरपदके समान लिंग (सू० १०४५) न होय। पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः = पञ्च+कपाल (सू० १०११) पञ्चकपालः पुरोडाशः (पांच कसेरोंमें पकाया हुआ पुरोडाश)। प्राप्तो जीविकां = प्राप्तजीविकः, आपन्नजीविकः (जिसको जीविका प्राप्त हुई हो)। अलं कुमार्यै–अलंकुमारिः (सू० १०३२) (कुमारीके अर्थ समर्थ)। अतएव ज्ञापकात्समासः, अर्थात्–उक्त उदाहरणमें ' अलं ' पूर्वक समासमें उत्तरपदके अनुकूल लिंगके निषेधविधानहीकी सामर्थ्यसे समास होता है। निष्कौशाम्बिः (कौशाम्बी नगरीसे निकला हुआ)॥

१०४७ अर्धर्चाः पुंसि च। २। ४। ३१॥

अर्धर्चादयः शब्दाः पुंसि क्लीबे च स्युः॥

अर्धर्च-आदि गणपाठित शब्द पुँल्लिंग और नपुंसकलिंगमें हों। अर्धर्चः, अर्धर्चम् (ऋचाका आधा)॥

एवं–ध्वज-तीर्थ-शरीर-मण्डप-यूप-देहाङ्कुश-कलश-पात्र-सूत्रादयः॥

इसी प्रकार–ध्वज (ध्वजा), तीर्थ (प्रयागराज आदि तीर्थ), शरीर (देह), मण्डप (यज्ञभवन), यूप (स्तम्भ), देह (शरीर), अंकुश (अंकुस), कलश (कलसा), पात्र (बासन), सूत्र (डोरा आदिक) इत्यादि शब्दभी पुँल्लिंग और नपुंसक लिंगमें होते हैं॥

१०४८ सामान्ये नपुंसकम्॥

सामान्य-अर्थकी विवक्षामें नपुंसकलिंग होता है। मृदु पचति (वोह कोमल पकाता है)। इस उदाहरणमें ' मृदु ' शब्द सामान्य अर्थात्–किसी विशेषलिंग घटित पदार्थका विशेषण नहीं

१ यहां ' द्विगोर्लुगनपत्ये ' इस सूत्रसे ताद्धितप्रत्ययका लुक् होता है। यह सूत्र सिद्धान्तकौमुदीमें है।

है, इसकारण नपुंसकलिंग है । प्रातः कमनीयम् (प्रातःकाल रमणीक है) ॥

॥ तत्पुरुषसमासः समाप्तः ॥

अथ बहुव्रीहिसमासः ।

१०४९. शेषो बहुव्रीहिः । २ । २ । २३ ॥

अधिकारोऽयं प्राग्द्वन्द्वात् ॥

यहांसे लेकर द्वन्द्व-(सू० १०६९) समासके पूर्वपर्यन्त ' बहुव्रीहि ' इस पदका अधिकार है ॥ भाष्य—इस सूत्रके " शेष " पदकी अनुवृत्ति केवल सू० ९९८ । १०५० हीमें होती है, कारण कि—द्वितीयान्तसे लेकर सप्तम्यन्तपर्यन्तका समास तो सू० ९९८ । ९९९ । १००१ । १००३ । १००५ । १००७ में उक्त है, अतः ' शेष ' प्रथमान्त रहता है, और सू० १०५० भी केवल प्रथमान्तहीमें लगता है ॥

१०५० अनेकमन्यपदार्थे । २ । २ । २४ ॥

अनेकं प्रथमान्तमन्यस्य पदस्यार्थे वर्तमानं वा समस्यते स बहुव्रीहिः ॥

अनेक प्रथमान्त-शब्द जो कि अन्यपदार्थ द्वितीयादि किसी पदके अर्थके लिये वर्तमान हो उनका विकल्प करके समास हो, और वोह समास बहुव्रीहि संज्ञक हो ॥

१०५१ सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ । २ । २ । ३५ ॥

सप्तम्यन्तं विशेषणं च बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात् । अत एव ज्ञापकाद्व्यधिकरणपदो बहुव्रीहिः ॥

बहुव्रीहि-समासमें सप्तम्यन्त और विशेषणका पूर्वप्रयोग होता है। इस सूत्रमें सप्तम्यन्तका पूर्व प्रयोग कहनेसे विदित होता है कि—कहीं प्रथमान्तसे भिन्न विभक्त्यन्तपदोंकाभी बहुव्रीहि (सू० १०५०) समास होता है । कण्ठ+कालः (सू० १०५१) ॥

१०५२ हलदन्तात्सप्तम्याः संज्ञायाम् । ६ । ३ । ९ ॥

हलन्ताददन्ताच्च सप्तम्या अलुक् ॥

संज्ञा-अर्थमें हलन्तसे और अदन्तसे परे सप्तमीका लुक् (सू० ७८१) न होय। कण्ठेकालः (जिनके कण्ठमें काला हो = महादेव) त्वचिसारः (जिसका सार त्वचामें हो = वांस) ॥

बहुव्रीहिसमासके अन्य उदाहरण ।

द्वितीयान्त बहुव्रीहि–प्राप्तमुदकं यं = प्राप्तोदको ग्रामः (जिसको जल प्राप्त हुआ हो वोह ग्राम) । **तृतीयान्त** बहुव्रीहि–ऊढो रथो येन = ऊढरथोऽनड्वान् (जिसने रथ उठाया हो वोह वृष) । **चतुर्थ्यन्त** बहुव्रीहि–उपहृतः पशुः यस्मै = उपहृतपशू रुद्रः (सू० ११३१। ११३२) (जिनके लिये पशु समर्पण किया हो वोह महादेव) । **पञ्चम्यन्त** बहुव्रीहि–उद्धृतं ओदनं यस्याः = उध्दृतौदना स्थाली (जिससे भात निकाल लिया हो वोह थाली) । **षष्ठ्यन्त** बहुव्रीहि–पीतं अम्बरं यस्य = पीताम्बरो हरिः (जिनके वस्त्र पीले हों वोह श्रीकृष्ण) । **सप्तम्यन्त** बहुव्रीहि–वीरः पुरुषकः यस्मिन् = वीरपुरुषको ग्रामः (जिसमें वीरपुरुष हों वोह ग्राम) ॥

१०५३ (प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः ॥

ऐसा कहना उचित है कि–प्रआदि (सू० ४५) से परे धातुज (धातुसे उत्पन्न हुआ शब्द) विकल्प करके समस्यमान हो, और समासपक्षमें विकल्पसे उत्तरपदका लोप हो। प्रपतितं पर्णं यस्मात् = प्रपर्णः, प्रपतितपर्णः (जिसके पत्ते गिर गये हों)। इस उदाहरणमें उत्तरपद ' पतित ' का विकल्पसे लोप हुआ है यहां ' प्र ' से परे ' पतित ' शब्दके समास करनेका यह अभिप्राय है कि–' पतित ' शब्दभी उत्तरपद कहाया, अन्यथा लोप नहीं होता ॥

१०५४ (नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः) ॥

यह कहना चाहिये कि नञ् (सू० १०२५) से परे विद्यमानता-

वाचक शब्द विकल्प करके समस्यमान हों, और समासपक्षमें विकल्पसे उत्तरपदका लोप होय। अविद्यमानः पुत्रो यस्य = अपुत्रः, अविद्यमानपुत्रः (जिसका पुत्र विद्यमान न हो)। यहां उत्तरपद 'विद्यमान' शब्दका विकल्पसे लोप हुआ है॥

१०५५ स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु। ६। ३। ३४॥

उक्तपुंस्कादनूङ् ऊङोऽभावो यत्र तथाभूतस्य स्त्रीवाचकस्येव रूपं स्यात्समानाधिकरणे स्त्रीलिङ्गे उत्तरपदे न तु पूरण्यां प्रियादौ च परतः॥

जिस समासमें समानाधिकरण स्त्रीलिंग उत्तरपद हो और उसका पूर्वपद भाषितपुंस्क स्त्रीलिंग हो तथा तिसके परे ऊङ् (सू० १४०३) प्रत्यय न हो तो पुंवाचककी समानरूप हो जिस गणके आदिमें प्रियाशब्द हो तिसका कोई शब्द उत्तरपद परे हो तो नहीं। यथा—चित्राः गावो यस्य = चित्रा+गो। इस उदाहरणमें उत्तरपद 'गो' शब्द स्त्रीलिंगवाचक है, और तिसके समानाधिकरण (सदृश विभक्तिवाला) 'चित्रा' शब्द है तिसका पुंवाचककी सदृश रूप (चित्र) होगा। चित्र+गो (सू० १०३२। २७८) चित्रगु (जिसकी विचित्र गौ हो)। ऐसेही रूपवती भार्या यस्य = रूपवद्भार्यः (जिसकी स्त्री सुन्दर हो)॥

अनङ् किम्? वामोरूभार्यः॥

ऊङ् प्रत्यय परे न हो ऐसा कहनेसे—वामोरूभार्यः (जिसकी स्त्रीकी जंघा सुन्दर हो) यहां ऊकार दीर्घ हुआ है, और पुंवद्भाव नहीं हुआ क्योंकि—यहां ऊङ् (सू० १४०७) प्रत्यय होता है॥

कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणां ताः = कल्याणी+पञ्चमी॥

१०५६ अप्पूरणीप्रमाण्योः। ५। ४। ११६॥

पूरणार्थप्रत्ययान्तं यत्स्त्रीलिङ्गं तदन्तात्प्रमाण्यन्ताच्च बहुव्रीहेरप्स्यात्॥

जिसके अन्तमें पूरणार्थ प्रत्ययान्त स्त्रीलिंग हो अथवा प्रमाणी-

शब्द हो तिस बहुव्रीहि (सू० १०४९) से अप् प्रत्यय हो। कल्याणीपञ्चमाः रात्रयः (जिन रात्रियोंकी पांचमी रात्रि मंगलदायक हो)। इस उदाहरणमें ' पञ्चमी ' शब्द पूरणार्थ प्रत्ययान्त स्त्रीलिंग है, इस कारण ' कल्याणी ' शब्दमें पुंवद्भाव नहीं हुआ। स्त्री प्रमाणी यस्य = स्त्रीप्रमाणः (जिसकू स्त्री प्रमाण हो)॥

अप्रियादिषु किम् ? कल्याणीप्रियः ॥

उक्त सूत्र-(सू० १०५५) में प्रिया-आदि गणपठित शब्दका निषेध करनेसे–कल्याणी प्रिया यस्य सः = कल्याणीप्रियः (जिसकी स्त्री मंगलदायक हो)। इस उदाहरणमें ' प्रिया ' शब्द परे रहते ' कल्याणी ' शब्दको पुंवद्भाव न हुआ ॥

१०५७ बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात्षच् । ५ । ४ । ११३ ॥

स्वाङ्गवाचिसक्थ्यक्ष्यन्ताद्बहुव्रीहेः षच् स्यात् ॥

जिसके अन्तमें सचेतन शरीरके अवयववाचक सक्थि (जंघा), अक्षि (आंख) इनमेंसे कोई शब्द हो तिस बहुव्रीहिसे परे षच्(अ) प्रत्यय हो। दीर्घसक्थः (जिसकी लंबी जंघा हो)। जलजाक्षी (सू० १३७३) (जिसके नेत्र कमलकी समान हो) ॥

स्वाङ्गात्किम् ? दीर्घसक्थि शकटम् । स्थूलाक्षा वेणुयष्टिः । " अक्ष्णोऽदर्शनात् " इत्यत्र वक्ष्यमाणोऽच् ॥

स्वांगवाची सचेतन सक्थि और अक्षिमें षच्का विधान करनेसे दीर्घसक्थि शकटम (लम्बी फडोंवाला छकडा) और–स्थूलाक्षा वेणुयष्टिः (लम्बी आंख (गांठ) वाली वांसकी लाठी) इन उदाहरणोंमें षच् नहीं हुआ। पिछले हरणमें वक्ष्यमाण सू० १०७९ से अच्-प्रत्यय हुआ है ॥

१०५८ द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः । ५ । ४ । ११५ ॥

आभ्यां मूर्ध्नः षः स्याद्बहुव्रीहौ ॥

बहुव्रीहि-समासमें द्वि (दो) और त्रि (तीन) शब्दसे परे जो मूर्धन्-शब्द तिससे परे ष (अ) प्रत्यय हो। द्विमूर्धः (सू० ९९३)

(जिसके दो मस्तक हों = दुमुही सर्प)। त्रिमूर्धः (जिसके तीन मस्तक हों, त्रिशिरा-राक्षस) ॥

१०५९ अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः। ५। ४। ११७॥

आभ्यां लोम्नोऽप् स्याद्बहुव्रीहौ ॥

बहुव्रीहि-समासमें अन्तर और बहिससे परे जो लोमन-शब्द तिससे परे अप (अ) प्रत्यय हो। अन्तर् लोमन अ (सू० ९०३) अन्तर्लोमः (जिसके रोम भीतर हों)। बहिर्लोमः (जिसके रोम बाहर हों) ॥ व्याघ्रस्येव पादावस्य = व्याघ्र पद ॥

१०६० पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः। ५। ४। १३८॥

हस्त्यादिवर्जितादुपमानात्परस्य पादशब्दस्य लोपः स्याद्बहुव्रीहौ ॥

बहुव्रीहि-समासमें हस्ति-आदि शब्दोंको छोडकर उपमानसे परे जो पाद शब्द तिसका लोप हो। व्याघ्र पात = व्याघ्रपात (सू० २५) (जिसके चरण बघेराके चरणोंकी तुल्य हों) ॥

अहस्त्यादिभ्य किम् ? हस्तिपादः। कुशूलपादः ॥

हस्ति-आदि शब्दोंको छोडकर कहनेसे—हस्ति पादः = हस्तिपादः (जिसके पग हाथीके पदकी समान हों)। कुशूलपादः (जिसके पद कुठलेके तुल्य हों) ॥ द्वौ पादौ यस्य = द्वि पाद ॥

१०६१ संख्यासुपूर्वस्य। ५। ४। १४०॥

पादस्य लोपः स्यात्समासान्तो बहुव्रीहौ ॥

बहुव्रीहिसमासमें जिसके पहिले संख्यावाचक शब्द हों अथवा जिसके पहिले सु हो तिस समासान्त पाद-शब्दका लोप हो। द्विपात (जिसके दो चरण हों)। सुपात् (जिसके सुन्दर चरण हों) ॥

१०६२ उद्विभ्यां काकुदस्य। ५। ४। १४८॥

आभ्यां परस्य लोपः स्यात् ॥

उत और वि-से परे जो काकुद-(तालुवा) शब्द तिसका लोप हो। उत+काकुद = उत्काकुत (जिसका तालुआ ऊंचा हो)। विकाकुत (जिसका तालुआ बिगडा हो) ॥

१०६३ पूर्णाद्विभाषा । ५ । ४ । १४९ ॥

पूर्ण-शब्दसे परे काकुद-शब्दके अन्तका लोप (सू० १०६२) विकल्प करके हो । पूर्णकाकुत्, पूर्णकाकुदः (जिसका तालुवा पूर्ण हो)॥

१०६४ सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः । ५ । ४ । १५० ॥

सुदुर्भ्यां परस्य हृदयस्य हृद्भावो निपात्यते ॥

सु और दुर् से परे हृदय-शब्दका हृद्रूप निपातन किया जाता है, अर्थात्–सुहृद् (मित्र), दुर्हृद् (अमित्र) शब्द मित्र और अमित्र वाचक निपातन किये जाते हैं । जैसे–सु+हृदय+सु (सू० १०६४। २००) सुहृत् (मित्र) । दुर्+हृदय+सु = दुर्हृत (शत्रु) ॥

१०६५ उरःप्रभृतिभ्यः कप् । ५ । ४ । १५१ ॥

समासान्त उरस्-आदि गणपठित शब्दसे परे कप् (क) प्रत्यय हो । व्यूढ+उर (:) स्+क ॥

१०६६ कस्कादिषु च । ८ । ३ । ४८ ॥

एष्विण उत्तरस्य विसर्गस्य षोऽन्यस्य तु सः ॥

कस्कादि-गणमें इण्-प्रत्याहारसे परे जो विसर्ग तिनको ष हो, और अन्यविसर्ग (जो इण्-से परे न हो तिस) को स हो । व्यूढोरस्कः (जिसकी चौडी छाती हो) । प्रिय+सर्पि (:) स्+कः = प्रियसर्पिष्कः (जिसको घृत प्रिय हो) ॥

१०६७ निष्ठा । २ । २ । ३६ ॥

निष्ठान्तं बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात् ॥

जिस शब्दके अन्तमें निष्ठा-(सू० ८८०) संज्ञक प्रत्यय हो वोह शब्द बहुव्रीहि समासमें पूर्व (पहले) होय । युक्तयोगः (जो योगाभ्यासमें युक्त हो) ॥

१०६८ शेषाद्विभाषा । ५ । ४ । १५४ ॥

अनुक्तसमासान्ताद्बहुव्रीहेः कब्वा स्यात् ॥

जिस समाससे परें समासान्तका विधान नहीं किया हो तिस

बहुव्रीहिसे परे विकल्प करके कप् (क) प्रत्यय हो । महा+यशस्+क = महायशस्कः, महायशाः (जिसका बडा यश हो) ॥

॥ बहुव्रीहिसमासः समाप्तः ॥

अथ द्वन्द्वसमासः ।

१०६९ चार्थे द्वन्द्वः । २ । २ । २९ ॥

अनेकं सुबन्तं चार्थे वर्त्तमानं वा समस्यते स द्वन्द्वः । समुच्चयान्वाचयेतरेतरयोगसमाहाराश्चार्थाः । तत्र 'ईश्वरं गुरुं च भजस्व' इति परस्परनिरपेक्षस्यानेकस्यैकस्मिन्नन्वयः समुच्चयः । 'भिक्षामट गां चानय' इति अन्यतरस्यानुषङ्गिकत्वेनान्वयोऽन्वाचयः । अनयोरसामर्थ्यात्समासो न । 'धवखदिरौ छिन्धि' इति मिलितानामन्वय इतरेतरयोगः । 'संज्ञापरिभाषम्' इति । समूहः समाहारः ॥

चकारके अर्थमें वर्त्तमान जो अनेक सुबन्त वे विकल्प करके समस्यमान हों, और वोह समास द्वन्द्वसंज्ञक हो । च-कारके चार अर्थ हैं, समुच्चय १, अन्वाचय २, इतरेतरयोग ३, समाहार ४ इन्हीं चार अर्थोंमें चकार आता है । अनेक पदार्थ जो परस्पर निरपेक्ष (आकांक्षारहित) हों तिनका एक-पदार्थमें जो अन्वय (सम्बन्ध) तिसको समुच्चय कहते हैं, जैसे-ईश्वरं गुरुं च भजस्व (ईश्वर और गुरुको भज) इस उदाहरणमें 'ईश्वर' और 'गुरु' परस्पर निरपेक्ष हैं, और 'भजस्व' इस एकही क्रियामें अन्वय है ॥ एक पदार्थका मुख्य और अन्यका अमुख्य अन्वय जो किसी दूसरे पदार्थमें हो उस अन्वयको अन्वाचय कहते हैं, जैसे-भिक्षामट गां चानय (भिक्षाको जाओ और गौको लाओ) इस उदाहरणमें 'भिक्षा' का मुख्य अन्वय है और 'गाय' का अमुख्य अन्वय है । समुच्चय और अन्वाचयमें समास नहीं होता, कारण कि शब्दोंका आपसमें सुधा २ सम्बन्ध (सू० ९७६) नहीं है । दो शब्दोंके सहितरूप संबंधको इतरेतरयोग कहते हैं, जैसे-धवश्च खदिरश्च = धवखदिरौ

छिन्धि (धव और खैरकू काट) इस उदाहरणमें दोनोंका साथ काटनाही सहितरूप संबन्ध है ॥ अनेक पदार्थोंके समुदायको समाहार कहते हैं, जैसे–संज्ञा च परिभाषा च = संज्ञापरिभाषम (संज्ञा और परिभाषाका समुदाय) ॥ दन्तानां राजा = दन्त+राजा ॥

१०७० राजदन्तादिषु परम् । २ । २ । ३१ ॥

एषु पूर्वप्रयोगार्हं परं स्यात् ॥

राजदन्तादिगणमें जिसका प्रयोग पहले (सू० ९८३) होना चाहिये तिसका पर (पीछे) प्रयोग होय । राजदन्तः (दांतोंका राजा) । इस उदाहरणमें दन्त-शब्दका प्रयोग पहिले (सू० १००६) न हुआ ॥

१०७१ (धर्मादिष्वनियमः) ॥

जिस गणके आदिमें धर्म-शब्द हो तिसमें पूर्व प्रयोग (सू० १०७०) का नियम नहीं है । जैसे–अर्थधर्मौ, धर्मार्थौ (अर्थ और धर्म) इत्यादि ॥

१०७२ द्वन्द्वे घि । २ । २ । ३२ ॥

द्वन्द्वे घिसंज्ञं पूर्वं स्यात् ॥

द्वन्द्व-(सू० १०६९) समासमें घिसंज्ञक (सू० १९१) शब्दका पूर्वप्रयोग होय । हरिश्च हरश्च = हरिहरौ (विष्णु और महादेव) ॥

१०७३ अजाद्यदन्तम् । २ । २ । ३३ ॥

इदं द्वन्द्वे पूर्वं स्यात् ॥

जिस शब्दके आदिमें अच् और अन्तमें ह्रस्व अकार हो उसकाभी द्वन्द्व (सू० १०६९) समासमें पूर्व प्रयोग हो । ईशश्च कृष्णश्च = ईशकृष्णौ (शिव और कृष्ण) ॥

१०७४ अल्पाच्तरम् । २ । २ । ३४ ॥

जिस शब्दमें अल्प (थोडे) अच् हों उसकाभी द्वन्द्व (सू०

१०६९) समासमें पूर्वप्रयोग हो । शिवश्च केशवश्च = शिवकेशवौ (शिव और केशव) ॥

१०७५ पिता मात्रा । १ । २ । ७० ॥

मात्रा सहोक्तौ पिता वा शिष्यते ॥

समासमें मातृ-शब्दके साथ प्रयोग किया हुआ पितृ शब्द विकल्प करके शेष रहे । माता च पिता च = पितरौ, मातापितरौ (माता और पिता) ॥

१०७६ द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् । २ । ४ । २ ॥

एषां द्वन्द्व एकवत्स्यात् ॥

प्राणी (जीव), तूर्य (बाजा), सेना (फौज) इनके अवयववाचक शब्दोंका द्वन्द्वसमास एकवचनान्तकी तुल्य होय । पाणिपादम् (हाथ और पैर) । मार्दङ्गिकपाणविकम् (मृदङ्ग और ढोल बजानेवाला) । रथिकाश्वारोहम् (रथ और अश्वका चढनेवाला) ॥

१०७७ द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात्समाहारे । ५ । ४ । १०६ ॥

चवर्गान्ताद्दषहान्ताच्च द्वन्द्वाट्टच् स्यात्समाहारे ॥

चवर्गान्त तथा द-ष-ह यह जिसके अन्तमें हो तिस द्वन्द्व-(सू० १०६९) समासमें परे टच् (अ) प्रत्यय हो समाहारमें । वाक् च त्वक् च = वाक्त्वक् + अ + अम् = वाक्त्वचम् (वाणी और त्वचाका समुदाय) । त्वक्स्रजम् (वकले और मालाका समुदाय) । शमीदृषदम् (शमी और पाषानका समुदाय) । वाक्त्विषम् (वाणी और कान्तिका समुदाय) । छत्रोपानहम् (छाते और जूतेका समुदाय) ॥

समाहारे किम् ? प्रावृट्शरदौ ॥

समाहारमें टच्का विधान करनेसे प्रावृट्शरदौ (वर्षा ऋतु और शरद् ऋतु) यहां टच् न हुआ क्योंकि—यहां समाहार (समुदाय) नहीं है ॥

॥ इति द्वन्द्वसमासः समाप्तः ॥

अथ समासान्तप्रकरणम्।

१०७८ ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे। ५। ४। ७४॥

ऋगाद्यन्तस्य समासस्य अप्रत्ययोऽन्तावयवः, अक्षे या धूस्तदन्तस्य न॥

ऋच् (वैदिक ऋचा), पुर् (नगर), अप् (जल), धुर् (भार), पथिन् (मार्ग) यह शब्द जिस समासके अन्तमें हों तिस (समास) का अन्तअवयव अ-प्रत्यय हो, परन्तु-जहां अक्ष (धुरी) में धुर् शब्द हो तिसका अन्तावयव अ-प्रत्यय न होय। अर्ध+ऋच्+अ= अर्धर्चः (ऋचाका आधा)। विष्णु+पुर्+अ+(अम्)=विष्णुपुरम् (विष्णुलोक)। विमल+आप्+अ=विमलापं-सरः (निर्मल जल-वाला सरोवर)। राज+धुर्+अ (सू० १३६६) राजधुरा (राजा-संबंधी भार)। धुरीवाचक धुर-के उदाहरण, यथा-अक्ष+धुर्+सु (सू० २०० । ६६५ । ११३) अक्षधूः (पहियेकी धुरी)। दृढ+धुर्+सु=दृढधूः-अक्षः (पुष्ट धुरीवाला पहिया)। सखि+पथिन्+अ (सू० ९९३) सखिपथः-देशः (जिस देशका मार्ग मित्र हो)। रम्य+पथिन्+अ (सू० ९९३) रम्यपथो देशः (रमणीक मार्ग-वाला देश)॥

१०७९. अक्ष्णोऽदर्शनात्। ५। ४। ७६॥

अचक्षुःपर्यायादक्ष्णोऽच् स्यात्समासान्तः॥

अचक्षुके पर्यायवाची अर्थात्-जो चक्षु (नेत्र) का पर्याय-(प्रतिशब्द) वाची न हो ऐसे अक्षि-शब्दसे समासान्त अच् (अ) प्रत्यय हो। गवामक्षीव=गो+अक्षिन्+अ (सू० ६० । ९९३) गवाक्षः (गायोंकी आंखोंके सदृश झरोखा)। इस उदाहरणमें 'अ-क्षिन्' शब्द 'चक्षु' वाची नहीं है, अतएव अचक्षु पर्याय माना जाता है॥

१०८० उपसर्गादध्वनः। ५। ४। ८५॥

उपसर्ग (सू० ४५) से परे जो अध्वन्-शब्द तिससे परे समासान्त अच् (अ) प्रत्यय होय । प्रगतोऽध्वानम् = प्र+अध्वन्+अ (सू० १९३) प्राध्वो रथः (मार्गको पहुँचा हुआ रथ) ॥

१०८१ न पूजनात् । ५ । ४ । ६९ ॥

पूजनार्थात्परेभ्य समासान्ता न स्युः ॥

स्तुति-अर्थवाचक शब्दोंसे परे जो शब्द तिनसे परे समासान्तरूप प्रत्यय (सू० १०४२) न होय । परन्तु-॥

१०८२ (स्वतिभ्यामेव) ॥

उक्त निषेध सु और अति उपसर्गहीसे परे लगता है । जैसे-सु+राजन्+सु (सू०२०० । १९८ । २०१) सुराजा (भला राजा) । अतिराजा (सर्वोत्कृष्ट राजा) ॥

॥ समासान्तप्रकरणं समाप्तम् ॥

अथ तद्धिताः ।

१०८३ समर्थानां प्रथमाद्वा । ४ । १ । ८२ ॥

इद पदत्रयमधिक्रियते, प्राग्दिशो इति यावत् ॥

इस सूत्रके तीनों पदोंका सू० १३०७ तक अधिकार है ॥ जिन शब्दोंमें एकार्थीभावकी विवक्षा हो उनमेंसे सूत्रोक्त शब्द-बोध्य जो अर्थ तद्वाचक शब्दसे परे तद्धित प्रत्यय विकल्पसे हो । इस सूत्रमें 'समर्थ' पद लिखनेका यह अभिप्राय है कि-जिस पदमें सन्धि तथा समासकार्य आदि संभव हों, वे पहिले हो जाय, तदनन्तर तद्धित प्रत्यय हो ॥

१०८४ अश्वपत्यादिभ्यश्च । ४ । १ । ८४ ॥

एभ्योऽण् स्यात्प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु ॥

अश्वपति आदि गणपठित शब्दोंसे परे अष्टाध्यायीके क्रमसे सू० १०८३ से पहिलेके तिन २ प्रत्ययोंके अर्थमें अण (अ) प्रत्यय हो।

अश्वपति+अ (सू० १०१४ । २६२) आश्वपतम् (अश्वपति राजाकी सन्तान) इत्यादि । गणपति+अ = गाणपतम् (गणेशजीका सन्तान आदिक) ॥

१०८५ दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः । ४।१।८५ ॥

दित्यादिभ्यः पत्युत्तरपदाच्च प्राग्दीव्यतीयेऽर्थेषु ण्यः स्यात् । अणोऽपवादः ॥

दिति, अदिति, आदित्य और जिसके अन्तमें पति-शब्द हो ऐसे शब्दोंसे परे प्राग्दीव्यति आदि अर्थोंमें ण्य (य) प्रत्यय होय । यह सूत्र अण्-(सू० १०८४) का अपवाद है । दितेरपत्यम् = दिति+य (सू० १०१४ । २६२) दैत्यः (दितिका सन्तान आदि) । अदितेरादित्यस्य वा = अदिति+य (सू० १०१४।२६२) आदित्यः (अदितिका सन्तान आदि) । आदित्य+य ॥

१०८६ हलो यमां यमि लोपः । ८ । ४ । ६४ ॥

हलः परस्य यमो लोपः स्याद्यमि ॥

हल्-प्रत्याहारसे परे जो यम्-प्रत्याहार तिसका लोप हो, यम परे रहते । आदित्+य = आदित्यः (आदित्यकी सन्तान आदि)। प्रजापति+अ (सू० १०१४ । २६२) प्राजापत्य (प्रजापतिका सन्तान आदि) ॥

१०८७ (देवाद्यञञौ) ॥

देव-शब्दसे परे यञ् (य) तथा अञ् (अ) प्रत्यय हो । देव+य (सू० १०१४ । २६२) दैव्यम् , दैवम् (सू० २६२) (देवसे उत्पन्न हुआ इत्यादि) ॥

१०८८ (बहिषष्टिलोपो यञ्च) ॥

बहिष्-शब्दकी टि (सू० ४२) का लोप हो और यञ् (य) प्रत्यय हो । बहिष्+य (सू० १०१४ । १०८८) बाह्यः (जो बाहर हो) ॥

१०८९ (ईकक् च) ॥

बहिष्-शब्दसे ईकक् (ईक) प्रत्यय हो और टि-(सू० ४९) का लोप हो । बह्+ईक ॥

१०९० किति च । ७ । २ । ११८ ॥

किति तद्धिते चाचामादेरचो वृद्धिः स्यात् ॥

कित्-तद्धित प्रत्यय परे रहते आदि-अचको वृद्धि हो । बाहीकः (जो बाहर हो) ॥

१०९१ (गोरजादिप्रसंगे यत्) ॥

गो-शब्दसे जहां अजादि-प्रत्यय प्राप्त हो तहां उन्हें बाधकर यत् (य) प्रत्यय हो । गो+य (सू० २०) गव्यम् (जो गामें उत्पन्न हो इत्यादि) ॥

१०९२ उत्सादिभ्योऽञ् । ४ । १ । ८६ ॥

उत्सादिगण-पठित शब्दोंसे परे अञ् (अ) प्रत्यय होय । उत्स+अ (सू० १०१४ । २६२) औत्सः (उत्सकी सन्तान आदि)॥

॥ इत्यपत्याद्यविकारान्तार्थाः प्रत्ययाः ॥

सन्तान (सू० १०९४) आदि अर्थोंसे लेकर विकार (सू० १२१५) अर्थ पर्यन्त अर्थोंमें होनेवाले प्रत्यय समाप्त हुए ॥

१०९३ स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् । ४ । १ । ८७ ॥

धान्यानां भवन इत्यतः प्रागर्थेषु स्त्रीपुंसाभ्यां क्रमान्नञ्स्नञौ स्तः ॥

इस सूत्रसे लेकर सू० ११२६ के पहिले जितने अर्थोंमें प्रत्यय होते हैं उन्हीं अर्थोंमें स्त्री और पुंस् शब्दसे परे क्रमसे नञ् (न) और स्नञ् (स्न) प्रत्यय हो । स्त्री+न (सू० १०१४ । २६२) स्त्रैणः (स्त्रियोंमें जो होय इत्यादि) । पुंस्+स्न (सू० १०१४ । २८) पौंस्नः (पुरुषोंमें जो हो इत्यादि) ।

१०९४ तस्यापत्यम् । ४ । १ । ९२ ॥

षष्ठ्यन्तात्कृतसन्धेः समर्थादपत्येऽर्थे उक्ता वक्ष्यमाणाश्च प्रत्यया वा स्युः ॥

जिस षष्ठ्यन्तपदमें सन्धि हुई हो और वोह तद्धित-प्रत्ययके अर्थके साथ एकार्थीभावसे मिल सके उससे परे उक्त (कहे गये) और वक्ष्यमाण (जो कहे जाँयगे) प्रत्यय अपत्य-अर्थमें विकल्प करके हों । उपगोरपत्यम् = उपगु+अ (सू० १०८४) ॥

१०९५ ओर्गुणः । ६ । ४ । १४६ ॥

उवर्णान्तस्य भस्य गुणस्तद्धिते ॥

उवर्णान्त भ-संज्ञक (सू० १८६) को गुण हो तद्धित-प्रत्यय परे रहने । उपगो+अ (सू० १०९४ । २७) औपगवः (उपगुऋषिका सन्तान) । आश्वपतः (सू० १०९४ । २६२) (अश्वपतिका सन्तान) । दैत्यः (दितिका सन्तान) । औत्सः (उत्सका सन्तान) । स्त्रैणः (स्त्रीका सन्तान) । पौंस्नः (पुरुषका सन्तान) ॥

१०९६ अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम् । ४ । १ । १६२ ॥

अपत्यत्वेन विवक्षितं पौत्रादि गोत्रसंज्ञं स्यात् ॥

सन्तानत्वरूपसे वक्ताको इष्ट जो पौत्र-आदि सो गोत्र-संज्ञक हों । इसका फल—॥

१०९७ एको गोत्रे । ४ । १ । ९३ ॥

गोत्रे एक एवापत्यप्रत्ययः स्यात् ॥

गोत्र-संज्ञक (सू० १०९६) में एकही अपत्य-(सन्तान) अर्थक प्रत्यय होय । उपगोर्गोत्रापत्यम् = औपगवः (उपगुका पौत्र वा प्रपौत्र आदि सन्तान) ॥

१०९८ गर्गादिभ्यो यञ् । ४ । १ । १०५ ॥

गोत्रापत्ये ॥

गोत्र-(सू० १०९६) रूप सन्तान-अर्थमें गर्गादि गणपठित शब्दोंसे परे यञ् (य) प्रत्यय होय । गर्गस्य गोत्रापत्यम् = गर्ग+य (सू० १०९४ । २६२) गार्ग्यः (गर्गका पौत्र वा प्रपौत्रादि सन्तान) । वात्स्यः (वत्सका पौत्र वा प्रपौत्रादि सन्तान) ॥

१०९९ यञञोश्च । २ । ४ । ६४ ॥

गोत्रे यद्यञन्तमञन्तं च तदवयवयोरेतयोर्लुक् स्यात्तत्कृते बहुत्वे न तु स्त्रियाम् ॥

गोत्र-(सू० १०९६) रूप सन्तान-अर्थमें जो यञन्त और अञन्त शब्द तिनके अवयव यञ् (सू० १०९८) और अञ् (सू० १०९२) का लुक् (लोप) हो यदि तन्निमित्तक बहुवचन हो तो, परन्तु—गोत्र-प्रत्ययान्त यदि स्त्रीलिंग हो तो नहीं । गर्गाः (गर्गके पौत्र वा प्रपौत्रादि सन्तान) । वत्साः (वत्सके पौत्र वा प्रपौत्रादि सन्तान) ॥

११०० जीवति तु वंश्ये युवा । ४ । १ । १६३ ॥

वंश्ये पित्रादौ जीवति पौत्रादेर्यदपत्यं चतुर्थादि तद्युवसंज्ञमेव स्यात्, न तु गोत्रसंज्ञम् ॥

पिता वा पितामह अथवा प्रपितामह इनके जीवित रहते चतुर्थ श्रेणी (पीढी) अर्थात्—प्रपौत्र आदि सन्तानकी युवन-संज्ञा हो गोत्र (सू० १०९६) संज्ञा नहीं ॥

११०१ गोत्राद्यून्यस्त्रियाम् । ४ । १ । ९४ ॥

यून्यपत्ये गोत्रप्रत्ययान्तादेव प्रत्ययः स्यात् स्त्रियां तु न युवसंज्ञा ॥

यदि युवन (सू० ११००) संज्ञक सन्तान अर्थ प्रत्यय करना हो तो प्रथम गोत्र-(सू० १०९६) रूप सन्तान-अर्थमें प्रत्यय हो जाय, तब उन्हीं पदोंमें युवनरूप सन्तान-अर्थमें प्रत्यय होय परन्तु—स्त्रीलिंगमें युवन संज्ञा न होय ॥

११०२ यञिञोश्च । ४ । १ । १०१ ॥

गोत्रे यौ यञिञौ तदन्तात्फक् स्यात् ॥

गोत्र (सू० १०९६) रूप सन्तान-अर्थमें जो यञन्त तथा इञन्त शब्द तिनसे पर युवन-(सू० ११००) रूप सन्तान-अर्थमें फक् (फ)

१ यहां 'गार्ग्य' रूप होता परन्तु इसका लोप होनेसे तात्पर्य ... गार्ग्य न ... ॥

प्रत्यय होय । गर्गस्य युवापत्यम् = गार्ग्य+फ (सू० १०९८) ॥

११०३ आयनेयीनीयियः फढखच्छघां प्रत्ययादीनाम् । ७ । १ । २ ॥

प्रत्ययादेः फस्य-आयन्, ढस्य-एय् खस्य-ईन् छस्य-ईय्, घस्य-इय्, एते स्युः ॥

प्रत्ययकी आदिके फ-कू-आयन्, ढ-कू-एय्, ख-कू-ईन्, छ-कू-ईय्, घ-कू-इय् यह आदेश क्रमसे हों। गार्ग्य+आयन्+अ (सू० १५८। २६२) गार्ग्यायणः (गर्गका प्रपौत्र आदि सन्तान) । दाक्षायणः (दक्षका प्रपौत्र आदि सन्तान) ॥

११०४ अत इञ् । ४ । १ । ९५ ॥

अपत्येऽर्थे ॥

अकारान्तसे परे अपत्य-(सन्तान) अर्थमें इञ् (इ) प्रत्यय हो । दक्ष+इ (सू० १०१४ । २६२) दाक्षिः (दक्षका सन्तान) ॥

११०५ बाह्वादिभ्यश्च । ४ । १ । ९६ ॥

बाहु-आदि गणपठित शब्दोंसे परभी इञ् (इ) प्रत्यय होय । बाहु+इ (सू० १०१४ । १०९१ । २७) बाहविः (बाहुका सन्तान)। उडुलोमन्+इ (सू० १०१४ । १९३) आडुलोमिः (उडुलोमाका सन्तान) ॥

११०६ (लोम्नोऽपत्येषु बहुष्वकारो वक्तव्यः) ॥

लोमन्-शब्दकू बहुवचनमें अकार आदेश हो, यदि अपत्य-अर्थ होय तो । उडुलोमाः (उडुलोमाके सन्तान) ॥

११०७ अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ् । ४ । १ । १०४ ॥

येत्वत्रानृषयस्तेभ्योऽपत्येऽन्यत्र तु गोत्रेऽञ् स्यात् ॥

विदादिगणपठित जो शब्द ऋषिवाचक न हों तिनसे परे अव्यवहित सन्तानरूप अर्थमें अञ् (अ) प्रत्यय हो, और जो विदादिगणपठित ऋषिवाचक शब्द हैं तिनसे परे गोत्र-(सू० १००६)

रूप सन्तान-अर्थमें अञ् (अ) प्रत्यय होय । विदस्य गोत्रम = विद्+अ (सू० १०१४ । २६२) वैदः (विद ऋषिका गोत्र) । वैदौ (विद ऋषिके गोत्र) । विदाः (सू० १०२९) (विदऋषिके गोत्र) । पुत्रस्यापत्यम = पुत्र + अ (सू० १०१४ । २६२) पौत्रः (पुत्रका सन्तान पोता) । पौत्रौ (पुत्रके सन्तान) । पौत्राः (पुत्रके सन्तान) ॥ एवं दौहित्रादयः ॥ इसीप्रकार दौहित्र-(पुत्रीका सन्तान) आदि शब्दोंकू जानो ॥

११०८ शिवादिभ्योऽण् । ४ । १ । ११२ ॥

अपत्ये ॥

शिवादिगण-पठित शब्दोंसे परे अपत्य (सन्तान) अर्थमें अण (अ) प्रत्यय होय । शिव + अ (सू० १०१४ । २६२) शैवः (शिवका सन्तान) । गङ्गा अ (सू० १०१४ । २६२) गाङ्गः (गंगाका सन्तान) ॥

११०९. ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च । ४ । १ । ११४ ॥

ऋषिभ्यः वासिष्ठः वैश्वामित्रः । अन्धकेभ्यः श्वाफल्कः । वृष्णिभ्यः वासुदेवः । कुरुभ्यः नाकुलः साहदेवः ॥

ऋषि, अन्धक वंशसंबंधी व्यक्ति, वृष्णि वंशसंबंधी व्यक्ति, कुरु वंशसंबंधी व्यक्ति इनके नामसे परे अण् (अ) प्रत्यय होय । ऋषियोंके नामसे परे-वसिष्ठ + अ (सू० १०१४ । २६२) वासिष्ठः (वसिष्ठका सन्तान) । विश्वामित्र अ (सू० १०१४ । २६२) वैश्वामित्रः (विश्वामित्रका सन्तान) । अन्धक वंशसंबंधी व्यक्तिके नामसे परे-श्वफल्क अ (सू० १०१४ । २६२) श्वाफल्कः (श्वफल्कका सन्तान) । वृष्णिवंश संबंधी व्यक्तिसे वसुदेव + अ = वासुदेवः (वसुदेवका सन्तान) । कुरुवंशसंबंधी व्यक्तिके नामसे-नकुल + अ (सू० १०१४ । २६२) नाकुलः (नकुलका सन्तान) । साहदेवः (सहदेवका सन्तान) ॥

११११० मातुरुत्संख्यासंभद्रपूर्वायाः । ४ । १ । ११५ ॥

संख्यादिपूर्वस्य मातृशब्दस्य उदादेशः स्यादण्प्रत्ययश्च ॥

जिसके पहिले संख्यावाचक शब्द हो वा सम् पहिले हो अथवा भद्र पहिले हो ऐसे मातृ-शब्दकू उकार आदेश और अण् (अ) प्रत्यय हो । द्वि+मातृ = (सू० ११९०।३५) द्वि+मातुर्+अ (सू० १०१४) द्वैमातुरः (जिसकी दो माता हों = गणेशजी) । षाण्मातुरः (जिसकी छः माता हों = कार्त्तिकेय) । सांमातुरः (जिसकी भली माता हो) । भाद्रमातुरः (जिसकी कल्याणी माता हो) ॥

११११ स्त्रीभ्यो ढक् । ४ । १ । १२० ॥

स्त्रीप्रत्ययान्तेभ्यो ढक् स्यात् ॥

स्त्रीप्रत्ययान्त (सू० १३६६) से परे सन्तान अर्थमें ढक् (ढ) प्रत्यय होय । विनता+ढ (सू० ११०३ । १०१४ । २६२) वैनतेयः (विनताका सन्तान = गरुड) ॥

१११२ कन्यायाः कनीन च । ४ । १ । ११६ ॥

चादण् । कानीनो व्यासः कर्णश्च ॥

सन्तान-अर्थमें कन्या-शब्दको कनीन आदेश हो और चकारसे अण् हो । कन्या = कानीन+अ (सू० १०१४ । २६२) कानीनः (अनव्याही स्त्रीका सन्तान = कर्ण और व्यास) ॥

१११३ राजश्वशुराद्यत् । ४ । १ । १३७ ॥

राजन् और श्वशुर शब्दसे पर सन्तान-अर्थमें यत् (य) प्रत्यय होय । परन्तु-॥

१११४ (राज्ञो जातावेवेति वाच्यम्)॥

राजन्-शब्दसे पर जातिकी प्रतीति होय तो यत् (सू० १११३) प्रत्यय होय ऐसा कहना चाहिये । राजन्+य (सू० ११३) ॥

१११५ ये चाभावकर्मणोः । ६ । ४ । १६८ ॥

यादौ तद्धिते परेऽन् प्रकृत्या स्यान्न तु भावकर्मणोः ॥

यकारादि तद्धित प्रत्यय पर रहते शब्दके अन्तका अवयव जो अन् सो स्वाभाविक रहे, परन्तु–भाव तथा कर्म-अर्थमें नहीं। राजन्यः (क्षत्रिय) ॥

जाताविवेति किम् ? ॥

उक्त सू० (११४ मे यह क्यों कहा कि–जातिकी प्रतीतिमें हो यदि यह न कहते तो–॥

१११६ अन् । ६ । ४ । १६७ ॥

अन् प्रकृत्या स्यादणि परे ॥

अण प्रत्यय परे रहते शब्दके अन्तका अवयव अन् प्रकृतिमें रहे। राजन्+अ = राजनः (राजाका सन्तान)। जो विवाहिता स्त्रीमें उत्पन्न न हो। श्वशुर+य (सू० १११३) श्वशुर्यः (श्वशुरका सन्तान) ॥

१११७ क्षत्राद् घः । ४ । १ । १३८ ॥

क्षत्र शब्दसे पर सन्तान-अर्थमें घ प्रत्यय होय। यहभी जातिमें होता है। क्षत्र+घ (सू० ११०३) क्षत्र+इय् (सू० २६२) क्षत्रियः (जो क्षत्री जातिका हो)। अन्यत्र क्षात्रिः (सू० ११०४। १०१४। २६२) (क्षत्रीसे उत्पन्न हुआ विजातीय स्त्रीका सन्तान)॥

१११८ रेवत्यादिभ्यष्ठक् । ४ । १ । १४६ ॥

रेवती आदि गणपठित शब्दोंसे परे अपत्य-अर्थमें ठक् (ठ) प्रत्यय होय। रेवती+ठ ॥

१११९ ठस्येकः । ७ । ३ । ५० ॥

अङ्गात्परस्य ठस्येकादेशः ॥

अङ्गसे परे जो ठ तिसे इक आदेश हो। रेवती+इक+अ (सू० १०१४। २६२) रैवतिकः (रेवतीका सन्तान) ॥

११२० जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ् । ४ । १ । १६८ ॥

जनपदक्षत्रिययोर्वाचकाच्छब्दादञ् स्यादपत्ये ॥

देशवाची शब्द यदि क्षत्रियवाचक हो तौ उससे परे सन्तान-अर्थमें अञ् (अ) प्रत्यय होय । पञ्चाल+अ (सू० १०१४।२६२) पाञ्चालः (पंचालदेशीय क्षत्रियका सन्तान) ॥

११२१ (क्षत्रियसमानशब्दाज्जनपदात्तस्य राजन्यपत्यवत्)॥

क्षत्रियवाची शब्द यदि देशवाचक हो तौ उससे परे तिसका राजा इस अर्थमें अपत्यवत् अर्थात् जैसे प्रत्यय अपत्य-अर्थमें होते हैं वैसे प्रत्यय हों । पञ्चालानां राजा=पञ्चाल+अ–पाञ्चालः (पंचाल देशका राजा) ॥

११२२ (पूरोरण् वक्तव्यः) ॥

पूरु-शब्दसे परे अण् (अ) प्रत्यय हो अपत्य-अर्थमें, तथा पूरु-देशका राजा इस अर्थमें । पूरु+अ (सू० १०१४ । १०९५।२७) पौरवः (पुरुका सन्तान वा पुरुदेशका राजा) ॥

११२३ (पाण्डोर्ड्यण्) ॥

पाण्डुशब्दसे परे अपत्य वा राजावाचक अर्थमें ड्यण् (य) प्रत्यय होय । पाण्डु+य (सू० २६९) पाण्ड्यः (पाण्डुका सन्तान वा पाण्डुदेशका राजा) ॥

११२४ कुरुनादिभ्यो ण्यः । ४ । १ । १७२ ॥

कुरु-शब्दसे परे तथा नकारादि शब्दोंसे परे ण्य (य) प्रत्यय हो, अपत्य वा राजा-अर्थमें । कुरु+य (सू० १०१४।१०९५।२९) कौरव्यः (कुरुका सन्तान वा कुरुदेशका राजा) । निषध+य (सू० १०१४ । २६२) नैषध्यः (निषधका सन्तान वा निषधदेशका राजा) ॥

११२५ ते तद्राजाः । ४ । १ । १७४ ॥

अञादयस्तद्राजसज्ञाः स्युः ॥

अञ्-आदि (सू० ११२०) प्रत्ययोंकी तद्राज संज्ञा हो ॥

११२६ तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम् । २ । ४ । ६२॥

बहुत्वार्थेषु तद्राजस्य लुक् तदर्थकृते बहुत्वे न तु स्त्रियाम् ॥

बहुत्व-अर्थकी प्रतीति होय तो तद्राज-संज्ञक (सू० ११२५) प्रत्ययका लुक् (लोप) हो, परन्तु स्त्रीलिंगमें लोप न होय । इक्ष्वाकु+अ+जस् (सू० ११२० । ११२६ । ७८० । २७) इक्ष्वाकवः (इक्ष्वाकु देशके क्षत्रियके सन्तान वा इक्ष्वाकु देशके राजे) । पञ्चाल+अ+जस = पञ्चालाः (पंचाल देशके राजे वा पंचाल देशके क्षत्रियके सन्तान) ॥

११२७ कम्बोजाल्लुक् । ४ । १ । १७५ ॥

अस्मात्तद्राजस्य लुक् ॥

कम्बोज-शब्दसे परे तद्राज (सू० ११२५) संज्ञक प्रत्ययका लोप हो । कम्बोज+अ (सू० ११२०) = कम्बोजः (कम्बोजदेशके राजाका सन्तान वा कम्बोजदेशका राजा) ॥

११२८ (कम्बोजादिभ्य इति वक्तव्यम्) ॥

ऐसा कहना चाहिये कि कम्बोजसे परे और कम्बोजकी सदृश शब्दोंसे परे तद्राज (सू० ११२५) का लुक् होय । चोलः (चोल देशका राजा) । शकः (शक देशका राजा) । केरलः (केरल देशका राजा) । यवनः (यवनदेशका राजा) ॥

॥ इत्यपत्याधिकारः समाप्तः ॥

अथ चातुरर्थिकाः ।

११२९ तेन रक्तं रागात् । ४ । २ । १ ॥

अण् स्यात् ॥

रंग वाचक तृतीयान्त शब्दसे परे रंगा गया इस अर्थमें अण् (अ) प्रत्यय होय । कषायेण रक्तं = कषाय अ (सू० १०४४ । २६२) काषायं वस्त्रम् (गेरूसे रंगा गया वस्त्र) ॥

११३० नक्षत्रेण युक्तः कालः । ४ । २ । ३ ॥

अण् स्यात् ॥

नक्षत्रवाची तृतीयान्त-शब्दसे परे युक्त-अर्थमें अण् (अ) प्रत्यय हो, युक्तपदार्थ यदि कालपदार्थ होवे । पुष्येण युक्तं = पुष्य+अ ॥

११३१ (तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि यलोप इति वाच्यम्) ॥

नक्षत्रवाचक जो तिष्य तथा तिष्यका पर्याय जो पुष्य-शब्द तिनके यका लोप हो, अण् परे रहते । पुष्+अ (सू० १०१४) पौषं-अहः (पुष्यनक्षत्रयुक्त दिन) ॥

११३२ लुबविशेषे । ४ । २ । ४ ॥

पूर्वेण विहितस्य लुप्स्यात्षष्टिदण्डात्मकस्य कालस्यावान्तरविषयश्चेन्न गम्यते ॥

पूर्व सूत्र (सू० ११३०) मे विहित अण्-का लुप् (सू० २११) होय यदि साठ दंडरूपी कालके अन्तर्गत अवयवकी अतिशय प्रतीति न होय तो । अद्य+पुष्य+अ (सू० ११३०।११३२) अद्य पुष्यः (आज पुष्य नक्षत्र है) । यहां अद्य कहनेसे रात्रि वा दिनका विशेष ज्ञान नहीं होता ॥

११३३ दृष्टं साम । ४ । २ । ७ ॥

तेनेत्येव ॥

देखा गया इस अर्थमें तृतीयान्तसे परे अण् (अ) प्रत्यय होय यदि देखा हुआ पदार्थ सामवेद हो तो । वसिष्ठेन दृष्टं साम = वसिष्ठ+अ (सू० १०१४।२६२) वासिष्ठं साम (वसिष्ठ मुनि करके देखा गया सामवेद) ॥

११३४ वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ । ४ । २ । ९ ॥

देखा गया इस अर्थमें तृतीयान्त वामदेव-शब्दसे परे ड्यत् (य) और ड्य (य) प्रत्यय हों यदि दृष्टवस्तु सामवेद हो तो । वामदेवेन दृष्टं साम = वाम+य (सू० २६२) वामदेव्यम् (वामदेव मुनि करके देखा गया सामवेद) ॥

११३५ परिवृतो रथः । ४ । २ । १७ ॥

अस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति ॥

परिवृत-(लपेटा गया) अर्थमें तृतीयान्तसे परे अण् (अ) प्रत्यय होता है, यदि परिवृत पदार्थ रथ होय तो । वस्त्रेण परिवृतो रथः = वस्त्र+अ (मू० १०१४ । २६२) वास्त्रः (वस्त्रसे लपेटा गया रथ) ॥

११३६ तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः । ४ । २ । १४ ॥

उध्दृत-(औरमेंसे निकाल उसमें धरा) अर्थमें पात्रवाचक सप्तम्यन्तसे परे अण् (अ) प्रत्यय होता है । शरावे उध्दृतः ओदनः = शराव +अ (मू० १०१४।२६२) शारावः (सरइयामें धरा गया भात)॥

११३७ संस्कृतं भक्षाः । ४ । २ । १६ ॥

सप्तम्यन्तादण् स्यात्संस्कृतेऽर्थे यत्संस्कृतं भक्षाश्चेत्ते स्युः ॥

संस्कृत- (संस्कार) अर्थमें सप्तम्यन्तसे परे अण् (अ) प्रत्यय हो, यदि संस्कार होनेवाला पदार्थ भक्षण करनेके योग्य हो तो । भ्राष्ट्रेषु संस्कृता भक्षाः = भ्राष्ट्र+अ (मू० १०१४ । २६२) भ्राष्ट्राः (भाडमें संस्कार हुए गट्टे) ॥

११३८ साऽस्य देवता । ४ । २ । २४ ॥

वोह इसका देवता है इस अर्थमें देवतावाचक प्रथमान्तसे परे अण् (अ) प्रत्यय होय । इन्द्रो देवता अस्य इति = इन्द्र+अ (मू० १०१४।२६२) ऐन्द्रं हविः (जिसके इन्द्र देवता हो वोह हवि)। पशुपति+अ (मू०१०१४।२६२) पाशुपतम् (महादेवजीकी हवि) । बृहस्पति+अ (मू० १०१४।२६२) बार्हस्पत्यम् (बृहस्पति देवताकी हवि) ॥

११३९ शुक्राद्घन् । ४ । २ । २६ ॥

वोह इसका देवता है इस अर्थमें प्रथमान्त शुक्रशब्दसे परे घन् (घ) प्रत्यय होय । शुक्र+घ (मू० ११०३) शुक्र+इय्+अ (मू० २६२) शुक्रियं (शुक्रदेवताकी जो हवि) ॥

११४० सोमाट्ट्यण् । ४ । २ । ३० ॥

वोह इसका देवता है इस अर्थमें प्रथमान्त सोम-शब्दसे परे ट्यण् (य) प्रत्यय होय । सोम+य (सू० १०१४ । २६२) सौम्यम् (चन्द्रमा जिसके देवता हो वोह हवि) ॥

११४१ वाय्वृतुपित्रुषसो यत् । ४ । २ । ३१ ॥

वोह इसका देवता है इस अर्थमें प्रथमान्त वायु, ऋतु, पितृ और उषस् इन शब्दोंसे परे यत् (य) प्रत्यय होय । वायु+य (सू० १०९५ । २९) वायव्यम (वायु देवताकी जो हवि) । ऋतव्यम् (ऋतु देवताकी जो हवि) । पितृ+य ॥

११४२ रीङ् ऋतः । ७ । ४ । २७ ॥

अकृद्यकारे असार्वधातुके यकारे च्वौ च परे ऋदन्ताङ्गस्य रीङादेशः ॥

कृत् (सू० ३३२) भिन्न यकार तथा सार्वधातुक (सू०४३२) से भिन्न यकार परे रहे तो अथवा च्वि (सू० १३५५) परे रहते ऋकारान्त अंगकू रीङ् (री) आदेश हो । पित्री+य (सू०२६२) पित्र्यम (पितररूप देवताकी जो हवि) । उषस्यम् (प्रातःकालरूप देवताकी जो हवि) ॥

११४३ पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः।४।२।३६ ॥

एते निपात्यन्ते ॥

पितृव्य[1] (चचा), मातुल[2] (मामा), मातामह[3] (नाना), पितामह (दादा) यह शब्द निपातन किये जाते हैं ॥

११४४ तस्य समूहः । ४ । २ । ३७ ॥

१ पितुर्भ्रातरि व्यत्=पिताका भाई इस अर्थमें पितृशब्दसे परे व्यत् (व्य) प्रत्यय होता है । पितृ+व्य=पितृव्यः । २ मातुर्डुलच्=माताका भाई इस अर्थमें मातृशब्दसे परे डुलच् (उल) प्रत्यय होय । मातृ+उल (सू० २८९) मातुल । ३ मातृपितृभ्यां पितरि डामहच्=माता और पिताके पिता इस अर्थमें मातृ और पितृशब्दसे परे डामहच् (आमह) प्रत्यय होय । मातृ+आमह (सू० २६९) मातामहः । पितृ+आमह=पितामहः । यह सिद्धान्तकौमुदीका आशय है ।

समूह-अर्थमें षष्ठ्यन्तसे परे अण् (अ) प्रत्यय होय । काकानां समूहः = काक+अ (सू० १०१४।२६२) काकम् (काकोंका समूह)॥

११४५ भिक्षादिभ्योऽण् । ४ । २ । ३८ ॥

समूह-अर्थमें भिक्षा आदि षष्ठ्यन्त शब्दोंसे परे अण् (अ) प्रत्यय होय । भिक्षाणां समूहः = भिक्षा+अ (सू० १०१४ । २६२) भैक्षम् (भिक्षाका समूह) । गर्भिणी+अ (सू० १८६) ॥

' इह भस्याढे तद्धित इति पुंवद्भावे कृते ' ॥

ढकारभिन्न तद्धित प्रत्यय परे रहते पूर्व भसंज्ञकको पुंवद्भाव हो, इसके अनुसार पुंवद्भाव करने पर–। गर्भिन्+अ । यहां टि-लोप (सू० ९९३) की प्राप्ति होनेपर ॥

११४६ इनण्यनपत्ये । ६ । ४ । १६४ ॥

अनपत्यार्थेऽणि परे इन् प्रकृत्या स्यात् ॥

सन्तान-अर्थभिन्न अण प्रत्यय परे रहते जो इन् सो प्रकृतिसे (जैसा हो वैसाही) रहे । गार्भिणम् (सू० १०१४) (गर्भवती स्त्रियोंका समूह) । युवती+अ = यौवतम् (युवतियोंका समूह) ॥

११४७ ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् । ४ । ३ । ४३॥

तलन्तं स्त्रियाम् ॥

ग्राम (गांव), जन (लोक), बन्धु (भ्राता) इन शब्दोंसे परे समूह-अर्थमें तल् (त) प्रत्यय हो । तल्-प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिंगमें होते है । ग्राम+त (सू० १३६६) ग्रामता (ग्रामोंका समूह) । जनता (लोकोंका समूह) । बन्धुता (भ्राताओंका समूह) ॥

११४८ (गजसहायाभ्यां चेति वक्तव्यम्) ॥

ऐसा कहना चाहिये कि–गज (हाथी) और सहाय (सहायक) इन शब्दोंसेभी परे समूह-अर्थमें तल् (सू० ११४७) प्रत्यय होय । गजता (हाथियोंका समूह) । सहायता (सहायकोंका समूह) ॥

११४९ (अह्नः खः क्रतौ) ॥

समूह-अर्थमें षष्ठयन्त अहन्-शब्दसे परे ख प्रत्यय होय, प्रकृति-प्रत्ययके समूहसे यज्ञ-वाचक हो तौ। अहन्+ख (सू० ११०३) अहन्+ईन्+अ (सू० ९९३) अहीनः (जो यज्ञ अनेक दिनोंसे साध्य हो) ॥

११५० अचित्तहस्तिधेनोष्ठक् । ४ । २ । ४७ ॥

अचित्त (अचेतन), हस्ति (हाथी), धेनु (गौ), षष्ठयन्त इन शब्दोंसे परे समूह-अर्थमें ठक् (ठ) प्रत्यय हो । सक्तु+ठ ॥

११५१ इसुसुक्तान्तात्कः । ७ । ३ । ५१ ॥

इस् उस् उक् तान्तात्परस्य ठस्य कः ॥

इस् प्रत्यय जिसके अन्तमें हो वा उस् प्रत्यय जिसके अन्तमें हो अथवा उक् प्रत्याहार जिसके अन्तमें हो तथा तकार जिसके अन्तम हो तिनसे परे जो ठकार तिसे क-आदेश हो । सक्तु+क (सू० १०१४) साक्तुकम् (सत्तुओंका समूह) । हास्तिकम् (हाथियोंका समूह) । धैनुकम् (गायोंका समूह) ॥

११५२ तदधीते तद्वेद । ४ । २ । ५९ ॥

वोह पढता है तथा वोह जानता है इन अर्थोंमें द्वितीयान्तसे परे अण् (अ) आदि प्रत्यय हों । व्याकरणमधीते वेद वा = व्याकरण+अ । इस अवस्थामें वृद्धि (सू० १०१४) की प्राप्ति हुई, परन्तु-॥

११५३ न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच् । ७ । ३ । ३ ॥

पदान्ताभ्यां यकारवकाराभ्यां परस्य न वृद्धिः, किन्तु-ताभ्यां पूर्वौ क्रमादैजागमौ स्तः ॥

पदान्तके यकार तथा वकारसे परे अच्-कू वृद्धि न होय, किन्तु उन यकार वकारसे पहिले ऐ और औ आगम क्रमसे हों । व्+ऐ+या+करण+अ = वैयाकरणः (व्याकरणका पढनेवाला या उसका जाननेवाला) ॥

११५४ क्रमादिभ्यो वुन् । ४ । २ । ६१ ॥

वोह पढता है तथा वोह जानता है इन अर्थोंमें क्रमादि गणान्तर्गत शब्दोंसे परे वुन् (वु) प्रत्यय होय । क्रम+वु (सू० २६२ । ८५०) क्रमकः (वैदिक द्वितीय विकृतिका जाननेवाला) । पदकः (वैदिक प्रथम विकृतिका जाननेवाला) । शिक्षकः (वैदिक षडंगोंमेंसे शिक्षाका जाननेवाला) । मीमांसकः (मीमांसा शास्त्रका जाननेवाला) ॥

११५५ तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि । ४ । २ । ६७ ॥

जिस प्रथमान्त-शब्दका अस्ति-(है) क्रियाके साथ समानाधिकरण हो तिससे परे अस्मिन् (इसमें) के अर्थमें अण्-आदिक प्रत्यय हों, यदि सिद्ध होनेवाला शब्द तन्नामक देशवाची हो तौ । उदुम्बराः सन्त्यस्मिन्देशे = उदुम्बर+अ (सू० १०१४ । २६२) औदुम्बरो देशः (जिसमें गूलरके वृक्ष हों वोह देश) ॥

११५६ तेन निर्वृत्तम् । ४ । २ । ६८ ॥

बनाया गया इस अर्थमें तृतीयान्तसे परे अण-आदि प्रत्यय होंय कुशाम्बेन निर्वृत्ता नगरी = कुशाम्ब+अ (सू० १०१४ । २६२) कौशाम्बी (सू० १३६६) (कुशाम्बराजा द्वारा बनायी गयी नगरी) ॥

११५७ तस्य निवासः । ४ । २ । ६९ ॥

षष्ठ्यन्त-शब्दसे परे निवास अर्थमें अण्-आदि प्रत्यय हों । शिबीनां निवासः देशः = शिबि+अ (सू० १०१४ । २६२) शैब (शिबि नाम क्षत्रियोंके रहनेका देश) ॥

११५८ अदूरभवश्च । ४ । २ । ७२ ॥

षष्ठ्यन्त-शब्दसे परे अदूर-(निकट) अर्थमें अण्-आदि प्रत्यय हों, सिद्ध होनेवाला शब्द यदि देशवाचक होय तौ । विदिशाया अदूरभवं नगरं = विदिशा+अ (सू० १०१४ । २६२) वैदिशम् (विदिशानगरीके निकटका नगर) ॥

११५९ जनपदे लुप् । ४ । २ । ८१ ॥

जनपदे वाच्ये चातुरर्थिकस्य लुप् ॥

जनपद (देश) की विवक्षा हो तौ चातुरर्थिक प्रत्ययोंका लुप् (लोप) होय । पञ्चालानां निवासो जनपदः = पञ्चाल+अ (मू० ११५७।११५९) पञ्चाल-॥

११६० लुपि युक्तवद्व्यक्तिवचने । १ । २ । ५१ ॥

लुपि सति प्रकृतिवल्लिङ्गवचने स्तः ॥

लुप् (मू० ११५९) हो जानेके अनन्तर प्रकृतिहीका लिंग और वचन हों । पञ्चालाः (पंचालवंशियोंके निवासका देश) । कुरवः (कुरुवंशवालोंके निवासका देश) । अङ्गाः (अंगवंशवालों-के निवासका देश) । वङ्गाः (बंगालियोंके निवासका देश = बंगा-ल) । कलिङ्गाः (कलिंगोंके निवासका देश) ॥

११६१ वरणादिभ्यश्च । ४ । २ । ८२ ॥

अजनपदार्थ आरम्भः ॥

वरणआदि गणपठित शब्दोंसे परे जो प्रत्यय तिनका लुप् होय । यह सूत्र देशवाचक शब्दोंसे भिन्न शब्दोंके अर्थ है । वरणानामदूरभवं नगरं-वरणाः (मू० ११६०) (जो वरणोंके निकट नगर हो) ॥

११६२ कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप् । ४ । २ । ८७ ॥

कुमुद (बबूला), नड (नरकट), वेतस (वेंत) इन शब्दोंसे परे ड्मतुप् (मतु = मत्) प्रत्यय होय । कुमुद+मत् (मू०२६९) ॥

११६३ झयः । ८ । ३ । १२ ॥

झयन्तान्मतोर्मस्य वः ॥

झयन्तसे परे मतुप् (मू० ११६२) के म-कू व होय । कुमुद्+वत् (मू० ३१८।२००।२४।१९८) कुमुद्वान् (जहां बबूले हों) । नड्वान् (जहां नरकट हों) । वेतस्+मत् ॥

११६४ मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः । ८।२।९ ॥

मवर्णावर्णान्तान्मवर्णावर्णोपधाच्च यवादिवर्जितात्परस्य मतोर्मस्य वः ॥

यवादिगणको छोडकर जिसके अन्तमें अथवा उपधामें मकार वा अकार हो तिससे परे जो मतु (सू०११६२) तिसके म-कू व होय । वेतस्वान् (जिसमें वेत हो) ॥

११६५ नडशादाड्डुलच् । ४ । २ । ८८ ॥

नड (नरकट), शाद (घास) इन शब्दोंसे परे ड्वलच् (वल) प्रत्यय होय । नड+वल (सू० २६९) नड्वलः (नरकटसे पूर्ण देश) । शाद्वलः (घासपूर्ण देश) ॥

११६६ शिखाया वलच् । ४ । २ । ८९ ॥

शिखा शब्दसे परे चार अर्थोंमें वलच् (वल) प्रत्यय होय । शिखा+वल = शिखावलः (मयूर) ॥

॥ इति चातुरर्थिकाः ॥

अथ शैषिकाः ।

११६७ शेषे । ४ । २ । ९२ ॥

अपत्यादिचतुरर्थ्यन्तादन्योऽर्थः शेषस्तत्राणादयः स्युः ॥

अपत्य-(सू० १०९४) अर्थसे लेकर सू० ११५५ पर्यन्त जो चार अर्थोंसे भिन्न अर्थ शेष कहाते हैं तिनमेंभी अण्-आदि प्रत्यय हों । जैसे—चक्षुषा गृह्यते = चक्षुष्+अ (सू० १०१४) चाक्षुषं रूपम् (जो नेत्रसे जाना जाय—रूप) । श्रावणः (सू० १०१४ । २६२) शब्दः (जो कानसे सुना जाय—शब्द) । औपनिषदः (सू० १०१४) पुरुषः (जो उपनिषदसे जाना जाय—आत्मा) । दृषदि पिष्टा दार्षदाः (सू० १०१४) सक्तवः (जो चक्कीमें पीसे जांय—सत्तु) । चतुर्भिरुह्यते = चातुरं (सू० १०१४) शकटम् (जो चारसे ढोया जाय—छकडा) । चतुर्दश्यां दृश्यते = चातुर्द-

1 सू० ११५५ । ११५६ । ११५७ । ११५८ । यह चार अर्थ हैं ।

र्शं (मू० १०१७।२६२) रक्षः (जो चौदशमें देखा जाय-राक्षस) ।

तस्य विकार इत्यतः प्राक् शेषाधिकारः ॥

इस सूत्रसे लेकर मू० १२१५ के पूर्वपर्यन्त शेष-पदका अधिकार जाता है ॥

११६८ राष्ट्रावारपाराद् घखौ । ४ । २ । ९३ ॥

आभ्यां क्रमाद् घखौ स्तः शेषे ॥

राष्ट्र (देश) और अवारपार (दोनों तट) इन शब्दोंसे परे शेष-अर्थमें क्रमसे घ और ख प्रत्यय हों । राष्ट्रे जातादिः = राष्ट्र+घ (मू० ११०३।२६२) राष्ट्रियः (जो देशमें उत्पन्न हुआ हो इत्यादि) । अवारपार+ख (मू० ११०३।२६२) अवारपारीणः (दोनों तटमें उत्पन्न हुआ आदिक) ॥

११६९ (अवारपाराद्विगृहीतादपि विपरीताच्चेति वक्तव्यम्)॥

पारीणः पारावारीणः । इह प्रकृतिविशेषाद् घादयष्टयुटयुलन्ताः प्रत्यया उच्यन्ते तेषां जातादयोऽर्थविशेषाः समर्थविभक्तयश्च वक्ष्यन्ते ॥

यह कहना चाहिये कि-अवारपार शब्दके अवयव जो अवार और पार इनका पृथक् २ भी ग्रहण करना तथा-तिनके क्रमको बदलकर अर्थात्-पूर्वको पर और परको पूर्व करकेभी ग्रहण करना चाहिये अर्थात् तौभी उनसे परे ख-प्रत्यय होय । अवार+ख (मू० ११०३।२६२) अवारीणः (इस पारका) । पार+ख = पारीणः (उस पारका) । पारावारीणः (इस पार और उस पारका) ॥ इस प्रकरणमें प्रकृतिविशेषसे परे घ (मू० ११६८) से लेकर ट्यु ट्युल् (मू० ११९०) पर्यन्त जो प्रत्यय कहे जाते हैं, तिनके जात (मू० ११९१) आदि अर्थ तथा समर्थका विभक्तियोंके साथ एकार्थीभावका वर्णन आगे करेंगे ॥

११७० ग्रामाद्यखञौ । ४ । २ । ९४ ॥

ग्राम-शब्दसे परे य तथा खञ् (ख) प्रत्यय हों। ग्राम+य (सू० २६२) ग्राम्यः, ग्राम+ख (सू० ११०३।२६२) ग्रामीणः (जो ग्राममें रहता हो) ॥

११७१ नद्यादिभ्यो ढक्। ४। २। ९७॥

नदी आदि गणपठित शब्दोंसे परे ढक् (ढ) प्रत्यय होय। नदी+ढ (सू० ११०३।१०९०।२६२) नादेयम (जो नदीमें हुआ वा जो नदीसे आया)। माहेयम (भूमिमें जो हुआ)। वाराणसेयम् (जो बनारसमें हुआ) ॥

११७२ दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक्। ४। २। ९८॥

दक्षिणा, पश्चात्, पुरस् इन शब्दोंसे परे त्यक् (त्य) प्रत्यय होय। दक्षिणा+त्य (सू० १०९०) दाक्षिणात्यः (जो दक्षिणमें उत्पन्न हुआ हो)। पाश्चात्यः (जो पश्चिममें उत्पन्न हुआ हो)। पौरस्त्यः (जो पूर्वमें उत्पन्न हुआ हो) ॥

११७३ द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत्। ४। २। १०१॥

दिव् (आकाश), प्राच् (पूर्व), अपाच् (दक्षिण), उदच् (उत्तर), प्रतीच् (पश्चिम) इन शब्दोंसे परे यत् (य) प्रत्यय होय। दिव्+य = दिव्यम (जो स्वर्गमें उत्पन्न हुआ हो)। प्राच्यम् (जो पूर्वमें उत्पन्न हुआ हो)। अपाच्यम् (जो दक्षिणमें उत्पन्न हुआ हो)। उदच्+य (सू०३८०)उदीच्यम् (जो उत्तरमें उत्पन्न हुआ हो)। प्रतीच्यम (सू० ३७९) (जो पश्चिममें उत्पन्न हुआ हो) ॥

११७४ अव्ययात्त्यप्। ४। २। १०४॥

अव्ययसे परे त्यप् (त्य) प्रत्यय होय। परन्तु-॥

११७५ (अमेहक्वतसित्रेभ्य एव) ॥

अमा, इह, क्व से और तसि (सू० १३०९) तथा त्र (सू० १३१४) जिनके अन्तावयव हों तिनसे परेही त्यप् (सू० ११७४)

प्रत्यय हो औरसे परे नहीं । अमा+त्य = अमात्यः (जो साथ रहे = मन्त्री) । इहत्यः (जो यहां हो) । क्वत्यः (जो कहां हो) । ततस्त्यः (जो तहां हो) । तत्रत्यः (जो तहां हो) ॥

११७६ (त्यब्नेर्ध्रुव इति वक्तव्यम्) ॥

नि-अव्ययसे परे ध्रुव-(स्थिर) अर्थमें त्यप् (त्य) प्रत्यय होय। नित्यः (जो सदा विद्यमान रहे) ॥

११७७ वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम् । १ । १ । ७३ ॥

यस्य समुदायस्याचा मध्ये आदिर्वृद्धिस्तद् वृद्धसञ्ज्ञम् ॥

जिस समुदायके अचोंका प्रथम अच् वृद्धि-संज्ञक होय उस समुदायकी वृद्ध संज्ञा हो ॥

११७८ त्यदादीनि च । १ । १ । ७४ ॥

वृद्धसञ्ज्ञानि स्युः ॥

त्यद्-आदिक (सू० १७१) शब्दोंकीभी वृद्ध संज्ञा होय । वृद्धसंज्ञाका फल—॥

११७९ वृद्धाच्छः । ४ । २ । ११४ ॥

वृद्ध-संज्ञक शब्दोंसे परे छ प्रत्यय होय । शाला+छ (सू०११०३। २६२) शालीयः (जो शालामें होय) । मालीयः (जो मालामें हो) । तदीयः (जो तिसमें हो) ॥

११८० (वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा वक्तव्या) ॥

नाम-वाचक शब्दकी विकल्प करके वृद्ध संज्ञा हो ऐसा कहना चाहिये । देवदत्त+छ (सू० ११०३ । २६२) देवदत्तीयः, देवदत्त+अ (सू० १०१४ । २६२) दैवदत्तः (जो देवदत्तका हो) इत्यादि ॥

११८१ गहादिभ्यश्च । ४ । २ । १३८ ॥

गह-आदि शब्दोंसे परेभी छ प्रत्यय होय । गह+छ (सू०११०३। २६२) गहीयः (जो गुहामें हो) ॥

११८२ युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च । ४ । ३ । १॥

चाच्छः । पक्षेऽण् ॥

युष्मद् और अस्मद्-शब्दसे परे खञ् (ख) प्रत्यय विकल्प करके हो । चकारसे छ-(सू० ११७९) प्रत्ययभी हो । दूसरे पक्षमें अण्-प्रत्यय हो । युष्मद्+ख । अस्मद्+ख ॥

११८३ तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ । ४ । ३ । २ ॥

युष्मदस्मदोरेतावादेशौ स्त', खञि अणि च ॥

युष्मद् और अस्मद्-शब्दकू क्रमसे युष्माक और अस्माक आदेश हो, खञ् (सू० ११८२) और अण्-प्रत्यय परे रहते । युष्माक+ख । अस्माक+ख (सू० ११०३ । १०११ । २६२) यौष्माकीणः (तुम्हारा जो हो) । आस्माकीनः (हमारा जो हो) । युष्मद्+छ । अस्मद्+छ (सू० ११०३) युष्मदीयः (जो तुम्हारा हो) । अस्मदीयः (जो हमारा हो) । युष्मद्+अ । अस्मद्+अ (सू० ११८३) युष्माक+अ । अस्माक+अ (सू० १०१४) यौष्माकः (तुम्हारा जो हो) । आस्माकः (हमारा जो हो) ॥

११८४ तवकममकावेकवचने । ४ । ३ । ३ ॥

एकार्थवाचिनोर्युष्मदस्मदोस्तवकममकौ स्त' खञि अणि च ॥

एक अर्थवाचक युष्मद् और अस्मद् शब्दोंकू तवक और ममक आदेश क्रमसे हो । तवक+ख । ममक+ख (सू० १०१४ । २६२ । ११०३) तावकीनः, तवक+अ (सू० १०१४ । २६२) तावकः (तेरा) । मामकीनः, मामकः (मेरा) । युष्मद्+छ । अस्मद्+छ । इस दशामें—॥

११८५ प्रत्ययोत्तरपदयोश्च । ७ । २ । ९८ ॥

मपर्यन्तयोरेकार्थवाचिनोस्त्वमौ स्त' प्रत्यये उत्तरपदे च परतः ॥

एकार्थ-वाची मपर्यन्त युष्मद् अस्मद् शब्दकू क्रमसे त्व और म आदेश हों यदि कोई प्रत्यय परे हो तो तथा उत्तरपद परे रहते ।

त्व+अद्+छ । म+अद्+छ (सू० ११०३।३०२) त्वदीयः(तेरा) । मदीयः (मेरा) । युष्मद्+पुत्रः । अस्मद्+पुत्रः (सू० ११८५) त्व+अद्+पुत्रः । म+अद्+पुत्रः (सू० ३०२ । ८३) त्वत्पुत्रः (तेरा पुत्र) । मत्पुत्रः (मेरा पुत्र) ॥

११८६ मध्यान्मः । ४ । ३ । ८ ॥

मध्य-शब्दसे परे म प्रत्यय होय। मध्य+म = मध्यमः (बीचका)॥

११८७ कालाट्ठञ् । ४ । ३ । ११ ॥

कालवाचिभ्यष्ठञ् स्यात् ॥

काल-वाचक शब्दोंसे परे ठञ् (ठ) प्रत्यय होय । काल+ठ (सू० १११९ । २६२ । १०१४) कालिकम् (समयका) । मासिकम् (सू० १११९ । २६२ । १०१४) (मासिक) । सांवत्सरिकम् (सू० १११९) (वार्षिक) । सायंप्रात्+ठ (सू०११८६) ॥

११८८ (अव्ययानां भमात्रे टिलोपः) ॥

केवल भसंज्ञक अव्ययोंकी टि-(सू० ४९) का लोप हो । सायंप्रात्+ठ (सू० १११९) सायंप्रातिकः (जो संध्या और प्रातःकालमें होय) । पुनः पुनर्+ठ (सू० ११८८ । १११९।१०१४) पौनःपुनिकः (जो वारंवार हो) ॥

११८९ प्रावृष एण्यः । ४ । ३ । १७ ॥

प्रावृष्-(वर्षाकाल) शब्दसे परे एण्य प्रत्यय हो । प्रावृष्+एण्य = प्रावृषेण्यः (जो वर्षाकालमें होय) ॥

११९० सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च । ४ । ३ । २३ ॥

सायमित्यादिभ्यश्चतुर्भ्योऽव्ययेभ्यश्च कालवाचिभ्यष्ट्युट्युलौ स्तस्तयोस्तुट् च ॥

सायम् (संध्या), चिरम् (बहुतकाल), प्राह्णे (दिनका पूर्वा-

र्थ), प्रगे (प्रातःकाल) इन चार शब्दोंसे परे तथा कालवाचक अव्ययोंसे परे ट्यु (यु), ट्युल् (यु) प्रत्यय हों, और उन प्रत्ययोंको तुट् (त्) आगम होय। सायम्+त्+यु (सू० ८५०) सायंतनम् (जो संध्यामें हो)। चिरंतनम् (जो बहुतकालमें हो)॥

प्राह्णेप्रगेऽनयोरेदन्तत्वं निपात्यते॥

प्राह्णे और प्रगे इन एकारान्त सिद्ध रूपोंमें एकार निपातन किया है। प्राह्णेतनम् (जो पूर्वाह्णमें उत्पन्न हो)। प्रगेतनम् (जो प्रातः-कालमें उत्पन्न हो)। दोषातनम् (जो रात्रिमें होय)॥

११९१ तत्र जातः। ४। ३। २५॥

सप्तमीसमर्थाज्जात इत्यर्थेऽणादयो घादयश्च स्युः॥

तहां उत्पन्न हुआ इस अर्थमें सप्तम्यन्त समर्थसे परे अण् आदि-क और घ आदिक प्रत्यय हों। स्रुघ्ने जातः = स्रुघ्न+अ (सू० १०१४। २६२) स्रौघ्नः (जो स्रुघ्नदेशमें उत्पन्न हो)। उत्से जातः = उत्स+अ (सू० १०१४। २६२) औत्सः (जो झरनेमें उत्पन्न हो)। राष्ट्रे जातः = राष्ट्र+घ (सू० ११६८) राष्ट्रियः (सू० ११०३) (जो किसी देशमें उत्पन्न हुआ हो)। अवारपारे जातः = अवारपार+ख (सू० ११६८) अवारपारीणः (सू० ११०३) (जो आरपारमें उत्पन्न हुआ हो) इत्यादिक॥

११९२ प्रावृषष्ठप्। ४। ३। २६॥

एण्यापवादः॥

तहां उत्पन्न हुआ इस अर्थमें प्रावृष्-शब्दसे परे ठप् (ठ) प्र-त्यय हो। यह एण्य (सू० ११८९) प्रत्ययका अपवाद है। प्रा-वृष्+ठ (सू० १११९) प्रावृषिकः (जो वर्षाऋतुमें उत्पन्न हुआ हो)॥

११९३ प्रायभवः। ४। ३। ३९॥

तत्रेत्येव॥

प्रायः होता है इस अर्थमें सप्तम्यन्तसमर्थसे परे अण्-आदि

प्रत्यय हों। स्रुघ्ने प्रायेण बाहुल्येन भवति = स्रुघ्न+अ (सू० १०१४। २६२) स्रौघ्नः (जो प्रायः स्रुघ्नदेशमें होता हो)॥

११९४ सम्भूते। ४। ३। ४१॥

संभूत-अर्थमें सप्तम्यन्तसे परे अण्-आदि प्रत्यय हों। स्रुघ्ने संभवति = स्रुघ्न+अ (सू० १०१४।२६२) स्रौघ्नः (स्रुघ्नदेशमें जिसका सम्भव हो)॥

११९५ कोशाड्ढञ्। ४। ३। ४२॥

कोश (रेशमीकीडोंके रहनेका) इस सप्तम्यन्त समर्थसे ढञ् (ढ) प्रत्यय हो। कोश+ढ (सू० ११०३। १०१४। २६२) कौशेयं वस्त्रम् (रेशमी वस्त्र)॥

११९६ तत्र भवः। ४। ३। ५४॥

तहां हो इस अर्थमें सप्तम्यन्त समर्थसे परे अण्-आदि प्रत्यय हों। स्रुघ्ने भवः = स्रुघ्न+अ (सू० १०१४। २६२) स्रौघ्नः (जो स्रुघ्नदेशमें हो)। औत्सः (जो झरनेमें हो)। राष्ट्रियः (जो किसी देशमें हो)॥

११९७ दिगादिभ्यो यत्। ४। ३। ५४॥

तहां हो इस अर्थमें दिश-आदि शब्दोंसे परे यत् (य) प्रत्यय होय। दिश्+य = दिश्यम् (जो दिशामें हो)। वर्ग+य (सू० २६२) वर्ग्यम् (जो वर्गमें हो)॥

११९८ शरीरावयवाच्च। ४। ३। ५५॥

तहां हो इस अर्थमें शरीरके अवयववाची शब्दसे परे यत् (य) प्रत्यय हो। दन्त+य (सू० २६२) दन्त्यम् (जो दांतमें हो)। कण्ठ+य = कण्ठ्यं (जो कण्ठमें हो)॥

११९९ (अध्यात्मादेष्ठञिष्यते)॥

महाभाष्यकारकी यह इच्छा है कि- ध्यात्मआदि सप्तम्यन्त

शब्दोंसे परे भव-(हों) अर्थमें ठञ् (ठ) प्रत्यय होय । अध्यात्मं भवम् = अध्यात्म+ठ (सू० ११११ । १०१४ । २६२) आध्यात्मिकम (जो आत्मामें हो) ॥ अधिदेव+ठ । इस दशामें-॥

१२०० अनुशतिकादीनाञ्च । ७ । ३ । २० ॥

एषामुभयपदवृद्धिर्ञिति णिति किति च ॥

अनुशतिक आदि शब्दोंके पूर्व तथा उत्तर इन दोनों पदोंके आदि अच्को वृद्धि हो, ञित् वा णित और कित प्रत्यय परे रहते । आधिदेव+ठ (सू० ११११ । २६२) आधिदैविकम (जो देवमें हो) । अधिभूत+ठ = आधिभौतिकम (जो पंचभूतमें हो) । इहलोक+ठ = ऐहलौकिकम (जो इस लोकमें हो) । परलोक+ठ = पारलौकिकम (जो परलोकमें हो) ॥ आकृतिगणोऽयम ॥ यह आकृतिगण है ॥

१२०१ जिह्वामूलांगुलेश्छः । ४ । ३ । ६२ ॥

तहां हो इस अर्थमें जिह्वामूल और अंगुलि इन सप्तम्यन्त-शब्दोंसे परे छ प्रत्यय हो । जिह्वामूल+छ (सू० ११०३ । २६२) जिह्वामूलीयम (जो जिह्वाके मूलमें हो) । अंगुलीयम (जो अंगुलीमें हो)॥

१२०२ वर्गान्ताच्च । ४ । ३ । ६३ ॥

जिसके अन्तमें वर्ग-शब्द हो ऐसे सप्तम्यन्तसमर्थसे परे तहां हो इस अर्थमें छ प्रत्यय हो । कवर्ग+छ (सू० ११०३ । २६२) कवर्गीयम (जो कवर्गमें हो) ॥

१२०३ तत आगतः । ४ । ३ । ७४ ॥

तहांसे आया इस अर्थमें पञ्चम्यन्त समर्थसे परे अण आदि प्रत्यय हो । स्रुघ्नादागतः = स्रुघ्न+अ (सू० १०९४ । २६२) स्रौघ्नः (जो स्रुघ्नदेशसे आया हो) ॥

१२०४ ठगायस्थानेभ्यः । ४ । ३ । ७५ ॥

तहांसे आया इस अर्थमें राजाके कर लेनेके स्थानके वाचक पंच-

म्यन्त शब्दोंसे परे ठक् (ठ) प्रत्यय होय। शुल्कशालाया आगतः = शुल्कशाला+ठ (सू० ११११ । २६२ । १०९०) शौल्कशालिकः (शुल्कशाला (चुंगीकी मडइया) से जो आया हो) ॥

१२०५ विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ् । ४ । ३ । ७७ ॥

तहांसे आया इस अर्थमें विद्यासंबंधवाची और योनि संबंधवाची पंचम्यन्त शब्दोंसे परे वुञ् (वु) प्रत्यय हो । उपाध्याय+वु (सू० ८५० । १०१४ । २६२) औपाध्यायकः (जो उपाध्यायसे आया हो) । पितामह+वु = पैतामहकः (जो पितामहसे आया हो) ॥

१२०६ हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः । ४ । ३ । ८१ ॥

तहांसे आया इस अर्थमें हेतु वाचक तथा मनुष्यवाचक शब्दोंसे परे विकल्प करके रूप्य प्रत्यय हो । दूसरे पक्षमें छ (सू० ११८१) प्रत्यय हो । समादागतम् = सम+रूप्य = समरूप्यम्, सम+छ (सू० ११०३ । २६२) समीयम् (तुल्यहेतुसे जो आया हो) । देवदत्त+रूप्य = देवदत्तरूप्यम्, देवदत्त+अ (सू० १०१४ । २६२) दैवदत्तम् (देवदत्तसे जो आया हो ॥

१२०७ मयट् च । ४ । ३ । ८२ ॥

तहांसे आया इस अर्थमें हेतुवाचक और मनुष्यवाचक शब्दोंसे परे विकल्पसे मयट् (मय) प्रत्यय होय । सम+मय = सममयम् (समानहेतुसे जो आया हो) । देवदत्त+मय = देवदत्तमयम् (देवदत्तसे जो आया हो) ॥

१२०८ प्रभवति । ४ । ३ । ८३ ॥

प्रकाशित होता है इस अर्थमें पंचम्यन्त समर्थसे परे अण्-आदि प्रत्यय हो । हिमवतः प्रभवति = हिमवत+अ (सू० १०१४) हैमवती (सू० १३६८) गङ्गा (जो हिमालयपर्वतसे प्रकाशित हो= गंगाजी) ॥

१२०९ तद्गच्छति पथिदूतयोः । ४ । ३ । ८५ ॥

तहांको जाता है इस अर्थमें द्वितीयान्त-शब्दसे परे अण्-आदि प्रत्यय हों, यदि वोह जानेवाला दूत वा मार्ग हो तौ । स्रुघ्नं गच्छति = स्रुघ्न+अ (सू० १०१४।२६२) स्रौघ्नः-पन्था दूतो वा (दूत वा मार्ग जो स्रुघ्नदेशकू जाता हो) ॥

१२१० अभिनिष्क्रामति द्वारम् । ४ । ३ । ८६ ॥

सन्मुख निकलता है इस अर्थमें द्वितीयान्त शब्दसे परे अण्-आदि प्रत्यय हो, यदि सन्मुख निकलनेवाला द्वार-वाचक हो तौ । स्रुघ्नमभिनिष्क्रामति = स्रुघ्न+अ = स्रौघ्नं कान्यकुब्जद्वारम् (स्रुघ्नदेशके सन्मुख जो निकलता है = कान्यकुब्जका द्वार) ॥

१२११ अधिकृत्य कृते ग्रन्थे । ४ । ३ । ८७ ॥

किसी विषयका प्रसंग करके किया इस अर्थमे द्वितीयान्तशब्दसे परे अण्-आदि प्रत्यय हों, जो किया जाय वोह यदि ग्रन्थवाचक होय तौ । शारीरकमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः = शारीरक+छ (सू० ११०३।२६२) शारीरकीय. (आत्मविषयक प्रसंग करके निर्मित ग्रंथ) ॥

१२१२ सोऽस्य निवासः । ४ । ३ । ८९ ॥

इसका निवासस्थान इस अर्थमे प्रथमान्तसे परे अण् आदि प्रत्यय हों । स्रुघ्नो निवासोऽस्य = स्रुघ्न+अ = स्रौघ्नः (जिसका निवासस्थान स्रुघ्नदेश हो) ॥

१२१३ तेन प्रोक्तम् । ४ । ३ । १०१ ॥

कहा गया इस अर्थमें तृतीयान्तसे परे अण्-आदि प्रत्यय हो । पाणिनिना प्रोक्तम् = पाणिनि+छ (सू० ११०३।२६२) पाणिनीयम् (पाणिनिमुनि करके कहा गया) ॥

१२१४ तस्येदम् । ४ । ३ । १२० ॥

तिसका यह है इस अर्थमें षष्ठ्यन्तसे परे अण्-आदिक प्रत्यय

र्हो । उपगोरिदम् = उपगु+अ (सू० १०१४।१०९५।२७) औप-गवम् (जो उपगुका हो) ॥

॥ इति शैषिकाः ॥

अथ विकारार्थकाः ।

१२१५ तस्य विकारः । ४ । ३ । १३४ ॥

विकार-अर्थमें षष्ठयन्त-शब्दसे परे अण्-आदि प्रत्यय होंय । अश्मनो विकारः = अश्मन+अ ॥

१२१६ (अश्मनो विकारे टिलोपो वक्तव्यः) ॥

अश्मन्-(पाषाण) शब्दकी टिका लोप होय, विकारार्थक प्रत्यय परे रहते । अश्म+अ (सू० १०१४) आश्मः (पाषाणका विकार) । भस्मन+अ (सू० ९९३।१२१६) भास्मनः (भस्मका विकार) । मृत्तिका+अ (सू० १०१४ । २६२) मार्त्तिकः (मट्टीका विकार) ॥

१२१७ अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः । ४।३। १३५ ॥

चाद्विकारे ॥

प्राणी, ओषधि और वृक्षवाचक षष्ठयन्त शब्दोंसे परे अवयव-अर्थमें अण-आदि प्रत्यय हो । चकार कहनेका यह अभिप्राय है कि-विकार-अर्थमेंभी हो । मयूरस्यावयवो विकारो वा = मयूर+अ (सू० १०१४।२६२) मायूरः (मोरका अवयव वा विकार) । मूर्वायाः काण्डं भस्म वा = मूर्वा+अ (सू० १०१४।२६२) मौर्वम् (मूर्वालताका काण्ड वा भस्म) । पिप्पल+अ = पैप्पलम् (पीपलका अवयव वा विकार) ॥

1 प्रकृतिके रूपान्तरको विकार कहते हैं, यथा—दूधका विकार दही होता है ।

2 फल पकी जानेपर जिसका नाश हो जाता है वो ओषधि कहाता है, जैसे—गेहूं पकनेपर डाल नष्ट हो जाती है ।

१२१८ मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः।४।३।१४३॥

प्रकृतिमात्रान्मयड्वा स्याद्विकारावयवयोः ॥

वैदिकग्रन्थोंसे भिन्न ग्रन्थोंमें प्रातिपदिकमात्रसे परे विकार और अवयव-अर्थमें मयट् (मय) प्रत्यय विकल्प करके हो, परन्तु—विकार और अवयव यदि भोजन और वस्त्रवाचक न हों तो । अश्मन+मय (सू० १२१६) अश्ममयम , अश्मन+अ (सू० १०१४) आश्मनम् (पत्थरका विकार वा अवयव) ॥

अभक्ष्येत्यादि किम ? मौद्गः—सूपः । कार्पासम्—आच्छादनम् ॥

भोजन और वस्त्र-वाचक न हो ऐसा कहनेसे—मुद्ग+अ (सू० १०१४ । २६२) मौद्गः (मूंगका विकार—मूंगकी दाल) । कर्पास+अ = कार्पासम (कपासका विकार—वस्त्र) ॥

१२१९ नित्यं वृद्धशरादिभ्यः । ४ । ३ । १४४ ॥

वृद्ध-संज्ञक (सू० ११७७) और शर-आदि शब्दोंसे परे विकार और अवयव-अर्थमें मयट् (मय) प्रत्यय नित्य होय । आम्र+मय = आम्रमयम (आमका विकार वा अवयव) ॥

१२२० गोश्च पुरीषे । ४ । ३ । १४५ ॥

गोबर-अर्थमें गो-शब्दसे परे मयट् (मय) प्रत्यय होय । गोः पुरीषम् = गो+मय = गोमयम (गौका गोबर) ॥

१२२१ गोपयसोर्यत् । ४ । ३ । १६० ॥

विकार-अर्थमें गो और पयस् (दूध) शब्दोंसे परे यत् (य) प्रत्यय होय । गो+य (सू० २९) गव्यम (गौका विकार) । पयस्+य = पयस्यम (दूधका विकार) ॥

॥ इति प्राग्दीव्यतीयाः ॥

अथ ठगधिकारः ।

१२२२ प्राग्वहतेष्ठक् । ४ । ४ । १ ॥

तद्वहतीत्यतः प्राक् ठगधिक्रियते ॥

इस सूत्रसे लेकर सू० १२३८ के प्रथमपर्यन्त ठक् प्रत्ययका अधिकार किया जाता है ॥

१२२३ तेन दीव्यति खनति जयति जितम् ।४।४।२॥

खेलता है, खोदता है, जीतता है, जीता गया इन अर्थोंमें तृतीयान्त-शब्दसे परे ठक् (ठ) प्रत्यय होय । अक्षैर्दीव्यति, खनति, जयति, जितं वा = अक्ष+ठ (सू० १११२ । १०९० । २६२) आक्षिकः (पासोंसे खेलता है, खोदता है, जीतता है वा जो वस्तु जीती गयी) ॥

१२२४ संस्कृतम् । ४ । ४ । ३ ॥

संस्कार किया गया इस अर्थमें तृतीयान्त समर्थसे परे ठक् (ठ) प्रत्यय होय । दध्ना संस्कृतम् = दधिन्+ठ (सू० १११० । १०९० । २६३) दाधिकम् (जिसका दहीसे संस्कार किया गया हो) । मारीचिकम् (जिसका मरिचसे संस्कार किया गया हो) ॥

१२२५ तरति । ४ । ४ । ५ ॥

पार जाता है इस अर्थमें तृतीयान्त-शब्दसे परे ठक् (ठ) प्रत्यय होय । उडुपेन तरति = उडुप+ठ (सू० १११२ । १०९०) औडुपिकः (चबूतरे करके जो पार जाता है) ॥

१२२६ चरति । ४ । ४ । ८ ॥

[illegible] ॥

तृतीयान्त-शब्दसे निमकरके जाता है वा खाता है इन अर्थोंमें परे ठक् (ठ) प्रत्यय होय । हस्तिना चरति = हस्तिन्+ठ (सू० १११० । १०९० । २६३) हास्तिकः (हाथी करके जो जाता हो) । दध्ना भक्षयति = दाधिकः (सू० १११० । १०९० । २६३) (दही करके जो खाता हो) ॥

१२२७ संसृष्टे । ४ । ४ । २२ ॥

मिलाया गया इस अर्थमें तृतीयान्तसे परे ठक् (ठ) प्रत्यय होय। दध्ना संसृष्टम् = दाधिकम (दही करके मिलाया गया)॥

१२२८ उञ्छति। ४। ४। ३२॥

वीनता है इस अर्थमें द्वितीयान्तसे परे ठक् (ठ) प्रत्यय होय। बदराणि उञ्छति = बदर+ठ (सू० १११९।१०९०।२६२) बादरिकः (जो बेर वीनता है)॥

१२२९ रक्षति। ४। ४। ३३॥

रक्षा करता है इस अर्थमें द्वितीयान्त-शब्दसे परे ठक् (ठ) प्रत्यय होय। समाजं रक्षति = समाज+ठ (सू० १११९।१०९०।२६२) (जो समाजकी रक्षा करता है)॥

१२३० शब्ददर्दुरं करोति। ४। ४। ३४॥

शब्द करता है और दर्दुर करता है इन अर्थोंमें द्वितीयान्त शब्द और दर्दुर-शब्दोंसे परे ठक् (ठ) प्रत्यय होय। शब्दं करोति = शब्द+ठ (सू० १११९।१०९०।२६२) शाब्दिकः (जो शब्द करता है)। दर्दुरं करोति = दार्दुरिकः (जो मेंडक करता है)॥

१२३१ धर्मं चरति। ४। ४। ४१॥

धर्म आचरण करता है इस अर्थमें द्वितीयान्त धर्म-शब्दसे परे ठक् (ठ) प्रत्यय होय। धर्मं चरति = धर्म+ठ (सू० १११९। १०९०।२६२) धार्मिकः (जो धर्म आचरण करता है)॥

१२३२ (अधर्माच्चेति वक्तव्यम्)॥

यह कहना चाहिये कि–अधर्म आचरण करता है इस अर्थमें द्वितीयान्त अधर्म-शब्दसे परे ठक् प्रत्यय होय। अधर्म+ठ = आधार्मिकः (जो अधर्म आचरण करता है)॥

१२३३ शिल्पम्। ४। ४। ५५॥

हस्तकौशल इस अर्थमें प्रथमान्तसे परे ठक् (ठ) प्रत्यय होय।

मृदङ्गवादनं शिल्पमस्य = मृदङ्ग+ठ (मू० ११११।१०९०।२६२) मार्दङ्गिकः (जिसका मृदंग बजानेमें हस्तकौशल होय) ॥

१२३४ प्रहरणम् । ४ । ४ । ५७ ॥

इसका प्रहरण इस अर्थमें प्रथमान्तसे परे ठक् (ठ) प्रत्यय होय । असिः प्रहरणमस्य = असि+ठ (मू० ११११।१०९०।२६२) आसिकः (खड्गधारी) । धनुष्+ठ (मू० ११११ । १०९०) धानुष्कः (धनुषधारी) ॥

१२३५ शीलम् । ४ । ४ । ६१ ॥

स्वभाव-अर्थमें प्रथमान्तसे परे ठक् (ठ) प्रत्यय होय । अपूपभक्षणं शीलमस्य = अपूप+ठ (मू० ११११।१०९०।२६२) आपूपिकः (जिसका मालपुए खानेका स्वभाव हो) ॥

१२३६ निकटे वसति । ४ । ४ । ७३ ॥

निकट वसता है इस अर्थमें सप्तम्यन्त निकट-शब्दसे परे ठक् (ठ) प्रत्यय होय । निकटे वसति = निकट+ठ(मू० ११११।१०९०।२६२) नैकटिको भिक्षुकः (जो निकट वसता है—भिखारी) ॥

॥ इति ठगधिकारः ॥

अथ प्राग्घितीयाः ।

१२३७ प्राग्घिताद्यत् । ४ । ४ । ७५ ॥

तस्मै हितमित्यतः प्राक् यदधिक्रियते ॥

इस सूत्रसे लेकर मू० १२४६ के पूर्व पर्यन्त यत्-प्रत्ययका अधिकार किया जाता है ॥

१२३८ तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम् । ४ । ४ । ७६ ॥

उसे ले जाता है इस अर्थमें द्वितीयान्त रथ, युग और प्रासंग इन शब्दोंसे परे यत् (य) प्रत्यय होय जो ले जाया जाय, वोह य-

दि रथ वा युग या प्रासङ्ग होय तौ। रथं वहति = रथ+य (मू० २६२) रथ्यः (जो रथ ले जाता है)। युग्यः (मू०२६२) (जो जुआ ले जाता है)। प्रासङ्ग्यः (जो अडगडा ले जाता है)॥

१२३९ धुरो यड्ढकौ। ४। ४। ७७॥

ले जाता है इस अर्थमें द्वितीयान्त धुर्-शब्दसे परे यत् (य) और ढक् (ढ) प्रत्यय होंय। धुरं वहति = धुर्+य (मू० ६६५। ७३८) धुर्यः, धुर्+ढ (मू० १०१४। ११०३) धौरेयः (जो बोझा ले जाता है)॥

१२४० नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलाभ्यस्तार्यतुल्यप्राप्यवध्यानाम्यसमसमितसम्मितेषु। ४। ४। ९१॥

नौ (नाव), वयस् (आयु), धर्म (धर्म), विष (विष), मूल (जड), मूल (मोल लिया हुआ), सीता (हलकी अनी-फल), तुला (तराजू) इन तृतीयान्त शब्दोंसे परे यत् (य) प्रत्यय हो, यदि सिद्ध होनेवाले शब्द क्रमसे आगे लिखे शब्दोंमें वर्त्ते तौ-तार्य (तरने योग्य), तुल्य (समान), प्राप्य (प्राप्त होनेके योग्य), वध्य (मारनेके योग्य), आनाम्य (नम्र करनेके योग्य), सम (सदृश), समित (समान किया गया), सम्मित (तोला गया)। नावा तार्यम् = नौ+य (मू० २९) नाव्यम् (नौका करके तरने योग्य)। वयसा तुल्यः = वयस्+य = वयस्यः (आयु करके जो समान हो)। धर्मेण प्राप्यम् = धर्म+य (मू० २६२) धर्म्य (जो धर्म करके प्राप्त होनेके योग्य हो)। विषेण वध्यः = विष्यः (मू० २६२) (जो विष करके मारनेके योग्य है)। मूलेन आनाम्यः = मूल्यम् (जो जडकरके नम्र करनेके योग्य हो)। मूलेन समो = मूल्यः (मोल लियेके सदृश)। सीतया समितं = सीत्यं (मू० २६२) क्षेत्रम् (हलके फलसे समान किया खेत)। तुलया समितम् = तुल्यम् (तराजूसे तोला गया)॥

१२४१ तत्र साधुः । ४ । ४ । ९८ ॥

निपुण-(चतुर) अर्थमें सप्तम्यन्त समर्थसे परे यत (य) प्रत्यय होय । अग्रे साधुः = अग्र+य (सू० २६२) अग्र्यः (अगाडीमें जो चतुर हो) । सामसु साधुः = सामन+य = सामन्यः (जो सामवेदमें निपुण है) । कर्मन्+य = कर्मण्यः (कर्ममें जो निपुण हो) । शरण्यः (शरण देनेमें जो निपुण हो) ॥

१२४२ सभाया यः । ४ । ४ । १०५ ॥

निपुण-अर्थमें सप्तम्यन्त सभा-शब्दसे परे यत (य) प्रत्यय होय । सभासु साधुः = सभा+य (सू० २६२) सभ्यः (जो सभामें निपुण हो) ॥

॥ इति यतोऽवधिः ॥

अथ छयतोरधिकारः ।

१२४३ प्राक् क्रीताच्छः । ५ । १ । १ ॥

तेन क्रीतमित्यतः प्राक् छोऽधिक्रियते ॥

इस सूत्रसे लेकर सू० १२५४ के पूर्वपर्यन्त छ-प्रत्ययका अधिकार किया जाता है ॥

१२४४ उगवादिभ्यो यत् । ५ । १ । २ ॥

उवर्णान्ताद्गवादिभ्यश्च यत् स्यात् । छस्यापवादः ॥

उकारान्त और गो-आदि शब्दोंसे परे यत (य) प्रत्यय हो । यह छ सू० १२४३ प्रत्ययका अपवाद है । शङ्कवे हितम् = शंकु+य (सू० १०९९ । २०) शङ्कव्यं दारु (शंकुको जो हित हो-काष्ठ) । गो+य (सू० २९) गव्यम् (गौको जो हित है) ॥

१२४५ (नाभि नभञ्च) ॥

नाभि-शब्दको नभ-आदेश हो और यत प्रत्यय होय । नाभि

य = नभ+य (मू० २६२) नभ्यः (नाभिको जो हित हो–धुरी)। नभ्यम (मू० २६२) (अंजन) ॥

१२४६ तस्मै हितम् । ५ । १ । ५ ॥

हितकारी अर्थमें चतुर्थ्यन्तसे परे छ प्रत्यय हो । वत्सेभ्यो हितो = वत्स+छ (मू० ११०३ । २६२) वत्सीयः गोधुक् (बछडोंके लिये हितकारी–बचा हुआ दूध)॥

१२४७ शरीरावयवाद्यत् । ५ । १ । ६ ॥

शरीरके अवयववाचक चतुर्थ्यन्त शब्दोंमे परे हितकारक-अर्थमें यत् (य) प्रत्यय हो । दन्तेभ्यो हितम = दन्त+य (मू० २६२) दन्त्यम (जो दांतोंका हितकारक हो) । कण्ठ+य = कण्ठ्यम (जो कंठका हितकारक हो) । नस्+य = नस्यम (जो नासिकाका हितकारक हो) ॥

१२४८ आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् खः ।५।१। ९ ॥

हितकारक अर्थमें चतुर्थ्यन्त आत्मन् तथा विश्वजन शब्दोंसे परे और जिनका उत्तरपद भोग-शब्द हो ऐसे शब्दोंसे परे ख प्रत्यय हो । आत्मने हितम् = आत्मन्+ख । यहां टि-लोप (मू० ९२३) की प्राप्ति होनेपर–॥

१२४९ आत्माध्वानौ खे । ६ । ४ । १६९ ॥

एतौ खे प्रकृत्या स्तः ॥

आत्मन् और अध्वन्-शब्द ख प्रत्यय परे रहते यथावत् रहें । आत्मन्+ख (मू० ११०३) आत्मनीनम (जो अपने अर्थ हितकारक हो) । विश्वजनीनम (जो सब लोकोंको हितकारक हो)। मातृभोग+ख (मू० ११०३।२६२) मातृभोगीणः (जो माताके सुखके लिये हितकारक हो) ॥

॥ इति छयतोः पूर्णोऽवधिः ॥

अथ ठञधिकारः ।

१२५० प्राग्वतेष्ठञ् । ५ । १ । १८ ॥

तेन तुल्यमित्यतः प्राक् ठञधिक्रियते ॥

इस सूत्रसे लेकर सू० १२५७ के पूर्वपर्यन्त ठञ्-प्रत्ययका अधिकार किया जाता है ॥

१२५१ तेन क्रीतम् । ५ । १ । ३७ ॥

मोल लिया गया इस अर्थमें तृतीयान्त समर्थसे परे ठञ् (ठ) प्रत्यय हो । सप्तत्या क्रीतम् = सप्तति+ठ (सू० ११११ । १०९० । २६२) साप्ततिकम् (जो सत्तर करके मोल लिया गया हो) । प्रस्थ+ठ = प्रास्थिकम् (प्रस्थपरिमित धान्यादिसे मोल लिया गया)॥

१२५२ तस्येश्वरः । ५ । १ । ४२ ॥

सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ स्तः ॥

सर्वभूमि और पृथिवी इन षष्ठ्यन्त शब्दोंसे परे ईश्वर-अर्थमें क्रमसे अण् (अ) और अञ् (अ) प्रत्यय हो । सर्वभूमेरीश्वरः = सर्वभूमि+अ (सू० १२००।२६२) सार्वभौमः (सम्पूर्ण भूमिका ईश्वर) । पृथिवी+अ (सू० १०१४।३५।२६२) पार्थिवः (पृथिवीका ईश्वर) ॥

१२५३ पङ्क्तिविंशतित्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्तत्यशीतिनवतिशतम् । ५ । १ । ५९ ॥

एते रूढिशब्दा निपात्यन्ते ॥

पङ्क्ति (दश वा छन्दोविशेष), विंशति (बीस), त्रिंशत् (तीस), चत्वारिंशत (चालीस), पञ्चाशत (पचास), षष्टि (साठ), सप्तति (सत्तर), अशीति (अस्सी), नवति (नव्वे), शत (सौ) यह रूढशब्द निपातन किये जाते हैं ॥

१२५४ तदर्हति । ५ । १ । ६३ ॥

लब्धु योग्यो भवतीत्यर्थे द्वितीयान्ताट्ठञादयः स्युः ॥

लेनेको योग्य है इस अर्थमें द्वितीयान्तसे परे ठञ् (ठ) आदि प्रत्यय हों । श्वेतच्छत्रमर्हति = श्वेतच्छत्र+ठ (सू० ११११।१०१४। २६२) श्वेतच्छत्रिकः (जो श्वेतछत्र लेनेको योग्य हो) ॥

१२५५ दण्डादिभ्यो यत् । ५ । १ । ६६ ॥

एभ्यो यत् स्यात् ॥

योग्य है इस अर्थमें दण्ड आदि शब्दोंसे परे यत् प्रत्यय हो । दण्डमर्हति = दण्ड+य (सू० २६२) दण्ड्यः (जो दण्डके योग्य है) । अर्घ्यः (जो पूजाके योग्य है) । वध्यः (जो मारनेके योग्य हो) ॥

१२५६ तेन निर्वृत्तम् । ५ । १ । ७९ ॥

निष्पन्न-अर्थमें तृतीयान्त-समर्थसे परे ठञ् (ठ) प्रत्यय होय । अह्ना निर्वृत्तम = अहन्+ठ (सू० १०१४।१११०।२७५) आह्निकम् (जो एक दिन करके निष्पन्न हो—नित्यकर्म) ॥

॥ इति ठञोऽवधिः ॥

अथ नञ्स्नञोरधिकारः ।

१२५७ तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः । ५ । १ । ११५ ॥

तुल्य-अर्थमें तृतीयान्तसे परे वति (वत्) प्रत्यय हो, जिस धर्मके साथ तुलना की जाय, यदि वोह क्रिया होय तो । ब्राह्मणेन तुल्यं = ब्राह्मण+वत् (सू० ४१३) ब्राह्मणवत्-अधीते (वोह ब्राह्मणके तुल्य पढता है) ॥

क्रिया चेदिति किम्? गुणतुल्ये मा भूत्—पुत्रेण तुल्यः स्थूलः ॥

जिसके साथ तुलना की जाय वोह क्रिया हो ऐसा कहनेसे गुणकी तुल्यतामें वति-प्रत्यय नहीं होता । जैसे—पुत्रेण तुल्यः स्थूलः (पुत्रकी तुल्य स्थूल) ॥

१२५८ तत्र तस्येव । ५ । १ । ११६ ॥

तिसकी सदृश वा तिसमें सदृश इन अर्थोंमें सप्तम्यन्त और षष्ठ्यन्तशब्दोंसे परे वति (वत्) प्रत्यय हो । मथुरायामिव = मथुरा+वत् = मथुरावत् स्रुघ्ने प्राकारः (जैसा मथुरामें वैसाही स्रुघ्न-देशमें परिकोटा है) । चैत्रस्येव = चैत्र+वत = चैत्रवन्मैत्रस्य गावः (चैत्रकेसी मैत्रकी गायें हैं) ॥

१२५९ तस्य भावस्त्वतलौ । ५ । १ । ११९ ॥

प्रकृतिजन्यबोधे प्रकारो भावः । त्वान्तं क्लीबम् ॥

तिसका भाव इस अर्थमें षष्ठ्यन्त-समर्थसे परे त्व और तल् (त) प्रत्यय हों । प्रकृतिजनितबोधमें विशेषरूपको भाव कहते हैं । त्व-प्रत्ययान्त शब्द नपुंसकलिंग होता है । गोर्भाव = गो+त्व = गोत्वम्, गोता (गायका धर्म) ॥

१२६० आ च त्वात् । ५ । १ । १२० ॥

ब्रह्मणस्त्व इत्यतः प्राक् त्वतलावधिक्रियेते । अपवादैः सह समावेशार्थमिदम् । चकारो नञ्स्नञ्भ्यामपि समावेशार्थः ॥

"ब्रह्मणस्त्वः" इस अष्टाध्यायीके पूर्वपर्यन्त त्व और तल् प्रत्ययका अधिकार किया जाता है । यह सूत्र अपवाद प्रत्ययोंके साथ व्यवहारके अर्थ किया गया है । चकारसे यह आशय है कि-नञ् और स्नञ् (सू० १०९३) प्रत्ययोंकी समान इनका प्रयोग होय । स्त्रियाः भावः = स्त्री+न (सू० १०९३ । १०९४ । १५८) स्त्रैणम , स्त्रीत्वम , स्त्री+त (सू० १३६६) स्त्रीता (स्त्रीका धर्म) । पुंस्+न (सू० १०९३) पौंस्नम . पुंस्त्वम , पुंस्ता (पुरुषका धर्म)॥

१२६१ पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा । ५ । १ । १२२ ॥

वावचनमणादिसमावेशार्थम् ॥

भाव-अर्थमें पृथु-आदि षष्ठ्यन्त प्रातिपदिकोंसे परे विकल्प करके इमनिच् (•इमन्) प्रत्यय होय । वा-ग्रहण अण्-आदि प्रत्ययोंके समावेशके अर्थ है । पृथोर्भावः = पृथु+इमन् ॥

१२६२ र ऋतो हलादेर्लघोः। ६। ४। १६१॥

हलादेर्लघोर्ऋकारस्य रः स्यात् इष्ठेमेयस्सु परतः॥

जिसके आदिमें हल् हो ऐसा जो लघु (सू० ४९७) ऋकार तिसको र-आदेश हो इष्ठन्-आदि प्रत्यय परे रहते। परन्तु—॥

" पृथुमृदुभृशकृशदृढपरिवृढानामेव रत्वम् "॥

पृथु (बडा), मृदु (कोमल), भृश (अत्यन्त), कृश(दुर्बल), दृढ (पुष्ट), परिवृढ (प्रभु) इन्हीं शब्दोंके ऋकारको र-आदेश होय। प्रथु+इमन्॥

१२६३ टेः। ६। ४। १५५॥

भस्य टेर्लोपः इष्ठेमेयस्सु॥

भसंज्ञक टिका लोप होय, इष्ठन् (सू० १३२९), इमनिच् (सू० १२६१) तथा ईयसुन् (सू० १३३३) प्रत्यय परे रहते। प्रथ्+इमन् = प्रथिमन्+सु = प्रथिमा, पृथु+अ (सू० १०१४। १०९५। २७) पार्थवम (बडेका भाव)। मृदु+इमन = म्रदिमा, मार्दवम (कोमलका भाव—कोमलता)॥

१२६४ वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ्च। ५। १। १२३॥

चादिमनिच्॥

भाव-अर्थमें रङ्ग-वाचक तथा दृढ आदिगण-पठित षष्ठ्यन्त शब्दोंसे परे ष्यञ् (य) प्रत्यय होय। चकारग्रहणसे इमनिच् प्रत्ययभी होता है। शुक्ल+य (सू० १०१४। २६२) शौक्ल्यम, शुक्लिमा (सू० १२६१) (श्वेतता)। दृढ+य (सू० १०१४। २६२) दार्ढ्यम्, द्रढिमा (सू० १२६१। १२६२) (दृढता)॥

१२६५ गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च। ५। १। १२४॥

चाद्भावे॥

गुणवाचक षष्ठ्यन्त-शब्दोंसे और ब्राह्मणआदि षष्ठ्यन्त-शब्दोंसे परे कर्म-अर्थमें ष्यञ् (य) प्रत्यय होय। चकारसे भाव-अर्थमेंभी

है। जडस्य कर्म भाव वा = जड+य (सू० १०१४ । २६२) जाड्यम (जड (मूर्ख) का कर्म वा भाव) । मूढस्य कर्म भाव वा = मूढ+य (सू० १०१४ । २६२) मौढ्यम् (मूर्खका भाव वा आचरण) । ब्राह्मण+य (सू० २६२) ब्राह्मण्यम (ब्राह्मणका कर्म वा भाव) ॥ आकृतिगणोऽयम ॥ ब्राह्मण आदि शब्द आकृतिगण है ॥

१२६६ सख्युर्यः । ५ । १ । १२६ ॥

भाव और कर्म-अर्थमें षष्ठ्यन्त सखि-शब्दसे परे य प्रत्यय होय । सख्युर्भावः कर्म वा = सखि+य (सू० २६२) सख्यम (मित्रका भाव वा कर्म—मित्रता) ॥

१२६७ कपिज्ञात्योर्ढक् । ५ । १ । १२७ ॥

भाव और कर्म-अर्थमें षष्ठ्यन्त कपि और ज्ञातिशब्दसे परे ढक् (ढ) प्रत्यय होय । कपि+ढ (सू० ११०३ । १०९० । २६२) कापेयम (वानरका भाव वा आचरण) । ज्ञाति+ढ (सू० ११०३ । २६२) ज्ञातेयम (ज्ञातिका भाव वा आचरण) ॥

१२६८ पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् । ५ । १ । १२८ ॥

भाव और कर्म-अर्थमें षष्ठ्यन्त पति-शब्दान्त और पुरोहितादि-गणपठित शब्दोंसे परे यक् (य) प्रत्यय होय । सेनापति+य (सू० १०९०।२६२) सैनापत्यम् (सेनापतिका भाव वा कर्म) । पुरोहित +य (सू० १०९०।२६२) पौरोहित्यम (पुरोहितका भाव वा कर्म)॥

॥ इति नञ्स्नञोरधिकारः ॥

अथ मत्वर्थीयाः ।

१२६९ धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ् । ५ । २ । १ ॥

जिस खेतमें धान्य उत्पन्न हो वोह (खेत) वाच्य हो तो धान्यार्थवाचक षष्ठ्यन्त प्रातिपदिकसे परे खञ् (ख) प्रत्यय होय । मु-

द्गानां भवनं क्षेत्रम् = मुद्ग+ख (मू० ११०३।१०१४।२६२) मौद्गी-नम् (जिस खेतमें मूंग उत्पन्न हो वोह) ॥

१२७० व्रीहिशाल्योर्ढक् । ५ । २ । २ ॥

उक्त अर्थ (मू० १२६९) में षष्ठ्यन्त व्रीहि और शालि-शब्दोंसे परे ढक् (ढ) प्रत्यय होय । व्रीहि+ढ (मू० ११०३।१०९०।२६२) व्रैहेयम (धान्यकी खेत) । शालि+ढ = शालेयम (सट्टीकी उत्पत्तिका खेत) ॥

१२७१ हैयङ्गवीनं संज्ञायाम् । ५ । २ । २३ ॥

ह्योगोदोहशब्दस्य हियङ्गुरादेशः विकारार्थे खञ्च निपात्यते । दुह्यते इति दोहः क्षीरम् ह्योगोदोहस्य विकारः हैयङ्गवीनं नवनीतम् ॥

हैयङ्गवीनम् यह शब्द संज्ञा अर्थात्—मक्खन-(नैनी, घी) अर्थमें निपातन किया जाता है । ह्योगोदोहशब्दकू तौ हियंगु आदेश और विकार-अर्थमें खञ्-प्रत्ययका निपातन होता है । जो दुहा जाय उसे दोह (दूध) कहते है । व्यतीत दिनमें दुहे हुए दूधका विकार हैयङ्गवीन (मक्खन) कहाता है ॥

१२७२ तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच् । ५ । २ । ३६ ॥

वोह इसके उत्पन्न हुआ इस अर्थमें तारकाआदि प्रथमान्त-शब्दोंसे परे इतच् (इत) प्रत्यय होय । तारकाः संजाता अस्य = तारका+इत (मू० २६२) तारकितं नभः (जिसके तारे उत्पन्न हुए हों—आकाश) । पण्डा संजाता अस्य = पण्डा+इत (मू०२६२) पण्डितः (जिसके सत्यासत्यके विवेककी बुद्धि उत्पन्न हुई हो) ॥ आकृतिगणोऽयम् ॥ यह तारकादि शब्द आकृतिगण है ॥

१२७३ प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः । ५ । २ । ३७ ॥

प्रमाणरूप अर्थमें प्रथमान्त-शब्दसे परे द्वयसच् (द्वयस), दघ्नञ् (दघ्न) और मात्रच् (मात्र) प्रत्यय होंय । ऊरू प्रमाणमस्य = ऊरु+द्वयस् = ऊरुद्वयसम्, ऊरुदघ्नम्, ऊरुमात्रम् (जिसका प्रमाण जांघभर हो) ॥

१२७४ यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् । ५ । २ । ३९ ॥

यद्, तद् और एतद् शब्दोंसे परे परिमाणरूप अर्थमें वतुप् (वत्) प्रत्यय होय । यत्परिमाणमस्य = यत्+वत् (मू० ३९१) यावत्+सु (मू० ३१८।२००।२४।१९८) यावान् (जिसका जितना परिमाण हो) । तावान् (मू० ३९१।३१८।२००।२४।१९८) (जिसका वोह परिमाण हो) । एतावान् (मू० ३९१।३१८।२०० २४।१९८ (जिसका इतना परिमाण हो) ॥

१२७५ किमिदंभ्यां वो घः । ५ । २ । ४० ॥

आभ्यां वतुप्, वकारस्य घश्च ॥

किम् और इदम्-शब्दसे परे वतुप् (वत्) प्रत्यय हो और वकारकू घ-आदेश हो । किम+वत् । इदम्+वत् = किम्+घ । इदम+घ (मू० ११०३) ॥

१२७६ इदंकिमोरीश्की । ६ । ३ । ९० ॥

दृग्दृशवतुपु इदम ईश् किमः की ॥

दृक्, दृश् और वत-प्रत्यय परे रहते इदम्-शब्दकू ईश् (ई) और किम शब्दकू की आदेश होय । की+घ । ई+घ (मू०२६२। ११०३) कियान् (कितना) । इयान् (इतना) ॥

१२७७ संख्याया अवयवे तयप् । ५ । २ । ४२ ॥

संख्या-वाचक प्रथमान्त-शब्दोंसे परे अवयव-अर्थमें तयप् (तय) प्रत्यय होय । पञ्च अवयवा अस्य = पञ्चन्+तय (मू० २०१)पञ्चतयम् (जिसके पांच अवयव हों) ॥ द्वि+तय इस अवस्थामें—॥

१२७८ द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा । ५ । २ । ४३ ॥

द्वि और त्रि इन प्रथमान्त प्रातिपदिकोंसे परे तयकू अयच् (अय) आदेश विकल्पसे होय । द्वि+अय (मू० २६२) द्वयम, द्वितयम् (जोडा) । त्रि+तय = त्रि+अय (मू० २६२) त्रयम,

त्रितयम् (जिसके तीन अवयव हों–तिगड्डा) ॥ उभ+तय (सू० १२७७) ॥

१२७९ उभादुदात्तो नित्यम् । ५ । २ । ४४ ॥

उभशब्दात्तयपोऽयच् स्यात्सचाद्युदात्तः ॥

उभ-शब्दसे परे तयप्-प्रत्ययके स्थानमें आदिउदात्त अयच् (अय) आदेश होय । उभ+अय (सू० २६२) उभयम् (जिसके दो अवयव हों) ॥

१२८० तस्य पूरणे डट् । ५ । २ । ४८ ॥

तिसका पूरण करनेवाला इस अर्थमें प्रथमान्तप्रातिपदिकसे परे डट् (अ) प्रत्यय होय । एकादशानां पूरणः = एकदशन्[1]+अ (सू० ९९३) एकादशः (ग्यारहवीं संख्याका पूर्ण करनेवाला–ग्यारहवां)॥ पञ्चानां पूरणः = पञ्चन्+अ (सू० १२८०) ॥

१२८१ नान्तादसंख्यादेर्मट् । ५ । २ । ४९ ॥

डटो मडागमः ॥

जिस नकारान्त संख्यावाचक शब्दके आदिमें और कोई संख्यावाचक शब्द न हो तिससे परे जो डट् प्रत्यय तिसे मट् (म) का आगम होय । पञ्चन्+म्+अ (सू० ९९३) पञ्चमः (पांच संख्याका पूर्ण करनेवाला–पांचवां) ॥

नान्तात्किम् ? ॥

नकारान्तसे परे डट्-कू मट्-का आगम हो ऐसा कहनेसे । विंशतीनां पूरणः = विंशति+अ (सू० १२८०) ॥

१२८२ तिविंशतेर्डिति । ६ । ४ । १४२ ॥

विंशतेर्भस्य तिशब्दस्य लोपो डिति परे ॥

भ-संज्ञक (सू० १८६) विंशति-शब्दके ति-शब्दका लोप होय, डित्-प्रत्यय परे रहते । विंश+अ (सू० ३०२) विंशः (बीसवां) । यहां मट् आगम (सू० १२८१) न हुआ ॥

१ 'एकादशभ्यः' इस निर्देशसे एक-शब्दको दीर्घ हुआ ।

असंख्यादेः किम् ? एकादशः ॥

जिसके आदिमें और कोई संख्यावाचक शब्द न हो(सू० १२८१) ऐसा कहनेसे । एकादशः (ग्यारहवां)। इसमें मट्-आगम(सू० १२८१) न हुआ, क्योंकि–यहां 'एक' शब्द संख्यावाचक 'दश' शब्दकी आदिमें है ॥ षण्णां पूरणः = षष्+अ (सू० १२८०) ॥

१२८३ षट्कतिकतिपयचतुरां थुक् । ५ । २ । ५१ ॥

एषां थुगागमः स्याड्डटि ॥

षष् (छः), कति (कितने), कतिपय (कईएक) और चतुर् (चार) इन शब्दोंको थुक् (थ्) आगम हो, डट् प्रत्यय परे रहते । षष्+थ्+अ (सू० ७९) षष्ठः (छै संख्याका पूर्ण करनेवाला–छटा) कति+थ्+अ = कतिथः (कौनसा) ॥

कतिपयशब्दस्यासंख्यात्वेऽप्यत एव ज्ञापकाड्डट् ॥

यद्यपि कतिपय-शब्द संख्यावाचक नहीं है तथापि डट् प्रत्यय होता है, कारण कि–डट् प्रत्यय परे रहते थुक् (सू०१२८३) विधान किया है, अर्थात्–थुक्-आगमके विधान करनेहीसे ज्ञात होता है कि कतिपय-शब्दसेभी डट्-प्रत्यय होता है । कतिपय+थ्+अ = कतिपयथः (कईएकमें कौनसा) । चतुर्+थ्+अ = चतुर्थः (चौथा) ॥

१२८४ द्वेस्तीयः । ५ । २ । ५४ ॥

डटोऽपवादः ॥

षष्ठ्यन्त द्वि-शब्दसे परे पूरण-अर्थमें तीय प्रत्यय होय । यह डट् (सू० १२८०) का अपवाद है । द्वयोः पूरणः = द्वि+तीय = द्वितीयः (दो संख्याका पूर्ण करनेवाला–दूसरा) ॥

१२८५ त्रेः सम्प्रसारणं च । ५ । २ । ५५ ॥

षष्ठ्यन्त त्रि-शब्दसे परे पूरण-अर्थमें तीय प्रत्यय हो और सम्प्रसारण (सू० २८४) हो । त्रि = तृ+तीय = तृतीयः (तीन संख्याका पूरण करनेवाला–तीसरा) ॥

१२८६ श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीते । ५ । २ । ८४ ॥

श्रोत्रियः । वेत्यनुवृत्तेश्छान्दसः ॥

छन्द (वेद) पढता है इसमें श्रोत्रियन् शब्दका निपात किया जाता है, तिसके अन्तके नकारका लोप (सू० ५) होता है श्रोत्रियः (वेदपाठी) और वा-पदकी अनुवृत्ति करके, छान्दसः (सू० १०१४) वेदपाठी ऐसाभी प्रयोग बनता है ॥

१२८७ पूर्वादिनिः । ५ । २ । ८६ ॥

प्रथमान्त पूर्व-शब्दसे इनि (इन्) प्रत्यय होय यदि अनेन (इसने वा जिसने) इस रूपसे क्रियाके भावकी विवक्षा हो तौ । पूर्वं कृतमनेन = पूर्व+इन् (सू० २६२) पूर्विन्+सु (सू० १९८।२००। २०१) पूर्वी (जिसने पहिले किया) ॥

१२८८ सपूर्वाच्च । ५ । २ । ८७ ॥

जिसके प्रथम कोई शब्द हो ऐसेभी प्रथमान्त पूर्व-शब्दसे उक्त अर्थ (सू० १२८७) में इनि (इन्) प्रत्यय होय । कृतं पूर्वमनेन = कृत+पूर्व+इन् = कृतपूर्वी (जिसने पहिले किया) ॥

१२८९ इष्टादिभ्यश्च । ५ । २ । ८८ ॥

इष्ट आदि प्रथमान्त-शब्दोंसे परे उक्त (सू० १२८७) अर्थमें इनि (इन्) प्रत्यय होय । इष्टमनेन = इष्ट+इन् (सू० १९८। २०१) इष्टी (जिसने इच्छा करी) । अधीत+इन् = अधीती (जिसने अध्ययन किया) ॥

१२९० तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् । ५ । २ । ९४ ॥

तिसका यह है वा तिसमें यह है, इस अर्थमें प्रथमान्तसे परे मतुप् (मत्) प्रत्यय होय । गावोऽस्यास्मिन्वा सन्ति = गो+मत्+सु (सू० ३१८ । २४ । १९८) गोमान (जिसके वा जिसमें गायें हैं)॥ विद्वस्+मत् ॥

१२९१ तसौ मत्वर्थे । १ । ४ । १९ ॥

तान्तसान्तौ भसञ्ज्ञौ स्तो मत्वर्थे प्रत्यये परे ॥

तकारान्त और सकारान्त शब्दोंकी भसंज्ञा हो, जब मतुके अर्थमें कोई प्रत्यय परे हो। विद्वस्+मत् (मू०३९६।१७०।३१८) विदुष्मान् (जिसमें विद्वान् हों)। शुक्लो गुणोऽस्यास्तीति = शुक्ल+मत् (मू० १२९०)॥

१२९२ (गुणवचनेभ्यो मतुपो लुगिष्टः)॥

गुणवाचक शब्दोंसे परे मतुप्-प्रत्ययका लुक् महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनिको अभिमत है। शुक्लः पटः (जिसमें श्वेतता हो—वस्त्र)। कृष्ण+मत् = कृष्णः (जिसमें कृष्ण (वर्ण) हो)॥

१२९३ प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्। ५। २। ९६॥

प्राणीमें समवाय-संबंधसे स्थित जो पदार्थ उसके वाचक आकारान्त-शब्दसे परे मतुप् (मू० १२९०) के अर्थमें विकल्प करके लच् (ल) प्रत्यय होय। चूडा+ल = चूडालः, चूडावान् (मू० १२९०) (जिसके प्रशस्त चोटी हो)॥

प्राणिस्थात् किम्? शिखावान् दीपः। प्राण्यङ्गादेव. नेह मेधावान्॥

प्राणीमें स्थित ऐसा कहनेसे, शिखावान् दीपः (शिखावाला दीपक) यहां लच् न हुआ किन्तु मतुप् हुआ है। प्राणीके अंगहीसे परे लच् प्रत्यय होता है, इस हेतु, मेधावान (जिसको धारणकी बुद्धि हो) इस प्रयोगमें नहीं होता॥

१२९४ लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः।५।२।१००॥

लोम-आदि और पामन्-आदि तथा पिच्छ-आदि शब्दोंसे परे क्रमसे श और न तथा इलच (इल) प्रत्यय हों॥

लोमादिभ्यः शः॥

अर्थात्—लोम-आदि शब्दोंसे परे श प्रत्यय हो। लोमन्+श (मू० २०१) लोमशः, लोमवान् (मू० १२९०) (जिसके देहमें लोम हों)। रोमशः, रोमवान् (जिसके देहमें रुएं हों)॥

पामादिभ्यो नः॥

अर्थात्–पामन्-आदि शब्दोंसे परे न प्रत्यय हो। पामन्+न (सू० २०१) पामनः (जिसके खुजली हो)॥

१२९५ (अङ्गात्कल्याणे)॥

प्रथमान्त अङ्ग-शब्दसे परे कल्याण-अर्थमें न (सू० १२९४) प्रत्यय हो। अङ्ग+न (सू० १३६६) अङ्गना (जिसके अङ्ग अच्छे हों–कल्याणी स्त्री)॥

१२९६ (लक्ष्म्या अच्च)॥

प्रथमान्त लक्ष्मी-शब्दसे परे न प्रत्यय हो और लक्ष्मी-शब्दको अकार अन्तादेश हो। लक्ष्मी=लक्ष्म+न (सू० १५८) लक्ष्मणः (कल्याण चिह्न समन्वित)॥

पिच्छादिभ्य इलच्॥

अर्थात्–पिच्छआदि शब्दोंसे परे विकल्प करके इलच् (इल) प्रत्यय होता है। पिच्छ+इल=पिच्छिलः, पिच्छवान् (सू०१२९०) (मांड)॥

१२९७ दन्त उन्नत उरच्। ५। २। १०६॥

प्रथमान्त दन्त-शब्दसे परे उन्नत-(ऊंचे) रूप अर्थमें उरच् (उर) प्रत्यय होय। उन्नता दन्ताः सन्त्यस्य=दन्त+उर=दन्तुरः (जिसके दांत ऊंचे हों)॥

१२९८ केशाद्वोऽन्यतरस्याम्। ५। २। १०९॥

प्रथमान्त केश-शब्दसे परे विकल्प करके व प्रत्यय हो। केश+व=केशवः, केशी (सू० १३०१), केशवान् (सू० १२९०) (जिसके केश सुन्दर हों)॥

१२९९ (अन्येभ्योऽपि दृश्यते)॥

केश-शब्दके अतिरिक्त और शब्दोंसेभी परे व-प्रत्यय देखा जाता है। जैसे–मणि+व=मणिवः (जिसकी मणी सुन्दर हो)॥

१३०० (अर्णसो लोपश्च)॥

प्रथमान्त अर्णस्-शब्दसे परे व-प्रत्यय हो और सकारका लोप हो । अर्णस् = अर्ण+व = अर्णवः (जिसमें जल हो—समुद्र) ॥

१३०१ अत इनिठनौ । ५ । २ । ११५ ॥

अदन्त-शब्दोंसे परं मतुप् (सू० १२९०)के अर्थमें इनि (इन्) और ठन् (ठ) प्रत्यय हों । दण्ड+इन् (सू० १९८) दण्डी, दण्ड+ठ (सू० ११११) दण्डिकः (जिसमें दण्ड हो) ॥

१३०२ व्रीह्यादिभ्यश्च । ५ । २ । ११६ ॥

व्रीहि-आदि शब्दोंसे परेभी इन् और ठन् प्रत्यय हों । व्रीहि+इन् (सू० १९८) व्रीही, व्रीहि+ठ (सू० ११११) व्रीहिकः (जिसमें चावल हों) ॥

१३०३ अस्मायामेधास्रजो विनिः । ५ । २ । १२१ ॥

जिसके अन्तमें अस्-शब्द हो उस शब्दसे और माया तथा मेधा और स्रज् इन शब्दोंसे परे विनि (विन्) प्रत्यय होय । यशस्+विन् (सू० १९८।२०१) यशस्वी, यशस्वान् (सू० १२९०)(जिसका यश हो) । माया+विन् (सू० १९८।२०१) मायावी (जिसमें माया हो) । मेधावी (जिसमें धारण बुद्धि हो) । स्रज्+विन् (सू० ३३५।१९८।२०१) स्रग्वी (जिसमें माला हो) ॥

१३०४ वाचो ग्मिनिः । ५ । २ । १२४ ॥

वाच्-शब्दसे परे ग्मिनि (ग्मिन्) प्रत्यय होय । वाच्+ग्मिन् (सू० ३३५।१९८।२०१) वाग्ग्मी (जिसमें वाक्पटुता हो) ॥

१३०५ अर्शआदिभ्योऽच् । ५ । २ । १२७ ॥

अर्शस्-आदि शब्दोंसे परे अच् (अ) प्रत्यय होय । अर्शोऽस्य विद्यते = अर्शस्+अ = अर्शसः (जिसको बवासीरका रोग हो) ॥ आकृतिगणोऽयम् ॥ यह अर्शस्-आदि शब्द आकृतिगण है ॥

१३०६ अहंशुभमोर्युस् । ५ । २ । १४० ॥

अहम् और शुभम् इन अव्ययोंसे परे युस् (युः) प्रत्यय होय। अहम्+युः=अहंयुः (अहंकारी)। शुभम्+युः=शुभंयुः (शुभयुक्त)॥

॥ इति मत्वर्थीयाः ॥

अथ स्वार्थिकाः ।

१३०७ प्राग्दिशो विभक्तिः । ५ । ३ । १ ॥

दिक्शब्देभ्य इत्यतः प्राग्वक्ष्यमाणाः प्रत्यया विभक्तिसंज्ञाः स्युः ॥

इस सूत्रसे लेकर "दिक्शब्देभ्यः । ५।३ । २७॥ " इस सूत्रके पूर्वपर्यन्त जो प्रत्यय आगे कहे जायँगे उनकी विभक्तिसंज्ञा होय ॥

१३०८ किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः । ५ । ३ । २ ॥

किमः सर्वनाम्नो बहुशब्दाच्चेति प्राग्दिशोऽधिक्रियते ॥

किम्, सर्वनाम, बहु इन शब्दोंसे परे विभक्ति (सू० १३०७) संज्ञक प्रत्यय हों, परन्तु-जिस सर्वनामकी आदिमें द्विशब्द हो तिससे परे न हों। यह निषेध किम्-शब्दमें प्रवृत्त नहीं होता, कारण की इसका ग्रहण तो सूत्रमें पृथक्‌ही किया है। यह अधिकार "दिक्शब्देभ्यः" इस सूत्रके पूर्वपर्यन्त होता है ॥

१३०९ पञ्चम्यास्तसिल् । ५ । ३ । ७ ॥

पञ्चम्यन्तेभ्यः किमादिभ्यस्तसिल् वा स्यात् ॥

किम्-आदि (सू० १३०८) पञ्चम्यन्त शब्दोंसे परे तसिल् (तस्) प्रत्यय विकल्प करके होय। किम्+तस् (सू० १३०७)॥

१३१० कु तिहोः। ७ । २ । १०४ ॥

किमः कुः स्यात्तादौ हादौ च विभक्तौ परतः ॥

किम्-शब्दकू कु-आदेश हो, तकारादि तथा हकारादि विभक्ति परे रहते। कु+तस् (सू० १२५।११३) कुतः, कस्मात् (सू० २९९) (क्यों वा कहांसे)॥ इदम्+तस् (सू० १३०९)॥

१३११ इदम इश् । ५ । ३ । ३ ॥

प्राग्दिशीये परे ॥

इदम्-शब्दकू इश् (इ) आदेश हो, प्राग्दिशीय प्रत्यय परे रहते । इ+तस् (सू० १२५।११३) इतः (इससे वा यहांसे) ॥ एतद्+तस् (सू० १३०९) ॥

१३१२ एतदोऽन् । ५ । ३ । ५ ॥

प्राग्दिशीये परे ॥

प्राग्दिशीय प्रत्यय परे रहते एतद्-शब्दकू अन् (अ) (सू०५८) आदेश होय । अ+तस् (सू० १२५।११३) अतः (इससे वा यहांसे)। अदस्=(सू०२१४।३०२) अद+तस् (सू० ४००।१२५। ११३) अमुतः (इससे) । यत्=(सू०२१४।३०२) य+तस्= यतः (जिससे वा जहांसे) । तत्+तस् (सू० २१४।३०२।१२५। ११३) ततः (तिससे वा तहांसे) । बहु+तस्=बहुतः(बहुतोंसे)॥

द्व्यादेस्तु-द्वाभ्याम् ॥

द्वि-आदि सर्वनामसे परे प्रत्यय नहीं (सू०१३०८) होनेके कारण- द्वि+भ्याम (सू० २१४।१६१) द्वाभ्याम (दोसे) रूप बनता है ॥

१३१३ पर्यभिभ्यां च । ५ । ३ । ९ ॥

आभ्यां तसिल् स्यात् ॥

परि और अभि-से परे तासिल् (तस्) प्रत्यय होय । परि+तस्= परितः (चारों ओरसे) । अभि+तस्=अभितः (दोनों ओरसे) ॥

१३१४ सप्तम्यास्त्रल् । ५ । ३ । १० ॥

किम्-आदि (सू० १३०८) सप्तम्यन्तशब्दोंसे परे त्रल् (त्र) प्रत्यय हो । किम्+त्र (सू०१३१०) कुत्र (किसमें वा कहां) । यत्+त्र (सू० २१४।३०२) यत्र (जिसमें वा जहां) । तत्+त्र (सू०२१४। ३०२) तत्र (तिसमें वा तहां) । बहु+त्र=बहुत्र (बहुतोंमें) ॥

१३१५ इदमो हः । ५ । ३ । ११ ॥

त्रलोऽपवादः ॥

सप्तम्यन्त इदम्-शब्दसे परे ह प्रत्यय होय। यह प्रत्यय त्रल् (मू० १३१४) का अपवाद है। इदम+ह (मू० १३११) इह (यहां) ॥

१३१६ किमोऽत्। ५। ३। १२॥

सप्तम्यन्तात्किमोऽद्वा स्यात्। पक्षे त्रल्॥

सप्तम्यन्त किम्-शब्दसे परे अत् (अ) प्रत्यय विकल्प करके होय। पक्षान्तरमें त्रल् (मू० १३१४) प्रत्यय होय। किम्+अ॥

१३१७ क्वाति। ७। २। १०५॥

किमः क्वादेशः स्यादति॥

किम्-शब्दको क्व-आदेश होय अत्-प्रत्यय परे रहते। क्व+अ (मू० २६२) क्व, कुत्र (मु० १३१४।१३१०) (कहां)॥

१३१८ इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते। ५। ३। १४॥

पञ्चमीसप्तमीतरविभक्त्यन्तादपि तसिलादयो दृश्यन्ते। दृशिग्रहणाद्भवदादियोग एव॥

पञ्चम्यन्त (मू० १३०९) तथा सप्तम्यन्त (मू० १३१४) को छोडकर औरभी विभक्त्यन्तोंसेभी परे तसिल् आदि प्रत्यय देखनेमें आते हैं। सूत्रमें 'दृश्यन्ते' इस पदके ग्रहण करनेसे विदित होता है कि–भवत्-आदिकोंके योगहीमें प्रत्यय होते हैं। स भवान् वा–तत्+भवान्=तत्+तस् (मू० २१४) ततोभवान् (सो आप)॥ सभवान् वा तत्रभवान् (सो आप)। तत्रभवन्तं, ततोभवन्तम् (सो तिन आपको)। ऐसेही सदीर्घायुः, ततोदीर्घायुः, तत्रदीर्घायुः (बहुत दिन जीवे)। सदेवानां प्रियः, ततोदेवानां प्रियः, तत्रदेवानां प्रियः, (जो देवताओंको प्रिय हो)। आयुष्मान् (जो बहुत दिन जीवे)। इन शब्दोंके योगमें उक्त प्रत्ययोंका प्रयोग जानना॥

१३१९ सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा। ५। ३। १५॥

सप्तम्यन्तेभ्यः कालार्थेभ्यः स्वार्थे दा स्यात्॥

कालार्थवाचक सर्व (सब), एक (एक), अन्य (और),

किम् (क्या), यद् (जो), तत् (वोह) इन सप्तम्यन्त शब्दोंसे परे स्वार्थमें दा प्रत्यय हो । सर्वस्मिन्काले = सर्व+दा ॥

१३२० सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि । ५ । ३ । ६ ॥

दादौ प्राग्दिशीये सर्वस्य सो वा स्यात् ॥

सर्व-शब्दकू स आदेश विकल्प करके हो, दकारादि प्राग्दिशीय प्रत्यय परे रहते । स+दा = सदा, सर्वदा (नित्य) । अन्यदा(और कालमें) । किम्+दा (सू० २९९) कदा (कब) । यत्+दा (सू० २१४ । ३०२) यदा (जब) । तदा (सू० २१४।३०२)(तब)॥

काले किम् ? सर्वत्र देशे ॥

कालार्थ-वाचक कहनेसे, सर्वत्र (सू०१३१४) देशे (सब देशमें) यहां दा-प्रत्यय न हुआ ॥

१३२१ इदमोर्हिल् । ५ । ३ । १६॥

कालाऽर्थे सप्तम्यन्तात् ॥

सप्तम्यन्त इदम्-शब्दसे परे कालरूप अर्थमें र्हिल् (र्हि) प्रत्यय होय । अस्मिन् काले = इदम्+र्हि ॥

१३२२ एतेतौ रथोः । ५ । ३ । ४ ॥

इदमशब्दस्य एत इत इत्यादेशौ स्तो रेफादौ थकारादौ च प्राग्दिशीये परे ॥

इदम्-शब्दकू एत वा इत आदेश हों, कालरूप-अर्थमें रकारादि तथा थकारादि प्राग्दिशीय प्रत्यय परे रहते । एत+र्हि = एतर्हि (इस कालमें) ॥

काले किम् ? इह देशे ॥

कालरूप अर्थमें कहनेसे, इह (सू० १३१५ । १३११) देशे (इस देशमें) ॥

१३२३ अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम् । ५ । ३ । २१ ॥

अनद्यतन अर्थमें र्हिल् (र्हि) प्रत्यय विकल्प करके हो । किम् +र्हि (सू० २९९) कर्हि, कदा (सू० १३१९ । २९९) (कब)।

यर्हि (मू २१४), यदा (मू० १३१९) (जब)। तर्हि,तदा (तब) ॥ एतस्मिन्काले = एतत्+र्हि ॥

१३२४ एतदः । ५ । ३ । ५ ॥

एत इत् एतौ स्तो रेफादौ थादौ च प्राग्दिशीये परे ॥

कालरूप-अर्थमें वर्त्तमान सप्तम्यन्त एतद्-शब्दकू एत और इत आदेश होंय, रकारादि और थकारादि प्राग्दिशीय प्रत्यय परे रहते। एत+र्हि = एतर्हि (इस कालमें) ॥

१३२५ प्रकारवचने थाल् । ५ । ३ । २३ ॥

प्रकारवृत्तिभ्यः किमादिभ्यस्थाल् स्यात्स्वार्थे ॥

प्रकार-रूप अर्थमें वर्त्तमान किम्-आदि (मू० १३०८) शब्दोंसे परे थाल् (था) प्रत्यय होय। तेन प्रकारेण = तद्+था (मू० २१४)तथा (तिस प्रकारसे)। यथा (जिस प्रकारसे) ॥

१३२६ इदमस्थमुः । ५ । ३ । २४ ॥

थालोऽपवादः ॥

इदम्-शब्दसे परे प्रकार-अर्थमें थमु (थम्) प्रत्यय हो । यह थाल्-(मू० १३२५) प्रत्ययका अपवाद है । अनेन प्रकारेण = इदम्+थम् (मू० १३२२) इत्थम् (इस प्रकार) ॥

१३२७ (एतदोऽपि वाच्यः) ॥

ऐसा कहना चाहिये कि तृतीयान्त एतद्-शब्दसेभी परे प्रकार-अर्थमें थमु प्रत्यय हो। एतेन प्रकारेण = एतद्+थम् (मू० १३२४) इत्थम् (इस प्रकार) ॥

१३२८ किमश्च । ५ । ३ । २५ ॥

प्रकाररूप अर्थमें तृतीयान्त किम्-शब्दसे परे थमु (थम्)प्रत्यय होय । केन प्रकारेण = किम्+थम् (मू०२९९) कथम् (किस प्रकार)॥

॥ इति प्राग्दिशीयाः ॥

१३२९ अतिशायने तमबिष्ठनौ । ५ । ३ । ५५ ॥

अतिशयविशिष्टार्थवृत्तेः स्वार्थे एतौ स्तः ॥

अतिशयविशिष्टरूप अर्थमें प्रथमान्त प्रातिपदिकोंसे परे स्वार्थमें तमप् (तम) और इष्ठन् (इष्ठ) प्रत्यय होय । अयमेषामतिशयेन आढ्यः = आढ्य+तम = आढ्यतमः (यह इनमें अत्यन्त धनी है)। अयमेषामतिशयेन लघुः = लघु+तम = लघुतमः, लघु+इष्ठ (सू० १२६३) लघिष्ठः (अत्यन्त लघु) ॥

१३३० तिङश्च । ५ । ३ । ५६ ॥

तिङन्तादतिशये द्योत्ये तमप् स्यात् ॥

अतिशय-अर्थ द्योत्य होय तौ तिङन्तसे परे तमप् (तम) प्रत्यय होय ॥

१३३१ तरप्तमपौ घः । १ । १ । २२ ॥

एतौ घसंज्ञौ स्तः ॥

तरप् (तर) और तमप् (तम) प्रत्ययोंकी घसंज्ञा हो ॥

१३३२ किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे । ५।४।११ ॥

किम एदन्तात्तिङोऽव्ययाच्च यो घस्तदन्तादामुः स्यान्नतु द्रव्यप्रकर्षे ॥

किम् , एकारान्त, तिङन्त और अव्यय इनसे परे घसंज्ञक (सू० १३३१) प्रत्यय तदन्तसे परे आमु (आम्) प्रत्यय हो, परन्तु-द्रव्यकी प्रकर्षता द्योत्य होय तौ नहीं। किम्+तम+आम् (सू० ९५ । ९७) किन्तमाम् (कैसा अतिशय करके, अर्थात्-वरसता है इत्यादि) । प्राह्णेतमाम् (अतिशय करके प्रातःकाल) । पचतितमाम् (सू० १३३०) (वोह अतिशय करके पकाता है) । उच्चैस्तमाम् (अत्यन्त ऊंचे स्वरसे) ॥

द्रव्यप्रकर्षे तु-उच्चैस्तमस्तरुः ॥

द्रव्यवाचककी प्रकर्षतामें तौ, उच्चैस्तमः तरुः (अत्यन्त ऊंचा वृक्ष) यहां आमु (सू० १३३२) न हुआ ॥

१३३३ द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ । ५ । ३ । ५७ ॥

द्वयोरेकस्यातिशये विभक्तव्ये चोपपदे सुप्तिङन्तादेतौ स्तः। पूर्वयोरपवादः॥

दोमेंसे एक जो अलग किया जाय तौ उसके अतिशय द्योतित होनेमें सुबन्त और तिङन्तसे परे तरप् (तर) और ईयसुन् (ईयस्) प्रत्यय हो, परन्तु—यदि द्विवचनान्त अथवा विभजनीय उपपद रहे तौ। यह सूत्र पूर्वोक्त प्रत्ययों (मू० १३२९ । १३३०) का अपवाद है। अयमनयोरतिशयेन लघुः = लघु+तर = लघुतरः, लघु+ईयस् (मू०१२६३) लघीयान् (इन दोमें यह अतिशय करके हलका है)। उदीच्याः प्राच्येभ्यः पटुतराः, पटीयांसः (उदीच्य (उत्तर दिशाके रहनेवाले) जन प्राच्य (पुरविये) जनोंसे अतिशय करके पण्डित हैं) ॥ प्रशस्य+इष्ठन् ॥

१३३४ प्रशस्यस्य श्रः । ५ । ३ । ६० ॥

अस्य श्रादेशः स्यादिष्ठेयसोः परतः ॥

प्रशस्य-शब्दकू श्र आदेश होय इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय परे रहते। श्र+इष्ठ। यहां मू० १२६३ वा २६२ की प्राप्ति होनेपर—॥

१३३५ प्रकृत्यैकाच् । ६ । ४ । १६३ ॥

इष्ठादिष्वेकाच् प्रकृत्या स्यात् ॥

इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय परे रहते एकाच् प्रकृतिभावसे रहे। श्र+इष्ठ = (मू०३३) श्रेष्ठः, श्रेयान् (मू० ३३) (सबसे श्रेष्ठ)। प्रशस्य+इष्ठ। इसी अवस्थामें—॥

१३३६ ज्य च । ५ । ३ । ६१ ॥

प्रशस्यस्य ज्यादेशः स्यादिष्ठेयसोः ॥

प्रशस्य-शब्दकू ज्य आदेशभी होय, इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय परे रहते। ज्य+इष्ठ (मू० ३३) ज्येष्ठः, प्रशस्य+ईयस् (मू० १३३६) ज्य+ईयस् ॥

१ किन्हीं २ प्राच्योंने "श्र+इष्ठ" इस दशामें (मू० २४) से टि० लोपकी प्राप्ति होती है ऐसा लिखा है, सो यथार्थ नहीं।

१३३७ ज्यादादीयसः । ६ । ४ । १६० ॥

ज्य (सू० १३३६) से परे जो ईयसुन् प्रत्यय तिसे आ आदेश होय । ज्य+आयस् (सू० ८९) ज्यायान् (सू० ५३) (सर्वोत्तम) ॥ बहु+इमन् (सू० १२६१) ॥

१३३८ बहोर्लोपो भू च बहोः । ६ । ४ । १५८ ॥

बहोः परयोरिमेयसोर्लोपः स्यात् बहोश्च भूरादेशः ॥

बहु-शब्दसे परे जो इमनिच् (सू० १२६१) और ईयसुन् (सू० १३३३) प्रत्यय तिनके प्रथम वर्ण (सू० ८९) का लोप होय और बहु-कू भू आदेश होय । भू+मन् (सू० १९८ । २०१) भूमा (बहुतायत) । बहु+इष्ठ (सू० १३२९ । १३३८) भू+इष्ठ । इस दशामें-॥

१३३९ इष्ठस्य यिट् च । ६ । ४ । १५९ ॥

बहोः परस्य इष्ठस्य लोपः स्याद्यिडागमश्च ॥

बहु-शब्दसे परे जो इष्ठन् तिसके आदिवर्ण (सू० ८९) का लोप हो और यिट् (यि) आगम होय । भू+यि+ष्ठ = भूयिष्ठः (अत्यन्त बहुत) ॥ अतिशयेन स्रग्वी = स्रज्+विन् (सू० १३०३)+इष्ठ ॥

१३४० विन्मतोर्लुक् । ५ । ३ । ६५ ॥

विनो मतुपश्च लुक् स्यादिष्ठेयसोः ॥

विन्-का और मतुप्-का लुक् होय, इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय परे रहते । स्रज्+इष्ठ = स्रजिष्ठः, स्रज्+विन्+ईयस् = स्रजीयान् (अतिशय करके मालाधारी) । अतिशयेन त्वग्वान् = त्वचिष्ठः, त्वचीयान् (अतिशय त्वचावाला) ॥

१३४१ ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः । ५ । ३ । ६७ ॥

थोडी असमाप्ति-विशिष्ट अर्थमें विद्यमान प्रातिपदिकसे परे कल्पप् (कल्प), देश्य और देशीयर् (देशीय) प्रत्यय हों । ईषदूनो विद्वान् = विद्वत्+कल्प = विद्वत्कल्पः, विद्वद्देश्यः, विद्वद्देशीयः (जि-

सके विद्वान् होनेमें थोडीही कसर होय)। पचति+कल्प = पचतिकल्पम् (पाक करनेमें थोडीही कमी रखता है) ॥

१३४२ विभाषा सुपो बहुच्पुरस्तात्तु । ५ । ३ । ६८ ॥

ईषदसमाप्तिविशिष्टेऽर्थे सुबन्ताद्बहुज्वा, स च प्रागेव, न तु परतः ॥

थोडी असमाप्तिविशिष्ट अर्थमें विद्यमान सुबन्तके पूर्वभागमें बहुच् (बहु) प्रत्यय विकल्प करके होय । ईषदूनः पटुः = बहु+ पटु = बहुपटुः, पटुकल्पः (जिसके विद्वान् होनेमें थोडीही कसर हो) ॥

सुपः किम् ? यजतिकल्पम् ॥

सुबन्तके पूर्वभागमें कहनेसे, यजतिकल्पम (मू० १३४१) (यज्ञ करनेमें कुछ न्यूनता करता है) यहां बहुच् प्रत्यय नहीं हुआ, क्योंकि-' यजति ' पद सुबन्त नहीं है ॥

१३४३ प्रागिवात्कः । ५ । ३ । ७० ॥

इवे प्रतिकृतावित्यतः प्राक्कोऽधिक्रियते ॥

इस सूत्रसे लेकर मूल १३४९ के पूर्वपर्यन्त क प्रत्ययका अधिकार किया जाता है ॥

१३४४ अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः । ५ ।३। ७१॥

कापवादः ॥

अव्यय और सर्वनामकी टि-के पहिले प्रागिवीय प्रत्ययके अर्थमें अकच् (अक) प्रत्यय हो। यह क (मू० १३४३) प्रत्ययका अपवाद है ॥

१३४५ अज्ञाते । ५ । ३ । ७३ ॥

अज्ञातरूप अर्थमें वर्त्तमान प्रातिपदिकसे परे क (मू० १३४३) प्रत्यय होय । कस्यायमश्वः = अश्व+क = अश्वकः (यह किसका अश्व है ?)। उच्चकैः[1] (क्या ऊंचा है ?)। नीचकैः (क्या नीचा है ?)। सर्वकेः (न जाने सब कितने हैं ?) ॥

१ उच्चैः = उच्च्+ऐ = उच्च्+अक्+ऐ = उच्चकैः । इत्यादि ।

१३४६ कुत्सिते । ५ । ३ । ७४ ॥

कुत्सित-अर्थमेंभी प्रातिपदिकसे परे क प्रत्यय हो। कुत्सितोऽश्वः = अश्व+क = अश्वकः (अधम घोडा) ॥

१३४७ किंयत्तदो निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच् ।५।३।९२॥

किम्, यत्, तद्, इन शब्दोंसे परे स्वार्थमें डतरच् (अतर) प्रत्यय हो, यदि दोमेंसे एकका निश्चय करना होय तौ। अनयोः कतरो वैष्णवः = किम्+अतर (सू० २६९) कतरः (इन दोनोंमें कौनसा वैष्णव है) । यत्+अतर (सू०२६९) यतरः (दोनोंमें जो) । तत्+अतर = ततरः (दोनोंमें वोह) ॥

१३४८ वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच् । ५ । ३ । ९३॥

बहूनां मध्ये एकस्य निर्धारणे डतमज्वा । जातिपरिप्रश्न इति प्रत्याख्यातमाकरे ॥

बहुतोंके मध्य (बीच) मेंसे एकका निश्चय करना हो तौ किम् आदि (सू० १३४७) शब्दोंसे परे विकल्पसे डतमच् (अतम) प्रत्यय हो । जातिके प्रश्नविषे, इस निमित्तका महाभाष्यमें खण्डन किया है । कतमो भवतां कठः = किम्+अतम (सू० २६९) कतमः (आपमेंसे कठशाखाका पाठक कौन है) । यतमः (सबमें जो हो) । ततमः (सबमें जो वोह) । यत्+अक (सू० १३४४ यकः (सू० २१४ । ३०२) (सबमें जो है)। तद्+अक(सू०३४०) सकः (सबमें वोह है) ॥

॥ इति प्रागिवीयाः ॥

१३४९ इवे प्रतिकृतौ । ५ । ३ । ९६ ॥

कन्स्यात् ॥

प्रतिकृति-(प्रतिनिधि) रूप अर्थमें वर्त्तमान प्रातिपदिकसे परे स्वार्थमें कन् (क) प्रत्यय हो । अश्व इव प्रतिकृतिः = अश्व+क = अश्वकः (घोडेकी प्रतिमा) ॥

१३५० (सर्वप्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे कन्)॥

सम्पूर्ण प्रातिपदिकोंसे परे स्वार्थमें कन् (क) प्रत्यय होय । अश्व एव = अश्व+क = अश्वकः (घोडा) ॥

१३५१ तत्प्रकृतवचने मयट् । ५ । ४ । २१ ॥

प्राचुर्येण प्रस्तुत प्रकृत तस्य वचन प्रतिपादनम् । भावे अधिकरणे वा ल्युट् आद्ये-प्रकृतमन्नमन्नमयम् । अपूपमयम् । द्वितीये तु अन्नमयो यज्ञः । अपूपमयं पर्व ॥

अतिशयकरके आरंभ की गई वस्तुके कहनेमें प्रथमान्त समर्थसे परे मयट् (मय) प्रत्यय हो। द्वितीय अर्थ अतिशयकरके आरम्भ की गई जो वस्तु तिसका कहना जिसमें हो तिस अर्थमें वर्त्तमान जो प्रथमान्त तिससे परे मयट (मय) प्रत्यय होय । बाहुल्यता करके जो आरंभ किया जाय उसे प्रकृत कहते हैं, उसके कहनेकू वचन कहते हैं । सूत्रोक्त वचन-शब्दके दो अर्थ होते हैं, कारण—ल्युट् प्रत्यय भाव और अधिकरण अर्थहीमें होता है । भाव-अर्थमें—अन्न+मय = अन्नमयम् (अन्नका अधिकार) । अपूपमयम् (मालपुवोंका अधिकार) । अधिकरण-अर्थमें—अन्नमयो यज्ञः (जिसमें अन्नका अधिकार हो ऐसा यज्ञ) । अपूपमयं पर्व (जिसमें मालपुवोंका आधिकार हो ऐसा पर्व) ॥

१३५२ प्रज्ञादिभ्यश्च । ५ । ४ । ३८ ॥

अण् स्यात्स्वार्थे ॥

प्रज्ञ-आदि शब्दोंसे परे स्वार्थमें अण् (अ) प्रत्यय हो । प्रज्ञ एव = प्रज्ञ+अ (सू० १०१४ । २६२) प्राज्ञः (पण्डित) । देवता+अ (सू० १०१४ । २६२) दैवतः (देवता) । बन्धु+अ (सू० १०१४ । १०९५ । २७) बान्धवः (भ्राता) ॥

१३५३ बह्वल्पार्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम् । ५ । ४ । ४२ ॥

अधिक वा न्यून इस अर्थमें विद्यमान कारक (सू० ९५९)

से परे शस् (शः) प्रत्यय विकल्प करके होय । बहूनि ददाति = बहु+शः = बहुशः (बहुत देता है) । अल्पशः (थोडा देता है)॥

१३५४ (आद्यादिभ्यस्तसेरुपसंख्यानम्) ॥

आदि इत्यादिक सुबन्तमात्रसे परे तसिल् (सू० १३०९) प्रत्यय हो । आदौ इति = आदि+तस् = आदितः (आदिमें) । मध्यतः (मध्यमें) । अन्ततः (अन्तमें) । पृष्ठतः (पीछेसे) । पार्श्वतः (करवटि होय) ॥ आकृतिगणोऽयम् ॥ यह आकृतिगण है । यथा–स्वरेण = स्वरतः (स्वर करके)। वर्णतः (वर्ण करके)॥

१३५५ कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्त्तरि च्विः । ५ । ४ । ५० ॥

विकारात्मतां प्राप्नुवत्यां प्रकृतौ वर्त्तमानाद्विकारशब्दात् स्वार्थे च्विर्वा स्यात्करोत्यादिभिर्योगे ॥

जो प्रकृति पीछेसे विकारकू प्राप्त होय उसमें वर्त्तमान प्रातिपदिकसे परे कृ, भू, अस् इन धातुओंके योगमें स्वार्थमें च्वि (इ) प्रत्यय विकल्प करके होय परन्तु–॥

१३५६ (अभूततद्भाव इति वक्तव्यम्) ॥

ऐसा कहना चाहिये कि उक्त च्वि प्रत्यय अभूततद्भाव[1] (अभूतके सत्यभाव) में होय । अकृष्णः कृष्णः सम्पद्यते तं करोति = कृष्ण+इ ॥

१३५७ अस्य च्वौ । ७ । ४ । ३२ ॥

अवर्णस्य ईत्स्यात् च्वौ ॥

च्वि-प्रत्यय परे रहते अकारकू ई आदेश हो । कृष्णी+इ = कृष्णीकरोति (जो प्रथम काला न हो पीछे कृष्णताकू प्राप्त हो अर्थात्–उसे कोई काला कर दे) । ब्रह्मीभवति (जो पीछेसे ब्राह्मण हो) । गङ्गीस्यात् (वोह गंगा हो जाय) ॥

१ जो सत्य हो उसे भूत कहते है, जो सत्य न हो वोह अभूत कहाता है । और अभूतका जो सत्यभाव सो अभूततद्भाव कहाता है ।

१३५८ (अव्ययस्य च्वावीत्वं नेति वाच्यम्) ॥

ऐसा कहना चाहिये कि-च्विप्रत्यय परे रहते अकारकूं ई (मू० १३५७) न हो । दोषाभूतमहः (दिन जो रात हो गया) । दिवाभूता रात्रिः (रात जो कि दिन हो गई) ॥

१३५९ विभाषा साति कार्त्स्न्यें । ५ । ४ । ५२ ॥

च्विविषये सातिर्वा स्यात्साकल्ये ॥

जहां च्वि-प्रत्ययकी प्राप्ति होय तहां साति (सात्) प्रत्यय विकल्प करके होय । कृत्स्नं शस्त्रमग्निः सम्पद्यते = अग्नि+सात्+भवति । यहां (मू० १७०) की प्राप्ति होनेपर-॥

१३६० सात्पदाद्योः । ८ । ३ । १११ ॥

सस्य षत्वं न स्यात् ॥

साति-प्रत्ययके सकारकूं और पदके आदि सकारकूं ष न होय। अग्निसाद्भवति (मू० ८३) (सब शस्त्र अग्नि हो जाता है) । दधि सिञ्चति (वोह दहीको सींचता है) ॥ अग्नि+इ+भवति(मू०१३५५)॥

१३६१ च्वौ च । ७ । ४ । २६ ॥

च्वौ च परे पूर्वस्य दीर्घः स्यात् ॥

च्वि-प्रत्यय परे रहते पूर्व अच्कूं दीर्घ होय । अग्नीभवति (वोह सब अग्नि होता है) ॥

१३६२ अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्धादनितौ डाच् ।५।४।५७॥

द्व्यजवरं न्यूनं नतु-ततो न्यूनम्, अनेकाजिति यावत्तादृशमर्धं यस्य तस्माड्डाच् स्यात् कृभ्वस्तिभिर्योगे ॥

मनुष्यकी वाणीसे अतिरिक्त शब्दका अनुकरण (अनुहार) जो कि ऐसा अनेकाच् कि जिसके अर्धभागमें दो अच्से कम न हों तिससे परे डाच् (आ) प्रत्यय विकल्प करके हो यदि कृ, भू, अस् इनमेंसे किसीको योग होय तौ, परन्तु-इति-शब्द परे रहते नहीं । पटत्+आ+करोति ॥

१३६३ (डाचि बहुलं द्वे भवतः) ॥

इति डाचि विवक्षिते द्वित्वम् ॥

डाच् प्रत्यय परे रहते बहुल (सू० ८३७) करके द्वित्व हों। इसके अनुसार डाच्‌की विवक्षा करनेपर द्वित्व हुआ। पटत्+पटत्+आ+करोति ॥

१३६४ (नित्यमाम्रेडिते डाचीति वक्तव्यम्) ॥

डाच्पर यदाम्रेडित तस्मिन्परे पूर्वपरयोर्वर्णयोः पररूप स्यात्। इति तकारपकारयोः पकारः ॥

ऐसा कहना चाहिये कि-जिससे डाच् प्रत्यय पर ऐसा आम्रेडित परे रहते पूर्व और पर वर्णके स्थानमें नित्य पररूप हो। इसके अनुसार तकार और पकारकू पकारही हो जाता है। पटपटा करोति (सू० २६९) (वोह पट २ शब्द करता है) ॥

अव्यक्तानुकरणात्किम् ? ईषत्करोति। द्व्यजवरार्धात्किम् ? श्रत्करोति। अवेति किम् ? खरटखरटाकरोति। अनितौ किम् पटिति करोति ॥

मनुष्यके शब्दसे अतिरिक्त कहनेसे-ईषत्करोति (ईषत (थोडा) ऐसा शब्द करता है) यहां डाच् न हुआ ॥ जिसके आधेमें दो अच्‌से कम न हो, यह क्यों कहा ? श्रतकरोति (वोह श्रत् शब्द करता है) ॥ दो अच्से कम न हों यह कहनेसे ज्ञात हुआ कि-दो अच्‌से जादेमें डाच् प्रत्यय हो जाता है-खरटखरटाकरोति (वोह खरट शब्द करता है) ॥ इति-शब्द परे न हो ऐसा कहनेसे पटत्+इति=पटितिकरोति (वोह पटत ऐसा शब्द करता है) यहां डाच् प्रत्यय नहीं हुआ ॥

॥ इति तद्धिताः ॥

अथ स्त्रीप्रत्ययाः ।

१३६५ स्त्रियाम् । ४ । १ । ३ ॥

अधिकारोऽयं समर्थानामिति यावत् ॥

समर्थ सूत्रपर्यन्त स्त्रीप्रत्ययका अधिकार है ॥

१३६६ अजाद्यतष्टाप् । ४ । १ । ४ ॥

अजादीनामकारान्तस्य च वाच्यं यत्स्त्रीत्वं तत्र द्योत्ये टाप् स्यात् ॥

अजा-आदि शब्दोंका और अकारान्त-शब्दोंका स्त्रीत्व (स्त्रीलिंगत्व) जब प्रकाश करना हो तब उनसे परे टाप् (आ) प्रत्यय हो । अज+आ = अजा (बकरी) । एडक+आ = एडका (मेंढी)। अश्व+आ = अश्वा (घोडी) । चटक+आ = चटका (चटका) । मूषिक (सू० १३८३)+आ = मूषिका (चुहिया) । बाल+आ = बाला (बालकी) । वत्स+आ = वत्सा (वछिया) । होढ+आ = होढा । मन्द+आ = मन्दा । विलात+आ = विलाता (कन्या) । मेध+आ = मेधा (बुद्धि) ॥ अकारान्त-शब्दोंके उदाहरण—गङ्ग+आ = गङ्गा (भागीरथी गंगा) । सर्व+आ = सर्वा (सब स्त्री) ॥

१३६७ उगितश्च । ४ । १ । ६ ॥

उगिदन्तात्प्रातिपदिकात्स्त्रियां ङीप्स्यात् ॥

स्त्रीलिंग प्रकाश करना हो तो उगित् प्रातिपदिकसे परे ङीप् (ई) प्रत्यय हो । भवत् (सू० ८४९)+ई (सू० ४१२) भवन्ती (होती हुई स्त्री) । पचत्+ई = पचन्ती (पकाती हुई स्त्री) ॥

१३६८ टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः । ४ । १ । १५ ॥

अनुपसर्जनं यट्टिदादि तदन्तं यददन्तं प्रातिपदिकं ततः स्त्रियां ङीप्स्यात् ॥

टित्, ढ-(सू० ११९१) प्रत्यय, अण्-(सू० १०९४) प्रत्यय, अञ् (सू० १०९२), द्वयसच् (सू० १२७३), दघ्नच् (सू०

१२७३), मात्रच् (मू० १२७३), तयप् (मू० १२७७), ठक् (मू० १२२२), ठञ् (मू० १२५०), कञ् (मू० ३९०) और क्वरप् (पा० ३ । २ । १६३ ॥) यह टित्-आदि प्रत्यय कहाते हैं, अनुपसर्जन जो टित्-आदि प्रत्यय तिनका अवयव जो अकार वोह जिन प्रातिपदिकोंके अन्तमें हो तिनसे परे स्त्रीत्वकी विवक्षामें ङीप् (ई) प्रत्यय हो । कुरुचर (मू० ८५८)+ई = कुरुचरी (जो कुरुदेशकू जाती है) । नदट् (मू० ८५१)+ई = नदी (नदी) । देवट् (मू० ८५१)+ई = देवी (देवी) । सौपर्णेय (मू० ११११)+ई = सौपर्णेयी (सुपर्णाके वंशकी स्त्री) । ऐन्द्र (मू० ११३८)+ई = ऐन्द्री (जिस ऋचाका इन्द्र देवता हो) औत्स (मू० १०९२)+ई = औत्सी (उत्सके वंशकी कन्या) । ऊरुद्वयस–ऊरुदघ्न–ऊरुमात्र (मू० १२७३) +ई = ऊरुद्वयसी, ऊरुदघ्नी, ऊरुमात्री (जिस स्त्रीका प्रमाण जांघभर हो) । पञ्चतय (मू० १२७७)+ई = पञ्चतयी (जिस स्त्रीके पांच अवयव हों) । आक्षिक (मू० १२२३)+ई = आक्षिकी (पासा खेलनेवाली) । प्रास्थिक (मू० १२५०)+ई = प्रास्थिकी (प्रस्थमात्र प्रमाणवाली) । लावणिक (मू० १२५०)+ई = लावणिकी (लवण वेचनेवाली) । यादृश (मू० ३९०)+ई = यादृशी (जैसी) । इत्वर+ई = इत्वरी (जानेवाली) ॥

१३६९ (नञ्स्नञीकक्ख्युंस्तरुणतलुनानामुपसंख्यानम्)॥

नञ् और स्नञ् (मू० १०९३), ईकक् (मू० १०८९) और ख्युन्[1] (पा० ३ । २ । ५६ ॥) यह प्रत्यय तथा तरुण और तलुन इन प्रातिपदिकोंसे परे स्त्रीत्वकी विवक्षामें ङीप् (ई) प्रत्यय हो । स्त्रैण+ई = स्त्रैणी (स्त्रीसम्बंधिनी) । पौंस्न+ई = पौंस्नी (पुरुषसंबंधिनी) । शाक्तीक (मू० १०८९)+ई = शाक्तीकी (शक्तिमती स्त्री) । आढ्यंकरण (मू० ९५ । ९७)+ई = आढ्यंकरणी (जो

१ आढ्यसुभगस्थूलपलितनग्नान्धप्रियेषु च्व्यर्थेष्वच्वौ कृञः करणे ख्युन् ।३।२।५६॥

स्त्री दरिद्रको धनी करे) । तरुण+ई = तरुणी, तलुनी (युवा स्त्री)॥

१३७० यञश्च । ४ । १ । १६ ॥

यञन्तास्त्रियां ङीप्स्यात् ॥

स्त्रीत्वकी विवक्षामें यञ् (सू० १०९८) प्रत्ययान्तसे परे ङीप् (ई) प्रत्यय हो । गार्ग्य (सू० १०९८) +ई (सू० २६२) गार्ग्य्+ई ॥

१३७१ हलस्तद्धितस्य । ६ । ४ । १५० ॥

हलः परस्य तद्धितयकारस्योपधाभूतस्य लोप ईति परे ॥

हल्से परे जो तद्धितकी उपधाका यकार तिसका लोप हो । गार्ग्+ई = गार्गी (गर्गवंशकी कन्या) ॥

१३७२ प्राचां ष्फ तद्धितः । ४ । १ । १७ ॥

यञन्तात् ष्फो वा स्यात् सच तद्धितः ॥

प्राचीनोंके मतमें यञन्तसे परे ष्फ (फ) प्रत्यय विकल्प करके होय और वोह तद्धित माना जाय । गार्ग्य+फ (सू० ११०३) गार्ग्य+आयन् (सू० २६२) ॥

१३७३ षिद्गौरादिभ्यश्च । ४ । १ । ४१ ॥

षिद्भ्यो गौरादिभ्यश्च ङीष् स्यात् ॥

षित्-प्रत्ययान्तसे परे और गौर-आदि शब्दोंसे परे ङीष् (ई) प्रत्यय हो । गार्ग्य्+आयन्+ई (सू० १५८) गार्ग्यायणी (गर्गऋषिके वंशकी कन्या) । नर्त्तक+ई = नर्त्तकी (नाचनेवाली) । गौर+ई = गौरी (पार्वती) ॥

१३७४ (आमनडुहः स्त्रियाम्वा)॥

अनडुह् शब्द स्त्रीत्व विवक्षामें गौरादिगणमें आमसहित विकल्पसे पठित है । अनड्वाही, अनडुही (गाय)॥ आकृतिगणोऽयम् ॥ यह गौरादिगण आकृतिगण है ॥

१ यहा–" शिल्पिनि ष्वुन् । ३ । १ । १४५ ॥" इस सूत्रसे ष्वुन् प्रत्यय होता है ।

१३७५ वयसि प्रथमे । ४ । १ । २० ॥

प्रथमवयोवाचिनोऽदन्तात् स्त्रियां ङीप् स्यात् ॥

प्रथमआयुवाचक अदन्त प्रातिपदिकसे परे स्त्रीत्व विवक्षामें ङीप् (ई) प्रत्यय हो । कुमार+ई (सू० २६२) कुमारी (नवीन कन्या)॥

१३७६ द्विगोः । ४ । १ । २१ ॥

अदन्ताद् द्विगोर्ङीप् स्यात् ॥

अकारान्त द्विगु (सू० ९९७) समाससे परे ङीप् (ई) प्रत्यय होय । त्रिलोक+ई = त्रिलोकी (तीनों लोकका समूह) । त्रिफला और त्र्यनीका इन पदोंमें टाप् (सू० १३६६) होता है क्योंकि-यह अजा-आदि गणमें पढे हैं ॥

१३७७ वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः । ४ । १ । ३९ ॥

वर्णवाची योऽनुदात्तान्तस्तोपधस्तदन्तादनुपसर्जनात्प्रातिपदिकाद्वा ङीप् तकारस्य नकारादेशश्च ॥

ऐसा वर्णवाचक जो अनुपसर्जन कि जिसका अन्त तौ अनुदात्त और उपधा तकार हो, तिससे परे ङीप् (ई) प्रत्यय विकल्प करके हो और उपधाभूत तकारकू नकार आदेश हो । एत+ई = एनी, एता (चितकबरी) । रोहित+ई = रोहिणी, रोहिता (नक्षत्र वा मृगी) ॥

१३७८ वोतो गुणवचनात् । ४ । १ । ४४ ॥

उदन्ताद्गुणवाचिनो वा ङीष् स्यात् ॥

उकारान्त गुणवाचक प्रातिपदिकसे परे ङीष् (ई) प्रत्यय विकल्प करके हो । मृदु+ई (सू० १९) मृद्वी, मृदुः (कोमल स्त्री) ॥

१३७९ बह्वादिभ्यश्च । ४ । १ । ४५ ॥

एभ्यो वा ङीष् स्यात् ॥

बहुआदिगणपठित शब्दोंसेभी परे ङीष् (ई) प्रत्यय विकल्प करके होय । बहु+ई (सू० १९) बह्वी, बहुः (स्थूल स्त्री) ॥

१३८० (कृदिकारादक्तिनः) ॥

क्तिन् (सू० ९३२) प्रत्ययान्तकू छोडकर कृत्-प्रत्ययके इकारसे परे ङीष् (ई) प्रत्यय विकल्प करके हो। रात्रि+ई (सू० २६२) रात्री, रात्रिः (रात) ॥

१३८१ (सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके) ॥

किन्हीं २ आचार्योंका यह अभिप्राय है कि क्तिन् प्रत्ययकू छोडकर और सब इकारान्तोंसे परे ङीष् (ई) प्रत्यय विकल्प करके हो। शकटि+ई (सू० २६२) शकटी, शकटिः (गाडी) ॥

१३८२ पुंयोगादाख्यायाम् । ४ । १ । ४८ ॥

या पुमाख्या पुंयोगात्स्त्रियां वर्त्तते ततो ङीष् ॥

जो पुंल्लिंगवाचक शब्द पुंल्लिंगके योगसे स्त्रीलिंगमें प्रवृत्त होय उससे परे ङीष् (ई) प्रत्यय हो। गोपस्य स्त्री=गोप+ई (सू० २६२) गोपी (ग्वालियेकी स्त्री) ॥

१३८३ (पालकान्तान्न) ॥

जिसके अन्तमें पालक-शब्द होय तिससे परे ङीष् (सू०१३८२) न होय। गोपाल+आ (सू० १३६६) गोपालिका (सू० १३८४) (ग्वालियेकी स्त्री)। अश्वपालिका (अश्वरक्षककी स्त्री) ॥ सर्वक+आ (सू० १३६६) ॥

१३८४ प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः।७।३।४४॥

प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्याकारस्येकारः स्यादापि स आप् सुपः परो नचेत् ॥

प्रत्ययमें स्थित जो ककार तिससे पहिले अकू इ होय आप् परे रहते, यदि वोह आप् सुप्से परे हो तौ न हो। सर्विका (कुत्सित स्त्री)। कारक+आ (सू० १३६६)कारिका (बनानेवाली)॥

अतः किम् ? नौका। प्रत्ययस्थात्किम् ? शक्नोतीति शका। असुपः किम् ? बहुपरिव्राजका नगरी ॥

अकू हो ऐसा कहनेसे नौका (नाव) यहां औकू इ आदेश न हुआ। प्रत्ययमें स्थित हो ऐसा कहनेसे शका (जो समर्थ) यहां इकारादेश न हुआ क्योंकि-' शका ' का ककार धातुका है। यदि

सुप्से परे आप हो तो नहीं यह कहनेसे बहुपरिव्राजका–नगरी (जिसमें बहुत संन्यासी हों ऐसी नगरी काशी) यहांभी अत्कू इकार न हुआ कारण–'बहुपरिव्राजका' में पहिले सुप्का लुक् हुआ है तदनन्तर टाप् हुआ है ॥

१३८५ (सूर्याद्देवतायां चाब्वाच्यः) ॥

देवता-(देवी) अर्थमें सूर्य-शब्दसे परे चाप् (आ) प्रत्यय हो। सूर्यस्य स्त्री देवता = सूर्य+आ (सू० २६२) सूर्या (सूर्य-की स्त्री जो देवी है) ॥ देवतायां किम् ? ॥ देवी अर्थमें हो यह कहनेसे–सूर्य+ई (सू० २६२) यहां–॥

१३८६ (सूर्यागस्त्ययोश्छे च ङ्यां च) ॥

सूर्य और अगस्त्य शब्दोंके यकारका लोप होय, छ और ङी प्रत्यय परे रहते। सूर+ई = सूरी–कुन्ती (सूर्यकी मनुष्यदेहवाली स्त्री अर्थात्–कुन्ती) ॥

१३८७ इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्य्याणामानुक् । ४ । १ । ४९ ॥

एषामानुगागमः स्यात् ङीष् च ॥

इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, हिम, अरण्य, यव, यवन, मातुल, आचार्य इन शब्दोंकू आनुक् (आन्) का आगम हो और ङीष् (ई) प्रत्यय होय। इन्द्रस्य स्त्री = इन्द्र+आन्+ई = इन्द्राणी (इन्द्रकी स्त्री)। वरुण+आन्+ई = वरुणानि (वरुणकी स्त्री)। भव+आन्+ई = भवानी (महादेवकी स्त्री)। शर्व+आन्+ई = शर्वाणी, रुद्र+आन+ई = रुद्राणी, मृड+आन्+ई = मृडानी (शिवजीकी स्त्री)।

१३८८ (हिमारण्ययोर्महत्त्वे) ॥

हिम और अरण्य-शब्दोंसे परे महत्त्व-अर्थमें ङीष् प्रत्यय और आनुक् (सू० १३८७) आगम हो। महद्धिमम् = हिम+आन्+

ई = हिमानी (बहुत हिम) । महदरण्यम् = अरण्य+आन्+ई = अरण्यानी (बडा वन) ॥

१३८९ (यवाद्दोषे) ॥

यव-शब्दसे परे ङीष् प्रत्यय और आनुक् आगम (सू० १३८७) दोष-(दुष्ट) अर्थमें होय । दुष्टो यवो = यव+आन्+ई = यवानी (दुष्ट यव) ॥

१३९० (यवनाल्लिप्याम्) ॥

यवन-शब्दसे परे लिपि- (लिखाई) अर्थमें ङीष् प्रत्यय और आनुक् आगम (सू० १३८७) होय । यवनानां लिपिः = यवन+आन्+ई = यवनानी (यवनोंकी लिपि) ॥

१३९१ (मातुलोपाध्याययोरानुग्वा) ॥

मातुल और उपाध्याय शब्दोंकू आनुक् आगम विकल्प करके होय । मातुल+आन्+ई = मातुलानी, मातुल+ई (सू० २६२) मातुली (मामी) । उपाध्याय+आन्+ई = उपाध्यायानी, उपाध्याय+ई (सू० २६२) उपाध्यायी (उपाध्यायकी स्त्री) । आचार्यस्य स्त्री = आचार्य+आन्+ई । यहां सू० १५८ की प्राप्ति होनेपर-॥

१३९२ (आचार्यादणत्वं च) ॥

आचार्य-शब्दसे परे आन्के नकारकू णकार न होय । आचार्यानी (आचार्यकी स्त्री) ॥

१३९३ (अर्यक्षत्रियाभ्यां वा स्वार्थे) ॥

अर्य और क्षत्रिय इन दो शब्दोंसे परे स्वार्थमें ङीष् (ई) प्रत्यय और आनुक् (आन्) आगम एकसाथ विकल्प करके होंय । अर्य +आन्+ई (सू० २६२।१५८) अर्याणी, अर्या (वैश्यजातिकी स्त्री) । क्षत्रिय+आन्+ई = क्षत्रियाणी, क्षत्रिया (क्षत्रियजातिकी स्त्री) ॥

१३९४ क्रीतात् करणपूर्वात् । ४ । १ । ५० ॥

क्रीतान्ताददन्तात् करणादेः स्त्रियां ङीष् स्यात् ॥

करण-कारकवाचक शब्द जिसके पहिले होय ऐसा जो क्रीत शब्द वोह जिसके अन्तमें हो तिससे परे ङीष् प्रत्यय हो । वस्त्र+क्रीत+ई=वस्त्रक्रीती (जो स्त्री वस्त्र करके मोल ली गई हो) ॥ क्वचिन्न–धनक्रीता ॥ किसी २ स्थानमें उक्त विधि नहीं लगती । जैसे–धन+क्रीत+आ=धनक्रीता (जो स्त्री धन करके मोल ली गई हो) ॥

१३९५ स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् ।४।१।५४ ॥

असयोगोपधमुपसर्जन यत् स्वाङ्ग तदन्ताददन्तात् ङीष् वा ॥

जिसकी उपधा संयोग न हो ऐसा जो शरीरके अवयववाचक उपसर्जन वोह जिसके अन्तमें हो तिस प्रातिपदिकसे परे ङीष् (ई) प्रत्यय विकल्प करके होय । केशानतिक्रान्ता=अतिकेश+ई=अतिकेशी, अतिकेश+आ=अतिकेशा (जिसके केश सबसे सुन्दर हों) । चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा (जिस स्त्रीका मुख चन्द्रमाकी सदृश हो) ॥

असयोगोपधात्किम् ? सुगुल्फा । उपसर्जनात् किम् ? सुशिखा ॥

जिसकी उपधा संयोग न हो यह कहनेसे सुगुल्फा (जिस स्त्रीके गुल्फ सुन्दर हों) यहां उपधामें संयोग होनेके कारण ङीष् न हुआ ॥ उपसर्जन क्यों कहा ? सुशिखा (सुन्दर जूडा) यहां ङीष् न हुआ ॥

१३९६ न क्रोडादिबह्वचः । ४ । १ । ५६ ॥

क्रोडादेर्बह्वचश्च स्वाङ्गान्न ङीष् ॥

क्रोड आदि तथा बहुत अच्वाले स्वाङ्गवाचक शब्दोंसे परे ङीष् (सू० १३९५) प्रत्यय न हो । कल्याणक्रोडा (जिस स्त्रीकी छाती सुन्दर हो) ॥ आकृतिगणोऽयम् ॥ यह क्रोडादिगण आकृतिगण है । सुजघना (जिसका नितम्बाग्रभाग सुन्दर हो) ॥

१३९७ नखमुखात्संज्ञायाम् । ४ । १ । ५८ ॥

न ङीप् ॥

नख और मुख-शब्दोंसे परे संज्ञा-(नाम) अर्थमें ङीष् (मू० १३९५) प्रत्यय न होय। शूर्पनख+आ (मू० २६२) ॥

१३९८ पूर्वपदात्संज्ञायामगः । ८ । ४ । ३ ॥

पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य नस्य णः स्यात्सज्ञायां नतु गकारव्यवधाने ॥

पूर्वपदमें स्थित निमित्त (र-ष) से परे संज्ञा-अर्थमें नकारकू णकार होय, परन्तु—गकारका व्यवधान होय तौ नकू ण न हो। शूर्पणखा (रावणकी बहिन)। गौरमुख+आ = गौरमुखा (गौर-मुख नामवाली स्त्री) ॥

सज्ञायां किम् ? ताम्रमुखी कन्या ॥

संज्ञा-अर्थ (मू० १३९७) में कहनेसे ताम्रमुखी कन्या (तांबेके सदृश मुखवाळी कन्या) यहां संज्ञा न होनेसे ङीष् (मू० १३९७) का निषेध न हुआ ॥

१३९९ जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् । ४ । १ । ६३ ॥

जातिवाचि यन्न च स्त्रियां नियतमयोपध ततः स्त्रियां ङीष् ॥

जाति-वाचक जो प्रातिपदिक नियम करके स्त्रीलिंग न हो और उसकी उपधा यकार न हो तौ उससे परे स्त्रीत्वकी विवक्षामें ङीष् (ई) प्रत्यय होय। तट+ई = तटी (किनार)। वृषल+ई = वृषली (शूद्रस्त्री)। बह्वृच+ई = बह्वृची (ऋग्वेदियोंकी जातिकी स्त्री) ॥

जातेः किम् ? मुण्डा। अस्त्रीविषयात् किम् ? बलाका। अयोपधात्किम् ? क्षत्रिया ॥

जाति-वाचक कहनेसे मुण्डा (सिरमुंडी) यहां ङीष् न हुआ। नियम करके स्त्रीलिंग न हो यह कहनेसे बलाका (बकपंक्ति) में नहीं हुआ। उसकी उपधा यकार न हो यह कहनेसे क्षत्रिया (क्षत्रिय जातिकी स्त्री) यहां ङीप् न हुआ ॥

१४०० (योपधप्रतिषेधे गवयहयमुकयमनुष्यमत्स्यानामप्रतिषेधः) ॥

यकार उपधावाले जिन शब्दोंका निषेध (मू० १३९९) किया

है उस निषेधमें वक्ष्यमाण शब्दोंको छोड देना चाहिये। गवय (नील गाय), हय (घोडा), मुकय (जंतुविशेष), मनुष्य (मनुष्य), मत्स्य (मछली) अर्थात्–इन शब्दोंसे ङीष् हो जाय। गवय+ई = गवयी (नील गाय)। हय+ई = हयी (घोडी)। मुकय+ई = मुकयी जन्तुविशेषरूप स्त्री)। मनुष्य+ई (सू० १३७१) मनुषी (स्त्री)। मत्स्य+ई ॥

१४०१ (मत्स्यस्य ङ्याम्) ॥

ङीष्-प्रत्यय परे रहते मत्स्य-शब्दके यकारका लोप हो। मत्सी (मछली) ॥

१४०२ इतो मनुष्यजातेः। ४। १। ६५ ॥

ङीप् स्यात् ॥

मनुष्यजातिवाचक इकारान्त प्रातिपदिकसे परे स्त्रीत्वकी विवक्षामें ङीष् (ई) प्रत्यय हो। दाक्षि+ई = दाक्षी (दक्षके वंशकी स्त्री)॥

१४०३ ऊङुतः। ४। १। ६६ ॥

उदन्तादयोपधान्मनुष्यजातिवाचिनः स्त्रियामूङ् स्यात् ॥

मनुष्यजातिवाचक जिस उकारान्त प्रातिपदिककी उपधा यकार न हो तिससे परे स्त्रीत्व विवक्षामें ऊङ् (ऊ) प्रत्यय हो। कुरु+ऊ = कुरूः (कुरुवंशकी स्त्री) ॥

अयोपधात्किम् ? अध्वर्युः ब्राह्मणी ॥

जिसकी उपधा यकार न हो यह कहनेसे अध्वर्युः ब्राह्मणी (यजुर्वेदियोंके वंशकी स्त्री) यहां ऊङ् न हुआ ॥

१४०४ पङ्गोश्च। ४। १। ६८ ॥

ऊङ् स्यात् ॥

पङ्गु-शब्दसेभी परे ऊङ् (ऊ) प्रत्यय हो पङ्गु+ऊ = पङ्गूः (लँगडी) ॥

१४०५ (श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च) ॥

श्वशुर-शब्दके उकार और अकारका लोप हो तथा ऊङ् (ऊ)

प्रत्ययभी हो। श्वशुर+ऊ = श्वशुर्+ऊ = श्वश्रूः (सास)॥

१४०६ ऊरूत्तरपदादौपम्ये। ४। १। ६९॥

उपमानवाचि पूर्वपदमूरूत्तरपदं यत्प्रातिपदिकं तस्मादूङ्॥

जिस प्रातिपदिकका पूर्वपद उपमानवाचक हो और उत्तरपद ऊरु शब्द हो तिस (प्रातिपदिक) से परे ऊङ् (ऊ) प्रत्यय होय। करभ+ऊरु+ऊ = करभोरूः (जिस स्त्रीकी जंघा करभकी समान हो)॥

१४०७ संहितशफलक्षणवामादेश्च। ४। १। ७०॥

अनौपम्यार्थं सूत्रम्॥

संहित (सटा हुआ), शफ (खुर), लक्षण (चिन्ह), वाम (सुन्दर) इन शब्दोंमेंसे जिसके आदिमें कोई शब्द होय और ऊरु शब्द उत्तरपद हो तिस प्रातिपदिकसे परे स्त्रीत्वकी विवक्षामें ऊङ् (ऊ) प्रत्यय हो। जिन प्रयोगोंका पूर्वपद उपमानवाचक नहीं है उनके लिये यह सूत्र किया है। संहितोरूः (जिसकी जंघा सटी हुई हो)। शफोरूः (जिसकी जंघा खुरकी समान हो)। लक्षणोरूः (जिसकी जंघामें कोई चिन्ह हो)। वामोरूः (जिस स्त्रीकी जंघा सुन्दर हो)॥

१४०८ शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्। ४। १। ७३॥

शार्ङ्गरवादेरञो योऽकारस्तदन्ताच्च जातिवाचिनो ङीन् स्यात्॥

जातिवाचक शार्ङ्गरवादिगणपठित शब्दोंसे परे तथा अञ्-प्रत्यय अकार जिसके अन्तमें हो तिस प्रातिपदिकसे परे स्त्रीत्वकी विवक्षामें ङीन् (ई) प्रत्यय होय। शार्ङ्गरव+ई = शार्ङ्गरवी (शृङ्ग ऋषिके वंशकी कन्या)। वैद (सू० ११०७)+ई = वैदी (विद ऋषिके वंशकी कन्या)। ब्राह्मण+ई = ब्राह्मणी (ब्राह्मण जातिकी स्त्री)। नृ+ई॥

१४०९ (नृनरयोर्वृद्धिश्च)॥

नृ और नर-शब्दकू वृद्धि हो, ङीन्-प्रत्यय परे रहते। नारी (स्त्री)॥

१ मणिबन्धसे लेकर कनिष्ठिकाके मूलपर्यन्त हाथके बाह्य भागको करभ कहते हैं।

१४१० यूनस्तिः । ४ । १ । ७७ ॥

युवन्शब्दात्स्त्रियां तिः प्रत्ययः स्यात् ॥

स्त्री-वाचक युवन्-शब्दसे परे ति-प्रत्यय होय । युवन्+ति (सू० २०१) युवतिः (युवा स्त्री) ॥

॥ इति स्त्रीप्रत्ययाः ॥

इति श्रीवरदराजभट्टकृता लघुसिद्धान्तकौमुदी समाप्ता.

शास्त्रान्तरे प्रविष्टानां, बालानां चोपकारिका ।
कृता वरदराजेन, लघुसिद्धान्तकौमुदी ॥ १ ॥

जिनकी अन्य २ शास्त्रोंमें प्रवृत्ति है परन्तु—व्याकरणशास्त्रमें प्रवृत्ति नहीं तिनके और बालकोंके अर्थ श्रीयुक्त भट्ट वरदराजने इस लघुसिद्धान्तकौमुदीको निर्माण किया है ॥ १ ॥

इति श्रीमहर्षिकौत्सगोत्रोद्भवानां विद्वद्वृन्दपुरन्दराणां सुप्रसिद्धपदवाक्यप्रमाणपारावारीणदैवज्ञश्रीभट्टचन्द्रमणिसूरिकुक्षिजश्रीमज्ज्वालानाथकोविदानां तनयेन रुहेलखण्डान्तर्गतपश्चिमोत्तरप्रान्तमुरादाबादनिवासिना व्रजरत्नभट्टाचार्य्येण प्रणीता रसालाख्यव्याख्या समाप्ता.



पुस्तक मिलनेका ठिकाना—गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" छापाखाना, कल्याण—मुंबई.

॥ श्रीः ॥

गणेष्वनिर्दिष्टा उत्तरत्रोदाहृता धातवः ।

अर्द्-गतौ, याचने च ॥ १ ॥ (भ्वादिगणीयः । परस्मैपदी । सकर्मकः[1] । सेट्) अर्दति । आनर्द । अर्दिता । अर्दिष्यति । अर्दतु । आर्दत् । अर्देत् । अर्द्यात् । आर्दीत् । आर्दिष्यत् ॥

अव-रक्षणे ॥ २ ॥ (भ्वादिः । पर० । सक[2]० । सेट्) अवति । आव । अविता । अविष्यति । अवतु । आवत् । अवेत् । अव्यात् । आवीत् । आविष्यत् ॥

अशूङ्-व्याप्तौ ॥ ३ ॥ (स्वादिः । आत्मने० । सक० । वेट्) अश्नुते । आनशे । अशिता, अष्टा । आशिष्यते, अक्ष्यते । अश्नुताम् । आश्नुत । अश्नुवीत । अशिषीष्ट, अक्षीष्ट । आशिष्ट, आष्ट । आशिष्यत, आक्ष्यत ॥

ऋ-गतौ ॥ ४ ॥ (भ्वा० । प० । सक० । अनिट्) ऋच्छति । आर । अर्त्ता । अरिष्यति[3] । ऋच्छतु । आर्च्छत् । ऋच्छेत् । अर्यात् । आर्षीत् । आरिष्यत् ॥

ऋ-गतौ ॥ ५ ॥ (जुहो० । प० । सक० । अनिट्) इयर्ति । लुङादौ भ्वादिवत् ज्ञेयम् ॥

एजृ-दीप्तौ ॥ ६ ॥ (भ्वा० । आ० । अ० । से०) एजते । ऐजिष्ट ॥

एजृ-कम्पने ॥ ७ ॥ (भ्वा० । प० । स० । से०) एजति । ऐजीत् ॥

ओणृ-अपनयने ॥ ८ ॥ (भ्वा० । प० । स० । से०) ओणति । औणीत् ॥

कुट्ट-भर्त्सनछेदनयोः ॥ ९ ॥ (चु० । उभ० । स० । से०) कुट्टयति-ते । अचुकुट्टत्-त ॥

क्षिप-प्रेरणे ॥ १० ॥ (तु० । उ० । स० । अनि०) क्षिपति-ते । चिक्षेप-चिक्षिपे । क्षेप्ता । क्षेप्तासि-से । क्षेप्स्यति-ते । क्षिप-

---

१ पीडायामकर्मकः, पीडार्जनने सकर्मकः, याचने द्विकर्मकः । २ प्रीतावकर्मकः । ३ "ऋद्धनो. स्ये" इतीडागम. ।

तु-ताम् । अक्षिपत्-त । क्षिपेत्-त । क्षिप्यात्-क्षिप्सीष्ट । अक्षैप्सीत्-अक्षिप्त । अक्षेप्स्यत्-त ॥

क्षै-क्षये ॥११॥ (भ्वा० । प० । अ० । अनि०) क्षायति । अक्षासीत् ॥

कृत-संशब्दने ॥ १२ ॥ (चु० । उभ० । स० । से०) कीर्त्तयति-ते । अचकीर्त्तत्-त ॥

खनु-अवदारणे ॥१३॥ (भ्वा० । उ० । स० । से०) खनति-ते । चखान-चख्ने । खनिता २ । खनिष्यति-ते । अखनत्-त । खनेत्-त । खायात्, खन्यात्-खनिषीष्ट । अखनीत्, अखानीत्-अखनिष्यत्-त ॥

घट-चेष्टायाम् ॥ १४ ॥ (भ्वा० । आ० । अ० । से०) घटते । जघटे । घटिता । घटिष्यते । घटताम् । अघटत । घटेत । घटिषीष्ट । अघटिष्ट । अघटिष्यत ॥

चर-गतिभक्षणयोः ॥ १५ ॥ (भ्वा० । प० । स० । से०) चरति । चचार । चरिष्यति । अचारीत् ॥

चकासृ-दीप्तौ ॥ १६ ॥ (अदा० । प० । अ० । से०) चकास्ति । चकासांचकार-बभूव-आस । अचकासीत् ॥

छद-आवरणे ॥ १७ ॥ (चु०[1] । उभ० । स० । से०) छादयति-ते । अच्छादीत्, अच्छदीत्-अच्छादिष्ट ॥

जि-जये ॥ १८ ॥ (भ्वा० । प० । स० । अ०) जयति । जिगाय । अजैषीत् ॥

जप-व्यक्तायां वाचि ॥ १९ ॥ (भ्वा० । प० । स० । से०) जपति । जजाप । अजा (ज) पीत् ॥

जल्प-व्यक्तायां वाचि ॥ २० ॥ (भ्वा० । प० । स० । से०) जल्पति । जजल्प । अजल्पीत् ॥

जक्ष-भक्षणहसनयोः ॥ २१ ॥ (अ० । प० । स०[2] । से०) जक्षिति । जक्षतः । जक्षति । अजक्षीत् ॥

१ पक्षे भ्वादि । २ हसनेऽकर्मक ।

ज्वर–रोगे॥२२॥(भ्वा० । प० । अ० । से०) ज्वरति । अज्वारीत् ॥

जागृ–निद्राक्षये ॥ २३ ॥ (अ० । प० । अ० । से०) जागर्ति । जागराम्बभूव–आस–चकार । अजागः । अजागरुः । अजागरीत् ॥

ज्या–वयोहानौ ॥ २४ ॥ (क्र्या० । प० । अ० । अ०) जिनाति । जिज्यौ । अज्यासीत् ॥

ज्ञप–ज्ञाने ज्ञापने च[1] ॥ २५ ॥ (चु० । उ० । स० । से०) ज्ञपयति–ते । अजिज्ञपत्–त ॥

ञित्वरा–सम्भ्रमे ॥ २६ ॥ (भ्वा० । आ० । अ० । से० । त्वरते । तत्वरे । अत्वरिष्ट ॥

दाण्–दाने ॥ २७ ॥ (भ्वा० । प० । स० । अ०) यच्छति । ददौ । अदात् ॥

दरिद्रा–दुर्गतौ ॥ २८ ॥ (अ० । प० । अ० । से०) दरिद्राति । ददरिद्रौ । अदरिद्रीत्, अदरिद्रासीत् ॥

दंश–दशने ॥ २९ ॥ (भ्वा० । प० । स० । अ०) दशति । ददंश । अदांक्षीत् ॥

दृशिर्–प्रेक्षणे ॥ ३० ॥ (भ्वा०[2] । प० । स० । अ०) पश्यति । ददर्श । अदर्शत्–अद्राक्षीत् ॥

दण्ड–दण्डनिपातने ॥ ३१ ॥ (चु० । उ० । द्विक० । से०) दण्डयति–ते । अददण्डत्–त ॥

दृह–हिंसायाम ॥ ३२ ॥ (भ्वा० । प० । स० । से०) दर्हति । अदर्हीत् ॥

द्रै–कुत्सायां गतौ ॥ ३३ ॥ (भ्वा० । प० । अ० । अ०) द्रायति । अद्रासीत् ॥

---

१ मारणे–आलोके–तोषणे–निशाने–स्तुतावपि। २ यद्यपि एतस्य भौवादिकत्वमसन्दिग्धमेव, श्रीपाणिनेर्धातुपाठदर्शनात्, तथापि श्रीपण्डितशिवदत्तमहाशयैस्तौदादिकत्वमेव निर्विवादमिति प्रतिपादितं जाम्बवतीपरिणयस्य 'अपश्यती' ति पदावलोकनात् ।

धुर्वी–हिंसायाम् ॥ ३४ ॥ (भ्वा० । प० । स० । से०) धूर्वति । अधूर्वीत् ॥

पठ–व्यक्तायां वाचि ॥ ३५ ॥ (भ्वा० । प० । स० । से०) पठति । पपाठ । पेठतुः । अपाठीत्, अपठीत् ॥

पत्लृ–पतने ॥ ३६ ॥ (भ्वा० । प० । अ० । से०) पतति । पपात । पेपतुः । अपतत् ॥

प्रुङ्–गतौ ॥ ३७ ॥ (भ्वा० । आ० । सक० । अ०) प्रवते । पुप्रुवे । अप्रोष्ट ॥

भ्रंशु–अधःपतने ॥ ३८ ॥ (भ्वा० । आ० । अ० । से०) भ्रंशते । अभ्रशत्–अभ्रंशिष्ट ॥

भास–दीप्तौ ॥ ३९ ॥ (भ्वा० । आ० । अ० । से०) भासते । बभासे । अभासिष्ट ॥

भिक्ष–याचने ॥ ४० ॥ (भ्वा० । आ० । द्वि० । से०) भिक्षते । बिभिक्षे । अभिक्षत । अभिक्षिष्ट ॥

भ्राज–दीप्तौ ॥ ४१ ॥ (भ्वा० । आ० । अ० । से०) भ्राजते । बभ्राजे, भ्रेजे । अभ्राजिष्ट ॥

मत्रि–गुप्तसम्भाषणे ॥ ४२ ॥ (चु० । आ[1]० । स० । से०) मन्त्रयते । अमन्त्रत ॥

मव–बन्धने ॥ ४३ ॥ (भ्वा० । प[2]० । स० । से०) मवति । अम(मा)वीत् ॥

मन्थ–विलोडने ॥ ४४ ॥ (क्र्या० । प० । स० । से०) मथ्नाति । अमथ्नात् ॥

मन–ज्ञाने ॥ ४५ ॥ (दि० । आ० । स० । अ०) मन्यते । मेने । अमंस्त ॥

मा–माने ॥ ४६ ॥ (अ० । प० । स० । अ०) माति । अमात् । अमासीत् ॥

१ क्वत्र कुत्र चित्–परस्मैपदीय । २ आत्मनेभाषोऽपि ।

मृजूष्-शुद्धौ ॥ ४७ ॥ (अ० । प० । स० । वे०) मार्ष्टि । मृष्टः । मार्जन्ति, मृजन्ति । अमार्ट-ड् । अमार्जीत्, अम्राक्षीत्, अमार्क्षीत् ॥

यती-प्रयत्ने ॥ ४८ ॥ (भ्वा० । आ० । अ० । से०) यतते । अयतत, अयतिष्ट ॥

याचृ-याचने ॥ ४९ ॥ (भ्वा० । उ० । द्वि० । से०) याचति-ते । अयाचीत्-अयाचिष्ट ॥

युध-संप्रहारे ॥ ५० ॥ (दि० । आ० । स० । अ०) युध्यते । युयुधे । अयुध्यत । अयुद्ध ॥

रमु-क्रीडायाम् ॥ ५१ ॥ (भ्वा० । आ० । अ० । अ०) रमते । रेमे । अरंस्त ॥

रञ्ज-रागे ॥ ५२ ॥ (भ्वा० । उ० । अ० । से०) रजति-ते । अरांक्षीत्-अरंक्त ॥

रिष-हिंसायाम् ॥ ५३ ॥ (दि० । प० । स० । से०) रिष्यति ॥

रुष-हिंसायाम् ॥ ५४ ॥ (दि० । प० । अ० । अ) रुष्यति । अरुषत्, अरोषीत् ॥

डुलभष्-प्राप्तौ ॥ ५५ ॥ (भ्वा० । आ० । अ० । अ०) लभते । लेभे । अलब्ध ॥

लुठि-स्तेये ॥ ५६ ॥ (तु० । प० । अ० । से०) लुठति । अलुठीत् ॥

वचू-परिभाषणे ॥ ५७ ॥ (अ० । प०[1] । अ० । अ०) वक्ति । अवोचत्-त ॥

वस-निवासे ॥ ५८ ॥ (भ्वा० । प० । अ० । अ०) वसति । उवास । अवात्सीत् ॥

वद-व्यक्तायां वाचि ॥ ५९ ॥ (भ्वा० । प० । स० । से०) वदति । उवाद । उद्यात् । अवादीत् ॥

टुवपू-छेदने ॥ ६० ॥ (भ्वा० । उ० । स० । अ०) वपति-ते । उवाप । अवापीत्-अवप्त ॥

टुवेपृ-कम्पने ॥ ६१ ॥ (भ्वा० । आ० । अ० । से०) वेपते । अवेपिष्ट ॥

[1] ब्रुवादेशस्तु उभयपदी ।

विच्छ-गतौ ॥६२॥ (तु०। प०[1]। स०। से०) विच्छाति। अविच्छीत् ॥
टुओश्वि-गतिवृद्ध्योः ॥ ६३ ॥ (भ्वा० । प० । स०[2] । से०) श्वयति । शुश्वाव । शिश्वाय । अश्वत्, अशिश्वियत्, अश्वयीत् ॥
शप-आक्रोशे ॥ ६४ ॥ (भ्वा० । उ० । स० । अ० । शपति-ते । शशाप-शेपे । अशाप्सीत, अशप्त ॥
शासु-अनुशिष्टौ ॥ ६५ ॥ (अ० । प० । स० । से०) शास्ति । अशात् । अशिशत् ॥
शासु-हिंसायाम् ॥ ६६ ॥ (भ्वा० । प० । स० । से०) शासति ॥
शॄ-हिंसायाम् ॥६७॥ (क्र्या०। प०।स०।से०) शृणाति। अशारीत् ॥
शंसु-स्तुतौ ॥ ६८ ॥ (भ्वा० । प० । स० । से०) शंसति ॥
षिञ्-बंधने ॥ ६९ ॥ (स्वा० । उ० । अ०) सिणाति ॥
साध-संसिद्धौ ॥ ७० ॥ (स्वा० । प० । अ० । अ०) साध्नोति ॥
षिवु-गतिशोषणयोः ॥ ७१ ॥ (दि० । प० । अ०[3] । से०) सीव्यति । असेवीत् ॥
ष्टुञ्-स्तुतौ ॥ ७२ ॥ (अ० । उ० । स० । अ०) स्तौति ॥
ष्ठा-गतिनिवृत्तौ ॥ ७३ ॥ (भ्वा० । प० । अ०) तिष्ठति ॥
स्मृ-स्मरणे ॥७४॥ (भ्वा० । प० । स० । अ०) स्मरति । अस्मार्षीत् ॥
स्वद-आस्वादने ॥ ७५ ॥ (भ्वा० । प० । अ० ।[4] से०) स्वदति ॥
स्वप-शये ॥ ७६ ॥ (अ० । प० । अ० । अ०) स्वपिति ॥
षह-मर्षणे ॥ ७७ ॥ (भ्वा० । प० । अ० । अ०) सहति ॥
हसे-हसने ॥ ७८ ॥ (भ्वा० । प० । अ० । से०) हसति । जहास । अहासीत ॥
हि-गतौ ॥ ७९ ॥ (स्वा०। प०। स० । अ०) हिनोति । जिघाय । अहिनोत् । अहैषीत् ॥

व्रजरत्नभट्टाचार्य्यः ।

---

१ आयपक्षे उभयपदी=विच्छायति-ते । अविच्छायीत्-अविच्छायिष्ट । २ वृद्धावकर्मक । ३ गतौ सकर्मक । ४ सिचि-सेट् । लुङि परस्मैपदम् वेट् ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ परिभाषापाठः ।

व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्न हि संदेहादलक्षणम् ॥ यथोद्देशं संज्ञापरिभाषम् ॥ कार्यकालं संज्ञापरिभाषम् ॥ अनेकान्ता अनुबन्धाः॥(एकान्ताः॥)नानुबन्धकृतमनेकाल्त्वम् ॥नानुबन्धकृतमनेजन्तत्वम्॥नानुबन्धकृतमसारूप्यम्॥उभयगतिरिह भवति ॥कार्यमनुभवन् हि कार्यी निमित्ततया नाश्रीयते॥यदागमास्तद्गुणीभूतास्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते॥निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति ॥ यत्रानेकविधमान्तर्यं तत्र स्थानत आन्तर्यं बलीयः ॥ अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्य ग्रहणम् ॥ गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्यसंप्रत्ययः ॥ अनिनस्मन्ग्रहणान्यर्थवता चानर्थकेन च तदन्तविधिं प्रयोजयन्ति ॥ एकयोगनिर्दिष्टानां सह वा प्रवृत्तिस्सह वा निवृत्तिः ॥ एकयोगनिर्दिष्टानां क्वचिदेकदेशोऽप्यनुवर्त्तते ॥ भाव्यमानेन सवर्णानां ग्रहणं न ॥ भाव्यमानोऽप्युकारस्सवर्णान् गृह्णाति ॥ वर्णाश्रये नास्ति प्रत्ययलक्षणम् ॥ उणादयोऽव्युत्पन्नानि प्रातिपदिकानि ॥ प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स विहितस्तदादेस्तदन्तस्य ग्रहणम् ॥ प्रत्ययग्रहणे चापञ्चम्याः ॥ उत्तरपदाधिकारे प्रत्ययग्रहणे न तदन्तग्रहणम् ॥ स्त्रीप्रत्यये चानुपसर्जने न ॥ संज्ञाविधौ प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणं नास्ति ॥ कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणम् ॥ पदाङ्गाधिकारे तस्य च तदन्तस्य॥व्यपदेशिवदेकस्मिन् निमित्तसद्भावात् ॥ ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिर्नास्ति ॥ व्यपदेशिवद्भावो-

१ अर्थवत आगमस्तद्गुणीभूतोऽर्थवद्ग्रहणेन गृह्यते। दयानन्दस्वामिकृतपाठान्तरम् ।

ऽप्रातिपदिके नं ॥ यस्मिन्विधिस्तदादावल्ग्रहणे ॥ सर्वो द्वन्द्वो विभाषैकवद्भवति ॥ सर्वे विधयश्छन्दसि विकल्प्यन्ते ॥ प्रकृतिवदनुकरणं भवति ॥ एकदेशविकृतमनन्यवत् ॥ पूर्वपरनित्यान्तरङ्गापवादानामुत्तरोत्तरं बलीयः ॥ पुनःप्रसङ्गविज्ञानात्सिद्धम् ॥ सकृद् गतौ विप्रतिषेधे यद्बाधितं तद्बाधितमेव ॥ विकरणेभ्यो नियमो बलीयान् ॥ परान्नित्यं बलवत् ॥ शब्दान्तरस्य प्राप्नुवन्विधिरनित्यो भवति ॥ शब्दान्तरात्प्राप्नुवतः शब्दान्तरे प्राप्नुवतश्चानित्यत्वम् ॥ लक्षणान्तरेण प्राप्नुवन्विधिरनित्यः ॥ क्वचित्कृताकृतप्रसङ्गमात्रेणापि नित्यता ॥ यस्य च लक्षणान्तरेण निमित्तं विहन्यते न तदनित्यम् ॥ यस्य च लक्षणान्तरेण निमित्तं विहन्यते तदप्यनित्यम् ॥ स्वरभिन्नस्य च प्राप्नुवन्विधिरनित्यः ॥ असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे ॥ नाजानन्तर्ये बहिष्ट्वप्रक्लृप्तिः ॥ अन्तरङ्गानपि विधीन् बहिरङ्गो लुग् बाधते ॥ पूर्वोत्तरपदनिमित्तकार्यात्पूर्वमन्तरङ्गोऽप्येकादेशो न ॥ अन्तरङ्गानपि विधीन् बहिरङ्गो ल्यप् बाधते ॥ वार्णादाङ्गं बलीयो भवति ॥ अकृतव्यूहाः पाणिनीयाः ॥ अन्तरङ्गादपवादो बलीयान् ॥ येन नाप्राप्ते यो विधिरारभ्यते स तस्य बाधको भवति ॥ क्वचिदपवादविषयेऽप्युत्सर्गोऽभिनिविशते ॥ पुरस्तादपवादा अनन्तरान्विधीन् बाधन्ते नोत्तरान् ॥ मध्येऽपवादाः पूर्वान्विधीन्बाधन्ते नोत्तरान् ॥ अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वेति ॥ पूर्वं ह्यपवादा अभिनिविशन्ते पश्चादुत्सर्गाः ॥ प्रकल्प्य चापवादविषयं तत उत्सर्गोऽभिनिविशते ॥ उपसंजनिष्यमाणनिमित्तोऽप्यपवाद उपसंजातनि-

मित्तमप्युत्सर्गं बाधत इति ॥ अपवादो यद्यन्यत्र चरितार्थस्तर्ह्यन्तरङ्गेण बाध्यते ॥ अभ्यासविकारेषु बाध्यबाधकभावो नास्ति॥ ताच्छीलिकेषु वासरूपविधिर्नास्ति ॥ क्तल्युट्तुमुन्खलर्थेषु वासरूपविधिर्नास्ति ॥ लादेशेषु वासरूपविधिर्नास्ति ॥ उभयनिर्देशे पञ्चमीनिर्देशो बलीयान् ॥ प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम् ॥ विभक्तौ लिङ्गविशिष्टाग्रहणम् ॥ सूत्रे लिङ्गवचनमतन्त्रम् ॥ नञिवयुक्तमन्यसदृशाधिकरणे तथा ह्यर्थगतिः ॥ गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः ॥ सांप्रतिकाभावे भूतपूर्वगतिः ॥ बहुव्रीहौ तद्गुणसंविज्ञानमपि ॥ चानुकृष्टं नोत्तरत्र ॥ स्वरविधौ व्यञ्जनमविद्यमानवत् ॥ हल्स्वरप्राप्तौ व्यञ्जनमविद्यमानवत् ॥ निरनुबन्धकग्रहणे न सानुबन्धकस्य ग्रहणम् ॥ तदनुबन्धकग्रहणे नातदनुबन्धकस्य ग्रहणम् ॥ क्वचित्स्वार्थिकाः प्रकृतितो लिङ्गवचनान्यतिवर्तन्ते ॥ समासान्तविधिरनित्यः ॥ सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्य ॥ संनियोगशिष्टानामन्यतरापाये उभयोरप्यपायः ॥ ताच्छीलिके णेऽणूकृतानि भवन्ति ॥ धातोः कार्यमुच्यमानं तत्प्रत्यये भवति ॥ तन्मध्यपतितस्तद्ग्रहणेन गृह्यते ॥ लुग्विकरणालुग्विकरणयोरलुग्विकरणस्य ॥ प्रकृतिग्रहणे ण्यधिकस्यापि ग्रहणम् ॥ अङ्गवृत्ते पुनर्वृत्तावविधिः ॥ संज्ञापूर्वकविधेरनित्यत्वम् ॥ आगमशास्त्रमनित्यम् ॥ गणकार्यमनित्यम् ॥ अनुदात्तेत्त्वलक्षणमात्मनेपदमनित्यम् ॥ नञ्घटितमनित्यम् ॥ आतिदेशिकमनित्यम् ॥ सर्वविधिभ्यो लोपविधिरिड्विधिश्च बलवान् ॥ प्रकृतिग्रहणे यङ्लु-

गन्तस्यापि ग्रहणम् ॥ विधौ परिभाषोपतिष्ठते नानुवादे ॥ उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी ॥ अन्त्यविकारेऽन्त्यसदेशस्य ॥ नानर्थकेऽलोन्त्यविधिरनभ्यासविकारे॥ प्रधानाप्रधानयोः प्रधाने कार्यसंप्रत्ययः ॥ अवयवप्रसिद्धेः समुदायप्रसिद्धिर्बलीयसी॥ व्यवस्थितविभाषयापि कार्याणि क्रियन्ते[1] ॥ विधिनियमसंभवे विधिरेव ज्यायान् ॥ सामान्यातिदेशे विशेषानतिदेशः ॥ प्रत्ययाप्रत्यययोः प्रत्ययस्यैव ग्रहणम् ॥ सहचरितासहचरितयोस्सहचरितस्यैव ग्रहणम् ॥ श्रुतानुमितयोः श्रुतसम्बन्धो बलीयान्॥ लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणम् ॥ गामादावग्रहणेष्वविशेषः ॥ प्रत्येकं वाक्यपरिसमाप्तिः ॥ क्वचित्समुदायेऽपि ॥ अभेदका गुणाः ॥ बाधकान्येव निपातनानि ॥ पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्तिः ॥ लक्ष्ये लक्षणं सकृदेव प्रवर्तते ॥ निषेधाश्च बलीयांसः॥ अनिर्दिष्टार्थाः प्रत्ययाः स्वार्थे ॥ योगविभागादिष्टसिद्धिः॥पर्यायशब्दानां लाघवगौरवचर्चा नाद्रियते ॥ ज्ञापकसिद्धं न सर्वत्र ॥ पूर्वत्रासिद्धीयमद्वित्वे ॥ एकस्या आकृतेश्चरितः प्रयोगो द्वितीयस्यास्तृतीयस्याश्च न भविष्यति ॥ संप्रसारणं तदाश्रयं च कार्यं बलवत् ॥ क्वचिद्विकृतिः प्रकृतिं गृह्णाति ॥ औपदेशिकप्रायोगिकयोरौपदेशिकस्यैव ग्रहणम् ॥ श्तिपा शपानुबन्धेन निर्दिष्टं यद्गणेन च ॥ यत्रैकाज्ग्रहणं चैव पञ्चैतानि न यङ्लुकि ॥ पदगौरवाद्योगविभागो गरीयान् ॥ अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः ॥ इति परिभाषापाठः समाप्तः ॥

[1] दत्तात्रो गलोग्राह इति यो । च सद्विधि । मिथस्ते न विभाष्यन्ते गवाक्षः शसितव्रत १॥

अथ शिक्षा.

येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात् ।
कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः ॥
अज्ञानान्धस्य लोकस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै पाणिनये नमः ॥

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा ।
शास्त्रानुपूर्वं तद्विद्याद्यथोक्तं लोकवेदयोः ॥ १ ॥
प्रसिद्धमपि शब्दार्थमविज्ञातमबुद्धिभिः ।
पुनर्व्यक्तीकरिष्यामि वाच उच्चारणे विधिम् ॥ २ ॥
त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शंभुमते मताः ।
प्राकृते संस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयंभुवा ॥ ३ ॥
स्वरा[1] विंशतिरेकश्च स्पर्शानां[2] पंचविंशतिः ।
यादयश्च स्मृता ह्यष्टौ चत्वारश्च यमाः स्मृताः ॥ ४ ॥
अनुस्वारो विसर्गश्च ᳲ क ᳲ पौ चापि पराश्रितौ ।
दुःस्पृष्टश्चेति विज्ञेयो ऌकारः प्लुत एव च ॥ ५ । १ ॥
आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान्मनो युङ्क्ते विवक्षया ।
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ॥ ६ ॥
मारुतस्तूरसि चरन्मन्द्रं जनयति स्वरम् ।
प्रातः सवनयोगं तं छन्दोगायत्रमाश्रितम् ॥ ७ ॥
कण्ठे माध्यंदिनयुगं मध्यमं त्रैष्टुभानुगम् ।
तारं तार्तीयसवनं शीर्षण्यं जागतानुगम् ॥ ८ ॥

१ अच स्वरा । २ कादयो मावसाना स्पर्शा ।

सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहतो वक्त्रमापद्य मारुतः ।
वर्णाञ्जनयते तेषां विभागः पंचधा स्मृतः ॥ ९ ॥
स्वरतः कालतः स्थानात्प्रयत्नानुप्रदानतः ।
इति वर्णविदः प्राहुर्निपुणं तन्निबोधत ॥ १० । २ ॥
उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च स्वरास्त्रयः ।
ह्रस्वो दीर्घः प्लुत इति कालतो नियमा अचि ॥ ११ ॥
उदात्ते निषादगांधारावनुदात्त ऋषभधैवतौ ।
स्वरितप्रभवा ह्येते षड्जमध्यमपंचमाः ॥ १२ ॥
अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कंठः शिरस्तथा ।
जिह्वामूलं च दंताश्च नासिकोष्ठौ च तालु च ॥ १३ ॥
ओभावश्च विवृत्तिश्च शषसा रेफ एव च ।
जिह्वामूलमुपध्मा च गतिरष्टविधोष्मणः ॥ १४ ॥
यद्योभावप्रसंधानमुकारादिपरं पदम् ।
स्वरान्तं तादृशं विद्याद्यदन्यद्व्यक्तमूष्मणः ॥ १५ । ३ ॥
हकारं पञ्चभिर्युक्तमन्तःस्थाभिश्च संयुतम् ।
औरस्यं तं विजानीयात्कण्ठ्यमाहुरसंभृतम् ॥ १६ ॥
कण्ठ्यावहाविचुयशास्तालव्या ओष्ठजावुपू ।
स्युर्मूर्धन्या ऋटुरषा दन्त्या लृतुलसाः स्मृताः ॥ १७ ॥
जिह्वामूले तु कुः प्रोक्तो दन्त्योष्ठ्यो वः स्मृतो बुधैः ।
एऐ तु कण्ठतालव्यावोऔ कण्ठोष्ठजौ स्मृतौ ॥ १८ ॥
अर्धमात्रा तु कण्ठ्या स्यादेकारैकारयोर्भवेत् ।
ओकारौकारयोर्मात्रा तयोर्विवृतसंवृतम् ॥ १९ ॥

संवृतं मात्रिकं ज्ञेयं विवृतं तु द्विमात्रिकम् ।
घोषा वा संवृताः सर्वे अघोषा विवृताः स्मृताः ॥२०।४॥
स्वराणामूष्मणां चैव विवृतं करणं स्मृतम् ।
तेभ्योपि विवृतावेङौ ताभ्यामैचौ तथैव च ॥ २१ ॥
अनुस्वारयमानां च नासिकास्थानमुच्यते ।
अयोगवाहा विज्ञेया आश्रयस्थानभागिनः ॥ २२ ॥
अलाबुवीणानिर्घोषो दन्त्यमूल्यस्वराननु ।
अनुस्वारस्तु कर्तव्यो नित्यं ह्रोः शषसेषु च ॥ २३ ॥
अनुस्वारे विवृत्त्यां तु विरामे चाक्षरद्वये ।
द्विरोष्ठ्यौ तु विगृह्णीयाद्यत्रौकारवकारयोः ॥ २४ ॥
व्याघ्री यथा हरेत्पुत्रान्दंष्ट्राभ्यां न च पीडयेत् ।
भीता पतनभेदाभ्यां तद्वद्वर्णान्प्रयोजयेत् ॥ २५ । ५ ॥
यथा सौराष्ट्रिका नारी तक्रँ इत्यभिभाषते ।
एवं रङ्गाः प्रयोक्तव्याः खे अराँ इव खेदया ॥ २६ ॥
रङ्गवर्णं प्रयुञ्जीरन्नो ग्रसेत्पूर्वमक्षरम् ।
दीर्घस्वरं प्रयुञ्जीयात्पश्चान्नासिक्यमाचरेत् ॥ २७ ॥
हृदये चैकमात्रस्त्वर्धमात्रस्तु मूर्धनि ।
नासिकायां तथार्धं च रङ्गस्यैवं द्विमात्रता ॥ २८ ॥
हृदयादुत्करे तिष्ठन्कांस्येन समनुस्मरन् ।
मार्दवं च द्विमात्रं च जघन्वाँ इति निदर्शनम् ॥ २९ ॥
मध्ये तु कम्पयेत्कम्पमुभौ पार्श्वौ समौ भवेत् ।
सरङ्गं कम्पयेत्कम्पं रथीवेति निदर्शनम् ॥ ३० ॥ ६ ॥

एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या नाव्यक्ता न च पीडिताः ।
सम्यग्वर्णप्रयोगेण ब्रह्मलोके महीयते ॥ ३१ ॥
गीती शीघ्री शिरःकम्पी तथा लिखितपाठकः ।
अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः ॥ ३२ ॥
माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः ।
धैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठका गुणाः ॥ ३३ ॥
शङ्कितं भीतमुद्घृष्टमव्यक्तमनुनासिकम् ।
काकस्वरं शिरसि गतं तथा स्थानविवर्जितम् ॥ ३४ ॥
उपांशुदष्टं त्वरितं निरस्तं विलम्बितं गद्गदितं प्रगीतम् ।
निष्पीडितं ग्रस्तपदाक्षरं च वदेन्न दीनं न तु सानुनास्यम् ॥ ३५ ॥
प्रातः पठेन्नित्यमुरःस्थितेन स्वरेण शार्दूलरुतोपमेन ।
मध्यंदिने कण्ठगतेन चैव चक्राह्वसंकूजितसन्निभेन ॥ ३६ ॥
तारं तु विद्यात्सवनं तृतीयं शिरोगतं तच्च सदा प्रयोज्यम् ।
मयूरहंसान्यभृतस्वराणां तुल्येन नादेन शिरःस्थितेन ॥ ३७ ॥
अचोस्पृष्टा यणस्त्वीषन्नेमिस्पृष्टाः शरः स्मृताः ।
शेषाः स्पृष्टा हलः प्रोक्ता निबोधानुप्रदानतः ॥ ३८ ॥
यमोनुनासिका न ह्रौ नादिनो हझषः स्मृताः ।
ईषन्नादा यणो जश्च श्वासिनस्तु खफादयः ॥ ३९ ॥
ईषच्छ्वासांश्चरो विद्याद्गोर्धामैतत्प्रचक्षते ।
दाक्षीपुत्रः पाणिनिना येनेदं व्यापितं भुवि ॥ ४० ॥ ८ ॥
छंदः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोथ पठ्यते ।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥ ४१ ॥

शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।
तस्मात्साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ॥ ४२ ॥
उदात्तमाख्याति वृतोङ्गुलीनां प्रदेशिनी मूलनिविष्टमूर्धा ।
उपान्तमध्ये स्वरितं धृतं च कनिष्ठिकायामनुदात्तमेव॥ ४ ३॥
उदात्तं प्रदेशिनीं विद्यात्प्रचयं मध्यतोङ्गुलिम् ।
निहतं तु कनिष्ठिक्यां स्वरितोपकनिष्ठिकाम् ॥ ४४ ॥
अन्तोदात्तमाद्युदात्तमुदात्तमनुदात्तं नीचस्वरितम् ।
मध्योदात्तं स्वरितं द्व्युदात्तं त्र्युदात्तमिति नवपदशय्या॥ ४ ५॥
अग्निः सोमः प्रवो वीर्यं हविषां स्वर्बृहस्पतिरिंद्राबृहस्पती ।
अग्निरित्यंतोदात्तं सोम इत्याद्युदात्तं प्रेत्युदात्तं व इत्यनुदात्तं
वीर्यं नीचस्वरितम् ॥ ४६ ॥
हविषां मध्योदात्तं स्वरिति स्वरितम् ।
बृहस्पतिरिति द्व्युदात्तमिंद्राबृहस्पती इति त्र्युदात्तम्॥ ४७॥
अनुदात्तो हृदि ज्ञेयो मूर्ध्न्युदात्त उदाहृतः ।
स्वरितः कर्णमूलीयः सर्वास्ये प्रचयः स्मृतः ॥ ४८ ॥
चाषस्तु वदते मात्रां द्विमात्रं त्वेव वायसः ।
शिखी रौति त्रिमात्रं तु नकुलस्त्वर्धमात्रकम् ॥ ४९ ॥
कुतीर्थादागतं दग्धमपवर्णं च भक्षितम् ।
न तस्य पाठे मोक्षोस्ति पापाहेरिव किल्बिषात्॥५०॥१०॥
सुतीर्थादागतं व्यक्तं स्वाम्नाय्यं सुव्यवस्थितम् ।
सुस्वरेण सुवक्त्रेण प्रयुक्तं ब्रह्म राजते ॥ ५१ ॥

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह ।
सवाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोपराधात् ५२

अवक्षरं हनायुष्यं विस्वरं व्याधिपीडितम् ।
अक्षताशस्त्ररूपेण वज्रं पतति मस्तके ॥ ५३ ॥

हस्तहीनं तु योधीते स्वरवर्णविवर्जितम् ।
ऋग्यजुःसामभिर्दग्धो वियोनिमधिगच्छति ॥ ५४ ॥

हस्तेन वेदं योधीते स्वरवर्णार्थसंयुतम् ।
ऋग्यजुःसामभिः पूतो ब्रह्मलोके महीयते ॥ ५५ ॥ ११ ॥

शंकरः शांकरीं प्रादाद्दाक्षीपुत्राय धीमते ।
वाङ्मयेभ्यः समाहृत्य देवीं वाचमिति स्थितिः ॥ ५६ ॥

त्रिनयनमभिमुखनिःसृतामिमां य इह
पठेत् प्रयतश्च सदा द्विजः ।
स भवति धनधान्यपशुपुत्रकीर्तिमा-
नतुलं च सुखं समश्नुते दिवीति ॥ ५७ ॥

इति पाणिनीयशिक्षा.

अथ गणपाठः ।

प्रथमोऽध्यायः ।

सर्वादीनि सर्वनामानि १ । १ । २७ ॥ सर्व विश्व उभ उभय डतर डतम अन्य अन्यतर इतर त्वत् त्व नेम सम सिम । पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् । स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् । अंतरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः । त्यद् तद् यद् एतद् इदम् अदस् एक द्वि युष्मद् अस्मद् भवतु किम्॥इति सर्वादिः॥१॥

स्वरादिनिपातमव्ययम् १ । १ । ३७ ॥ स्वर् अन्तर् प्रातर् । **अन्तोदात्ताः** । पुनर् सनुतर् उच्चैस् नीचैस् शनैस् ऋधक् ऋते युगपत् आरात् (अन्तिकात्) पृथक् । **आद्युदात्ताः** । ह्यस् श्वस् दिवा रात्रौ सायम् चिरम् मनाक् ईषत् (शश्वत) जोषम् तूष्णीम् बहिस् (अधस्) अवस् समया निकषा स्वयम् मृषा नक्तम् नञ् हेतौ (हे है) इद्धा अद्धा सामि । **अन्तोदात्ताः** । वत् (५ । १ । ११५) ब्राह्मणवत् क्षत्रियवत् सना सनत् सनात् उपधा तिरस् । **आद्युदात्ताः** । अन्तरा । **अन्तोदात्ताः** । अन्तरेण (मक्) ज्योक् (योक् नक्) कम् शम् सहसा (श्रद्धा) अलम् स्वधा वषट् विना नाना स्वस्ति अन्यत् अस्ति उपांशु क्षमा विहायसा दोषा मुधा दिष्ट्या वृथा मिथ्या । क्त्वातोसुन्कसुनः । कृन्मकारसंध्यक्षरान्तोऽव्ययीभावश्च । पुरा मिथो मिथस् प्रायस् प्रवाहुकम् प्रवाहिका आर्यहलम् अभीक्ष्णम् साकम् सार्धम् (सत्रम् समम्) नमस् हिरुक् । तसिलादयस्तद्धिता एधाच्पर्यन्ताः (५ । ३ । ७–४६) शस्तसी कृन्मेजन्तः सुच् आस्थालौ । च्व्यर्थाश्च । (अथ) अम् आम् प्रताम् प्रतान् प्रशान् । आकृतिगणोऽयम् । तेनान्येऽपि । तथाहि । माङ् श्रम् कामम् (प्रकामम्) भूयस् परम् साक्षात् साचि (साबि) सत्यम् मङ्क्षु संवत् अवश्यम् सपदि प्रादुस् आविस् अनिशम् नित्यम् नित्यदा सदा अजस्रम् संततम् उषा ओम् भूर् भुवर् झटिति तरसा सुष्ठु कु अञ्जसा अ मिथु (अमिथु) विथक् भाजक्

अन्वक् चिराय चिरम चिररात्राय चिरस्य चिरेण चिरात् अस्तम् अनुषक् अनुपक् अनुषट् अम्नस् (अम्भस्) अम्नर् (अम्भर) स्थाने वरम दुष्ठु बलात् शु अर्वाक् शुदि वदि इत्यादि। तसिलादयः प्राक्पाशपः (६।३।३६) शस्प्रभृतयः प्राक्समासान्तेभ्यः (५।४।४३-६८)। मान्तः कृत्त्रोर्थः। तसिवती नानाञाविति॥ इति स्वरादिः॥ २॥

चादयोऽसत्त्वे १।४।५७॥ च वा ह अह एव एवम् नूनम् शश्वत युपत् युगपत भूयस् सूपत् कूपत् कुवित् नेत् चेत् चण् कच्चित् यत्र तत्र नह हन्त माकिम् माकीम् माकिर् नकिम नकीम् नकिर् आकीम् माङ् नञ् तावत यावत् त्वा न्वै त्वै द्वै रै (रे) श्रौषट् वौषट् स्वाहा स्वधा ओम तथा तथाहि खलु किल अथ सुष्ठु स्म अ इ उ ऋ ऌ ए ऐ ओ औ आदह उञ् उकञ् वेलायाम् मात्रायाम् यथा यत् तत् किम् पुरा वधा (वध्वा) धिक् हाहा हेहै (हहे) पाट् प्याट् आहो उताहो हो अहो नो (नौ) अथो ननु मन्ये मिथ्या असि ब्रूहि तु नु इति इव वत् वात् वन बत (सम् वशम शिकम दिकम्) सनुकम छंवट् (छंवट्) शङ्क शुकम खम सनात् सनतर् तहिकम् सत्यम् ऋतम अद्धा इद्धा नोचेत् नचेत् नहि जातु कथम् कुतः कुत्र अव अनु हा हे (है) आहोस्वित् शम् कम खम दिष्ट्या पशु वट् सह (अनुषट्) आनुषक् अङ्ग फट् ताजक् भाजक् अये अर वाट् (चाटु) कुम खुम घुम अम् ईम सीम् सिम सि वै। उपसर्गविभक्तिस्वरप्रतिरूपकाश्च निपाताः। **आकृतिगणोऽयम्** ॥ **इति चादयः॥ ३॥**

प्रादयः १।४।५४॥ प्र परा अप सम् अनु अव निस् निर् दुस् दुर् वि आङ् नि अधि अपि अति सु उद् अभि प्रति परि उप॥ **इति प्रादयः॥ ४॥**

ऊर्यादि च्विडाचश्च १।४।६१॥ ऊरी उररी तन्थी ताली आताली वेताली धूली धूसी शकला संशकला ध्वंसकला भ्रंस-

कला गुलगुधा सजूस् फल फली विक्की आक्की आलोष्ठी केवाली केवासी सेवासी पर्याली शेवाली वर्षाली अत्यूमशा वश्मसा मस्मसा मसमसा औषट् श्रौषट् वौषट् वषट् स्वाहा स्वधा पांपी प्रादुस् श्रत् आविस् ॥ इत्यूर्यादयः ॥ ५ ॥

साक्षात्प्रभृतीनि च १ । ४ । ७४ ॥ साक्षात् मिथ्या चिन्ता भद्रा रोचना आस्था अमा अद्धा प्राजर्या प्राजरुहा बीजर्या बीजरुहा संसर्या अर्थे लवणम् उष्णम् शीतम् उदकम् आर्द्रम् अग्नौ वशे विकसने विहसने प्रतपने प्रादुस् नमस् । **आकृतिगणोऽयम्**॥ **इति साक्षात्प्रभृतयः** ॥ ६ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च २।१।१७ ॥ तिष्ठद्गु वहद्गु आयतीगवम् खलेयवम् खलेबुसम् लूनयवम् लूयमानयवम् पूतयवम् पूयमानयवम् संहृतयवम् संह्रियमाणयवम् संहृतबुसम् संह्रियमाणबुसम् समभूमि सपदाति सुषमम् विषमम् दुःषमम् निःषमम् अपसमम् आयतीसमम् (प्रोढम्) पापसमम् पुण्यसमम् प्राह्णम् प्ररथम् प्रमृगम् प्रदक्षिणम् (अपरदक्षिणम्) संप्रति असंप्रति । इच्प्रत्ययः समासान्तः । (५ । ४ । १२७ ॥ ५ । ४ । १२८) ॥ **इति तिष्ठद्गुप्रभृतयः**॥ १॥

सप्तमी शौण्डैः २ । १ । ४० । शौण्ड धूर्त कितव व्याड प्रवीण संवीत अन्तर अधि पटु पण्डित कुशल चपल निपुण ॥ **इति शौण्डादयः** ॥ २ ॥

पात्रेसमितादयश्च २ । १ । ४८ ॥ पात्रेसमिताः पात्रेबहुलाः उदुम्बरमशकः उदुम्बरकृमिः कूपकच्छपः अवटकच्छपः कूपमण्डूकः कुम्भमण्डूकः उदपानमण्डूकः नगरकाकः नगरवायसः मातरिपुरुषः पिण्डीशूरः पितरिशूरः गेहेशूरः गेहेनर्दी गेहेक्ष्वेडी गेहेविजिती गेहेव्याडः गेहेमेही गेहेदाही गेहेदृप्तः गेहेधृष्टः गर्भेतृप्तः आख-

निकबकः गोष्ठेशूरः गोष्ठेविजिती गोष्ठेक्ष्वेडी गोष्ठेपटुः गोष्ठेपंडितः गोष्ठेप्रगल्भः कर्णेटिरिटिरा कर्णेचुरुचुरा । **आकृतिगणोऽयम्** ॥ **इति पात्रेसमितादयः ॥ ३ ॥**

उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे २ । १ । ५६॥ व्याघ्र सिंह ऋक्ष ऋषभ चन्दन वृक वृष वराह हस्तिन् तरु कुञ्जर रुरु पृषत् पुण्डरीक पलाश कितव ॥ **इति व्याघ्रादयः** ॥ **आकृतिगणोऽयम्** । तेन मुखपद्मम् मुखकमलम् करकिसलयम पार्थिवचन्द्रः इत्यादि ॥ ४ ॥

श्रेण्यादयः कृतादिभिः २ । १ । ५९ ॥

१ श्रेणि एक पूग मुकुन्द राशि निचय विषय निधन पर इन्द्र देव मुण्ड भूत श्रमण वदान्य अध्यापक अभिरूपक ब्राह्मण क्षत्रिय (विशिष्ट) पटु पण्डित कुशल चपल निपुण कृपण ॥ **इत्येते श्रेण्यादयः** ॥ ५ ॥

२ कृत मित मत भूत उक्त (युक्त) समाज्ञात समाम्नात समाख्यात संभावित (संभवित) अवधारित अवकल्पित निराकृत उपकृत उपाकृत (दृष्ट कलित दलित उदाहृत विश्रुत उदित) । **आकृतिगणोऽयम्** ॥ **इति कृतादिः** ॥ ६ ॥

शाकपार्थिवादीनामुपसंख्यानम् २।१।६०॥ शाकपार्थिव कुतपसौश्रुत अजातौल्वलि । **आकृतिगणोऽयम्** । कृतापकृत भुक्तविभुक्त पीतविपीत गतप्रत्यागत यातानुयात क्रयाक्रयिका पुटापुटिका फलाफलिका मानोन्मानिका ॥ **इति शाकपार्थिवादिः** ॥ ७ ॥

कुमारः श्रमणादिभिः २ । १ । ७० ॥ श्रमणा प्रव्रजिता कुलटा गर्भिणी तापसी दासी बन्धकी अध्यापक अभिरूपक पण्डित पटु मृदु कुशल चपल निपुण ॥ **इति श्रमणादयः** ॥ ८ ॥

मयूरव्यंसकादयश्च २ । १ । ७२ ॥ मयूरव्यंसक छात्रव्यंसक कम्बोजमुण्ड यवनमुण्ड । छन्दसि । हस्तेगृह्य (हस्तगृह्य) पादेगृह्य (पादगृह्य) लाङ्गूलेगृह्य (लाङ्गूलगृह्य) पुनर्दाय । एही-

डादयोऽन्यपदार्थे । एहीडं एहियवं एहिवाणिजा क्रिया । अपेहिवाणिजा प्रेहिवाणिजा एहिस्वागता अपेहिस्वागता एहिद्वितीया अपेहिद्वितीया । प्रेहिद्वितीया एहिकटा अपेहिकटा प्रेहिकटा आहरकरटा प्रेहिकर्दमा प्रोहकर्दमा विधमचूडा उद्धमचूडा (उद्धरचूडा) आहरचेला आहरवसना (आहरसेना) आहरवनिता (आहरवितना) कृन्तविचक्षणा उद्धरोत्सृजा उद्धरावसृजा उद्धमविधमा उत्पचनिपचउत्पतानिपता उच्चावचम् उच्चनीचं आचोपचम् आचपराचम् (नखप्रचम्) निश्चप्रचम् अकिंचन स्नात्वाकालक पीत्वास्थिरक भुक्त्वासुहित प्रोष्यपापीयान् उत्पत्यपाकला निपत्यरोहिणी निषण्णश्यामा अपेहिप्रवमा एहिविघमा इहपञ्चमी इहद्वितीया । जहिकर्मणा बहुलमाभीक्ष्ण्ये कर्तारं चाभिदधाति । जहिजोडः (जहिजोडम्) जहिस्तम्बम् (जहिस्तम्बः) (उज्जहिस्तम्बम्) । आख्यातमाख्यातेन क्रियासातत्ये । अश्नीतापिबता पचतभृज्जता खादतमोदता खादतवमता (खादताचमता) आहरनिवपा आहरनिष्किरा (आवपनिष्किरा) उत्पचविपचा भिन्धिलवणा कृन्धिविचक्षणा पचलवणा प्रचप्रकूटा । **आकृतिगणोऽयम्** । तेन । अकुतोऽभयः कान्दिशीकः (कान्देशीकः) आहोपुरुषिका अहमहमिका यदृच्छा एहिरेयाहिरा उन्मृजावमृजा द्रव्यान्तरम् अवश्यकार्यम् ॥ **इत्यादिमयूरव्यंसकादयः** ॥ ९ ॥

याजकादिभिश्च २ । २ । ९ ॥ याजक पूजक परिचारक परिवेषक (परिषेचक) स्नापक अध्यापक उत्साहक उद्वर्तक होतृ भर्तृ रथगणक पत्तिगणक ॥ **इति याजकादयः** ॥ १० ॥

राजदन्तादिषु परम् २ । २ । ३१ ॥ राजदन्तः अग्रेवणम् लिप्तवासितम् नग्नमुषितम् सिक्तसंमृष्टम् मृष्टलुञ्चितम् अवक्लिन्नपक्वम् अर्पितोतम (अर्पितोप्तम्) उप्तगाढम् उलूखलमुसलम् तण्डुलकिण्वम् दृषदुपलम् आरग्वायनि (आरग्वायनबन्धकी) चित्ररथबाह्लीकम् अवन्त्यश्मकम् शूद्रार्यम् स्नातकराजानौ विश्वक्सेनार्जुनौ अक्षिभ्रुवम् दारगावम् शब्दार्थौ धर्मार्थौ कामार्थौ अर्थशब्दौ अर्थधर्मौ अर्थकामौ

वैकारिमतम् गाजवाजम् (गोजवाजम्) गोपालिधानपूलासम् (गोपालधानीपूलासम्) पूलासकारण्डम् (पूलासककुरण्डम्) स्थूलासम् (स्थूलपूलासम्) उशीरवीजम् (जिज्ञास्थि) सिञ्जास्थम् (सिञ्जाश्वत्थम्) चित्रास्वाती (चित्रस्वाती) भार्यापती दंपती जंपती जायापती पुत्रपती पुत्रपशू केशश्मश्रू शिरोबिजु (शिरोबीजम्) शिरोजानु सर्पिर्मधुनी मधुसर्पिषी (आद्यन्तौ) अन्तादी गुणवृद्धी वृद्धिगुणौ ॥ इति राजदन्तादिः ॥ ११ ॥

वाहिताग्न्यादिषु २ । २ । ३७ ॥ आहिताग्नि जातपुत्र जातदन्त जातश्मश्रु तैलपीत घृतपीत (मद्यपीत) ऊढभार्य गतार्थ । आकृतिगणोऽयम् । तेन गडुकण्ठ अस्युद्यत (अस्मुद्यत) दण्डपाणिप्रभृतयोऽपि ॥ इन्याहिताग्न्यादयः ॥ १२ ॥

कडाराः कर्मधारये २ । २।३८ ॥ कडार गडुल खञ्ज खोड कण कुण्ठखलति गौर वृद्ध भिक्षुक पिङ्ग पिङ्गुल (पिङ्गल) तड तनु (जठर) बधिर मठर कञ्ज बर्बर ॥ इति कडारादयः ॥१३॥

नौकाकान्नशुकशृगालवर्जेषु २ । ३ । १७ ॥ नौ काक अन्न शुक शृगाल ॥ इति नावादयः ॥ १४ ॥

प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम् २ । ३।१८॥ प्रकृति प्राय गोत्र सम विषम द्विद्रोण पञ्चक साहस्र ॥ इति प्रकृत्यादयः॥१५॥

गवाश्वप्रभृतीनि च २ । ४ । ११ ॥ गवाश्वम् गवाविकम् गवैडकम् अजाविकम् (अजैडकम्) कुब्जवामनम् कुब्जकिरातम् पुत्रपौत्रम् श्वचण्डालम् स्त्रीकुमारम् दासीमाणवकम् शाटीपटीरम् शाटीप्रच्छदम् शाटीपट्टिकम् उष्ट्रखरम् उष्ट्रशशम् मूत्रशकृत् मूत्रपुरीषम् यकृन्मेदः मांसशोणितम् दर्भशरम् दर्भपूतीकम् अर्जुनशिरीषम् अर्जुनपुरुषम् तृणोपलम् (तृणोलपम्) दासीदासम् कुटीकुटम् भागवतीभागवतम् ॥ इति गवाश्वप्रभृतीनि ॥ १६ ॥

न दधिपयआदीनि २ । ४ । १४ ॥ दधिपयसी सर्पिर्मधुनी मधुसर्पिषी ब्रह्मप्रजापती शिववैश्रवणौ स्कन्दविशाखौ परिव्राजककौ-

शिकौ (परिव्राड्कौशिकौ) प्रवर्ग्योपसदौ शुक्लकृष्णौ इध्माबर्हिषी दीक्षातपसी (श्रद्धातपसी मेधातपसी) अध्ययनतपसी उलूखलमुसले आद्यवसाने श्रद्धामेधे ऋक्सामे वाङ्मनसे ॥ इति दधिपयआदीनि ॥ १७ ॥

अर्धर्चाः पुंसि च २ । ४ । ३१ ॥ अर्धर्च गोमय कषाय कार्षापण कुतप कुसप (कुणप) कपाट शङ्ख गूथ यूथ ध्वज कबन्ध पद्म गृह सरक कंस दिवस यूष अन्धकार दण्ड कमण्डलु मण्ड भूत द्वीप द्यूत चक्र धर्म कर्मन् मोदक शतमान यान नख नखर चरण पुच्छ दाडिम हिम रजत सक्तु पिधान सार पात्र घृत सैन्धव औषध आढक चषक द्रोण खलीन पात्रीव षष्टिक वारबाण (वारवारण) प्रोथ कपित्थ (शुष्क) शाल शील शुक्ल (शुल्क) शीधु कवच रेणु (ऋण) कपट शीकर मुसल सुवर्ण वर्ण पूर्व चमस क्षीर कर्ष आकाश अष्टापद मङ्गल निधन निर्यास जृम्भ वृत्त पुस्त बुस्त क्ष्वेडित शृङ्ग निगड (खल) मूलक मधु मूल स्थूल शराव नाल वप्र विमान मुख प्रग्रीव शूल वज्र कटक कण्टक (कर्पट) शिकर कल्क (वल्कल) नटमक (नाटमस्तक) वलय कुसुम तृण पङ्क कुण्डल किरीट (कुमुद) अर्बुद अङ्कुश तिमिर आश्रय भूषण इल्वस (इष्वास) मुकुल वसन्त तटाक (तडाग) पिटक विटङ्क विडङ्ग पिण्याक माष कोश फलक दिन दैवत पिनाक समर स्थाणु अनीक उपवास शाक कर्पास (विशाल) चषाल (चखाल) खण्ड दर विटप (रण बल मक) मृणाल हस्त आर्द्र हल (सूत्र) ताण्डव गाण्डीव मण्डप पटह सौध योध पार्श्व शरीर फल (छल) पुर (पुरा) राष्ट्र अम्बर बिम्ब कुट्टिम मण्डल (कुक्कुट) कुडप ककुद खण्डल तोमर तोरण मञ्चक पञ्चक पुङ्ख मध्य (बाल) छाल वल्मीक वर्ष वस्त्र वसु देह उद्यान उद्योग स्नेह स्तेन (स्तनस्वर) संगम निष्कक्षेम शूक क्षत्र पवित्र (यौवन कलह) मालक (पालक) मूषिक (मण्डल वल्कल) कुज (कुञ्ज) विहार लोहित विषाण भवन अरण्य पुलिन दृढ आ-

सन ऐरावत शूर्प तीर्थ लोमन (लोमश) तमाल लोह दण्डक शपथ प्रतिसर दारु धनुस् मान वर्चस्क कूर्च तण्डक मठ सहस्र ओदन प्रवाल शकट अपराह्ण नीड शकल तण्डुल ॥ इत्यर्धर्चादिः ॥१८॥

पैलादिभ्यश्च २ । ४ । ५९ ॥ पैल शालङ्कि सात्यकि सात्यंकामि राहवि रावणि औदञ्चि औदव्रजि औदमेघि औदञ्ञ्चि (औदमज्जि) औदभृज्जि दैवस्थानि पैङ्गलो दायनि राहक्षति भौलिङ्गि राणि औदन्यि औद्राहमानि औज्जिहानि औदशुद्धि । तद्राजाच्चाणः (तद्राज) ॥ आकृतिगणोऽयम् । इति पैलादिः ॥ १९ ॥

न तौल्वलिभ्यः २ । ४ । ६१ ॥ तौल्वलि धारणि पारणि रावणि दैलीपि दैवानि वार्कलि नैवति (नैवकि) दैवमित्रि (दैवमति) दैवयज्ञि चाफट्टकि बैल्वकि वैकि (वैङ्कि) आनुहारति (आनुराहति) पौष्करसादि आनुरोहति आनुतिप्रादोहानि नैमिश्रि प्राडाहति बान्धकि वैशीति आसिनासि आहिंसि आसुरि नैमिषि आसिबन्धकि पौष्पि कारेणपालि वैकर्णि वैरकि वैहति ॥ इति तौल्वल्यादिः ॥२०॥

यस्कादिभ्यो गोत्रे २ । ४ । ६३ ॥ यस्क लह्य द्रुह्य अयस्थूण (अयःस्थूण) तृणकर्ण सदामत्त कम्बलहार बहिर्योग कर्णाढक पर्णाढक पिण्डीजङ्घ वकसक्थ (बक सक्थ) विश्रि कुद्रि अजवस्ति मित्रयु रक्षोमुख जङ्घारथ उत्कास कटुक मथक (मन्थक) पुष्करट (पुष्करसद्) विषपुट उपरिमेखल क्रोष्टुकमान (क्रोष्टुमान) क्रोष्टुपाद कोष्टमाय शीर्षमाय खरप पदक वर्षुक भलन्दन भडिल भण्डिल भडित भण्डित ॥ एते यस्कादयः ॥ २१ ॥

न गोपवनादिभ्यः २ । ४ । ६७ ॥ गोपवन शयु (शिग्रु) बिन्दु भाजन अश्वावतान श्यामक (श्योमाक) श्यामक श्यापर्ण ॥ बिदाद्यन्तर्गणोऽयम् (४ । १ । १०४) गोपवनादिः ॥२२॥

तिककितवादिभ्यो द्वन्द्वे २ । ४।६८॥ तिककितवाः वङ्करभण्डीरथाः उपकलमकाः पफकनरकाः बकनखगुदपरिणद्धाः उब्जककुभाः लङ्कशान्तमुखाः उत्तरशलङ्कटाः कृष्णाजिनकृष्णसुन्दराः भ्र-

ष्टककपिष्ठलाः अग्निवेशदशेरुकाः ॥ एते तिककितवादयः॥२३॥

उपकादिभ्योऽन्यतरस्यामद्वन्द्वे २ । ४ । ६९ ॥ उपक लपक भ्रष्टक कपिष्ठल कृष्णाजिन कृष्णसुन्दर चूडारक आडारक गड्डुक उदङ्क सुधायुक अबन्धक पिङ्गलक पिष्ट सुपिष्ट (सुपिष्ठ) मयूरकर्ण खरीजङ्घ शलाथल पतञ्जल पदञ्जल कठेरणि कुषीतक कशकृत्स्न (काशकृत्स्न) निदाघ कलशीकण्ठ दामकण्ठ कृष्णपिङ्गल कर्णक पर्णक जटिरक बधिरक जन्तुक अनुलोम अनुपद प्रतिलोम अपजग्ध प्रतान अनभिहित कमक वराटक लेखाभ्र कमन्दक पिञ्जूलक वर्णक मसुरकर्ण मदाघ कबन्तक कमन्तक कदामत दामकण्ठ ॥ एते उपकादयः ॥ २४ ॥

तृतीयोऽध्यायः ।

भृशादिभ्यो भुव्यच्वेर्लोपश्च हलः ३ । १ । १२ ॥ भृश शीघ्र चपल मन्द पण्डित उत्सुक सुमनस् दुर्मनस् अभिमनस् उन्मनस् रहस् रोहत् रेहत् संश्चत् तृपत् शश्वत् भ्रमत् वेहत् शुचिस् शुचिवर्चस् अण्डर वर्चस् ओजस् सुरजस् अरजस् ॥ एते भृशादयः ॥१॥

लोहितादिडाज्भ्यः क्यष् ३ । १ । १३ ॥ लोहित चरित नील फेन मद्र हरित दास मन्द ॥ **लोहितादिराकृतिगणः॥२॥**

सुखादिभ्यः कर्तृवेदनायाम् ३ । १ । १८ ॥ सुख दुःख तृप्त कृच्छ्र अस्र आस्र अलीक प्रतीप करुण कृपण सोढ ॥ इत्येतानि सुखादीनि ॥ ३ ॥

कण्ड्वादिभ्यो यक् ३ । १ । २७ ॥ कण्डूञ् मन्तु हृणीङ् वल्गु असु (मनस्) महीङ् लाट् लेट् इरस् इरज् इरञ् दुवस् उषस् वेट् मेधा कुषुभ (नमस्) मगध तन्तस् पम्पस् (पपस्) सुख दुःख (भिक्ष चरण चरम अवर) सपर अरर (अरर्) भिषज् भिष्णुज् (अपर आर) इषुध वरण चुरण तुरण भुरण गद्गद

एला केला खेला (वेला शेला) लिट् लोट् (लेखा लेख) रेखा द्रबस तिरम् अगद उरस् तरण (तरिण) पयस् संभूयस् सम्बर ॥ **आकृतिगणोऽयम् ॥ इति कण्ड्वादिः ॥ ४ ॥**

नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः ३ । १ । १३४ ॥

१ नन्दिवाशिमदिदूषिसाधिवर्धिशोभिरोचिभ्यो ण्यन्तेभ्यः संज्ञायाम । नन्दनः वाशनः मदनः दूषणः साधनः वर्धनः शोभनः रोचनः । सहितपिदमः संज्ञायाम् । सहनः तपनः दमनः जल्पनः रमणः दर्पनः संक्रन्दनः संकर्षणः संहर्षणः जनार्दनः यवनः मधुसूदनः विभीषणः लवणः चित्तविनाशनः कुलदमनः (शत्रुदमनः) **इति नन्द्यादिः ॥ ५ ॥**

२ ग्राही उत्साही उद्दासी उद्भासी स्थायी मन्त्री संमर्दी । रक्षश्रुवपशां नौ । निरक्षी मिश्रावी निवापी निशायी । याचृव्याहृव्रजवदवसां प्रतिषिद्धानाम । अयाची अव्याहारी असंव्याहारी अव्राजी अवादी अवासी । अचामचित्तकर्तृकाणाम् । अकारी अहारी अविनायी (विशायी विषायी) विशयी विषयी देशे । विशयी विषयी देशः । अभिभावी भूते । अपराधी उपरोधी परिभवी परिभावी ॥ **इति ग्रहादिः ॥ ६ ॥**

३ पच वच वप वद चल पत नदट् भषट् प्लवट् चरट् गरट् तरट् चोरट् गाहट् सूरट् देवट् (दोषट्) जर (रज) मर (मद) क्षम (क्षप) सेव मेष कोप (कोप) मेध नर्त व्रण दर्श सर्प (दम्भ दर्प) जारभर श्वपच ॥ **पचादिराकृतिगणः ॥ ७ ॥**

कप्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उपसंख्यानम् ३।२।५॥ मूलविभुज नखमुच काकगुह कुमुद महीध्र कुध्र गिध्र ॥ **आकृतिगणोऽयम् ॥ इति मूलविभुजादयः ॥ ८ ॥**

पार्श्वादिषूपसंख्यानम् ३।२।१५॥ पार्श्व उदर पृष्ठ उत्तान अवमूर्धन् ॥ **इति पार्श्वादिः ॥ ९ ॥**

भविष्यति गम्यादयः ३ । ३ । ३ ॥ गमी आगमी भावी

प्रस्थायी प्रतिरोधी प्रतियोधी प्रतिबोधी प्रतियायी प्रतियोगी ॥ **एते गम्यादयः** ॥ १० ॥

***संपदादिभ्यः क्विप्** * ३ । ३ । ९४ ॥ संपद् विपद् आपद् प्रतिपद् परिषद् ॥ **एते संपदादयः** ॥ ११ ॥

षिद्भिदादिभ्योऽङ् ३ । ३ । १०४ ॥ भिदा विदारणे । छिंदा द्वैधीकरणे । विदा । शिपा । गुहा गिर्योषध्योः । श्रद्धा मेधा गोधा । आरा शल्याम् । हारा । कारा बन्धने । क्षिया । तारा ज्योतिषि । धारा प्रपातने । रेखा चूडा पीडा वपा वसा मृजा । कृपेः संप्रसारणं च । कृपा ॥ **इति भिदादिः** ॥ १२ ॥

भीमादयोऽपादाने ३ । ४ । ७४ ॥ भीम भीष्म भयानक वहचर (वहचरु) प्रस्कन्दन प्रपतन (प्रतपन) समुद्र स्रुव स्रुक् वृष्टि (दृष्टि) रक्षः संकसुक (शङ्कुसुक) मूर्ख खलति ॥ **आकृतिगणोऽयम्** ॥ **इति भीमादिः** ॥ १३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

अजाद्यतष्टाप् ४ । १ । ४ ॥ अजा एडका कोकिला चटका अश्वा मूषिका बाला होडा पाका वत्सा मन्दा विलाता पूर्वापिहाणा (पूर्वापहाणा) अपरापहाणा । संभस्त्राजिनशणपिण्डेभ्यः फलात् । सदच्काण्डप्रान्तशतैकेभ्यः पुष्पात् । शूद्रा चामहत्पूर्वाजातिः । क्रुञ्चा उष्णिहा देवविशा ज्येष्ठा कनिष्ठा । मध्यमा पुंयोगेऽपि । मूलान्नञः । दंष्ट्रा ॥ **एतेऽजादयः** ॥ १ ॥

न षट्स्वस्रादिभ्यः ४ । १ । १० ॥ स्वसृ दुहितृ ननान्दृ यातृ मातृ तिसृ चतसृ ॥ **इति स्वस्रादिः** ॥ २ ॥

नित्यं सपत्न्यादिषु ४ । १ । ३५ ॥ समान एक वीर पिण्ड श्व (शिरी) भ्रातृ भद्र पुत्र दासाच्छन्दसि ॥ **इति समानादिः** ॥ ३ ॥

षिद्गौरादिभ्यश्च ४ । १ । ४१ ॥ गौर मत्स्य मनुष्य शृङ्ग पिङ्गल हय गवय मुकय ऋष्य (पुट तूण) द्रुण द्रोण हरिण कोकण (काकण) पटर उणक (आमल) आमलक कुवल बिम्ब बदर फर्करक (कर्कर) तर्कार शर्कार पुष्कर शिखण्ड सलद शष्कंड सनन्द सुषम सुषव अलिन्द गडुल शाण्डश आढक आनन्द आश्वत्थ सृपाट आखक (आपच्चिक) शष्कुल सूर्य (सूर्म) शूर्प सूच यूष (पूप) यूथ सूप मेथ वल्लक धातक सल्लक मालक मालत साल्वक वेतस वृक्ष (वृस) अतस (उभय) भृङ्ग मह मठ छेद पेश मेद श्वन् तक्षन् अनडुही अनड्वाही । एषणः करणे । देह देहल काकादन गवादन तेजन रजन लवण औद्गाहमानि (आद्गाहमानि) गौतम (गोतम) (पारक) अयस्थूण (अयः स्थूण) भौरिकि भौलिकी भौलिङ्गि यान मेध आलम्बि आलजि आलब्धि आलक्षि केवाल आपक आरट नट टोट नोट मुलाट शातन (पोतन) पातन पाठन (पानठ) आस्तरण अधिकरण अधिकार अग्रहायणी (आग्रहायणी) प्रत्यवरोहिणी (सेचन) । सुमङ्गलात्संज्ञायाम । अण्डर सुन्दर मण्डल मन्थर मङ्गल पट पिण्ड (षण्ड) उर्द गुर्द शम सूद औड (आर्द्र) हृद (ह्रद) पाण्ड (भाण्डल) भाण्ड (लोहाण्ड) कदर कन्दर कदल तरुण तलुन कल्माष बृहत् महत (सोम) सौधर्म । रोहिणी नक्षत्रे । रेवती नक्षत्रे । विकल निष्कल पुष्कल । कटाच्छ्रोणिवचने । पिप्पल्यादयश्च । पिप्पली हरितकी (हरीतकी) कोशातकी शमी वरी शरी पृथिवी क्रोष्टु मातामह पितामह ॥ इति **गौरादिः ॥ ४ ॥**

बह्वादिभ्यश्च ४ । १ । ४५ ॥ बहु पद्धति अञ्चति अङ्कति अंहति शकटि (शकति) । शक्तिः शस्त्रे । शारि वारि राति राधि (शाधि) अहि कपि यष्टि मुनि । इतः प्राण्यङ्गात् । कृदिकारादक्तिनः । सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके । चण्ड अराल कृपण कमल विकट विशाल विशङ्कट भरुज ध्वज चन्द्रभागान्नद्याम् (चन्द्रभागा नद्याम्)

कल्याण उदार पुराण अहन् क्रोड नख खुर शिखा वाल शफ गुद ॥ आकृतिगणोऽयम् ॥ तेन । भग गल राग इत्यादि ॥ इति बह्वादयः ॥ ५ ॥

शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् ४ । १ । ७३ ॥ शार्ङ्गरव कापटव गौग्गुलव ब्राह्मण बैद गौतम कामण्डलेय ब्राह्मणकृतेय (आनिचेय) आनिधेय आशोकेय वात्स्यायन मौञ्जायन कैकस काप्य (काव्य) शैव्य एहि पर्येहि आश्मरथ्य औदपान अराल चण्डाल वतण्ड । भोगवद्गौरिमतोः संज्ञायां वादिषु (६ । ३ । ४३) नित्यं ह्रस्वार्थम । नृनरयोर्वृद्धिश्च ॥ इति शार्ङ्गरवादिः ॥ ६ ॥

क्रौड्यादिभ्यश्च ४ । १ । ८० ॥ क्रौडि लाडि व्याडि आपिशलि आपक्षिति चौपयत चैटयत (वैटयत) सैकयत बैल्वयत सौधातकि । सूत युवत्याम । भोज क्षत्रिये । यौतकि कौटि भौरिकि भौलिकि (शाल्मलि) शालास्थलि कापिष्ठलि गौकक्ष्य ॥ इति क्रौड्यादिः ॥ ७ ॥

अश्वपत्यादिभ्यश्च ४ । १ । ८४ ॥ अश्वपति (ज्ञानपति) शतपति धनपति गणपति (स्थानपति यज्ञपति) राष्ट्रपति कुलपति गृहपति (पशुपति) धान्यपति धन्वपति (बन्धुपति धर्मपति) सभापति प्राणपति क्षेत्रपति ॥ इत्यश्वपत्यादिः ॥ ८ ॥

उत्सादिभ्योऽञ् ४।१।८६॥ उत्स उदपान विकर मिनद महानद महानस महाप्राण तरुण तलुन । बष्कयासे । पृथिवी (धेनु) पंक्ति जगती त्रिष्टुप् अनुष्टुप् जनपद भरत उशीनर ग्रीष्म पीलुकुण । उदस्थान देशे । पृषदंश भल्लकीय रथन्तर मध्यंदिन बृहत् महत् सत्वत् कुरु पञ्चाल इन्द्रावसान उष्णिह् ककुभ् सुवर्ण देव ग्रीष्मादच्छन्दसि ॥ इत्युत्सादिः ॥ ९ ॥

बाह्वादिभ्यश्च ४ । १ । ९६ ॥ बाहु उपबाहु उपवाकु निवाकु शिवाकु वटाकु उपनिन्दु (उपबिन्दु) वृषली वृकला चूडा बलाका मूषिका कुशला भगला (छगला) ध्रुवका (धुवका) सुमित्रा दु-

मित्रा पुष्करसद् अनुहरत् देवशर्मन् अग्निशर्मन् (भद्रशर्मन् सुशर्मन्) कुनामन् (सुनामन्) पञ्चन् सप्तन् अष्टन् । अमितौजसः सलोपश्च । सुधावत् उदञ्चु शिरस् माष शराविन् मरीची क्षेमवृद्धिन् शृङ्खलतोदिन् खरनादिन् नगरमर्दिन् प्राकारमर्दिन् लोमन् अजीगर्त कृष्ण युधिष्ठिर अर्जुन साम्ब गद प्रद्युम्न राम (उदङ्क) उदकः संज्ञायाम् । संभूयोम्भसोः सलोपश्च ॥ **आकृतिगणोऽयम्** ॥ तेन सात्वकिः जाङ्घिः ऐन्दशर्मिः आजधेनविः इत्यादि ॥ **इति बाह्वादयः** ॥ १० ॥

गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ् ४ । १ । ९८ ॥ कुञ्ज ब्रध्न शङ्ख भस्मन् गण लोमन् शठ शाक शुण्डा शुभ विपाश् स्कन्द स्कम्भ ॥ **इति कुञ्जादिः** ॥ ११ ॥

नडादिभ्यः फक् । ४ । १ । ९९ ॥ नड चर (वर) बक मुञ्ज इतिक इतिश उपक (एक) लमक । शलङ्कु शलङ्कं च । सप्तल वाजप्य तिक । अग्निशर्मन्वृषगणे । प्राण नर सायक दास मित्र द्वीप पिङ्गर पिङ्गल किङ्कर किङ्कल (कातर) कातल काश्यप (कुश्यप) काश्य काल्य (काव्य) अज अमुष्य (अमुष्म) कृष्णरणौ ब्राह्मण वासिष्ठे । अमित्र लिगु चित्र कुमार । क्रोष्टु क्रोष्टं च । लोह दुर्ग स्तम्भ शिंशपा अग्र तृण शकट सुमनस् सुमत मिमत ऋच् जलंधर अध्वर युगंधर हंसक दण्डिन् हस्तिन् (पिण्ड) पञ्चाल चमसिन् सुकृत्य स्थिरक ब्राह्मण चटक बदर अश्वल खरप लङ्क इन्ध अस्त्र कामुक ब्रह्मदत्त उदुम्बर शोण अलोह दण्डप ॥ **इति नडादिः** ॥ १२ ॥

अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ् ४ । १ । १०४ ॥ बिद उर्व कश्यप कुशिक भरद्वाज उपमन्यु किलात कन्दर्प (किंदर्भ) विश्वानर (ऋषिषेण) ऋष्टिषेण ऋतभाग हर्यश्व प्रियक आपस्तम्ब कूचवार शरद्वत् शुनक (शुनकृ) धेनु गोपवन शिग्रु बिन्दु (भोगक) भाजन (शमिक) अश्वावतान श्यामाक श्यामकं (श्यावलि) श्यापर्ण हरित किंदास वह्यस्क अर्कजूष (अर्कलूष) बध्योग विष्णु वृद्ध

प्रतिबोध (रथीतर) रथन्तर गविष्ठिर निषाद (शबर अलस) मठर (मृडाकु) सृपाकु मृदु पुनर्भू पुत्र दुहितृ ननान्दृ । परस्त्री परशुं च ॥ इति बिदादिः ॥ १३ ॥

गर्गादिभ्यो यञ् ४ । १ । १०५ ॥ गर्ग वत्स । वाजासे । संकृति अज व्याघ्रपात् विदभृत् प्राचीनयोग (अगस्ति) पुलस्ति चमस रेभ अग्निवेश शङ्ख शट शक एक धूम अवट मनस् धनंजय वृक्ष विश्वावसु जरमाण लोहित शंसित बभ्रु वल्गु मण्डु शङ्कु लिगु गुहलु मन्तु मङ्क्षु अलिगु जिगीषु मनु तन्तु मनायी सूनु कथक कन्थक ऋक्ष तृक्ष (वृक्ष) (तनु) तरुक्ष तलुक्ष तण्ड वतण्ड कपिकत (कपि कत) कुरुकत अनडुह कण्व शकल गोकक्ष अगस्त्य कुण्डिनी यज्ञवल्क पर्णवल्क अभयजात विरोहित वृषगण रहूगण शण्डिल वर्णक (चणक) चुलुक मुद्गल मुसल जमदग्नि पराशर जतूकर्ण (जातूकर्ण) महित मन्त्रित अश्मरथ शर्कराक्ष पूतिमाष स्थूरा अदरक (अररक) एलाक पिङ्गल कृष्ण गोलन्द उलूक तितिक्ष भिषज (भिषज्) (भिष्णज) भडित भण्डित दल्भ चेकित चिकित्सित देवहू इन्द्रहू एकलु पिप्पलु बृहदग्नि (सुलोहिन्) सुलाभिन् उक्थ कुटीगु ॥ इति गर्गादिः ॥ १४ ॥

अश्वादिभ्यः फञ् ४ । १।११० ॥ अश्व अश्मन् शङ्ख शूद्रक विद पुट रोहिण खर्जूर (खजूर) (खञ्जार वस्त) पिञ्जल भडिल भण्डिल भडित भण्डित (प्रकृत रामोद) क्षान्त (काश तीक्ष्ण गोलाङ्क अर्क स्वर स्फुट चक्र श्रविष्ठ) पविन्द पवित्र गोमिन् श्याम धूम धूम्र वाग्मिन् विश्वानर कुट । शप आत्रेये । जन जड खड ग्रीष्म अर्हकित विशंप विशाल गिरि चपल चुप दासक वैल्य (बैल्व) प्राच्य (धर्म्य) आनडुह्य । पुंसि जाते । अर्जुन (प्रहृत) सुमनस् दुर्मनस् मन (मनस्) (प्रान्त) ध्वन । आत्रेय भरद्वाजे । भरद्वाज आत्रेये । उत्स आतव कितव (वद धन्य पाद) शिव खदिर ॥ इत्यश्वादिः॥१५॥

शिवादिभ्योऽण् ४ । १ । ११२ ॥ शिव प्रोष्ठ प्रोष्ठिक चण्ड

जम्भ भूरि दण्ड कुठार ककुभ् (ककुभा) अनभिम्लान कोहित सुख संधि मुनि ककुत्स्थ कहोड कोहड कहुय कहय रोध कपिञ्जल (कुपिञ्जल) खञ्जन वतण्ड तृणकर्ण क्षीरह्रद जलह्रद परिल (पथिक) पिष्ट हैहय (पार्षिका) गोपिका कपिलिका जटिलिका बधिरिका मञ्जीरक (मजिरक) वृष्णिक खञ्जार खञ्जाल (कर्मार) रेख लेख आलेखन विश्रवण रवण वर्तनाक्ष ग्रीवाक्ष (विटप पिटक) विटाक तृक्षाक नभाक ऊर्णनाभ जरत्कारु (पृथा उत्क्षेप) पुरोहितिका सुरोहितिका सुरोहिका आर्यश्वेत (अर्यश्वेत) सुपिष्ट मसुरकर्ण मयूरकर्ण (खर्जुरकर्ण) कदूरक तक्षन ऋष्टिषेण गङ्गा विपाश यस्क लह्य द्रुह्य अयस्थूण तृणकर्ण (तृण कर्ण) पर्ण भलन्दन विरूपाक्ष भूमि इला सपत्नी । द्व्यचो नद्याः।त्रिवेणी त्रिवणं च॥ इति शिवादिः।आकृतिगणः॥१६॥

शुभ्रादिभ्यश्च ४ । १ । १२३ ॥ शुभ्र विष्ट पुर (विष्टपुर) ब्रह्मकृत शतद्वार शलाथल शलाकाभ्रू लेखाभ्रू (लेखाभ्र) विकंसा (विकास) रोहिणी रुहिणी धर्मिणी दिश् शालूक अजवस्ति शकंधि विमातृ विधवा शुक विश देवतर शकुनि शुक्र उग्र शातल (शतल) बन्धकी सृकण्डु विस्त्रि अतिथि गोदन्त कुशाम्ब मकष्टु शाताहर पवष्टुरिक सुनामन् । लक्ष्मणश्यामयोर्वासिष्ठे । गोधा कृकलास अणीव प्रवाहण भरत (भारत) भरम मृकण्डु कर्पूर इतर अन्यातर आलीढ सुदन्त सुदक्ष सुवक्षस सुदामन् कद्रु तुद अकशाय कुमारिका कुठारिका किशोरिका अम्बिका जिह्माशिन् परिधि वायुदत्त शकल शलाका खडूर कुबेरिका अशोका गन्धपिङ्गला खडोन्मत्ता अनुदृष्टिन् (अनुदृष्टि) जरतिन् बलीवर्दिन् विग्र वीज जीव श्वन् अश्मन् अश्व अजिर इति शुभ्रादिः ॥ आकृतिगणः ॥ १७ ॥

कल्याण्यादीनामिनङ् च ४ । १ । १२६ ॥ कल्याणी सुभगा दुर्भगा बन्धकी अनुदृष्टि अनुसृति (अनुसृष्टि) जरती बलीवर्दी ज्येष्ठा कनिष्ठा मध्यमा परस्त्री ॥ इति कल्याण्यादिः ॥ १८ ॥

गृष्ट्यादिभ्यश्च ४ । १ । १३६ ॥ गृष्टि हृष्टि बलि हलि विश्रि कुद्रि अजबस्ति मित्रयु ॥ **इति गृष्ट्यादिः ॥ १९ ॥**

रेवत्यादिभ्यष्ठक् ४ । १ । १४६ ॥ रेवती अश्वपाली मणिपाली द्वारपाली वृकवञ्चिन् वृकबन्धु वृकग्राह कर्णग्राह दण्डग्राह कुक्कुटाक्ष (ककुदाक्ष) चामरग्राह ॥ **इति रेवत्यादिः ॥ २० ॥**

कुर्वादिभ्यो ण्यः ४ । १ । १५१ ॥ कुरु गर्गर मङ्गुष अजमार रथकार वावदूक । सम्राजः क्षत्रिये । कवि मति (विमति) कापिञ्जलादि वाक् वामरथ पितृमत् इन्द्रजाली एजि वातकि दामोष्णीषि गणकारि कैशोरि कुट शालका (शलाका) मुर पुर एरका शुभ्र अभ्र दर्भ केशिनी । वेनाच्छन्दसि । शूर्पणाय श्यावनाय श्यावरथ शावपुत्र सत्यंकार वडभीकार पथिकार मूढ शकन्धु शङ्कु शाक शालिन् शालीन कर्तृ हर्तृ इन पिण्डी । तक्षन् वामरथस्य कण्वादिवत्स्वरवर्जम् ॥ **इति कुर्वादिः ॥ २१ ॥**

तिकादिभ्यः फिञ् ४ । १ । १५४ ॥ तिक कितव संज्ञाबालशिख (संज्ञा बाला शिखा) उरस् शाट्य सैन्धव यमुन्द रूप्य ग्राम्य नील अमित्र गोकक्ष कुरु देवरथ तैतील औरस कौरव्य भौरिकि भौलिकि चौपयत चैटयत शीकयत क्षैतयत वाजवत चन्द्रमस् शुभ गङ्गा वरेण्य सुपामन् आरब्ध बाह्यक स्वल्पक वृष लोमक उदन्य यज्ञ ॥ **इति तिकादिः ॥ २२ ॥**

वाकिनादीनां कुक्च ४ । १।१५८॥ वाकिन गौधेर कार्कश काक लङ्का । चर्मिवर्मिणोर्नलोपश्च ॥ **इति वाकिनादिः ॥२३॥**

कम्बोजाल्लुक् ४ । १ । १७५ ॥ कम्बोज चोल केरल शक यवन ॥ **इति कम्बोजादिः ॥ २४ ॥**

न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः ४ । १ । १७८ ॥

१ भर्ग करूश केकय कश्मीर साल्व सुस्थाल उरस् कौरव्य ॥ **इति भर्गादिः ॥ २५ ॥**

२ यौधेय शौक्रेय शौभ्रेय ज्यावाणेय धौर्तेय धार्तेय त्रिगर्त भरत उशीनर ॥ **इति यौधेयादिः** ॥ २६ ॥

भिक्षादिभ्योऽण् ४ । २ । ३८ ॥ भिक्षा गर्भिणी क्षेत्र करीष अङ्गार चर्मिन् धर्मिन् सहस्र युवति पदाति पद्धति अथर्वन् दक्षिणा भरत विषय श्रोत्र ॥ **इति भिक्षादिः** ॥ २७ ॥

खण्डिकादिभ्यश्च ४ । २ । ४५ ॥ खण्डिका वडवा । क्षुद्रकमालवात् सेनासंज्ञायाम् । भिक्षुक शुक उलूक श्वन् अहन् युगवरत्रा हलबन्धा ॥ **इति खण्डिकादिः** ॥ २८ ॥

पाशादिभ्यो यः ४ । २ । ४९ ॥ पाश तृण धूम वात अङ्गार पाटल पोत गल पिटक पिटाक शकट हल नट वन ॥ **इति पाशादिः** ॥ २९ ॥

*** खलादिभ्य इनिर्वक्तव्यः *** ४ । २ । ५१ ॥ खल डाक कुटुम्ब शाक कुण्डलिनी ॥ **इति खलादिराकृतिगणः** ॥ ३० ॥

राजन्यादिभ्यो वुञ् ४ । २ । ५३ ॥ राजन्य आनृत बाभ्रव्य शालङ्कायन दैवयातव (देवयात) (अव्रीड वरत्रा) जालंधरायण (राजायन) तेलु आत्मकामेय अम्बरीषपुत्र वसाति बैल्ववन शैलूष उदुम्बर तीव्र बैल्वल आर्जुनायन संप्रिय दाक्षि ऊर्णनाभ ॥ **इति राजन्यादिः** ॥ **आकृतिगणः** ॥ ३१ ॥

भौरिक्याद्यैषुकार्यादिभ्यो विधल्भक्तलौ ४ । २ । ५४ ॥

१ भौरिकि भौलिकी चौपयत चौटयत (चैटयत) काणेय वाणिजक वाणिकाज्य (वालिकाज्य) सैकयत वैकयत ॥ **इति भौरिक्यादिः** ॥ ३२ ॥

२ ऐषुकारि सारस्यायन (सारसायन) चान्द्रायण द्व्याक्षायण त्र्याक्षायण औडायन जौलायन खाडायन दासमित्रि दासमित्रायण शौद्रायण दाक्षायण शापण्डायन (शायण्डायन) तार्क्ष्यायण शौभ्रायण सौवीर (सौवीरायण) शपण्ड (शयण्ड) शौण्ड शयाण्डि

(शयाण्ड) वैश्वमानव वैश्वध्येनव (वैश्वधेनव) नड तुण्डदेव विश्वदेव (सापिण्डि) ॥ इति ऐषुकार्यादिः ॥ ३३ ॥

ऋतूक्थादिसूत्रान्ताट्ठक् ४ । २ । ६० ॥ उक्थ लोकायत न्याय न्यास पुनरुक्त निरुक्त निमित्त द्विपदा ज्योतिष अनुपद अनुकल्प यज्ञ धर्म चर्चा क्रमेतर श्लक्ष (श्लक्ष्ण) संहिता पदक्रम संघट (संघट्ट) वृत्ति परिषद् संग्रह गण (गुण) आयुर्वेद (आयुर्वेद) ॥ **इत्युक्थादिः ॥ ३४ ॥**

क्रमादिभ्यो वुन् ४ । २ । ६१ ॥ क्रम पद शिक्षा मीमांसा सामन् ॥ **इति क्रमादिः ॥ ३५ ॥**

वसन्तादिभ्यष्ठक् ४ । २ । ६३ ॥ वसन्त ग्रीष्म वर्षा शरद् शरत् हेमन्त शिशिर प्रथम गुण चरम अनुगुण अथर्वन् आथर्वण ॥ **इति वसन्तादिः ॥ ३६ ॥**

संकलादिभ्यश्च ४ । २ । ७५ ॥ संकल पुष्कल उत्तम उडुप उद्वेप उत्पुट कुम्भ निधान सुदक्ष सुदत्त सुभूत सुपूत सुनेत्र सुमङ्गल सुपिङ्गल सूत सिकत पूतिका (पूतिक) पूलास कूलास पलाश निवेश गवेश (गवेष) गम्भीर इतर आन् अहन् लोमन् वेमन् चरण (वरुण) बहुल सद्योज अभिषिक्त गोभृत् राजभृत् भल्ल मल्ल माल ॥ **इति संकलादिः ॥ ३७ ॥**

सुवास्त्वादिभ्योऽण् ४।२।७७॥ सुवास्तु (सुवस्तु) वर्णु भण्डु खण्डु सेवालिन् कर्पूरिन् शिखण्डिन् गर्त कर्कश शकटीकर्ण कृष्णकर्ण (कर्क) कर्कन्धुमती गोह अहिसक्थ ॥ **इति सुवास्त्वादिः ॥३८॥**

वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्ण्ययफक्फिञिञ्ञ्यकक्ठकोऽरीहणकृशाश्वर्श्यकुमुदकाशतृणप्रेक्षाश्मसखिसंकाशबलपक्षकर्णसुतंगमप्रगदिन्वराहकुमुदादिभ्यः ४।२। ८० ॥

१ अरीहण (अह्रीरण) द्रुघण द्रुहण भलग (भगल) उलन्द किरण सांपरायण क्रौष्ट्रायन औष्ट्रायण त्रैगर्तायन मैत्रायण भास्त्रायण वैमतायण (वैमतायन) गौमतायन सौमतायन सौसायन धौमतायन सौ-

मायन ऐन्द्रायण कौद्रायण (कौन्द्रायण) खाडायन शाण्डिल्यायन रायस्पोष विपथ विपाश उद्दण्ड उदञ्चन खाण्डवीरण वीरण काशकृत्स्न जाम्बवत शिंशपा रैवत (रेवत) बिल्व सुयज्ञ शिरीष बधिर जम्बु खादिर सुशर्मन् (सशर्मन्) भलतृ भलन्दन खण्डु कलन यज्ञदत्त ॥ इत्यरीहणादिः ॥ ३९ ॥

२ कृशाश्व अरिष्ट अरिश्म वेश्मन् विशाल लोमश रोमश रोमक लोमक शबल कूट वर्चल सुवर्चल सुकर सूकर प्रातर (प्रतर) सदृश पुरग पुराग सुख धूम अजिन विनत अवनत कुविद्यास (कुविस्यास) पराशर अरुस् अयस् मौद्गल्याकर (मौद्गल्ययुकर) ॥ इति कृशाश्वादिः ॥ ४० ॥

३ ऋश्य (हृष्य) न्यग्रोध शर निलीन [निवास निवात] निधान निबन्धन (निबन्ध) (विबद्ध) परिगूढ (उपगूढ) असनि सित मत वेश्मन् उत्तराश्मन् अश्मन् स्थूल बाहु खदिर शर्करा अनडुह (अनडुह) अरडु परिवंश वेणु वीरण खण्ड दण्ड परिवृत्त कर्दम अंशु ॥ इत्यृश्यादिः ॥ ४१ ॥

४ कुमुद शर्करा न्यग्रोध इक्कट संकट कङ्कट गर्त बीज परिवाप निर्यास शकट कच मधु शिरीष अश्व अश्वत्थ बल्वज यवाष कूप विकङ्कट दशग्राम ॥ इति कुमुदादिः ॥ ४२ ॥

५ काश पाश अश्वत्थ पलाश पीयूक्षा चरण वास नड वन कर्दम कच्छल कङ्कट गुहा बिस तृण कर्पूर बर्बर मधुर ग्रह कपित्थ जतु सीपाल ॥ इति काशादिः ॥ ४३ ॥

६ तृण नड मूल वन पर्ण वर्ण वराण बिल पुल फल अर्जुन अर्ण सुवर्ण बल चरण बुस ॥ इति तृणादिः ॥ ४४ ॥

७ प्रेक्षा फलका (हलका) बन्धुका ध्रुवका क्षिपका न्यग्रोध इक्कट कङ्कट संकट कट कूप बुक पुक पुट मह परिवाप यवाष धुवका गर्त कूपक हिरण्य ॥ इति प्रेक्षादिः ॥ ४५ ॥

८ अश्मन् यूथ ऊष मीन नद दर्भ वृन्द गुद खण्ड नग शिखा

कीट पाम कन्द कान्द कुल गह्व गुड कुण्डल पीन गुह ॥ इत्यश्मादिः ॥ ४६ ॥

९ सखि अग्निदत्त वायुदत्त सखिदत्त (गोपिल) भल्लपाल (भल्ल पाल) चक्र चक्रवाक छगल अशोक करवीर वासव वीर पूर वज्र कुशीरक शीहर (सीहर) सरक सरस समर समल सुरस रोह तमाल कदल सप्तल ॥ इति सख्यादिः ॥ ४७ ॥

१० संकाश कपिल कश्मीर (समीर) सूरसेन सरक सूर। सुपथिन्पन्थ च। यूप (यूथ) अंश अङ्ग नासा पलित अनुनाश अश्मन् कूट मलिन दश कुम्भ शीर्ष चिरन्त (विरत) समल सीर पञ्जर मन्थ नल रोमन् लोमन् पुलिन सुपरि कटिप सकर्णक वृष्टि तीर्थ अगस्ति विकर नासिका ॥ इति संकाशादिः ॥ ४८ ॥

११ बल चुल नल दल वट लकुल उरल पुग्व (पुल) मूल उलडुल (उल डुल) वन कुल ॥ इति बलादिः ॥ ४९ ॥

१२ पक्ष तुक्ष तुष कुण्ड अण्ड कम्बलिका वलिक चित्र अस्ति। पथः पन्थ च। कुम्भ सीरक सरक सकल सरस समल अतिश्वन् रोमन् लोमन् हस्तिन् मकर लोमक शीर्ष निवात पाक सहक (सिंहक) अङ्कुश सुवर्णक हंसक हिंसक कुत्स बिल खिल यमल हस्त कला सकर्णक ॥ इति पक्षादिः ॥ ५० ॥

१३ कर्ण वसिष्ठ अर्क अर्कलूष द्रुपद आनडुह्य पाञ्चजन्य स्फिग (स्फिज्) कुम्भी कुन्ती जित्वन् जीवन्त कुलिश आण्डीवत् (आण्डीवत) जव जैत्र आकन (आनक) ॥ इति कर्णादिः ॥ ५१ ॥

१४ सुतंगम मुनिचित विप्रचित महाचित्त महापुत्र स्वन श्वेत गडिक (खडिक) शुक्र विग्र बीजवापिन् (बीज वापिन्) अर्जुन श्वन् अजिर जीव खण्डित कर्ण विग्रह॥ इति सुतंगमादिः॥५२॥

१५ प्रगदिन् मगदिन् मददिन् कविल खण्डित गदित चूडार मडार मन्दार कोविदार ॥ इति प्रगद्यादिः ॥ ५३ ॥

१६ वराह पलाशा (पलाश) शेरीष (शिरीष) पिनद्ध निबद्ध

बलाह स्थूल विदग्ध (विजग्ध) विभग्न (निमग्न) बाहु खदिर शर्करा ॥ **इति वराहादिः** ॥ ५४ ॥

१७ कुमुद गोमथ रथकार दशग्राम अश्वत्थ शाल्मलि (शिरीष) मुनिस्थल कुण्डल कूट मधुकर्ण घासकुन्द शुचिकर्ण ॥ **इति कुमुदादिः** ॥ ५५ ॥

वरणादिभ्यश्च ४।२।८२ ॥ वरणा शृङ्गी शाल्मलि शुण्डी शयाण्डी पर्णी ताम्रपर्णी गोद आलिङ्ग्यायन जालपदी (जानपदी) जम्बू पुष्कर चम्पा पम्पा वल्गु उज्जयिनी गया मथुरा तक्षशिला उरसा गोमती वलभी ॥ **इति वरणादिः** ॥ ५६ ॥

मध्वादिभ्यश्च ४।२।८६ ॥ मधु बिस स्थाणु वेणु कर्कन्धु शमी करीर हिम किशरा शर्याण मरुत् वार्दाली शर इष्टका आसुति शक्ति आसन्दी शकल शलाका आमिषी इक्षु रोमन् रुष्टि रुष्य तक्षशिला खड वट वेट ॥ **इति मध्वादिः** ॥ ५७ ॥

उत्करादिभ्यश्छः ४।२।९० ॥ उत्कर संफल शफर पिप्पल पिप्पलीमूल अश्मन् सुवर्ण खलाजिन तिक कितव अणक त्रैवण पिचुक अश्वत्थ काश क्षुद्र भस्त्रा शाल जन्या अजिर चर्मन् उत्क्रोश क्षान्त खदिर शूर्पणाय श्यावनाय नैवाकव तृण वृक्ष शाक पलाश विजिगीषा अनेक आतप फल संपर अर्क गर्त अग्नि वैराणक इडा अरण्य निशान्त पर्ण नीचायक शंकर अवरोहित क्षार विशाल वेत्र अरीहण खण्ड वातागार मन्त्रणार्ह इन्द्रवृक्ष नितान्तवृक्ष आर्द्रवृक्ष ॥ **इत्युत्करादिः** ॥ ५८ ॥

नडादीनां कुक्च ४।२।९१ ॥ नड प्लक्ष बिल्व वेणु वेत्र वेतस इक्षु काष्ठ कपोत तृण। कुञ्चा ह्रस्वत्वं च। तक्षन्नलोपश्च ॥ **इति नडादिः** ॥ ५९ ॥

कत्र्यादिभ्यो ढकञ् ४।२।९५ ॥ कत्त्रि उम्भि पुष्कर पुष्कल मोदन कुम्भी कुण्डिन नगरी माहिष्मती वर्मती उख्या ग्राम। कुड्याया यलोपश्च ॥ **इति कत्र्यादिः** ॥ ६० ॥

नद्यादिभ्यो ढक् ४ । २ । ९७ ॥ नदी मही वाराणसी श्रावस्ती कौशाम्बी वनकौशाम्बी काशपरी काशफारी (काशफरी) खादिरी पूर्वनगरी पाठा माया शाल्वदार्वा सेतकी । वडवाया वृषे ॥ **इति नद्यादिः ॥ ६१ ॥**

प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधादण् ४ । २ । ११० ॥ पलदी परिषद् रोमक वाहीक कलकीट बहुकीट जालकीट कमलकीट कमलकीकर कमभिदा गोष्ठी नैकती परिखा शूरसेन गोमती पटच्चर उदपान यकृल्लोम ॥ **इति पलद्यादिः ॥ ६२ ॥**

काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ ४ । २ । ११६ ॥ काशि चेदि (वेदि) सांयाति संवाह अच्युत मोदमान शकुलाद हस्तिकर्षू कुनामन् हिरण्य करण गोवासन भारङ्गी अरिंदम अरित्र देवदत्त दशग्राम शौवावतान युवराज उपराज देवराज मोदन सिन्धुमित्र दासामित्र सुधामित्र सोमामित्र छागमित्र साधमित्र (सधमित्र) । आपदादिपूर्वपदात्कालान्तात् । आपद् ऊर्ध्व तत् ॥ **इति काश्यादिः ॥ ६३ ॥**

धूमादिभ्यश्च ४ । २ । १२७ ॥ धूम षडण्ड शशादन अर्जुनाव माहकस्थली आनकस्थाली माहिषस्थली मानस्थली अट्टस्थली मद्रकस्थली समुद्रस्थली दाण्डायनस्थली राजस्थली विदेह राजगृह सात्रासाह शष्प मित्रवर्ध्र (मित्रवर्ध) मज्जाली मद्रकूल आजीकूल द्व्यहव (द्व्याहाव) त्र्यहव (त्र्याहाव) संस्फाय बर्बर वर्ज्य गर्त आनर्त माठर पाथेय घोष पल्ली आराज्ञी धार्तराज्ञी आवय तीर्थ । कूलात्सौवीरेषु । समुद्रान्नावि मनुष्ये च । कुक्षि अन्तरीप द्वीप अरुण उज्जयनी पट्टार दक्षिणापथ साकेत ॥ **इति धूमादिः ॥ ६४ ॥**

कच्छादिभ्यश्च ४ । २ । १३३ ॥ कच्छ सिन्धु वर्णु गन्धार मधुमत् कम्बोज कश्मीर साल्व कुरु अनुषण्ड द्वीप अनूप अजवाह विजापक कलूतर रङ्कु ॥ **इति कच्छादिः ॥ ६५ ॥**

गहादिभ्यश्च ४ । २ । १३८ ॥ गह अन्तस्थ सम विषम मध्य । मध्यं दिनं चरणे । उत्तम अङ्ग वङ्ग मगध पूर्वपक्ष अपरपक्ष अधम-

मायन ऐन्द्रायण कौद्रायण (कौन्द्रायण) खाडायन शाण्डिल्यायन रायस्पोष विपथ विपाश उद्दण्ड उदञ्चन खाण्डवीरण वीरण काशकृत्स्न जाम्बवत शिंशपा रैवत (रेवत) बिल्व सुयज्ञ शिरीष बधिर जम्बु खादिर सुशर्मन् (सशर्मन्) भलन्द भलन्दन खण्डु कलन यज्ञदत्त ॥ इत्यरीहणादिः ॥ ३९ ॥

२ कृशाश्व अरिष्ट अरिश्म वेश्मन् विशाल लोमश रोमश रोमक लोमक शबल कूट वर्चल सुवर्चल सुकर सूकर प्रातर (प्रतर) सदृश पुरग पुराग सुख धूम अजिन विनत अवनत कुविद्यास (कुविन्यास) पराशर अरुस् अयस् मौद्गल्याकर (मौद्गल्ययुकर) ॥ इति कृशाश्वादिः ॥ ४० ॥

३ ऋश्य (हृष्य) न्यग्रोध शर निलीन [निवास निवात] निधान निबन्धन (निबन्ध) (विबद्ध) परिगूढ (उपगूढ) असनि सित मत वेश्मन् उत्तराश्मन् अश्मन् स्थूल बाहु खदिर शर्करा अनडुह (अनडुह) अरडु परिवंश वेणु वीरण खण्ड दण्ड परिवृत्त कर्दम अंशु ॥ इत्यृश्यादिः ॥ ४१ ॥

४ कुमुद शर्करा न्यग्रोध इक्कट संकट कङ्कट गर्त बीज परिवाप निर्यास शकट कच मधु शिरीष अश्व अश्वत्थ बल्वज यवास कूप विकङ्कट दशग्राम ॥ इति कुमुदादिः ॥ ४२ ॥

५ काश पाश अश्वत्थ पलाश पीयूक्षा चरण वास नड वन कर्दम कच्छल कङ्कट गुहा बिस तृण कर्पूर बर्बर मधुर ग्रह कपित्थ जतु सीपाल ॥ इति काशादिः ॥ ४३ ॥

६ तृण नड मूल वन पर्ण वर्ण वराण बिल पुल फल अर्जुन अर्ण सुवर्ण बल चरण बुस ॥ इति तृणादिः ॥ ४४ ॥

७ प्रेक्षा फल्का (हलका) बन्धुका ध्रुवका क्षिपका न्यग्रोध इक्कट कङ्कट संकट कट कूप बुक पुक पुट मह परिवाप यवाष धुवका गर्त कूपक हिरण्य ॥ इति प्रेक्षादिः ॥ ४५ ॥

८ अश्मन् यूथ ऊष मीन नद दर्भ वृन्द गुद खण्ड नग शिखा

कीट पाम कन्द कान्द कुल गह्व गुड कुण्डल पीन गुह ॥ इत्यश्मादिः ॥ ४६ ॥

९ सखि अग्निदत्त वायुदत्त सखिदत्त (गोपिल) भल्लपाल (भल्ल पाल) चक्र चक्रवाक छगल अशोक करवीर वासव वीर पूर वज्र कुशीरक शीहर (सीहर) सरक सरस समर समल सुरस रोह तमाल कदल सप्तल ॥ इति सख्यादिः ॥ ४७ ॥

१० संकाश कपिल कश्मीर (समीर) सूरसेन सरक सूर। सुपथिन्पन्थ च। यूप (यूथ) अंश अङ्ग नासा पलित अनुनाश अश्मन् कूट मलिन दश कुम्भ शीर्ष चिरन्त (विरत) समल सीर पञ्जर मन्थ नल रोमन् लोमन् पुलिन सुपरि कटिप सकर्णक वृष्टि तीर्थ अगस्ति विकर नासिका ॥ इति संकाशादिः ॥ ४८ ॥

११ बल चुल नल दल वट लकुल उरल पुल (पुल) मूल उलडुल (उल डुल) वन कुल ॥ इति बलादिः ॥ ४९ ॥

१२ पक्ष तुक्ष तुष कुण्ड अण्ड कम्बलिका वलिक चित्र अस्ति। पथः पन्थ च। कुम्भ सीरक सरक सकल सरस समल अतिश्वन् रोमन् लोमन् हस्तिन् मकर लोमक शीर्ष निवात पाक सहक(सिंहक) अङ्कुश सुवर्णक हंसक हिंसक कुत्स बिल खिल यमल हस्त कला सकर्णक ॥ इति पक्षादिः ॥ ५० ॥

१३ कर्ण वसिष्ठ अर्क अर्कलूष द्रुपद आनडुह्य पाञ्चजन्य स्फिग (स्फिज्)कुम्भी कुन्ती जित्वन् जीवन्त कुलिश आण्डीवत् (आण्डीवत) जव जैत्र आकन (आनक) ॥ इति कर्णादिः ॥ ५१ ॥

१४ सुतंगम मुनिचित विप्रचित महाचित्त महापुत्र स्वन श्वेत गडिक (खडिक) शुक्र विग्र बीजवापिन् (बीज वापिन्) अर्जुन श्वन् अजिर जीव खण्डित कर्ण विग्रह॥ इति सुतंगमादिः॥५२॥

१५ प्रगदिन् मगदिन् मददिन् कविल खण्डित गदित चूडार मडार मन्दार कोविदार ॥ इति प्रगद्यादिः ॥ ५३ ॥

१६ वराह पलाशा (पलाश) शेरीष (शिरीष) पिनद्ध निबद्ध

बलाह स्थूल विदग्ध (विजग्ध) विभग्न (निमग्न) बाहु खदिर शर्करा ॥ इति वराहादिः ॥ ५४ ॥

१७ कुमुद गोमथ रथकार दशग्राम अश्वत्थ शाल्मलि (शिरीष) मुनिस्थल कुण्डल कूट मधुकर्ण घासकुन्द शुचिकर्ण ॥ इति कुमुदादिः ॥ ५५ ॥

वरणादिभ्यश्च ४ । २ । ८२ ॥ वरणा शृङ्गी शाल्मलि शुण्डी शयाण्डी पर्णी ताम्रपर्णी गोद आलिङ्ग्यायन जालपदी(जानपदी) जम्बू पुष्कर चम्पा पम्पा वल्गु उज्जयिनी गया मथुरा तक्षशिला उरसा गोमती वलभी ॥ इति वरणादिः ॥ ५६ ॥

मध्वादिभ्यश्च ४ । २ । ८६ ॥ मधु बिस स्थाणु वेणु कर्कन्धु शमी करीर हिम किशरा शर्याण मरुत वार्दाली शर इष्टका आसुति शक्ति आसन्दी शकल शलाका आमिषी इक्षु रोमन्‌ रुष्टि रुष्य तक्षशिला खड वट वेट ॥ इति मध्वादिः ॥ ५७ ॥

उत्करादिभ्यश्छः ४ । २ । ९० ॥ उत्कर संफल शफर पिप्पल पिप्पलीमूल अश्मन्‌ सुवर्ण खलाजिन तिक कितव अणक त्रैवण पिचुक अश्वत्थ काश क्षुद्र भस्त्रा शाल जन्या अजिर चर्मन्‌ उत्क्रोश क्षान्त खदिर शूर्पणाय श्यावनाय नैवाकव तृण वृक्ष शाक पलाश विजिगीषा अनेक आतप फल संपर अर्क गर्त अग्नि वैराणक इडा अरण्य निशान्त पर्ण नीचायक शंकर अवरोहित क्षार विशाल वेत्र अरीहण खण्ड वातागार मन्त्रणार्ह इन्द्रवृक्ष नितान्तवृक्ष आर्द्रवृक्ष ॥ इत्युत्करादिः ॥ ५८ ॥

नडादीनां कुक्च ४ । २ । ९१ ॥ नड प्लक्ष बिल्व वेणु वेत्र वेतस इक्षु काष्ठ कपोत तृण । क्रुञ्चा ह्रस्वत्वं च । तक्षन्नलोपश्च ॥ इति नडादिः ॥ ५९ ॥

कत्र्यादिभ्यो ढकञ् ४ । २ । ९५ ॥ कत्त्रि उम्भि पुष्कर पुष्कल मोदन कुम्भी कुण्डिन नगरी माहिष्मती वर्मती उख्या ग्राम । कुड्याया यलोपश्च ॥ इति कत्र्यादिः ॥ ६० ॥

नद्यादिभ्यो ढक् ४ । २ । ९७ ॥ नदी मही वाराणसी श्रावस्ती कौशाम्बी वनकौशाम्बी काशपरी काशफारी (काशफरी) खादिरी पूर्वनगरी पाठा माया शाल्वदार्वा सेतकी । वडवाया वृषे ॥ **इति नद्यादिः ॥ ६१ ॥**

प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधादण् ४ । २ । ११०॥ पलदी परिषद् रोमक वाहीक कल्कीट बहुकीट जालकीट कमलकीट कमलकीकर कमभिदा गोष्ठी नैकती परिखा शूरसेन गोमती पटच्चर उदपान यकृल्लोम ॥ **इति पलद्यादिः ॥ ६२ ॥**

काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ ४ । २ । ११६ ॥ काशि चेदि (वेदि) सांयाति संवाह अच्युत मोदमान शकुलाद हस्तिकर्षू कुनामन् हिरण्य करण गोवासन भारङ्गी अरिंदम अरित्र देवदत्त दशग्राम शौवावतान युवराज उपराज देवराज मोदन सिन्धुमित्र दासमित्र सुधामित्र सोमामित्र छागमित्र साधमित्र (सधमित्र) । आपदादिपूर्वपदात्कालान्तात् । आपद् ऊर्ध्व तत् ॥ **इति काश्यादिः ॥ ६३ ॥**

धूमादिभ्यश्च ४ । २ । १२७ ॥ धूम षडण्ड शशादन अर्जुनाव माहकस्थली आनकस्थाली माहिषस्थली मानस्थली अट्टस्थली मद्रकस्थली समुद्रस्थली दाण्डायनस्थली राजस्थली विदेह राजगृह सात्रासाह शष्प मित्रवर्ध्र (मित्रवर्ध) मज्जाली मद्रकूल आजीकूल द्व्यहव (द्व्याहाव) त्र्यहव (त्र्याहाव) संस्फाय बर्बर वर्ज्य गर्त आनर्त माठर पाथेय घोष पल्ली आराज्ञी धार्तराज्ञी आवय तीर्थ । कूलात्सौवीरेषु । समुद्रान्नावि मनुष्ये च । कुक्षि अन्तरीप द्वीप अरुण उज्जयनी पट्टार दक्षिणापथ साकेत ॥ **इति धूमादिः ॥ ६४ ॥**

कच्छादिभ्यश्च ४ । २ । १३३ ॥ कच्छ सिन्धु वर्णु गन्धार मधुमत् कम्बोज कश्मीर साल्व कुरु अनुषण्ड द्वीप अनूप अजवाह विजापक कलूतर रङ्कु ॥ **इति कच्छादिः ॥ ६५ ॥**

गहादिभ्यश्च ४ । २ । १३८॥ गह अन्तस्थ सम विषम मध्य । मध्यं दिनं चरणे । उत्तम अङ्ग वङ्ग मगध पूर्वपक्ष अपरपक्ष अधम-

शाख उत्तमशाख एकशाख समानशाख समानग्राम एकग्राम एकवृक्ष एकपलाश इष्वग्र इष्वनीक अवस्यन्दन कामप्रस्थ खाडायन काठेरणि लावेरणि सौमित्रि शैशिरि आसुत् दैवशर्मि श्रौति आहिंसि आमित्रि व्याडि वैजि आध्यश्‍व आनृशंसि शौङ्गि आग्निशर्मि भौजि वाराटकी वाल्मिकि (वाल्मीकि) क्षेमवृद्धि आश्वत्थि औद्गाहमानि ऐकविन्दवि दन्ताग्र हंस तत्त्वग्र (तन्त्वग्र) उत्तर अन्तर (अनन्तर) । मुखपार्श्वतसोर्लोपः । जनपरयोः कुक्च । देवस्य च । **इति गहादिः** वेणुकादिभ्यश्छण् ॥ **आकृतिगणः** ॥ ६६ ॥

संधिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण् ४ । ३ । १६ ॥ संधिवेला संध्या अमावास्या त्रयोदशी चतुर्दशी पञ्चदशी पौर्णमासी प्रतिपत् । संवत्सरात्फलपर्वणोः ॥ **इति संधिवेलादिः** ॥ ६७ ॥

दिगादिभ्यो यत् ४ । ३ । ५४ ॥ दिश् वर्ग पूग गण पक्ष धाय्य मित्र मेधा अन्तर पथिन् रहस् अलीक उखा साक्षिन् देश आदि अन्त मुख जघन मेघ यूथ । उदकात्संज्ञायाम ज्ञाय (न्याय) वंश वेश काल आकाश ॥ **इति दिगादिः** ॥ ६८ ॥

परिमुखादिभ्यश्च ४ । ३ । ५९ ॥ परिमुख परिहनु पर्योष्ठ पर्युलूखल परिसीर उपसीर उपस्थूण उपकलाप अनुपथ अनुपद अनुगङ्ग अनुतिल अनुसीत अनुसाय अनुसीर अनुमाष अनुयव अनुयूप अनुवंश प्रतिशाख ॥ **इति परिमुखादिः** ॥ ६९ ॥

* **अध्यात्मादिभ्यश्च** * ४ । ३ । ६० ॥ अध्यात्म अधिदेव अधिभूत इहलोक परलोक ॥ **इत्यध्यात्मादिः** ॥ **आकृतिगणः** ॥ ७० ॥

अणृगयनादिभ्यः ४ । ३ । ७३ ॥ ऋगयन पदव्याख्यान छन्दोमान छन्दोभाषा छन्दोविचिति न्याय पुनरुक्त निरुक्त व्याकरण निगम वास्तुविद्या क्षत्रविद्या अङ्गविद्या विद्या उत्पात उत्पाद उद्याव संवत्सर मुहूर्त उपनिषद् निमित्त शिक्षा भिक्षा ॥ **इति ऋगयनादिः** ॥ ७१ ॥

शुण्डिकादिभ्योऽण् ४ । ३ । ७६ ॥ शुण्डिक कृकण कृपण स्थण्डिल उदपान उपल तीर्थ भूमि तृण पर्ण ॥ इति **शुण्डिकादिः** ॥ ७२ ॥

शण्डिकादिभ्यो ञ्यः ४ । ३ । ९२ ॥ शण्डिक सर्वसेन सर्वकेश शक शट रक शङ्ख बोध ॥ इति **शण्डिकादिः** ॥ ७३ ॥

सिन्धुतक्षशिलादिभ्योऽणञौ ४ । ३ । ९३ ॥

१ सिन्धु वर्णु मधुमत् कम्बोज साल्व कश्मीर गन्धार किष्किन्धा उरसा दरद (दरद्) गन्दिका ॥ इति **सिन्ध्वादिः** ॥ ७४ ॥

२ तक्षशिला वत्सोद्धरण कैर्मेदुर ग्रामणी छगल क्रोष्टुकर्ण सिंहकर्ण संकुचित किंनर काण्डधार पर्वत अवसान बर्बर कंस ॥ इति **तक्षशिलादिः** ॥ ७५ ॥

शौनकादिभ्यश्छन्दसि ४ । ३ । १०६ ॥ शौनक वाजसनेय शार्ङ्गरव शापेय शाष्पेय खाडायन स्तम्भस्कन्ध देवदर्शन रज्जुभार रज्जुकण्ठ कठशाठ कषाय तल दण्ड पुरुषांसक अश्वपेज ॥ इति **शौनकादिः** ॥ ७६ ॥

कुलालादिभ्यो वुञ् ४ । ३ । ११८ ॥ कुलाल वरुड चाण्डाल निषाद कर्मार सेना सिरिन्ध्र (सिरिध्र) सैरिन्ध्र देवराज पर्षत् (परिषत्) वधू मधु रुरु रुद्र अनडुह ब्रह्मन् कुम्भकार श्वपाक ॥ इति **कुलालादिः** ॥ ७७ ॥

रैवतिकादिभ्यश्छः ४ । ३ । १३१ ॥ रैवतिक स्वापिशि क्षेमवृद्धि गौरग्रीव (गौरग्रीवि) औदमेघि औदवापि बैजवापि ॥ इति **रैवतिकादिः** ॥ ७८ ॥

बिल्वादिभ्योऽण् ४ । ३ । १३६ ॥ बिल्व व्रीहि काण्ड मुद्ग मसूर गोधूम इक्षु वेणु गवेधुका कर्पासी पाटली कर्कन्धु कुटीर ॥ इति **बिल्वादिः** ॥ ७९ ॥

पलाशादिभ्यो वा ४ । ३ । १४१ ॥ पलाश खदिर शिंशपा

स्पन्दन पूलाक करीर शिरीष यवास विकङ्कत ॥ इति पलाशादिः ॥ ८० ॥

नित्यं वृद्धशरादिभ्यः ४ । ३ । १४४ ॥ शर दर्भ मृद (मृत्) कुटी तृण सोम बल्वज ॥ इति शरादिः ॥ ८१ ॥

तालादिभ्योऽण् ४ । ३ । १५२ ॥ तालाद्धनुषि । बार्हिण इन्द्रालिश इन्द्रादृश इन्द्रायुध चय श्यामाक पीयूक्षा ॥ इति तालादिः ॥ ८२ ॥

प्राणिरजतादिभ्योऽञ् ४ । ३ । १५४ ॥ रजत सीस लोह उदुम्बर नीप दारु रोहतक विभीतक पीतदारु तीव्रदारु त्रिकण्टक कण्टकार ॥ इति रजतादिः ॥ ८३ ॥

प्लक्षादिभ्योऽण् ४ । ३ । १६४ ॥ प्लक्ष न्यग्रोध अश्वत्थ इङ्गुदी शिग्रु रुरु कक्षतु बृहती ॥ इति प्लक्षादिः ॥ ८४ ॥

हरीतक्यादिभ्यश्च ४ । ३ । १६७ ॥ हरीतकी कोशातकी नखरञ्जनी शष्कण्डी दाडी दोडी श्वेतपाकी अर्जुनपाकी द्राक्षा काला ध्वाक्षा गर्भीका कण्टकारिका पिप्पली चिम्पा (चिञ्चा) शेफालिका ॥ इति हरीतक्यादिः ॥ ८५ ॥

* माशब्दादिभ्य उपसंख्यानम् * ४ । ४ । १ ॥ माशब्दः नित्यशब्दः । कार्यशब्दः ॥ इति माशब्दादिः ॥ ८६ ॥

* आहौ प्रभूतादिभ्यः * ४ । ४ । १ ॥ प्रभूत पर्याप्त ॥ इति प्रभूतादिः ॥ ८७ ॥

* पृच्छतौ सुस्नातादिभ्यः * ४ । ४ । १ ॥ सुस्नात सुखरात्रि सुखशयन ॥ इति सुस्नातादिः ॥ ८८ ॥

* गच्छतौ परदारादिभ्यः * ४ । ४ । १ ॥ परदार गुरुतल्प ॥ इति परदारादिः ॥ ८९ ॥

पर्पादिभ्यः ष्ठन् ४ । ४ । १० ॥ पर्प अश्व अश्वत्थ रथ जाल न्यास व्याल । पादः पच्च ॥ इति पर्पादिः ॥ ९० ॥

वेतनादिभ्यो जीवति ४ । ४ । १२ ॥ वेतन वाहन अ-

र्धवाह धनुर्दण्ड जाल वेश उपवेश प्रेषण उपवासित सुख शय्या शक्ति उपनिषद् उपदेश स्फिज् (स्फिज) पाद उपस्थ उपस्थान उपहस्त॥ इति वेतनादिः ॥ ९१ ॥

हरत्युत्संगादिभ्यः ४ । ४ । १५ ॥ उत्संग उडुप उत्पुत उत्पन्न उत्पुट पिटक पिटाक ॥ **इत्युत्संगादिः** ॥ ९२ ॥

भस्त्रादिभ्यष्ठन् ४ । ४ । १६ ॥ भस्त्रा भरट मरण शीर्षभार शीर्षेभार अंसभार अंसेभार ॥ **इति भस्त्रादिः** ॥ ९३ ॥

निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः ४ । ४ । १९ ॥ अक्षद्यूत (जानुप्रहृत) जङ्घाप्रहृत जङ्घाप्रहत पादस्वेदन कण्टकमर्दन गतानुगत गतागत यातोपयात अनुगत ॥ **इत्यक्षद्यूतादिः** ॥ ९४ ॥

अण्महिष्यादिभ्यः ४ । ४ । ४८ ॥ महिषी प्रजापति प्रजावती प्रलेपिका विलेपिका अनुलेपिका पुरोहित मणिपाली अनुचारक (अनुचारक) होतृ यजमान ॥ **इति महिष्यादिः** ॥ ९५ ॥

किसरादिभ्यष्ठन् ४ । ४ । ५३ ॥ किसर नरद नलद स्थागल तगर गुग्गुलु उशीर हरिद्रा हरिद्रु पर्गी (पर्णी) ॥ इति **किसरादिः** ॥ ९६ ॥

छत्रादिभ्यो णः ४ । ४ । ६२ ॥ छत्र शिक्षा प्ररोह स्था बुभुक्षा चुरा तितिक्षा उपस्थान कृषि कर्मन् विश्वधा तपस् सत्य अनृत विशिखा विशिका भक्षा उदस्थान पुरोडा विक्षा चुक्षा मन्द्र ॥ इति **छत्रादिः** ॥ ९७ ॥

प्रतिजनादिभ्यः खञ् ४ । ४ । ९९ ॥ प्रतिजन इदंयुग संयुग समयुग परयुग परकुल परस्यकुल अमुष्यकुल सर्वजन विश्वजन महाजन पञ्चजन ॥ इति **प्रतिजनादिः** ॥ ९८ ॥

कथादिभ्यष्ठक् ४ । ४ । १०२ ॥ कथा विकथा विश्वकथा संकथा वितण्डा कुष्टविद् (कुष्ठविद्) जनवाद जनेवाद जनोवाद वृत्ति संग्रह गुण गण आयुर्वेद ॥ इति **कथादिः** ॥ ९९ ॥

गुडादिभ्यष्ठञ् ४ । ४ । १०३ ॥ गुड कुल्माष सक्तु अपूप मांसौदन इक्षु वेणु संग्राम संघात संक्राम संवाय प्रवास निवास उपवास ॥इति गुडादिः ॥ १०० ॥

पञ्चमोऽध्यायः ।

उगवादिभ्यो यत् ५ । १ । २ ॥ गो हविस् अक्षर विष बर्हिस् अष्टका स्खदा युग मेधा स्रुच् । नाभि नभं च । शुनः संप्रसारणं वा च दीर्घत्वं तत्संनियोगेन चान्तोदात्तत्वम् । ऊधसोऽनङ् च । कूप खद दर खर असुर अध्वन् (अध्वन) क्षर वेद बीज दीस (दीप्त) इति गवादिः ॥ १ ॥

विभाषा हविरपूपादिभ्यः ५ । १ । ४ ॥ अपूप तण्डुल अभ्युष (अभ्यूष) अभ्योष अवोष अभ्येष पृथुक ओदन सूप पूप किण्व प्रदीप मुसल कटक कर्णवेष्टक इर्गल अर्गल । अन्नविकारेभ्यश्च । यूप स्थूणा दीप अश्व पत्र ॥ इत्यपूपादिः ॥ २ ॥

असमासे निष्कादिभ्यः ५ । १ । २० ॥ निष्क पण पाद माष वाह द्रोण षष्टि ॥ इति निष्कादिः ॥ ३ ॥

गोद्व्यचोऽसंख्यापरिमाणाश्वादेर्यत् ५ । १ । ३९ ॥ अश्व अश्मन् गण ऊर्णा (उमा) उमा भङ्गा क्षण (गङ्गा) वर्षा वसु ॥ इत्यश्वादिः ॥ ४ ॥

तद्धरति वहत्यावहति भाराद्वंशादिभ्यः ५ । १ । ५० ॥ वंश कुटज बल्वज मूल स्थूणा स्थूण अक्ष अश्मन् अश्व श्लक्ष्ण इक्षु खट्वा ॥ इति वंशादिः ॥ ५ ॥

छेदादिभ्यो नित्यम् ५ । १ । ६४ ॥ छेद भेद द्रोह दोह नर्ति (नर्त) कर्ष तीर्थ संप्रयोग विप्रयोग प्रयोग विप्रकर्ष प्रेषण संप्रश्न विप्रश्न विकर्ष प्रकर्ष । विराग विरङ्गं च ॥ इति छेदादिः ॥ ६ ॥

दण्डादिभ्यो यत् ५ । १ । ६६ ॥ दण्ड मुसल मधुपर्क

कशा अर्थ मेघ मेधा सुवर्ण उदक वध युग गुहा भाग इभ भङ्ग ॥ इति दण्डादिः ॥ ७ ॥

* **महानाम्न्यादिभ्यः षष्ठ्यन्तेभ्य उपसंख्यानम्** * ५ । १ । ९४ ॥ महानाम्नी आदित्यव्रत गोदान ॥ इति **महानाम्न्यादिः** ॥ ८ ॥

* **अवान्तरदीक्षादिभ्यो डिनिर्वक्तव्यः** * ५। १ ।९४॥ अवान्तरदीक्षा तिलव्रत देवव्रत ॥ **इत्यवान्तरदीक्षादिः** ॥ ९ ॥

व्युष्टादिभ्योऽण् ५ । १ । ९७ ॥ व्युष्ट नित्य निष्क्रमण प्रवेशन उपसंक्रमण तीर्थ आस्तरण सङ्ग्राम संघात अग्निपद पीलुमूल (पीलु मूल) प्रवास उपवास ॥ इति **व्युष्टादिः** ॥ ११० ॥

तस्मै प्रभवति संतापादिभ्यः ५ । १ । १०१ ॥ संताप संनाह संग्राम संयोग संपराय संवेशन संपष निष्पेप सर्ग निसर्ग विसर्ग उपसर्ग प्रवास उपवास संवात संवेष संवास संमोदन सक्तु । मांसौदनाद्विगृहीतादपि ॥ इति **संतापादिः** ॥ ११ ॥

* **तद्प्रकरणे उपवस्त्रादिभ्य उपसंख्यानम्** * ५ । १ । १०९ ॥ उपवस्त्र प्राशितृ चूडा श्रद्धा ॥ **इत्युपवस्त्रादिः** ॥ १२ ॥

अनुप्रवचनादिभ्यश्छः ५।१।१११॥ अनुप्रवचन उत्थापन उपस्थापन संवेशन प्रवेशन अनुप्रवेशन अनुवासन अनुवचन अनुवाचन अन्वारोहण प्रारम्भण आरम्भण आरोहण ॥ **इत्यनुप्रवचनादिः** ॥ १३ ॥

* **स्वर्गादिभ्यो यद्वक्तव्यः** * ५ । १ । १११ ॥ स्वर्ग यशस् आयुस् काम धन ॥ इति **स्वर्गादिः** ॥ १४ ॥

* **पुण्याहवाचनादिभ्यो लुग्वक्तव्यः** * ५ । १।१११ ॥ पुण्याहवाचन स्वस्तिवाचन शान्तिवाचन ॥ इति **पुण्याहवाचनादिः** ॥ १५ ॥

पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ५ । १ । १२२ ॥ पृथु मृदु महत् पटु तनु लघु बहु साधु आशु उरु गुरु बहुल खण्ड दण्ड चण्ड अ-

किंचन बाल होड पाक वत्समन्द स्वादु ह्रस्व दीर्घ प्रिय वृष ऋजु क्षिप्र क्षुद्र अणु ॥ इति पृथ्वादिः ॥ १६ ॥

वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ्च ५ । १ । १२४ ॥ दृढ वृढ परिवृढ मृढ कृश वक्र शुक्र चुक्र आम्र कष्ट लवण ताम्र शीत उष्ण जड बधिर पण्डित मधुर मूर्ख मूक स्थिर । वेर्यातलातमतिर्मनःशारदानाम् समो मतितमनसोः । जवन ॥ इति दृढादिः ॥ १७ ॥

गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च ५ । १ । १२४ ॥ ब्राह्मण वाडव माणव । अर्हतो नुम्च । चोर धूर्त आराधय विराधय अपराधय उपराधय एकभाव द्विभाव त्रिभाव अन्यभाव अक्षेत्रज्ञ संवादिन् संवेशिन् संभाषिन् बहुभाषिन् शीर्षघातिन विघातिन् समस्थ विषमस्थ परमस्थ मध्यमस्थ अनीश्वर कुशल चपल निपुण पिशुन कुतूहल क्षेत्रज्ञ निश्च बालिश अलस दुःपुरुष कापुरुष राजन् गणपति अधिपति गडुल दायाद विशस्ति विषम विपात निपात । सर्ववेदादिभ्यः स्वार्थे । चतुर्वेदस्योभयपदवृद्धिश्च । शौटीर ॥ आकृतिगणोऽयम् ॥ इति ब्राह्मणादिः ॥ १८ ॥

* चतुर्वेदादिभ्य उभयपदवृद्धिश्च * ५ । १ । १२४ ॥ चतुर्वेद चतुर्वर्ण चतुराश्रम सर्वविद्य त्रिलोक त्रिस्वर षड्गुण सेना अनन्तर संनिधि समीप उपमा सुख तदर्थ इतिह मणिक ॥ इति चतुर्वेदादिः ॥ १९ ॥

पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् ५ । १ । १२८ ॥ पुरोहित । राजासे । ग्रामिक पिण्डिक सुहित बालमन्द (बाल मन्द) खण्डिक दण्डिक वर्मिक कर्मिक धर्मिक शीलिक सूतिक मूलिक तिलक अञ्जलिक (अन्तलिक) रूपिक ऋषिक पुत्रिक अविक छत्रिक पर्षिक पथिक चर्मिक प्रतिक सारथि आस्तिक सूचिक संरक्ष सूचक (संरक्षसूचक) नास्तिक अजानिक शाकर नागर चूडिक ॥ इति पुरोहितादिः ॥ २० ॥

प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ् ५। १। १२९ ॥

उद्गातृ उन्नेतृ प्रतिहर्तृ प्रशास्तृ होतृ पोतृ हर्तृ रथगणक पत्तिगणक सुष्ठु दुष्ठु अध्वर्यु वधू । सुभग मन्त्र ॥ इत्युद्गात्रादिः ॥ २१ ॥

हायनान्तयुवादिभ्योऽण् ५ । १ । १३० ॥ युवन् स्थविर होतृ यजमान । पुरुषासे । भ्रातृ कुतुक श्रमण (श्रवण) कटुक कमण्डलु कुस्त्री सुस्त्री दुःस्त्री सुहृदय दुर्हृदय सुहृद् दुर्हृद् सुभ्रातृ दुर्भ्रातृ वृषल परिव्राजक सब्रह्मचारिन् अनृशंस । हृदयासे । कुशल चपल निपुण पिशुन कुतूहल क्षेत्रज्ञ । श्रोत्रियस्य यलोपश्च ॥ इति युवादिः ॥ २२ ॥

द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च ५ ।१। १३३ ॥ मनोज्ञ प्रियरूप अभिरूप कल्याण मेधाविन् आढ्य कुलपुत्र छान्दस छात्र श्रोत्रिय चोर धूर्त विश्वदेव युवन् कुपुत्र ग्रामपुत्र ग्रामकुलाल ग्रामड (ग्रामषण्ड) ग्रामकुमार सुकुमार बहुल आश्वपुत्र अमुष्यपुत्र अमुष्यकुल सारपत्र शतपुत्र ॥ इति मनोज्ञादिः ॥ २३ ॥

तस्य पाकमूले पील्वादिकर्णादिभ्यः कुणब्जाहचौ ५ । २ । २४ ॥

१ पीलु कर्कन्धू (कर्कन्धु) शमी करीर बल (कुवल) बदर अश्वत्थ खदिर ॥ इति पील्वादिः ॥ २४ ॥

२ कर्ण अक्षि नख मुख केश पाद गुल्फ भ्रू शृङ्ग दन्त ओष्ठ पृष्ठ ॥ इति कर्णादिः ॥ २५ ॥

तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच् ५ । २ । ३६ ॥ तारका पुष्प कर्णक मञ्जरी ऋजीष क्षण सूच मूत्र निष्क्रमण पुरीष उच्चार प्रचार विचार कुड्मल कण्टक मुसल मुकुल कुसुम कुतूहल स्तबक (स्तवक) किसलय पल्लव खण्डवेग निद्रा मुद्रा बुभुक्षा धेनुष्या पिपासा श्रद्धा अभ्र पुलक अङ्गारक वर्णक द्रोह दोह सुख दुःख उत्कण्ठा भर व्याधि वर्मन् व्रण गौरव शास्त्र तरङ्ग तिलक चन्द्रक अन्धकार गर्व कुमुर (मुकुर) हर्ष उत्कर्ष रण कुवलय गर्ध क्षुध् सीमन्त ज्वर गर रोग रोमाञ्च पण्डा कज्जल तृष् कोरक कल्लोल स्थपुट

फल कञ्चुक शृङ्गार अङ्कुर शैवल बकुल श्वभ्र आराल कलङ्क कर्दम कन्दल मूर्च्छा अङ्गार हस्तक प्रतिबिम्ब विघ्नतन्त्र प्रत्यय दीक्षा गर्ज । गर्भादप्राणिनि ॥ **इति तारकादिः॥ आकृतिगणः॥२६॥**

विमुक्तादिभ्योऽण् ५ । २ । ६१ ॥ विमुक्त देवासुर रक्षोसुर उपसद सुवर्ण परिसारक सदसत् वसु मरुत् पत्नीवत् वसुमत् महीयत्व सत्त्वत् बर्हवत् दशार्ण दशार्ह वयस् हविर्धान पतत्रिन् महित्री अस्यहत्य सोमापूषन् इडा अग्नाविष्णू उर्वशी वृत्रहन् ॥ **इति विमुक्तादिः** ॥ २७ ॥

गोषदादिभ्यो वुन् ५ । २ । ६२ ॥ गोषद् इषेत्वा मातरिश्वन् देवस्यत्वा देवीरापः कृष्णोस्याखरेष्ठः देवींधिया (देवीं धियम्) रक्षोहण युञ्जान अञ्जन प्रभृत प्रतूर्त कृशानु (कृशाकु) ॥ **इति गोषदादिः** ॥ २८ ॥

आकर्षादिभ्यः कन् ५ । २ । ६४ ॥ आकर्ष (आकष) त्सरु पिशाच पिचण्ड अशनि अश्मन् निचय जय चय विजय आचय नय पाद दीप ह्रद ह्राद ह्लाद गद्गद शकुनि ॥ **इत्याकर्षादिः** ॥२९॥

इष्टादिभ्यश्च ५ । २ । ८८ ॥ इष्ट पूर्त उपासादित निगदित परिगदित परिवादित निकथित निषादित निपठित संकलित परिकलित संरक्षित परिरक्षित अर्चित गणित अवकीर्ण आयुक्त गृहीत आम्नात श्रुत अधीत अवधान आसेवित अवधारित अवकल्पित निराकृत उपकृत उपाकृत अनुयुक्त अनुगणित अनुपठित व्याकुलित ॥ **इतीष्टादिः** ॥ १३० ॥

रसादिभ्यश्च ५ । २ । ९५ ॥ रस रूप वर्ण गन्ध स्पर्श शब्द स्नेह भाव । गुणात् एकाचः ॥ **इति रसादिः** ॥ ३१ ॥

सिध्मादिभ्यश्च । ५ । २ । ९७ ॥ सिध्म गडु मणि नाभि बीज वीणा कृष्ण निष्पाव पांसु पार्श्व पर्शू हनु सक्तु मास (मांस)। पार्ष्णिधमन्योर्दीर्घश्च । वातदन्तबलललाटानामूङ् च । जटाघटाकटाकालाः क्षेपे । पर्ण उदक प्रज्ञा सक्थि कर्ण स्नेह शीत श्याम पिङ्ग पित्त

पुष्क पृथु मृदु मंजु मण्ड पत्र चटु कपि गण्डु ग्रन्थि श्री कुश धार वर्ष्मन् पक्ष्मन् श्लेष्मन् पेश निष्पाद् कुण्ड । क्षुद्रजन्तूपतापयोश्च ॥ इति सिध्मादिः ॥ ३२ ॥

लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः ५।२।१००॥

१ लोमन् रोमन् बभ्रु हरि गिरि कर्क कपि मुनि तरु ॥ इति लोमादिः ॥ ३३ ॥

२ पामन् वामन् वेमन् हेमन् श्लेष्मन् कद्रु (कद्रू) वलि सामन् ऊष्मन् कृमि । अङ्गात्कल्याणे । शाकीपलालीदद्रूणां ह्रस्वत्वं च । विष्वगित्युत्तरपदलोपश्चाकृतसंधेः । लक्ष्म्या अच्च ॥ इति पामादिः ॥ ३४ ॥

३ पिच्छा उरस् धुवक ध्रुवक । जटाघटाकालाः क्षेपे । वर्ण उदक पङ्क प्रज्ञा ॥ इति पिच्छादिः ॥ ३५ ॥

* ज्योत्स्नादिभ्य उपसंख्यानम् * ५ । २ । १०३ ॥ ज्योत्स्ना तमिस्रा कुण्डल कुतप विसर्प विपादिका ॥ इति ज्योत्स्नादिः ॥ ३६ ॥

व्रीह्यादिभ्यश्च ५ । २ । ११६ ॥ व्रीहि माया शाला शिखा माला मेखला केका अष्टका पताका चर्मन् कर्मन् वर्मन् दंष्ट्रा संज्ञा वडवा कुमारी नौ वीणा बलाका यवखदनौ कुमारी । शीर्षान्नञः ॥ इति व्रीह्यादिः ॥ ३७ ॥

तुन्दादिभ्य इलच्च ५ । २ । ११७ ॥ तुन्द उदर पिचण्ड यव व्रीहि । स्वाङ्गाद्विवृद्धौ ॥ इति तुन्दादिः ॥ ३८ ॥

अर्शआदिभ्योऽच् ५ । २ । १२७ ॥ अर्शस् उरस् तुन्द चतुर पलित जटा घटा घाटा अभ्र अघ कर्दम अम्ल लवण । स्वाङ्गाद्धीनात् । वर्णात् ॥ इत्यर्शआदिः ॥ आकृतिगणः॥ ३९ ॥

सुखादिभ्यश्च ५ । २ । १३१ ॥ सुख दुःख तृप्त कृच्छ्र अस्र (आश्र) आस्र अलीक कठण सोढ प्रतीप शील हल । माला क्षेपे । कृपण प्रणाय(प्रणय) दल कक्ष॥इति सुखादिः॥४०॥

पुष्करादिभ्यो देशे ५ । २ । १३५ ॥ पुष्कर पद्म उत्पल तमाल कुमुद नड कपित्थ बिस मृणाल कर्दम शालूक विगर्ह करीष शिरीष यवास प्रवाह हिरण्य कैरव कल्लोल तट तरङ्ग पङ्कज सरोज राजीव नालीक सरोरुह पुटक अरविन्द अम्भोज अब्ज कमल पयस् ॥ **इति पुष्करादिः** ॥ ४१ ॥

बलादिभ्यो मतुबन्यतरस्याम् ५ । २ । १३६ ॥ बल उत्साह उद्भास उद्वास उद्दास शिखा कुल चूडा सुल कूल आयाम व्यायाम उपयाम आरोह अवरोह परिणाह युद्ध॥**इति बलादिः**॥४२॥

* **इष्टिग्रहणाद्भवदादियोग एव** * ५ । ३ । १४ ॥ भवान् दीर्घायुः देवानांप्रियः आयुष्मान् ॥ **इति भवदादिः**॥४३॥

देवपथादिभ्यश्च ५ । ३ । १०० ॥ देवपथ हंसपथ वारिपथ रथपथ स्थलपथ करिपथ अजपथ राजपथ शतपथ शङ्कुपथ सिन्धुपथ सिद्धगति उष्ट्रग्रीव वामरज्जु हस्त इन्द्र दण्ड पुष्प मत्स्य ॥ **इति देवपथादिः** ॥ **आकृतिगणः** ॥ ४४ ॥

शाखादिभ्यो यः ५ । ३ । १०३ ॥ शाखा मुख जघन शृङ्ग मेघ अभ्र चरण स्कन्ध स्कद (स्कन्द) उरस् शिरस् अग्र शाण ॥ **इति शाखादिः** ॥ ४५ ॥

शर्करादिभ्योऽण् ५ । २ । १०७ ॥ शर्करा कपालिका कपिष्ठिका (कनिष्ठिका) पुण्डरीक शतपत्र गोलोमन् लोमन् गोपुच्छ नराची नकुल सिकता ॥ **इति शर्करादिः** ॥ ४६ ॥

अङ्गुल्यादिभ्यष्ठक् ५ । ३ । १०८ ॥ अङ्गुली भरुज बभ्रु वल्गु मण्डर मण्डल शष्कुली हरि कपि मुनि रुह खल उदश्वित् गोणी उरस् कुलिश ॥ **इत्यङ्गुल्यादिः** ॥ ४७ ॥

दामन्यादित्रिगर्तषष्ठाच्छः ५ । ३ । ११६ ॥ दामनि औलपि बैजवापि औदकि औदङ्कि अच्युतन्तिं (आच्युतन्ति) अच्युतदन्ति (आच्युतदन्ति) शाकुन्तकि आकिदन्ति औडवि

काकदन्तकि शातंतपि सर्वसेनि बिन्दु बैन्दवि तुलभ मौञ्जायन काकन्दि सावित्रीपुत्र ॥ इति दामन्यादिः ॥ ४८ ॥

पर्श्वादियौधेयादिभ्योऽणञौ ५ । ३ । ११७ ॥

१ पर्शु असुर रक्षस् बाल्हीक वयस् वसु मरुत् सत्वत् दशार्ह पिशाच अशनि कार्षापण ॥ इति पर्श्वादिः ॥ ४९ ॥

२ यौधेय कौशेय शौक्रेय शौभ्रेय धार्तेय वार्तेय ज्यावाणेय त्रिगर्त भरत उशीनर ॥ इति यौधेयादिः ॥ ५० ॥

स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने कन् ५ । ४ । ३ ॥ स्थूल अणु माषेषु (माष इषु) कृष्ण तिलेषु । यव व्रीहिषु । इक्षु तिल । पाद्यकालावदातसुरायाम । गोमूत्र आच्छादने । सुरा अहौ । जीर्ण शालिषु । पत्रमूल समस्तो व्यस्तश्च । कुमारीपुत्र कुमारीश्वशुर मणि ॥ इति स्थूलादिः ॥ ५१ ॥

यावादिभ्यः कन् ५ । ४ । २९ ॥ याव मणि अस्थि तालु जानु सान्द्र पीत स्तम्ब । ऋतावुष्णशीते । पशौ लूनवियाते । अणु निपुणे । पुत्र कृत्रिमे । स्नात वेदसमाप्तौ । शून्य रिक्ते । दान कुत्सिते । तनु सूत्रे । ईयसश्च । ज्ञात अज्ञात । कुमारीक्रीडनकानि च (कुमारक्रीडनकानि च) ॥ इति यावादिः ॥ ५२ ॥

विनयादिभ्यष्ठक् ५ । ४ । ३४ ॥ विनय समय । उपायो ह्रस्वत्वं च । संप्रति संगति कथंचित् अकस्मात् समाचार उपचार समाय । (समयाचार) व्यवहार संप्रदान समुत्कर्ष समूह विशेष अत्यय ॥ इति विनयादिः ॥ ५३ ॥

प्रज्ञादिभ्यश्च ५।४।३८॥ प्रज्ञ वणिज् उशिज् उष्णिज् प्रत्यक्ष विद्वस् विदन् षोडन् विद्या मनस् । श्रोत्र शरीरे। जुह्वत् । कृष्ण मृगे। चिकीर्षत् । चोर शत्रु योध चक्षुस् वसु एनस् मरुत् क्रुञ्च सत्वत् दशार्ह वयस् व्याकृत असुर रक्षस् पिशाच अशनि कर्षापण देवता बन्धु ॥ इति प्रज्ञादिः ॥ ५४ ॥

*** आद्यादिभ्य उपसंख्यानम् *** ५ । ४ । ४४ ॥ आदि

मध्य अन्त पृष्ठ पार्श्व ॥ इत्याद्यादिः॥आकृतिगणः ॥ ५५ ॥

अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः । ५ । ४ । १०७ ॥ शरद् विपाश् अनस् मनस् उपानह् अनडुह् दिव् हिमवत् हिरुक् विद् सद् दिश् दृश् विश् चतुर् त्यद् तद् यद् कियत् । जराया जरश्च । प्रतिपरसमनुभ्योऽक्ष्णः । पथिन् ॥ इति शरदादिः ॥ ५६ ॥

द्विदण्ड्यादिभ्यश्च । ५ । ४ । १२८ ॥ द्विदण्डि द्विमुसलि उभाञ्जलि उभयाञ्जलि उभादन्ति उभयादन्ति उभाहस्ति उभयाहस्ति उभाकर्णि उभयाकर्णि उभापाणि उभयापाणि उभाबाहु उभयाबाहु एकपदि प्रोष्ठपदि आच्यपदि (आढ्यपदि) सपदि निकुच्यकर्णि संहतपुच्छि अन्तेवासि ॥ इति द्विदण्ड्यादिः ॥ ५७ ॥

पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः । ५ । ४ । १३८ ॥ हस्तिन् कुद्दाल अश्व कशिक कुरुत कटोल कटोलक गण्डोल गण्डोलक कण्डोल कण्डोलक अज कपोत जाल गण्ड महेला दासी गणिका कुसूल ॥ इति हस्त्यादिः ॥ ५८ ॥

कुम्भपदीषु च ५ । ४ । १३९ ॥ कुम्भपदी एकपदी जालपदी शूलपदी मुनिपदी गुणपदी शतपदी सूत्रपदी गोधापदी कलशीपदी विपदी तृणपदी द्विपदी त्रिपदी षट्पदी दासीपदी शितिपदी विष्णुपदी सुपदी निष्पदी आर्द्रपदी कुणिपदी कृष्णपदी शुचिपदी द्रोणीपदी (द्रोणपदी) द्रुपदी सूकरपदी शकृत्पदी अष्टापदी स्थूणापदी अपदी सूचीपदी ॥ इति कुम्भपद्यादिः ॥ ५९ ॥

उरःप्रभृतिभ्यः कप् ५ । ४ । १५१ ॥ उरस् सर्पिस् उपानह् पुमान् अनड्वान् पयः नौः लक्ष्मीः दधि मधु शाली शालिः । अर्थान्नञः ॥ इत्युरःप्रभृतयः ॥ ६० ॥

षष्ठोऽध्यायः ।

* **शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्** * ६ । १ । ९४ ॥ शकन्धुः कर्कन्धुः कुलटा । सीमन्तः केशवेशे । हलीषा मनीषा

लाङ्गलीषा पतञ्जलिः । सारङ्गः पशुपक्षिणोः ॥ इति शकन्ध्वादिः ॥ १ ॥

पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायाम् ६ । १ । १५७ ॥ पारस्करो देशः । कारस्करो वृक्षः । रथस्या नदी । किष्कुः प्रमाणम् । किष्किन्धा गुहा । तद्बृहतोः करपत्योश्चोरदेवतयोः सुट् तलोपश्च । प्रात्तुम्पतौ गवि कर्तरि ॥ इति **पारस्करादिः** ॥ २ ॥

उञ्छादीनां च ६ । १ । १६० ॥ उञ्छ म्लेच्छ जञ्ज नल्प (जल्प) जप वध । युग कालविशेषे रथाद्युपकरणे च । गरो दूष्ये । वेदवेगवेष्टबन्धाः करणे । स्तुयुद्रुवश्छन्दसि । वर्तनि स्तोत्रे । श्वभ्रे दरः । साम्बतापौ भावगर्हायाम । उत्तमशश्वत्तमौ सर्वत्र । भक्षमन्थभोगमन्थाः ॥ इत्युञ्छादिः ॥ ३ ॥

वृषादीनां च ६ । १ । २०३ ॥ वृषः जनः ज्वरः ग्रहः हयः गयः नयः तायः तयः चयः अमः वेदः सूदः अंशः गुहा । शमरणौ संज्ञायां । संमतौ भावकर्मणोः । मन्त्रः शान्तिः कामः यामः आरा धारा कारा वहः कल्पः पादः ॥इति **वृषादिः**॥आकृतिगणः ॥ अविहितलक्षणमाद्युदात्तत्वं वृषादिषु ज्ञेयम् ॥ ४ ॥

विस्पष्टादीनि गुणवचनेषु ६ । २ । २४ ॥ विस्पष्ट विचित्र विचित्त व्यक्त संपन्न पटु पण्डित कुशल चपल निपुण ॥ इति **विस्पष्टादिः** ॥ ५ ॥

कार्तकौजपादयश्च ६ । २ । ३७ ॥ कार्तकौजपौ सावर्णिमाण्डकेयौ (सावर्णिमाण्डूकेयौ) अवन्त्यश्मकाः पैलश्यापर्णेयाः कपिश्यापर्णेयाः शैतिकाक्षपाञ्चालेयाः कटुकवाधूलेयाः शाकलशुनकाः शाकलशणकाः शणकवाभ्रवाः आर्चाभिमौद्गलाः कुन्तिसुराष्ट्राः चिन्तिसुराष्ट्राः तण्डवतण्डाः अविमत्तकामविद्धाः बाभ्रवशालङ्कायनाः बाभ्रवदानच्युताः कठकालापाः कठकौथुमाः कौथुमलौकाक्षाः स्त्रीकुमारम् मौदपैप्पलादाः वत्सजरन्तः सौश्रुतपार्थिवाः जरामृत्यू याज्यानुवाक्ये ॥ इति **कार्तकौजपादिः** ॥ ६ ॥

कुरुगार्हपतरिक्तगुर्वसूतजरत्यश्लीलदृढरूपा पारेवड-वा तैतिलकद्रूः पण्यकम्बलो दासीभाराणां च ६।२।४२॥ दासीभारः देवहूतिः देवभीतिः देवलातिः वसुनीतिः (वसूनितिः) ओषधिः चन्द्रमाः ॥ इति दासीभारादिः॥आकृतिगणः॥७॥

युक्तारोह्यादयश्च ६ । २ । ८१ ॥ युक्तारोही आगतरोही आगतयोधी आगतवञ्ची आगतनन्दी आगतप्रहरी आगतमत्स्यः क्षीरहोता भगिनीभर्ता ग्रामगोधुक् अश्वत्रिरात्रः गर्गत्रिरात्रः व्युष्टि-त्रिरात्रः गणपादः एकशितिपाद् । पात्रे समितादयश्च ॥ इति युक्तारोह्यादिः ॥ आकृतिगणः ॥ ८ ॥

घोषादिषु च ६ । २ । ८५ ॥ घोष घट (कट) वल्लभ ह्रद बदरी पिङ्गल (पिगली) पिशङ्ग माला रक्षा शाला (कूट) कुट् कूट शाल्मली अश्वत्थ तृण शिल्पी मुनि प्रेक्षाकू (प्रेक्षा) ॥ इति घोषादिः ॥ ९ ॥

छात्र्यादयः शालायाम् ६ । २ । ८६ ॥ छात्रिपेलि भाण्डि व्याडि आखण्डि आटि गोमि ॥ इति छात्र्यादिः ॥ १० ॥

प्रस्थेऽवृद्धमकर्क्यादीनाम् ६ । २ । ८७ ॥ कर्कि (कर्की) मघ्नी मकरी कर्कन्धु शमी करीरि (करीर) कन्दुक कुवल (कवल) बदरी ॥ इति कर्क्यादिः ॥ ११ ॥

मालादीनां च ६ । २ । ८८ ॥ माला शाला शोणा (शोण) द्राक्षा स्राक्षा. क्षामा काञ्ची एक काम दिवोदास वध्र्यश्व ॥ इति मालादिः ॥ आकृतिगणः ॥ १२ ॥

क्रत्वादयश्च ६ । २ । ११८ ॥ क्रतु दृशीक प्रतीक प्रतूर्ति हव्य भव्य भग ॥ इति क्रत्वादिः ॥ १३ ॥

आदिश्चिहणादीनाम् ६ । २ । १२५ ॥ चिहण मदुर मद्रु-मर वैतुल पटत्क बैडालिकर्णक बैडालिकर्णि कुक्कुट चिक्कण चित्कण ॥ इति चिहणादिः ॥ १४ ॥

वर्ग्यादयश्च ६ । २ । १३१ ॥ दिगादिषु वर्गादयस्त एव कृतयदन्ता वर्ग्यादयः ॥

चूर्णादीन्यप्राणिषष्ठ्याः ६ । २। १३४॥ चूर्ण करिष करीष शाकिन शाकट द्राक्षा तूस्त कुन्दम दलप चमसी चक्कन चौल ॥ इति चूर्णादिः ॥ १५ ॥

उभे वनस्पत्यादिषु युगपत् ६ । २ । १४० ॥ वनस्पतिः बृहस्पतिः शचीपतिः तनूनपात् नराशंसः शुनःशेपः शण्डामर्कौ तृष्णावरूत्री लम्बाविश्ववयसौ मर्मृत्युः ॥ इति वनस्पत्यादिः॥१६॥

संज्ञायामनाचितादीनाम् ६ । २ ।१४६ ॥ आचित पर्याचित आस्थापित परिगृहीत निरुक्त प्रतिपन्न अपश्लिष्ट प्रश्लिष्ट उपहित उपस्थित संहितागवि ॥ इत्याचितादिः ॥ १७ ॥

प्रवृद्धादीनां च ६ । २ । १४७ ॥ प्रवृद्धं यानम् । प्रवृद्धो वृषलः । प्रयुता सूष्णवः । आकर्षे अवहितः। अवहितो भोगेषु खट्वारूढः । कविशस्तः ॥ इति प्रवृद्धादिः ॥ १८ ॥ आकृतिगणोऽयम् ॥ तन । प्रवृद्धं यानम् । अप्रवृद्धो वृषकतो रथ इत्यादि॥

कृत्योकेष्णुचार्वादयश्च ६ । २ । १६० ॥ चारु साधु यौधिक (यौधकि) अनङ्गमेजय वदान्य अकस्मात् । वर्तमानवर्धमानत्वरमाणध्रियमाणक्रियमाणरोचमानशोभमानाः संज्ञायाम् । विकारसदृशे व्यस्तसमस्ते । गृहपति गृहपतिक । राजाह्लोश्छन्दसि ॥ इति चार्वादिः ॥ १९ ॥

न गुणादयोऽवयवाः ६ । २ । १७६ ॥ गुण अक्षर अध्याय सूक्त छन्दोमान ॥ इति गुणादिः॥ आकृतिगणः ॥ २० ॥

निरुदकादीनि च ६ । २ । १८४ ॥ निरुदक निरुपल निर्मक्षिक निर्मशक निष्कालक निष्कालिक निष्पेष दुस्तरीप निस्तरीप निस्तरीक निरजिन उदजिन उपाजिन । परेर्हस्तपादकेशकर्षाः ॥ इति निरुदकादिः ॥ आकृतिगणः ॥ २१ ॥

प्रतेरंश्वादयस्तत्पुरुषे ६ । २ । १९३॥ अंशु जन राजन् उष्ट्र

• * कणादीनां चेति वक्तव्यम् * ७ । ४ । ३ ॥ कण रण भण श्रण लुप हेठ ह्वायि वाणि लोटि (लोठि) लोपि ॥ इति कणादिः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

तिङो गोत्रादीनि कुत्सनाभीक्ष्ण्ययोः ८।१।२७॥ गोत्र ब्रुव प्रवचन प्रहसन प्रकथन प्रत्ययन प्रपञ्च प्राय न्याय प्रचक्षण विचक्षण अवचक्षण स्वाध्याय भूयिष्ठ वानाम॥इति गोत्रादिः॥१॥

पूजनात्पूजितमनुदात्तं काष्ठादिभ्यः ८ । १।६७॥ काष्ठ दारुण अमातापुत्र वेश अनाज्ञात अनुज्ञात अपुत्र अयुत अद्भुत अनुक्त भृश घोर सुख परम सु अति ॥ इति काष्ठादिः ॥ २ ॥

मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः ८ । २ । ९ ॥ यव दल्मि ऊर्मि (उर्मि) भूमि कृमि कुञ्चा वशा द्राक्षा ध्राक्षा ध्रजि ध्वजि निजि सिजि सञ्जि हरित् ककुत् मरुत् गरुत् इक्षु द्रु मधु ॥ इति यवादिः । आकृतिगणः ॥ ३ ॥

* अहरादीनां पत्यादिषूपसंख्यानम् * ८ । २ । ७०॥

१ अहर् गीर् धूर् ॥ इत्यहरादिः ॥ ४ ॥

२ पति गण पुत्र ॥ इति पत्यादिः ॥ ५ ॥

कस्कादिषु च ८ । ३ । ४८ ॥ कस्कः कौतस्कुतः भ्रातुष्पुत्रः शुनस्कर्णः सद्यस्कालः सद्यस्क्रीः साद्यस्क्रः कांस्कान् सर्पिष्कुण्डिका धनुष्कपालम् बहिष्पलम् (बर्हिष्पलम्) यजुष्पात्रम् अयस्कान्तः तमस्काण्डः अयस्काण्डः मेदस्पिण्डः भास्करः अहस्करः ॥ इति कस्कादिः ॥ आकृतिगणः ॥ ६ ॥

सुषामादिषु च ८।३।९८॥ सुषामा निःषामा दुःषामा सुषेधः निषेधः निःषेधः दुःषेधः सुषंधिः निःषंधिः दुःषंधिः सुष्ठु दुष्ठु । गौरिषक्थः संज्ञायाम् । प्रतिष्णिका जलाषाहम् (जलाषाडम्) नौषेचनम् दुन्दुभिषेवणम् (दुन्दुभिषेचणम्) । एति संज्ञायामगात् ।

नक्षत्राद्वा। हरिषेणः रोहिणीषेणः ॥ इति सुषामादिः॥ आकृतिगणः॥ ७ ॥

न रपरसृपिसृजिस्पृशिस्पृहिसवनादीनाम् ८ । ३ । ११० ॥ सवने सवने । सूते सूते । सोमे सोमे । सवनमुखे सवनमुखे । किंसं किंसम् (किंसः किंसः) । अनुसवनमनुसवनम् । गोसनिं गोसनिम् । अश्वसनिमश्वसनिम् ॥ **पाठान्तरम्** ॥ सवने सवने । सवनमुखे सवनमुखे । अनुसवनमनुसवनम् । संज्ञायां बृहस्पतिसवः । शकुनिसवनम । सोमे सोमे । सुते सुते । संवत्सरे संवत्सरे । बिसं बिसम् । किसं किसम् । मुसलं मुसलम् । गोसनिम् अश्वसनिम् ॥ इति सवनादिः॥ ८॥

*** इरिकादिभ्यः प्रतिषेधो वक्तव्यः *** ८ । ४। ६॥ इरिका मिरिका तिमिरा ॥ इतीरिकादिः ॥ आकृतिगणः ॥ ९ ॥

*** गिरिनद्यादीनां च *** ८ । ४ । १० ॥ गिरिनदी गिरिनख गिरिनद्ध । आकृतिगणः॥ १० ॥ गिरिनितम्ब चक्रनदी चक्रनितम्ब तूर्यमान माषोन आर्गयन ॥ इति गिरिनद्यादिः ॥१०॥

क्षुभ्नादिषु च ८ । ४ । ३९ ॥ क्षुभ्न नृनमन नन्दिन् नन्दन नगर । एतान्युत्तरपदानि संज्ञायां प्रयोजयन्ति । हरिनन्दी हरिनन्दनः गिरिनगरम् । नृतिर्यङि प्रयोजयन्ति । नरीनृत्यते । नर्तन गहन नन्दन निवेश निवास अग्नि अनूप।एतान्युत्तरपदानि प्रयोजयन्ति।परिनर्तनम् परिगहनम् परिनन्दनम् शरनिवेशः शरनिवासः शराग्निः दर्भानूपः । आचार्यादणत्वं च ॥ **आकृतिगणोऽयम्॥पाठान्तरम्॥** क्षुभ्ना तृप्नु नृनमन नरनगर नन्दन । यङ्नृती । गिरिनदी गृहगमन निवेश निवास अग्नि अनूप आचार्यभोगीन चतुर्हायन । इरिकादीनि वनोत्तरपदानि संज्ञायाम् । इरिका तिमिर समीर कुबेर हरि कर्मार ॥ इति क्षुभ्नादिः ॥ ११ ॥

इति श्रीपाणिनिमुनिप्रणीतो गणपाठः समाप्तः ।

सुबन्तशब्दवर्णक्रमः ।

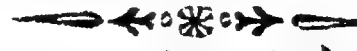
सुबन्तशब्दवर्णक्रम समाप्त ।

तिङन्तधातुवर्णक्रमः ।

इति तिङन्तधातुवर्णक्रमः समाप्तः ।

॥ श्रीः ॥

लघुसिद्धान्तकौमुदीस्थसूत्रवार्त्तिकादिवर्णक्रमः ।



(१) अइउण् । ऋलृक् । एओङ् । ऐऔच् । हयवरट् । लण् । ञमङणनम् । झभञ् । घढधष् । जबगडदश् । खफछठथचटतव् । कपय् । शषसर् । हल् ॥

आ.

थ

द.

प.

श.

इति सूत्रवार्त्तिकादिवर्णक्रमः ॥

नूतन पुस्तकोंकी जाहिरात.

हितोपदेश [नीतिविषयक].

(व्रजरत्नभट्टाचार्यकृत भाषाटीकासहित.)

बालकोंसे वृद्धपर्यन्त ऐसा कोईभी पढालिखा नर न होगा जो उपरोक्त ग्रन्थका नाम न जानता हो। इस ग्रन्थका विषय तो इसके नामहीसे प्रकट होता है, यद्यपि इसका अनुवाद कईएक स्थानोंमें मुद्रित हुआ है परन्तु इसकी समताको कोई नहीं पा सक्ता; इसके पढनेवालोंको विशेष लाभ यह है, ऊपर मूल और नीचे भाषाटीका रक्खी है कि–विना गुरुके सब आशय अवगत हो जाता है, इस हमारे यहांके मुद्रित अनुवादकी उत्तमताका ठीक यही प्रमाण है कि–अनेकों संस्कृतपाठशालाओंमें आदर पाया है। बढिया विलायती कपडेकी जिल्द बंधी है। मूल्य १। रु० । ट० म० ३ आ० ।

तथा ऊपरके सब अलंकारोंसे अलंकृत, विना जिल्दका मू० १ रु०।

वाल्मीकिरामायण भूषणटीका–यदि वाल्मीककी वाणीका रस चखनेमें लालसा हो, यदि संस्कृतमें पूरी योग्यता प्राप्त करनी हो, यदि कथाके उपयोगी सबही विषय एकमें चाहो तो इसके मंगानेमें त्वरा करो. मू० २५ रु० ।

श्रीविष्णुसहस्रनाम– १ भगवद्गुणदर्पणभाष्य निर्वचन और निरुक्ति इन तीन संस्कृत टीकासहित छपके तयार है, यह पुस्तक बहुत बडा है, की० ५ रु० । २ भगवद्गुणदर्पणभाष्यकी व्युत्पत्ति और उसके अनुसार **दीपिका** नामक भाषाटीकासहित, की० १ रु० । ३ शंकराचार्यकृत भाष्यकी व्युत्पत्ति और उसके अनुसार **चंद्रिका** नामक भाषाटीका सहित, कीमत १२ आना । ४ केवल **भाषाटीका** सहित गुटका, की० ८ आ० । ५ विष्णुसहस्रनाम मूल बडे टाइपका रेशमी की० ५ आ० ।

बालसंस्कृतप्रभाकर–संस्कृत और हिन्दी भाषामें अपूर्व ग्रंथ संस्कृत सीखनेवाले विद्यार्थिगणको अत्यंत उपकारक तथा चमत्कारक. जिसमें प्रथम संस्कृत वाक्य और उसके सामने शुद्ध हिंदीवाक्योंसे अर्थ लिखा गया है और अपूर्व २ संस्कृत गंभीरशब्दोंका संग्रह, व्याकरणकी उपयुक्त सबही बातें उदाहरणसहीत संक्षिप्ततासे लिखी गई हैं, तथा धर्मशास्त्र ज्योतिष आदि प्राचीन वर्तमानके सबही उपयुक्त विषय लिखे गये है । जिससे विद्यार्थिगण संस्कृत बोलनेमें भाषांतर करनेमें तथा सब प्रकारके अन्य विषयोंके ज्ञानमेंभी निपुण २ हो जावेगा, यह देखनेहीसे मालूम होवे । ग्लेज कागज की० ८आ०। रफ् कागज की० ६ आना ।

रामगंगामाहात्म्य भाषाटीका–यदि रामगंगासे कुछभी प्रेम हो तो इस सिद्ध पुस्तकके मंगानेसे न चकिये. मू० २ आ० ।

घटकर्परकाव्य भाषाटीका–यदि यमकात्मक काव्यके रसकू चाखना होय तो इसे मंगाओ मूल्य २ आ० ।

राजवल्लभनिघंटु भाषाटीकासहित–इसमें छः परिच्छेद. पहिले परिच्छेदमें प्रभातकालके, दूसरेमें पौर्वाह्णिक (दुपहरसे पहिलेके), तीसरेमें माध्याह्निक (दुपहरके), चौथेमें अपराह्णिक(दुपहरसे संध्यातकके), पांचवेमें रात्रिमें होनेवाले कार्योंके तथा छटेमें सब औषधि आदियोंके गुण तथा नाम कहे है यहभी वैद्यलोगोंको बडा उपकारक है. इसपर भाषाटीकाभी ऐसी अच्छी सुबोध और सरल बनाई गई है कि जो सब लोगोंकी समझमें आवेगी सब वैद्यलोगोंको चाहिये कि इस पुस्तककी एक प्रति अपने संग्रहमें रखें की. १॥ रु.

मदनपालनिघंटु भाषाटीकासहित–इसमें सब औषधि, फल, फूल, शाक, सब तरहके मांस, धातु, उपधातु इत्यादि सब द्रव्योंके नाम और गुण लिखे हैं. यह ग्रंथ वैद्यजनोंको परम सहायक है. इसपर भाषाटीकाभी अच्छी बनाई गई है. कीमत २। रु० ।